बौद्धभारतीग्रन्थमाला-३४
Bauddha Bharati Series-34

सुत्तपिटक

दीघनिकायपालि

(१. सीलक्खन्धवग्ग)

[हिन्दीअनुवादसहित]

प्रधानसम्पादक
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-३४
Bauddha Bharati Series-34

सुत्तपिटके

दीघनिकायपालि

(१. सीलक्खन्धवग्गो)

[हिन्दीअनुवादसहितो]

प्रधानसम्पादक
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

Bauddha Bharati Series-34

The
DĪGHANIKĀYAPĀLI
(1. Sīlakkhandha Vagga)

With

[Hindi Translation]

Edited & Translated By
Swāmī Dwārikādās Shāstrī

BAUDDHA BHARATI
VARANASI
1996

2539 B.] [V. 2052

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-३४

सुत्तपिटके

दीघनिकायपालि

(१. सीलक्खन्धवग्गो)

[हिन्दीरूपान्तरसहितो]

सम्पादक एवं अनुवादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारती

वाराणसी

बु० २५३९]　　१९९६ ई०　　[वि०२०५२

पो० बॉ० नं० १०४९
वाराणसी-२२१००१. (भारत)

P. B. No. 1049
VARANASI-221001 [India]

सहसम्पादक :
धर्मकीर्त्तिशास्त्री
चन्द्रकीर्त्तिशास्त्री

प्रथम संस्करण-१९९६

First Edition-1996

मुद्रक :
साधना प्रेस
काटन मिल कालोनी
वाराणसी-२२१ ००२
फोन :- (0542) 333094

Printed By :
SADHANA PRESS
Cotton Mill Colony
VARANASI- 221 002
Ph. (0542) 333094

प्रकाशकीय वक्तव्य

"अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं" ति
— विनयपिटके, भगवा बुद्धो।

बौद्धभारती के स्थापनाकाल (सन् १९६८ ई०) से हमारा यह सङ्कल्प था कि समग्र त्रिपिटक (बुद्धवचन) का हिन्दी-रूपान्तर (अनुवाद) के साथ पुनः प्रकाशन होना चाहिये, जिससे वह अन्य भाषाओं के विद्वानों के लिये भी उपयोगी हो सके। परन्तु यह कार्य स्वयं में इतना विशाल, गुरुतर एवं बहुजनसाध्य था कि बौद्धभारती जैसा अल्पसाधन वाला प्रतिष्ठान एकाकी इसके प्रकाशन का साहस नहीं कर पा रहा था।

एतदर्थ, हमने विगत पन्द्रह वर्षों में अत्यधिक प्रयास किया; भारत के केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय से, उ०प्र० शासन के शिक्षा विभाग से, भारत के अनेक साधनसम्पन्न प्रकाशकों से तथा धनपतियों एवं बुद्धिजीवियों से इस कार्य के लिये आर्थिक साधन संगृहीत कराने हेतु निवेदन किया; परन्तु किसी ने भी, इस कार्य हेतु, हमारा उत्साहवर्धन नहीं किया।

अन्त में, हमने विवश होकर, बौद्धभारती के अपने अल्प साधनों के बल पर ही इस कार्य को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। तदनुसार, सर्वप्रथम सुत्तपिटक का मज्झिमनिकाय (सम्पूर्ण) हिन्दी अनुवाद के साथ पाँच भागों में प्रकाशित किया। जो कि पाँच वर्ष में पूर्ण हुआ।

उसी क्रम में, अब हम सुत्तपिटक का दीघनिकाय (सम्पूर्ण) (हिन्दी अनुवाद के साथ) तीन भागों में प्रकाशित कर रहे हैं।

'मज्झिमनिकाय' की तरह इसमें भी हमने पालि-पाठ के लिये बर्मा में हुए छट्ठ सङ्गायन पर आधृत, और श्रीलंका, स्याम (थाईलैण्ड) तथा पालिटैक्स्ट सोसाइटी लन्दन के संस्करणों का सहयोग लेकर १९५६-६१ में 'पालि त्रिपिटिक प्रकाशन बोर्ड' नालन्दा से प्रकाशित एवं आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी-संस्करण को आदर्श रूप में रखा है। इसमें हमने बहुत कम परिवर्तन किया है। कहीं-कहीं मुद्रणाशुद्धियों के संशोधन के अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं किया है।

साथ ही हमने उक्त सभी बर्मा, नालन्दा एवं रोमन संस्करणों की पृष्ठ-संख्या रोमन अक्षरों में क्रमशः यथास्थान दे दी है। अनुसन्धाता इससे लाभान्वित होंगे।

हमने हिन्दी-अनुवाद आचार्य श्रीबुद्धघोष की अट्ठकथा एवं महापण्डित श्रीराहुल सांकृत्यायन कृत हिन्दी-अनुवाद को प्रमाण मान कर सम्पन्न करते हुए, उसे पालि-पाठ के साथ नीचे दिया है। इससे पाठक को पालि एवं उसकी हिन्दी—दोनों ही भाषाएँ अत्यन्त सरलता से हृदयङ्गम हो सकेंगी—ऐसा हमारा विश्वास है।

यहाँ हमें एक निवेदन अवश्य करना है कि विषय—वैशद्य (बात को समझाने) के लिये पालि में विषय का अनुकूल-प्रतिकूल, या आरोह-अवरोह दोनों क्रमों से विस्तृत (अक्षरशः) वर्णन किया जाता है। इस शैली में भाषाच्छटा तो अवश्य आ जाती है, परन्तु इस शब्द-समूह में फंस कर पाठक से मूल विषय दूर-दूर सा होने लगता है। इसके लिये पालि-संग्रहकारों ने ऐसे विशेष स्थानों

(जहाँ पाठ पुनः पुनः आवृत्त हो) के लिये '....पे०....' की परम्परा रखी है। इस परम्परा का इससे पहले के संस्करणों में निर्भयता से उपयोग हुआ है। इसे हमने भी अपने हिन्दी-अनुवाद में स्वीकार किया है। परन्तु '....पे०....' का अनुवाद हमने '....पूर्ववत्....' करके दिया है, या प्रायः '....' इस चिह्न का प्रयोग किया है, ताकि पाठक प्रसङ्ग के प्रधान विषय से दूर न हो जाय।

यों हमने एक अभिनव पद्धति में बुद्ध-वचन (त्रिपिटक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। यदि विद्वानों को यह पद्धति रुचिकर व अनुकूल प्रतीत हुई तो हम आगामी काल में त्रिपिटक के समग्र ग्रन्थों का प्रकाशन इसी पद्धति से करेंगे।

एक कार्य हमने, इस प्रसङ्ग में और किया है। ग्रन्थ में वर्णित सूत्रों का संक्षेप हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ग्रन्थ के प्रारम्भ में दे दिया है। जिससे पाठक को सूत्रों का वर्ण्य विषय एक ही दृष्टि में हृदयङ्गम हो जाय।

इस तरह हम इस ग्रन्थमाला को पालि-हिन्दी-इंग्लिश तीनों ही भाषाओं के विद्वानों के लिये उपयोगी बना पाये हैं—ऐसा हमारा विश्वास है।

मकरसंक्रान्ति, २०५२ वि०
वाराणसी

अध्यक्ष
बौद्धभारतीपरिषद्

निदानकथा

आज से प्राय: २५०० वर्ष पूर्व लोक शास्ता भगवान् बुद्ध ने, बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद मध्यमण्डल में चारिका करते हुए निरन्तर ४५ वर्षों तक उस समय की लोक-भाषा में, बहुजनहिताय बहुजनसुखाय जो उपदेश किया था, सौभाग्य से त्रिपिटिक के रूप में वह आज भी सुरक्षित है। वे चाहते थे कि उनका सन्देश जनसाधारण तक पहुँचे, इसके लिये स्वयं उन्होंने लोकभाषा (अर्ध-मागधी) में उपदेश किया और साथ ही अपने शिष्यों को भी यह अनुमति प्रदान की कि वे उनके उपदेशों को अपनी-अपनी भाषा में परिवर्तित कर धारण कर सकते हैं। हो सकता है उन दिनों तत्कालीन अनेक भाषाओं में बुद्ध-वचनों के संग्रह हुए हों; किन्तु आज जो बुद्धवचन हमें मिलते हैं, वे एक हीं भाषा में हैं, जिसे हम 'पालिभाषा' कहते हैं। कालान्तर में इसी भाषा में विस्तृत साहित्य की रचना हुई। त्रिपिटक पर अट्ठकथायें और इन अट्ठकथाओं पर टीका, अनुटीका, मधुटीका, योजना, गण्ठी आदि अनेक टीका-ग्रन्थ समय-समय पर निर्मित हुए। इनके अतिरिक्त अनुपिटक और उन पर अट्ठकथा, टीका आदि प्रचुर साहित्य भी हमें इसी पालिभाषा में मिलता है। इसी से समझा जा सकता है कि यह कितना विस्तृत साहित्य है। यह सम्पूर्ण साहित्य बर्मा, श्रीलङ्का, श्याम, कम्बोज आदि बौद्ध देशों में आज भी न केवल सुरक्षित ही है; अपितु अध्ययन-अध्यापन तथा नये-नये ग्रन्थलेखन आदि द्वारा दिनानुदिन वृद्धिङ्गत भी हो रहा है। वहाँ के मनीषी इस साहित्य की उसी प्रकार सुरक्षा कर रहे हैं, जिस प्रकार भारत में वेद और उसके उपजीव्य साहित्य की या अन्यत्र बाइबिल और कुरान साहित्य की सुरक्षा की जा रही है।

त्रिपिटक

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के अनन्तर उनके प्रमुख शिष्यों ने बुद्ध-वचनों की सुरक्षा की दृष्टि से उनका तीन भागों में संग्रह किया। वे तीन भाग पिटारियों की भाँति हैं, अत: उन्हें 'त्रिपिटक' कहा जाता है। विनयपिटक, सुत्तपिटक और अभिधम्मपिटक—ये तीन पिटक हैं। जिस पिटक में भिक्षु और भिक्षुणियों से सम्बद्ध पालनीय धर्मों के उपदेश सङ्गृहीत हैं उसे 'विनय-पिटक' और जिसमें विद्वानों साधारण समाज के लिये उपदेश सङ्गृहीत हैं उसे 'सुत्तपिटक' कहते हैं। तथा जिसमें विद्वानों द्वारा समझने योग्य गम्भीर और दार्शनिक सिद्धान्त उपदिष्ट हैं उसे 'अभिधम्मपिटक' कहते हैं। ये तीनों पिटक भी आगे चलकर अनेक उपविभागों में बाँटे गये।

'तिपिटक' के ग्रन्थों का विभाजन

तिपिटक

विनयपिटक

१. महावग्ग
२. चुल्लवग्ग
३. पाराजिक
४. पाचित्तिय
५. परिवार

सुत्तपिटक

१. दीघनिकाय
२. मज्झिमनिकाय
३. संयुत्तनिकाय
४. अङ्गुत्तरनिकाय
५. खुद्दकनिकाय

(१) खुद्दकपाठ
(२) धम्मपद
(३) उदान
(४) इतिवुत्तक
(५) सुत्तनिपात
(६) विमानवत्थु
(७) पेतवत्थु
(८) थेरगाथा
(९) थेरीगाथा
(१०) जातक
(११) निद्देस
(१२) पटिसम्भिदामग्ग
(१३) अपदान
(१४) बुद्धवंस
(१५) चरियापिटक

अभिधम्मपिटक

१. धम्मसङ्गणि
२. विभङ्ग
३. धातुकथा
४. पुग्गलपञ्ञत्ति
५. कथावत्थु
६. यमक
७. पट्ठान

प्रस्तुत ग्रन्थ
की
विषयवस्तु

दीघनिकाय में ३४ लम्बे-लम्बे 'सुत्त' हैं , जो तीन खण्डों में विभक्त हैं— १. सीलक्खन्धवग्ग, २. महावग्ग और ३. पाथिकवग्ग।

प्रस्तुत ग्रन्थ का ये प्रथम खण्ड 'सीलक्खन्धवग्ग' का देवनागरी-संस्करण है। इस नामकरण का वास्तविक अर्थ शील से सम्बन्धित नियमों का वर्ग है। यह महत्त्वपूर्ण भी है, क्योंकि इसमें प्रारम्भिक, मध्यम तथा महाशील का पहले दो 'सुत्तों' में तथा वाद में आये कुछ 'सुत्तों' में भी विस्तृत विवेचन किया गया है।

(१) ब्रह्मजालसुत्त—भगवान् बुद्ध अपनी भिक्षु-मण्डली के साथ राजगृह और नालन्दा के बीच राजपथ पर जा रहे थे। उनकें पीछे 'सुप्पिय' परिव्राजक भी अपने शिष्य 'ब्रह्मदत्त' माणवक के साथ जा रहा था। 'सुप्पिय' बुद्ध, उनके धर्म तथा सङ्घ की निन्दा कर रहा था और उसका शिष्य 'ब्रह्मदत्त' उनकी प्रशंसा। भिक्षुओं ने इसके सम्बन्ध में भगवान् से निवेदन किया।

भगवान् ने कहा कि यदि कोई हम सब की निन्दा करे तो तुम लोगों को उससे वैर, असन्तोष अथवा चित्त में कोप नहीं करना चाहिये; प्रत्युत इसके विषय में ठीक से समीक्षा करके यह निश्चित करना चाहिये कि वे जो कुछ कहते हैं, वह मिथ्या है कि नहीं ? इसी प्रकार यदि वे हम सब की प्रशंसा करे तो इससे तुम्हे आनन्दित और हर्षोत्फुल्ल नहीं होना चाहिये; प्रत्युत इस सम्बन्ध में यह समीक्षा भी करनी चाहिये कि क्या वे सच कह रहे हैं ?

बुद्ध ने यह बताया कि जनसाधारण उनके बाह्यचरण की पूर्णता के महत्त्व के कारण ही उनकी प्रशंसा करते हैं; पर जिसमें उनकी वास्तविक महत्ता निहित है, उस गम्भीर दर्शन को वे हृदयङ्गम नहीं करं पाते। उन्होंने कहा—भिक्षुओ,यह शील बहुत छोटा और गौण है, जिसके कारण साधारण लोग मेरी प्रशंसा करते हैं। भिक्षुओ, इनके अतिरिक्त अन्य दूसरे धर्म हैं; जो गम्भीर, दुर्ज्ञेय, दुरनुबोध, शान्त, सुन्दर, तर्क से परे, निपुण और पण्डितों के समझने योग्य हैं; जिन्हें तथागत स्वयं जानकर और साक्षात्कार करके कहते हैं तथा जिन के कारण तथागत के यथार्थ गुण को ठीक-ठीक कहने वाले कहते हैं।

भगवान् ने व्याख्या करते हुये बतलाया कि काल के अज्ञान से उत्पन्न 'पूर्वान्त' तथा 'अपरान्त' दृष्टियों के कारण ही दर्शन की मिथ्यादृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं। अपनी 'समाधि-भावना' और 'एकाग्रता' के विकास से 'योगावचर' (तत्त्वजिज्ञासु) कई कल्पों के अपने पूर्वजन्मों को जानने में समर्थ हो जाता है। इसी से उसे यह मिथ्या-दृष्टि उत्पन्न हो जाती है कि उसके व्यक्तित्व की सत्ता एक नित्य सत्त्व है, जो आत्मा रूप से अभिहित की जाती है। इसी प्रकार अन्य योग-सम्बन्धी अनुभवों अथवा अपनी दार्शनिक कल्पना के आधार पर कुछ लोग अवास्तविक भविष्य को सत्य मानकर भविष्य में कूटस्थ तथा नित्य रहने वाले आत्मा के सम्बन्ध में विभिन्न मत स्थिर कर लेते हैं।

इस 'सुत्त' में भूत काल के अज्ञान से उत्पन्न अठारह तथा भविष्य काल के अज्ञान से उत्पन्न चवालीस अर्थात् कुल बासठ मिथ्यादृष्टियों का उल्लेख है। बुद्ध ने 'सुत्त' के अन्त में कहा है कि जिस प्रकार एक मछुआ अपने जाल में किसी छोटे जलाशय की सभी मछलियों तथा अन्य जीवों को फँसाने में समर्थ होता है; उसी प्रकार इस 'सुत्त' में सभी मिथ्यादृष्टियाँ पकड़ में आ गयी हैं। इस 'सुत्त' का पूर्वार्ध शील-सम्बन्धी अवस्थाओं का तीन शीर्षकों 'चूळ', 'मध्यम' तथा 'महा' के अन्तर्गत विस्तृत विवेचन करता है। इस विवेचन-प्रसङ्ग में देश के सामाजिक तथा साँस्कृतिक इतिहास के अध्ययन की महत्त्वपूर्ण सामग्री सन्निहित है। इसमें उस समय के विभिन्न खेल, जुए, आमोद-प्रमोद के साधन, विलास तथा स्नानादि की

विभिन्न वस्तुएँ, अन्धविश्वास ज्यौतिषसम्बन्धी भविष्य-वाणियाँ तथा अन्य कई प्रकार की चमत्कारिक विद्याओं का उल्लेख हैं। परन्तु ये सभी वस्तुएँ एक भिक्षु अथवा प्रव्रजित के लिये अनुचित समझी गयी हैं।

(२) सामञ्ञफलसुत्त—बुद्ध राजगृह में 'जीवक कोमारभच्च' के आम्रवन में साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के महासङ्घ के साथ विहार कर रहे थे। उसी समय, कौमुदीपूर्ण पूर्णिमा की रात्रि में मगधसम्राट् वैदेहिपुत्र अजातशत्रु अपने प्रासाद के सर्वोपरि भाग में राजामत्यों के साथ बैठा हुआ था। उसने कहा—"कैसी रमणीय चाँदनी रात है! क्यों न हम आज किसी श्रमण अथवा ब्राह्मण का सत्सङ्ग करें, जिसका उपदेश हमारे चित्त को प्रसन्न करे"।

उसकी बात सुनकर एक राजामात्य ने कहा—"महाराज, यहाँ पर समाज द्वारा सम्मानित और विख्यात 'पूरण-कस्सप' नामक एक गणाचार्य है। आप उसी से धर्म-चर्चा कर अपनी शङ्काओं का निवारण करें"। इसी प्रकार अन्य आमत्यों ने भी 'मक्खलि गोसाल', 'अजित केसकम्बल', 'पकुध कच्चायन', 'सञ्जय बेलट्ठपुत्त' तथा 'निगण्ठ नाटपुत्त' के नाम सुझाये; पर राजा मौन रहा।

अन्त में राजवैद्य 'जीवक-कोमारभच्च' ने कहा—"महाराज, भगवान् बुद्ध नगर के बाहर मेरे आम्रवन में विहार कर रहे हैं। वे भगवान् बुद्ध अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध, विद्या और आचरण से युक्त, सुगत, लोकविद् तथा देव और मनुष्यों के शास्ता हैं। आप उनके पास चलें और धर्म-चर्चा करें। हो सकता है उनके साथ धर्मालाप करने से कदाचित् आपका चित्त प्रसन्न हो जाय"।

अजातशत्रु ने इस सुझाव को स्वीकार कर आवश्यक प्रबन्ध करने के बाद जहाँ पर भगवान् बुद्ध ठहरे हुये थे, उस स्थान के लिये प्रस्थान किया। जब अजातशत्रु ने उस आम्रवन के समीप पहुँच कर वहाँ का वातावरण शान्त और शून्य पाया तो उनके मन में यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि कहीं उसे षड्यन्त्र करके शत्रुओं के हाथ में तो नहीं सौंपा जा रहा है! 'जीवक' ने उसके सन्देह को निर्मूल बतलाकर उसे आगे चलने को प्रोत्साहित करते हुये कहा कि जहाँ दीप जल रहे हैं, वहीं मण्डप में भगवान् बुद्ध बैठे हुये हैं। तब अजातशत्रु, जहाँ भगवान् बुद्ध थे, वहाँ गया। वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि निर्मल जलाशय की भाँति सर्वथा चुपचाप, शान्त भिक्षुसङ्घ के सामने भगवान् बुद्ध आसन लगाकर शान्त बैठे हुए हैं। तब अजातशत्रु भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। तत्पश्चात् बुद्ध की आज्ञा से उसने पूछा—'भन्ते, मैंने प्रत्यक्ष देखा है कि अपनी इच्छा के अनुकूल शिल्पों के फल से लोग इसी जन्म में प्रत्यक्ष जीविका करते और अपने को सुखी अनुभव करते हैं। इसी प्रकार क्या आपके शिष्य श्रमणों के, जो गृहत्याग कर भिक्षु के रूप में इधर-उधर घूमा करते हैं, श्रामण्य-फल को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है"?

बुद्ध उससे प्रत्युत्तर में कहा—"महाराज, क्या तुमने कभी अन्य सम्प्रदाय के आचार्यों से भी इस प्रकार का प्रश्न किया है"?

अजातशत्रु ने इसका उत्तर देते हुये कहा कि मैंने यह प्रश्न 'पूरण-कस्सप', 'मक्खलि-गोसाल' तथा अन्य आचार्यों से भी पूछा है, पर कोई भी सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे पाया।

तब अजातशत्रु को समझाते हुये भगवान् बुद्ध ने यह प्रश्न किया—"महाराज, यदि आपका एक आज्ञाकारी सेवक आपकी दासता छोड़कर प्रव्रजित हो जाय तो क्या आप उसे यह आज्ञा देना उचित समझेंगे कि वह पुन: लौटकर आपकी पूर्ववत् सेवा करे"?

सम्राट् ने कहा—"नहीं, भन्ते, मैं ऐसा नहीं करूँगा; प्रत्युत स्वयं जाकर उसका अभिवादन करूँगा और उसके लिये सुविधाजनक तथा सुरक्षित वास का भी आवश्यक प्रबन्ध करूँगा" ॥

बुद्ध ने इस बात की और सङ्केत करते हुए कहा कि श्रामण्य का यह पहला फल है, जो भौतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण न होने पर भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। इसके बाद उन्होंने पवित्र श्रमण-जीवन के वास्तविक फलों की व्याख्या करते हुये बतलाया कि एक श्रमण किस प्रकार शील-सम्पन्न हो आत्म-शुद्धि के आनन्द का अनुभव करता हुआ चित्त के सञ्चरण का निरोध करने में समर्थ होता है और ध्यान की

अवस्थाओं को सिद्ध कर अपूर्व दिव्य-ऋद्धियों को प्राप्त करता हुआ अन्तिम रूप से सांसारिक भव-स्थिति के 'आस्रवों' (मलों) को नष्ट कर परम-मुक्तिरूप उच्चतम 'निब्बान' का अनुभव करता है।

सम्राट् अजातशत्रु ने बुद्ध का उपासकत्व स्वीकार किया और वह उन्हें अभिवादन करने के बाद चला गया।

(३) **अम्बट्ठसुत्त**—बुद्ध कोसल देश के 'इच्छानङ्गल' नामक ब्राह्मण-ग्राम में विहार कर रहे थे। वहाँ के 'पोक्खरसाति' नामक धनी और सम्मानित ब्राह्मण ने अपने शिष्य 'अम्बट्ठ' को आज्ञा दी कि वह बुद्ध के पास जाकर यह ज्ञात करे कि बुद्ध में क्या वस्तुतः उतनी ही महत्ता विद्यमान है, जितनी कि लोक में ख्यात है। अम्बट्ठ अपने कुछ सहपाठियों को लेकर वहाँ पहुँचा जहाँ बुद्ध भगवान् ठहरे हुये थे। 'आलिन्द' में पहुँचकर उसने द्वार खटखटाया। द्वार खुला और अम्बट्ठ अपने साथियों के साथ भीतर प्रविष्ट हुआ।

अपनी उद्धतता के कारण 'अम्बट्ठ' ने नम्र व्यवहार नहीं किया; प्रत्युत उसने शाक्य जाति पर अकुलीन होने और ब्राह्मणों के प्रति अनादर भाव रखने का दोषारोपण किया। जब बुद्ध ने उसके गोत्र 'कण्हायन' का इतिहास बतलाते हुये यह सिद्ध कर दिया कि वह शाक्यों के पूर्व-पुरुष राजा 'इक्ष्वाकु' के दासी-पुत्र 'कण्ह' का वंशज है, तब 'अम्बट्ठ' लज्जावनत मौन होकर बैठ गया। बुद्ध ने उसे इस प्रकार लज्जित हुआ देख उसके प्रति दया-भाव प्रदर्शित करते हुए बतलाया कि 'कण्ह' दिव्य ऋद्धि वाले एक महर्षि थे और 'अम्बट्ठ' को उनके वंशज होने का गौरव प्राप्त है। तत्पश्चात् बुद्ध ने ब्राह्मण कुमार और क्षत्रिय कन्या अथवा क्षत्रिय कुमार और ब्राह्मण कन्या के अन्तर्जातीय विवाह की ओर सङ्केत करते हुए प्रचलित रीति-रिवाजों के आधार पर क्षत्रियों को ब्राह्मणों से श्रेष्ठ सिद्ध किया। उन्होंने इस मत को प्रतिपादित करने वाली 'ब्रह्मा सनङ्कुमार' की यह गाथा प्रस्तुत की—

"गोत्र लेकर चलने वाले जनों में क्षत्रिय श्रेष्ठ है, जो विद्या और आचरण से युक्त है, वह देव-मनुष्यों में श्रेष्ठ है"।

बाद में, 'अम्बट्ठ' ने जब भगवान् बुद्ध के शरीर में महापुरुष के बत्तीस लक्षण देख लिये तो उसे उनकी महत्ता पर पूर्ण विश्वास हो गया। वह अपने आचार्य 'पोक्खरसाति' के पास गया और भगवान् के साथ हुए कथा-संलाप की सूचना दी। श्रद्धा से पूर्ण 'पोक्खरसाति' ने भगवान् बुद्ध के पास पहुँच उनके उपदेश सुने और उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

(४) **सोणदण्डसुत्त**—बुद्ध अङ्ग देश में चारिका करते हुये 'चम्पानगर' पहुँचे और 'गग्गरा' पुष्करणी के तट पर विहार करने लगे।

उस समय वहाँ पर 'सोणदण्ड' नामक सम्मानित ब्राह्मण रहता था। जिसे राजा 'बिम्बिसार' की ओर से 'चम्पानगर' में अतुल भूमि और सम्पत्ति प्राप्त थी। उसने बुद्ध के पास जाकर उनसे मिलने की अपनी इच्छा वहाँ के ब्राह्मणों से व्यक्त की। उन्होंने इसे उचित नहीं समझा और यह कहते हुये उसे ऐसा करने से रोकने की चेष्टा की कि यह उसके जैसे तीनों वेदों के पारङ्गत, ऊँचे व्यक्तित्व वाले चरित्रवान्, कल्याण-वाक् तथा बहुत से माणवकों के आचार्य के सम्मान के विरुद्ध है कि वह एक तरुण प्रव्रजित श्रमण गौतम से मिलने जाय। 'सोणदण्ड' ने उनके उपर्युक्त विरोध का खण्डन करते हुये कहा कि श्रमण गौतम एक परम मुक्त, साधु, महापुरुष के बत्तीस लक्षणों से युक्त, राजा 'बिम्बिसार' तथा प्रसिद्ध ब्राह्मण आचार्य 'पोक्खरसाति' द्वारा सम्मानित होने के साथ ही हमारे अतिथि हैं। हमें उनका उचित स्वागत-सत्कार तथा परिचर्या करनी ही चाहिये। अतः 'सोणदण्ड' ब्राह्मण अपने बहुत से अनुगामियों के साथ बुद्ध के दर्शनार्थ चला। मार्ग में उसने यह विचार किया कि यह मेरे लिये कितना बुरा होगा, जब मैं बुद्ध द्वारा प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तर देने में असमर्थ होऊँगा तथा इस उपस्थित जन-समाज के सम्मुख मेरी हँसी होगी। क्या ही अच्छा होता कि बुद्ध मुझसे मेरे अपने विषय ब्राह्मण-धर्म पर ही प्रश्न पूछते। वहाँ 'सोणदण्ड' की इच्छानुकूल ही बात हुई तथा बुद्ध ने उससे यही प्रश्न पूछा कि कितने गुणों से युक्त पुरुष को वास्तविक ब्राह्मण मानते हैं ?

'सोणदण्ड' ने सन्तोष की साँस लेते हुये पूर्ण विश्वास के साथ इस प्रश्न का उत्तर दिया—श्रमण गौतम! सुजातित्व, वेद में पारङ्गत होना, अभिरूपत्व, शील तथा पाण्डित्य (मेधा)—इन पाँच गुणों से युक्त पुरुष को 'ब्राह्मण' कहते हैं।

बुद्ध ने प्रश्न करते हुये कहा कि क्या इन पाँच गुणों में से किसी एक गुण को छोड़ने वाला पुरुष, भी ब्राह्मण कहा जा सकता है?

'सोणदण्ड' ने इस पर विचार कर कहा कि बाह्य विचारणीय वस्तु अभिरूपत्व के अभाव में भी किसी पुरुष को ब्राह्मण स्वीकर किया जा सकता है। इसी प्रकार बुद्ध ने इस प्रश्न के विवेचनार्थ पूछा कि शेष चार गुणों में से क्या किन्हीं के अभाव को हम स्वीकार कर सकते हैं? पुनः 'सोणदण्ड' को यहाँ तक स्वीकार करना पड़ा कि सुजातित्व तथा वेदों में पारङ्गत होना—इन दोनों गुणों से युक्त होना भी आवश्यक नहीं है। बुद्ध ने इस विषय में 'सोणदण्ड' से अपनी सहमति प्रकट की और कहा कि शील तथा प्रज्ञा ब्राह्मणत्व के अत्यावश्यक गुण हैं। उन्होंने आगे शील और प्रज्ञा की स्थिति पर प्रकाश डालते हुये कहा कि जहाँ शील है, वहीं प्रज्ञा है; जहाँ प्रज्ञा है, वहीं शील है। शीलप्रक्षालित प्रज्ञा है तथा प्रज्ञाप्रक्षालित शील है। लोक में शील प्रज्ञा का अग्रगामी (अगुआ) है।

बुद्ध के उपदेश से 'सोणदण्ड' सन्तुष्ट हुआ, परन्तु उसे इस बात का भय था कि यदि वह खुले रूप से उनका शिष्यत्व स्वीकार करेगा तो जनमत उसके विरुद्ध हो जायगा तथा इससे उसकी हानि होगी। यह सोचकर उसने भगवान् बुद्ध से कहा कि यदि मैं परिषद् में बैठकर हाथ जौड़ूँ, तो उसे आप मेरा प्रत्युत्थान समझें और यदि मैं अपना साफा हटाऊँ तो उसे आप मेरा शिर से अभिवादन समझें। इसी प्रकार यान में आरूढ़ यदि मैं अपने कोड़े का डण्डा उठाऊँ तो अपने सम्मान में मुझे यान से उतरा हुआ समझें और यान में आरूढ़ यदि मैं अपना छत्र उठाऊँ तो उसे आप मेरा शिर से अभिवादन समझें।

(५) कूटदन्तसुत्त—बुद्ध मगध में चारिका करते हुये 'खाणुमत' नामक ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे और वहीं एक आम्रवन में ठहर गये। उस समय वहाँ पर 'कूटदन्त' नामक एक सम्मानित ब्राह्मण रहता था, जिसे सहायता के रूप में महाराज 'बिम्बिसार' की ओर से अतुल भूमि और सम्पत्ति प्राप्त थी। उस समय 'कूटदन्त' एक महायज्ञ करने जा रहा था, जिसके लिये बहुत अधिक संख्या में बैल, बछड़े, बकरियाँ तथा अन्य पशु यज्ञ के 'स्थूण' पर बलि के लिये लाये गये थे।

कूटदन्त ने सुन रखा था कि भगवान् बुद्ध सोलह परिष्कार सहित त्रिविध-यज्ञ-सम्पदा से भली-भाँति परिचित हैं। अतः उसने बुद्ध के पास जाकर उनसे उस यज्ञ-विधि को समझाने के लिये प्रार्थना की।

बुद्ध ने यज्ञ-विधि का वर्णन करते हुये उसे यह बतलाया कि भूतकाल में राजा 'महाविजित' ने किस प्रकार सोलह परिष्कारों और त्रिविध सम्पदाओं से युक्त एक आदर्श यज्ञ किया था। सर्वप्रथम ब्राह्मण पुरोहित ने राज को आदेश दिया कि वह अपने राज्य से निर्धनता समाप्त करे; क्योंकि भ्रष्टाचार, चोरी तथा अन्य बुराइयों से रक्षा का यही एक निश्चित उपाय है। राजा 'महाविजित' में अन्य वे सभी गुण विद्यमान थे, जो एक यज्ञ करने वाले में होने चाहिये। वह माता तथा पिता दोनों की ओर से उच्चकुलीन, चतुरङ्गिणी सेना वाला, उदारमना, अनेक विद्याओं में पारङ्गत तथा सत्य का मर्म जानने वाला था। उसका ब्राह्मण पुरोहित भी उसी के समान गुणों वाला था।

पुरोहित द्वारा राजा को समझा दिया गया था कि यज्ञ में अधिक व्यय होने पर अथवा दुष्टों के आने पर अथवा निराधार दोषारोपण किये जाना पर वह खिन्न न हो। उस यज्ञ में गाय, बकरी, मुर्गी अथवा सूअर किसी की बलि नहीं दी गयी और किसी सेवक को परेशान अथवा दण्डित किया गया। यज्ञ में आमन्त्रित अधीनस्थ राजा अपने साथ अतुल धनराशि लाये थे। उस सम्पत्ति को उन्होंने यज्ञ-वेदी के चारों कोनों में रखकर उन लागों को दान कर दिया, जिन्हें कि उसकी आवश्यकता थी।

'महाविजित' द्वारा किया गया यह एक आदर्श यज्ञ था। बुद्ध ने कहा कि इससे भी श्रेष्ठ यज्ञ-पात्रों

को दान करने के लिये दान-केन्द्र स्थापित करना है। पर श्रेष्ठों में श्रेष्ठ यज्ञ प्रज्ञा-यज्ञ है। 'कूटदन्त' की शङ्काओं का निवारण हुआ और उसने बुद्ध, धर्म तथा सङ्घ की शरण ग्रहण की।

(६) महालिसुत्त— बुद्ध वैशाली में महावन की कूटागारशाला में विहार कर रहे थे। उस समय वहाँ मगध तथा कोसल के कुछ ब्राह्मण दूत किसी कार्य से प्रवास कर रहे थे। वे बुद्ध के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने हेतु महावन गये। आयुष्मान् 'नागित' ने जो उस समय भगवान् बुद्ध के 'उपट्ठाक' थे, उनसे ध्यान करने के बाद बुद्ध के बाहर आने के समय तक प्रतीक्षा करने को कहा। लिच्छवि-कुमार 'ओट्ठद्ध' भी एक बड़ी लिच्छवि-परिषद् के साथ वहाँ पहुँचा और उन लोगों के साथ बैठकर प्रतीक्षा करने लगा।

इसके पश्चात् बुद्ध बाहर आये और विहार के पीछे छाया में बिछे आसन पर आकर बैठ गये। तब वे ब्राह्मण दूत तथा लिच्छवि-परिषद् के साथ 'ओट्ठद्ध' लिच्छवि भी वहाँ गया और भगवान् का अभिवादन कर एक ओर बैठ गया।

'ओट्ठद्ध' लिच्छवि ने बुद्ध से कहा कि 'समाधि-भावना' के अनुभवों के विषय में 'सुनक्खत्त' ने उससे यह कहा था कि उसने आपके पास दिव्य-रूप को तो देखा था, पर उसने दिव्य-शब्दों को नहीं सुना। बुद्ध ने इसका उत्तर देते हुये कहा कि 'सुनक्खत्त' ने इसके अभ्यास में अपने को नहीं लगाया था। यदि वह ऐसा करता तो दिव्य-शब्द-श्रवण में भी वह अवश्य सफल हुआ होता। बुद्ध ने यह भी बताया कि भिक्षु दिव्य-रूपों को देखने के लिये अथवा दिव्य-शब्दों के श्रवण के लिये ही भिक्षु उनके पास 'ब्रह्मचर्य' पालन नहीं करते। यह अनुभव समाधि तथा चित्त की एकाग्रता के विकास-मार्ग की सीढ़ियाँ हैं। 'ब्रह्मचर्य' का वास्तविक उद्देश्य बुद्ध ने चित्त-विकर्षक तत्त्वों पर विजय पाकर पूर्ण एकाग्रता प्राप्त करना तथा 'भव-संयोजनों' को क्षीण करके परम मुक्ति-निर्वाण के साक्षात्कार करने को बतलाया।

(७) जालियसुत्त— बुद्ध कौशाम्बी के 'घोषितराम' विहार में विहार कर रहे थे। वहाँ 'मुण्डिय' परिव्राजक तथा 'दारुपत्तिक' का अन्तेवासी 'जालिय'— ये दो साधु उनके पास गये। उन्होंने बुद्ध से पूछा कि क्या जीव और शरीर एक ही हैं अथवा जीव और शरीर एक दूसरे से भिन्न हैं?

बुद्ध ने उन्हें समझाया कि ये प्रश्न उनके सामने उठते हैं, जो अज्ञानान्धकार से आच्छादित हैं। पर एक अर्हत् के लिये इन प्रश्नों का कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि वह अज्ञानान्धकार से दूर मिथ्यादृष्टियों से परे रह कर अपनी अन्तर्दृष्टि द्वारा स्थिति की वास्तविकता को समझता है।

(८) महासीहनाद-सुत्त— बुद्ध 'उरुञ्ञा' के 'कण्णकथल' नामक मृगदाव में विहार कर रहे थे। वहाँ 'अचेलकस्सप' उनके पास गया और उनसे पूछा कि क्या वे सभी तपश्चर्याओं तथा उनकी कठोरताओं को अनुचित समझते हैं? बुद्ध ने कहा कि वे सभी को ऐसा नहीं समझते, क्योंकि यह विदित है कि कुछ ऐसे तपस्वी नरक में तथा कुछ स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उन्होंने कहा कि वे सभी तपश्चर्याओं की निन्दा नहीं करते। उन्होंने विवादग्रस्त प्रश्नों को छोड़ते हुये कहा कि उनके अनुयायी भिक्षु शील में, जिसे सभी अच्छा समझते हैं, अन्य लोगों की अपेक्षा बढ़-चढ़ कर हैं। उन्होंने इस ओर भी सङ्केत किया कि उनका आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग इतना सरल और पूर्ण है कि उसकी आलोचना अथवा अस्वीकृति का प्रश्न ही नहीं उठता।

'अचेलकस्ससप' ने इसे प्रतिपादित करते हुये कहा कि नग्न रहना, स्वनिर्धारित सीमाओं के अन्दर भिक्षा ग्रहण करना, भिन्न-भिन्न अवधियों के लम्बे उपवास करना, मोटे अनाज तथा स्वादहीन भोजन करके रहना, अरुचिकर वस्त्रों को धारण करना, खड़े रहने या उकड़ू बैठने का व्रत धारण करना तथा काँटों पर बैठना या सोना इत्यादि कठिन तपस्याओं या तपश्चरणों की इन साधनाओं का भी समुचित आदर है।

भगवान् बुद्ध ने इसका उत्तर देते हुये कहा कि ये साधनाएँ बाह्य-मात्र हैं। और थोड़ा परिश्रम करके कोई भी इनका अभ्यास कर सकता है, परन्तु इनका आध्यात्मिक महत्त्व कुछ भी नहीं हैं। उन्होंने यह भी कहा कि 'श्रामण्य' तथा 'ब्राह्मण्य' का वास्तविक अर्थ चित्त-विशुद्धि और वैर तथा द्रोह से रहित होकर मैत्री-भावना की स्थापना करना है। इस प्रकार 'शील-सम्पत्ति', 'चित्त-सम्पत्ति' तथा 'प्रज्ञा-सम्पत्ति' ही

सब कुछ है और इनकी प्राप्ति के लिये आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग को छोड़कर अन्य कोई दूसरा मार्ग नहीं है। इसके बाद अचेल 'कस्सप' ने बुद्ध के धर्म में सन्तोष तथा आदर-भाव प्रकट करते हुये त्रिरत्न (=बुद्ध, धर्म, सङ्घ) की शरण ली।

(९) पोट्ठपादसुत्त— बुद्ध श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार कर रहे थे। उस समय 'पोट्ठपाद' परिव्राजक रानी 'मल्लिका' द्वारा प्रदत्त एक शाला में ठहरा था।

श्रावस्ती जाते समय बुद्ध 'पोट्ठपाद' के यहाँ गये और वहाँ उन्होंने 'अभिसंज्ञा-निरोध' के सम्बन्ध में वार्ता की। 'पोट्ठपाद' ने इसके विषय में अनेक मतों की चर्चा की— विना हेतु के, विना प्रत्यय के ही, पुरुष की संज्ञा उत्पन्न होती है अथवा निरुद्ध होती है। संज्ञा के विद्यमान होने पर पुरुष संज्ञी और संज्ञारहित होने पर असंज्ञी कहा जाता है। कुछ महा ऋद्धिमान् पुरुष भी होते हैं; जो संज्ञा के शरीर के भीतर डालने तथा निकालने में समर्थ होते हैं, इत्यादि।

बुद्ध ने उपर्युक्त मतों को केवल अन्धविश्वास बतलाते हुये उस साधना का व्याख्यान किया जो एक व्यक्ति को 'निरोध-समापत्ति' नामक यौगिक अवस्था को प्राप्त कराती है। इस 'निरोध-समापत्ति' नामक अवस्था में योगी की 'अभिसंज्ञा' का पूर्ण निरोध हो जाता है। उस समय योगी यह सोचता है कि वह चिन्तन न करे, अभिसंस्करण न करे। उसके चिन्तन और अभिसंस्करण न करने से वे संज्ञाएँ नष्ट हो जाती हैं और दूसरी उदार संज्ञायें उत्पन्न नहीं होतीं। इस प्रकार संज्ञा का पूर्ण निरोध हो जाता है। प्रथम ध्यान की अवस्था को प्राप्त करते ही भोग इत्यादि दूर हो जाते हैं। तब क्रमशः 'अरूप-ध्यान' को 'नेवसञ्ञा-नासञ्ञायतन' नामक उच्च अवस्था को प्राप्त करते हुये योगी इससे भी ऊपर उठ कर 'निरोध-समापत्ति' प्राप्त करता है।

'पोट्ठपाद' इस प्रसङ्ग को छोड़कर 'अव्याकृत प्रश्नों' की चर्चा करने लगा— लोक नित्य है अथवा अनित्य, अन्तवान् हैं या अनन्तवान्? जीव और शरीर एक हैं अथवा भिन्न? मृत्यु के बाद तथागत होते हैं अथवा नहीं?

बुद्ध ने इनके उत्तर में यह कहा कि ये प्रश्न अर्थ-युक्त नहीं हैं और न ये धर्म युक्त में न आदि ब्रह्मचर्य के लिये उपयुक्त, न उदासीनता के लिये, न विराग के लिये, न विरोध के लिये, न शान्ति के लिये, न अभिज्ञा के लिये, न सम्बोधि के लिये और न निर्वाण के लिये हैं। इसलिये इनको 'अव्याकृत' संज्ञा दी गयी है।

'पोट्ठपाद' ने बुद्ध के उपदेश की आदर-भावना से प्रशंसा की और बुद्ध आसन से उठकर वहाँ चले गये।

बुद्ध के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद परिव्राजकों की परिषद् ने 'पोट्ठपाद' को वाग्बाणों द्वारा जर्जरित करना प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि वह सरलतापूर्वक बुद्ध के कथन को स्वीकार करते हुये उनका अनुमोदन सा कर रहा था।

इसके दो तीन दिन बाद 'चित्त-हत्थिसारिपुत्त' तथा 'पोट्ठपाद' परिव्राजक भगवान् के पास उनके प्रति आदर प्रकट करने के लिये गये।

बुद्ध के वार्तालाप के बीच आये इस मत की ओर सङ्केत किया कि मृत्यु के बाद आत्मा अरोग-एकान्तसुखी होता है। उन्होंने इस मत को सर्वथा निरर्थक बतलाते हुए कहा कि इसका किसी ने न तो अनुभव किया है और न यह प्रमाणसहित है। उन्होंने इस मत की तुलना उस पुरुष से की, जो जनपद-कल्याणी की कामना करता हो, पर उसे जानता न हो; अथवा जो प्रासाद पर चढ़ने के लिये सीढ़ी बनावे, पर प्रासाद की स्थिति और ऊँचाई से पूर्णरूपेण अनभिज्ञ हो।

बुद्ध ने तीन प्रकार के शरीर-ग्रहणों को बतलाते हुये कहा कि ये स्थूल, मनोमय तथा अरूप हैं और इन सबसे छुटकारा पाना ही परमोद्देश्य का लाभ करना है।

'चित्त-हत्थिसारिपुत्त' ने आत्मा के एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने पर उसके तादात्म्य के

विषय में प्रश्न पूछे। बुद्ध ने दूध की उपमा देकर समझाया कि जैसे गाय के दूध, दूध से दही, दही से नवनीत और नवनीत से घी होता है; पर जिस समय दूध रहता है, उसे दही नहीं कहा जा सकता। उसी प्रकार सार्वभौम अनित्यता का सिद्धान्त भी है। जो यह सिद्ध करता है कि तादात्म्य केवल व्यवहार-पक्ष में ही ग्रहण किया जा सकता है, परमार्थ में नहीं।

'चित्त-हत्थिसारिपुत्त' को इससे सन्तोष प्राप्त हुआ और उन्होंने भगवान् के पास प्रव्रज्या और उपसम्पदा ग्रहण की। धर्म-मार्ग पर चलकर 'चित्तहत्थि-सारिपुत्त' आगे चलकर अर्हतों में से एक हुये।

(१०) सुभसुत्त— भगवान् बुद्ध के निर्वाण के कुछ ही दिन बाद आयुष्मान् आनन्द श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम 'जेतवन' में ठहरे थे। उस समय 'तोदेय्यपुत्त' 'सुभ' माणवक भी किसी काम से श्रावस्ती आया था। उसने अपने एक मित्र को आयुष्मान् आनन्द के पास उन्हें अपने निवास-स्थान पर आने के लिये निमन्त्रित करने को भेजा। आयुष्मान् आनन्द उस दिन का निमन्त्रण न स्वीकार कर सके, क्योंकि उन्होंने एक औषधि ली थी। दूसरे दिन भिक्षु 'चेतक' के साथ वे 'सुभ' के निवास-स्थान पर उससे मिलने के लिया आये। 'सुभ' ने उनके पास आकर उनका उचित स्वागत-सत्कार किया और कहा कि आप आनन्द, बुद्ध के बहुत दिन तक सेवक और पास में रहने वाले रह चुके हैं। मैं आपसे उन्हीं धर्मों को सीखना चाहता हूँ, जिन्हें बुद्ध प्रतिष्ठापित तथा प्रतिपादित करते थे।

आनन्द ने उसे उपदेश देते हुए कहा कि भगवान् बुद्ध द्वारा प्रतिपादित धर्म के तीन स्कन्ध हैं— शीलस्कन्ध, समाधिस्कन्ध तथा प्रज्ञास्कन्ध। भगवान् इन्हीं तीन स्कन्धों की प्रशंसा किया करते थे।

इदके बाद आनन्द ने इस स्कन्धों की पूर्ण व्याख्या की और बतलाया कि तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म को सुनकर व्यक्ति में उसके प्रति श्रद्धा हो जाती है। वह अनुभव करता है कि घर में रहना जञ्जाल तथा धूल में रहना है और भिक्षु-जीवन खुले आकाश की तरह स्वतन्त्र है। वह अपनी अतुल सम्पत्ति, मित्र-मण्डली, घर तथा कुटुम्ब छोड़कर प्रव्रजित हो जाता है। वह 'पातिमोक्ख' में बताये गये नियमों का पूर्णरूपेण पालन करता है और छोटे से छोटे दोष में भी भय देखता है। वह शरीर तथा वाणी से अच्छे कर्म करता है तथा परिशुद्ध आजीविका का पालन करते हुये सावधान, जागरूक तथा सन्तुष्ट रहता है। वह वैराग्य की भावना का विकास करता हुआ चित्त की एकाग्रता का अभ्यास करता है। वह 'कामच्छन्द', 'व्यापाद', 'थीनमिद्ध', 'उद्धच्च-कुक्कुच्च' और 'विचिकिच्छा'— इन पाँच नीवरणों को छोड़ कर ध्यान के पाँच अङ्ग 'वितर्क', 'विचार', 'प्रीति', 'सुख' तथा 'एकाग्रता' आदि को प्राप्त करता है। वह समाधि-भावना का अभ्यास परमोत्साह से सतत करता है और क्रमशः ध्यान की उच्च अवस्थाओं को भी प्राप्त कर लेता है। वह शरीर से सम्बद्ध विज्ञान के सम्बन्ध में यौगिक अनुभवों के द्वारा ऐसी अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर लेता है कि यह विज्ञान उसे ऐसा ही स्पष्ट दिखायी पड़ता है जैसे कि एक छिद्रयुक्त मणि के अन्दर से जाने वाला सूत। वह ऋद्धियों के प्रदर्शन में भी सफलता प्राप्त करता है। वह एक स्थान से लुप्त होकर दूसरे स्थान पर प्रकट हो जाता है। सुदृढ दीवार से वह विना किसी बाधा के पार चला जाता है और पानी की सतह पर वैसे ही सीधा चलता है, जैसे कोई स्थल पर चले। वह दूसरे के चित्त को जान लेता है तथा दूसरे जन्मों के विषय में भी जानने में समर्थ होता है। अन्त में वह स्थिति के वास्तविक स्वभाव को समझ जाता है कि यह अनित्य, अनात्म और दुःख है। इस प्रकार भव-स्थिति के अपने दस 'संयोजनों' को क्षीण कर वह आवागमन से मुक्त हो कर अर्हत् हो जाता है।

(११) केवट्टसुत्त— बुद्ध नालन्दा के 'पावारिकाम्रवन' में ठहरे थे। वहाँ उस स्थान का 'केवट्ट' नामक एक नवयुवक गृहपति उनके पास आया। 'केवट्ट' ने भगवान् को अभिवादन करने के बाद यह कहा कि भन्ते, यह नालन्दा समृद्ध, धनधान्यपूर्ण और बहुत घनी बस्ती है। कृपया भगवान् एक भिक्षु को यह आदेश दें कि वह आलौकिक ऋद्धियों को दिखावे। इससे यहाँ के लोग आपके प्रति और भी अधिक श्रद्धालु हो जायेंगे। पर बुद्ध ने इसे स्वीकार नहीं किया और कहा कि लोग इसे 'गान्धारी' अथवा 'मणिका' नामक

विद्याओं का ही प्रदर्शन समझ सकते हैं। उन्होंने यह स्वीकार किया उनके शिष्यों के पास ऐसी दिव्य ऋद्धियाँ विद्यमान हैं, परन्तु उनकी प्राप्ति आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में ही हुई है। अत: उनकी पवित्रता की रक्षा होना परमावश्यक है।

इसके पश्चात् बुद्ध ने उस भिक्षु की कथा सुनाई जो अपने ऋद्धि-बल से विभिन्न लोकों के देवताओं के पास, यहाँ कि कि महाब्रह्मा के पास भी गया था। उसने सभी देवताओं से यह प्रश्न किया कि चारों 'महाभूत' अन्त में जाकर कहाँ निरुद्ध होते हैं? उनमें से कोई देवता सन्तोषजनक उत्तर न दे पाया। अन्त में महाब्रह्मा के कहने से वह भिक्षु इस प्रश्न के समाधान के लिये बुद्ध के पास आया।

बुद्ध ने इस प्रश्न के समाधान के लिये उसके देवताओं के पास जाने की भर्त्सना की। उन्होंने उसकी तुलना उस पक्षी से की जिसे कुछ सामुद्रिक व्यापारी किनारा देखने के लिये अपने साथ जहाज पर ले गये थे। जहाज से तट न दिखायी देने के कारण उन्होंने उस पक्षी को छोड़ा। वह पक्षी पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर तथा अनुदिशाओं में भी गया; पर किसी भी ओर तट न दिखायी पड़ने के कारण वह पुन: उसी जहाज पर लौट आया। यही दशा उस भिक्षु की भी थी। उन्होंने कहा— "यह पूछना कि चारों 'महाभूत' कहाँ जाकर बिल्कुल निरुद्ध हो जाते हैं, मूर्खतापूर्ण है। इसके स्थान पर इस सम्बन्ध में यह प्रश्न इस प्रकार पूछा जा सकता है कि चारों 'महाभूत' कहाँ नहीं स्थित रहते तथा कहाँ दीर्घ, ह्रस्व, अणु, स्थूल और शुभाशुभ नाम तथा रूप सर्वथा समाप्त हो जाते हैं? इसका उत्तर यह है कि अनिदर्शन, अनन्त तथा अत्यन्त प्रभायुक्त निर्वाण जहाँ है वहाँ चारों 'महाभूत' नहीं रहते और वहीं दीर्घ, ह्रस्व, अणु, स्थूल, शुभाशुभ, नाम और रूप सर्वथा समाप्त हो जाते हैं। विज्ञान के निरोध से ही इन का भी वहाँ अन्त हो जाता है।

(१२) लोहिच्चसुत्त— कोसल देश में चारिका करते हुये बुद्ध 'सालवतिका' नदी के किनारे पहुँचे। उस समय वहाँ 'लोहिच्च' नामक ब्राह्मण राजा 'पसेनदि' द्वारा प्रदत्त अतुल भूमि और सम्पत्ति का उपभोग करता था। उसे यह मिथ्या धारणा उत्पन्न हो गयी थी कि किसी श्रमण या ब्राह्मण को अपने द्वारा जाने हुए सद्धर्म को दूसरों को समझाने की चेष्टा करना व्यर्थ है; क्योंकि इस प्रकार के प्रसङ्गों में कोई दूसरे की सहायता कैसे कर सकता है?

उसने अपने 'रोसिका' नामक नाई को बुलाकर कहा कि वह बुद्ध के पास जाकर उन्हें उसके यहाँ अगले दिन के भोजन के लिये निमन्त्रित कर आये। इस कार्य के लिये जब रोसिका वहाँ आया तब उसने अपने स्वामी 'लोहिच्च' की उपर्युक्त मिथ्या धारणा से बुद्ध को अवगत कराया।

बुद्ध ने 'लोहिच्च' का निमन्त्रण स्वीकार किया और दूसरे दिन उचित समय पर भिक्षु-सङ्घ के साथ वे उसके घर पहुँचे। 'लोहिच्च' ने बहुत श्रद्धाभाव से उनका स्वागत किया और अपने हाथों भोज्यपदार्थ परोसकर उन्हें भोजन कराया। बुद्ध ने भोजन समाप्त करने पर 'लोहिच्च' स्वयं एक दूसरा नीचा आसन लेकर वहीं बैठ गया। उससे भगवान् बुद्ध ने पूछा कि वास्तव में क्या उसे ऐसी धारणा उत्पन्न हुई है, जैसी कि उन्हें सूचना मिली है? उसने स्वीकार किया कि यह सत्य है। बुद्ध ने उसकी उपमा उस अन्यायी राजा से दी जो राज्य से होने वाली सम्पूर्ण आय अपनी प्रजा और सेवकों के उचित प्राप्य को दिये विना ही अपने लिये रख लेता है। उन्होंने उपदेश देते हुये कहा कि यदि कोई व्यक्ति सत्य को अपने तक ही सीमित रखता है और अन्य अनेक व्यक्तियों के लाभ के लिये उसे दूसरे को नहीं बतलाता तो यह 'पाप' है। बुद्ध ने ऐसे आचार्यों के प्रति, जो सत्य का साक्षात्कार किये विना ही उपदेश देते हैं, अपनी अनास्था प्रकट करते हुये कहा कि इनके उपदेशों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता और ऐसे ही लोगों के विषय में यह कथन पूर्णतया चरितार्थ होता है कि एक आदमी दूसरे की सहायता कैसे कर सकता है? 'लोहिच्च' की सभी शङ्काओं का समाधान हो गया और उसने बुद्ध, धर्म तथा सङ्घ की शरण ली।

(१३) तेविज्जसुत्त— बुद्ध कोसल में विचरण करते हुये 'मनसाकट' नामक ब्राह्मण-ग्राम में पहुँचे और वहीं 'अचिरवती' नामक नदी के उत्तरी किनारे पर ठहर गये। उस समय वह स्थान 'चङ्की', 'तारुक्ख',

'पोक्खरसाति', 'जाणुस्सोणि', 'तोदेय्य' तथा अन्य प्रसिद्ध ब्राह्मणों का निवास-स्थान था। एक दिन 'वासेट्ठ' और 'भारद्वाज' नामक दो ब्राह्मण-तरुणों में ब्रह्मलोक की प्राप्ति के विवादग्रस्त प्रश्न को लेकर घोर विवाद हुआ; पर वे एक दूसरे को समझाने में असमर्थ रहे। अन्त में उन दोनों ने बुद्ध के पास जाकर अपनी समस्या उनके सामने प्रस्तुत की। उन्होंने यह भी सुझाया कि सम्भवतः विभिन्न ब्राह्मणों द्वारा उपदिष्ट भिन्न-भिन्न मार्ग उसी प्रकार हैं, जिस प्रकार भिन्न-भिन्न दिशाओं से विभिन्न मार्ग एक ही निर्दिष्ट स्थान को ले जाते हैं॥

बुद्ध ने पूछा कि क्या उन्होंने अथवा उनके आचार्यों या पूर्वजों ने ब्रह्मा को साक्षात् देखा है। तरुण ब्राह्मणों ने स्वीकार किया कि इस सम्बन्ध में उन्हें प्रामाणिक ज्ञान नहीं है। तब बुद्ध ने उनकी परम्परा की तुलना अन्ध व्यक्तियों की उस पंक्ति से की जिसका न तो प्रधान ही मार्ग देख पाता है और न उसके अनुगामी ही देख पाते हैं। उन्होंने उनकी उपमा उस पुरुष से दी, जो जनपद-कल्याणी से अपरिचित रहते हुये उसकी कामना करता है; अथवा जो किसी प्रासाद की स्थिति और ऊँचाई जाने विना ही उस पर जाने के लिये सीढ़ी बनाता है।

बुद्ध ने आगे कहा कि 'इन्द', 'सोम', 'वरुण', 'इस्सर', 'पजापति', 'ब्रह्मा', 'महिन्द' तथा 'यम' आदि देवताओं के आवाहन करने का कोई अर्थ नहीं है। उन्होंने कहा कि यह उसी तरह निरर्थक है, जिस प्रकार किसी नदी के एक किनारे पर खड़े होकर दूसरे किनारे को पास बुलाना। उन्होंने उन्हें 'धम्म' की देशना करते हुये कहा कि पाँच 'कामगुण' व्यक्ति को इस संसार में बाँधे रहते हैं और उसे परम-मुक्ति प्राप्त करने से रोके रहते हैं॥

प्रस्तुत ग्रन्थ का महत्त्व

इस ग्रन्थ में संगृहीत तेरह 'सुत्त' भगवान् बुद्ध के विभिन्न स्थानों पर दिये गये धर्मोपदेश है; जो भिन्न-भिन्न जीवनस्तर वाले लोगों को जैसे, प्रव्रजित भिक्षु, राजा, सम्मानित ब्राह्मण आचार्य, नवयुवक माणवक, सामान्य गृहस्थ, कठिन व्रत धारण करने वाले, नग्न परिव्राजक तथा पलायनवादियों को दिये गये हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि बुद्ध ने एक ही दर्शन और एक ही जीवन-दृष्टि का सबको उपदेश दिया है; किन्तु उनकी रुचि, सामर्थ्य और चिन्तन की पृष्ठभूमि की विभिन्नता के कारण उन्होंने व्याख्या करते समय एक ही स्तर और शैली को नहीं अपनाया। उन्होंने अत्यन्त जटिल समस्याओं को परिचित उपमाओं तथा दिन-प्रतिदिन के जीवन में घटित उदाहरणों से सुलझाया है।

इस प्रकार से सुत्त जीवन के विभिन्न पहलुओं और उस युग के विचारों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्र उपस्थित करने के साथ ही उस समय के दार्शनिक, धार्मिक और सामाजिक इतिहास के अध्ययन की महत्त्वपूर्ण सामग्री उपस्थित करते हैं।

(क) दार्शनिक दृष्टि से

'सामञ्ञफलसुत्त' तत्कालीन उन दार्शनिक सिद्धान्तों और मतों का विवरण उपस्थित करता है, जिनकी स्थापना 'पूरण कस्सप', 'मक्खलि गोसाल', 'अजितकेसम्बल', 'पकुध कच्चायन' और 'निगण्ठ नातपुत्त' ज़ैसे साम्प्रदायिक आचार्यों ने की थी। जिनके विचारों में भौतिकवादी, नास्तिकता, जड़वाद तथा इसी प्रकार के अन्य विचारों के बीज विद्यमान थे। इनके अतिरिक्त और बहुत से सामान्य विचारक थे, जिनके विचारों का 'ब्रह्मजाल-सुत्त' में उल्लेख हुआ है; किन्तु इन विचारों को किसी विशेष विचारक के साथ नहीं जोड़ा गया है। उदाहरणार्थ— 'आत्मा और लोक दोनों नित्य हैं' (पृष्ठ १६); 'आत्मा और लोक अंशतः नित्य और अंशतः अनित्य हैं' (पृष्ठ २१); 'लोक अन्तवान् है अथवा अनन्तवान् है' (पृष्ठ २६); 'सभी जीव अकारण उत्पन्न होते हैं' (पृष्ठ ३२)।

पुनः हमें दार्शनिक प्रश्नों की एक लम्बी अव्याकृत (अब्याकतपञ्हा) कही जाने वाली सूची उपलब्ध होती है। सम्भव है कि इनके आधार पर विचार करने वाले दार्शनिक-विचारक उस समय विद्यमान रहे हों। अन्तिम 'तेविज्जसुत्त' में ब्रह्म-लोक प्राप्ति का प्रश्न उठाया गया है। बुद्ध ने व्याख्या करते हुये यह बतलाया कि किसी जीव की उस लोक में उत्पत्ति 'मैत्री', 'करुणा', 'मुदिता' तथा 'उपेक्षा' नामक चार 'ब्रह्म-विहारों' का अभ्यास करने से होती है।

इससे यह प्रदर्शित है कि पारमार्थिक सत्य के सिद्धान्त के रूप में ब्रह्म का विचार उस समय अज्ञात था। उत्तर काल का वेदान्त-दर्शन जिसमें ब्रह्म को परम तत्त्व माना जाता है, उसी विचारधारा का एक विकसित रूप ज्ञात होता है।

यह ध्यान देने योग्य है कि 'अम्बट्ठसुत्त' दक्षिण भारत में आध्यात्मिक संस्कृति के केन्द्रों के होने की सूचना देता है, जिनमें से एक में राजा इक्ष्वाकु के दासी-पुत्र 'कण्ह' ने शिक्षा प्राप्त की थी।

(ख) धार्मिक दृष्टि से

इन 'सुत्तों' से तत्कालीन अनेक विचरणशील परिव्राजक-सम्प्रदायों तथा तपस्वियों की सूचना मिलती है, जो धार्मिक विश्वास से अनेक प्रकार के व्रतों और क्रियाओं को करते थे। वे प्रायः अपने वास्तविक लक्ष्य को छोड़ अपने लाभ तथा सामाजिक-यश के लिये आडम्बर की शरण लेते थे। इन लोगों के प्रकारों का उल्लेख 'ब्रह्मजाल-सुत्त' में हुआ है, जैसे— 'कुहका, लपका, नेमित्तिका, निप्पेसिका, लाभेन लाभं निजिगिंसितारो'। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य लोग भी थे, जो लोगों के अन्धविश्वासों के कारण ज्योतिष तथा जादू-टोने से उन्हें ठगते थे (पृष्ठ १२,१३)। अपनी इस श्रृङ्खला को वे गुरु-शिष्य-क्रम द्वारा प्रदत्त सङ्गठित परम्पराओं से सुरक्षित रखने में समर्थ होते थे।

'सामञ्ञफलसुत्त' में वर्णित छह तैर्थिकों के मतों के अपने-अपने साम्प्रदायिक सङ्गठनों के केन्द्र अवश्य रहे होंगे। इनके अवशेष खोजने के लिये देश के वर्तमान धार्मिक-जीवन में खोज करना सार्थक होगा। कम से कम 'निगण्ठ-नातपुत्त' से हम लोग निश्चित रूप से परिचित हैं। वे जैन-धर्म के अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर ही हैं। पालि-संस्करण में वे ही 'चातुयाम-संवर' सिद्धान्त के प्रवर्तक कहे जाते हैं। सम्भवत: ऐसा भूल से हो गया है। वास्तव में 'चातुयाम-धर्म' के प्रवर्त्तक उनके पूर्ववर्ती तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ थे— सव्वातो पाणातिवायाओ वेरमणं, एवं मुसावायाओ वेरमणं, सव्वातो अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वातो बहिद्धादाणाओ वेरमणं (ठाणङ्ग पृ० २०१, सूत्र २६६)।

उपर्युक्त वर्णित 'चातुयाम-संवर' सिद्धान्त में 'परिग्गह-वेरमणं' नामक एक और व्रत जोड़कर पार्श्वनाथ के परवर्ती तीर्थङ्कर महावीर ने 'पञ्चमहाव्रत-धर्म' का प्रवर्त्तन किया।

यह भी विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि जिस रूप में पालि में 'चातुयाम-संवर' सिद्धान्त का उल्लेख मिलता है, वैसा जैन-साहित्य में कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। पालि में यह इस प्रकार वर्णित है— 'सब्बवारिवारितो च होति, सब्बवारियुतो च, सब्बवारिधुतो च, सब्बवारिफुटो च'— और इसका अर्थ भी स्पष्ट नहीं ज्ञात होता। इसे देखकर यह ज्ञात होता है कि सम्भवत: यह तोड़-मरोड़ के ही कारण हैं।

'पूरण कस्सप' तथा 'अजितकेसम्बल' प्रसिद्ध नास्तिक और भौतिकवादी भारतीय दार्शनिक चार्वाक के प्रतिनिधि ज्ञात होते हैं।

'अचेलकस्सप' नामक नग्न परिव्राजक जिसका वर्णन 'महासीहनाद-सुत्त' में हुआ है (पृ० १८४-१८६), सम्भवत: एक जैन साधु है, जिसने आत्म-शुद्धि के मार्ग-स्वरूप तप या कठोर तपश्चर्या के अभ्यास की प्रशंसा की है। उसने भिक्षा-स्वरूप भोजन ग्रहण करने के लिये अनेक प्रतिबन्धों का पालन बताया है। ये प्रतिबन्ध इस प्रकार हैं—

"...... वह उससे, जो उसे बुलाता है भिक्षा नहीं लेता। वह निमन्त्रण नहीं स्वीकार करता तथा वह विशेष रूप से उसी के लिये पकाये और लाये गये, भोजन पकाने वाले पात्र से तत्काल निकाले गये, दण्डधारी व्यक्तियों तथा मक्खियाँ भिनक रहीं हो, उस स्थान से लाये हुये भोजन को नहीं स्वीकार करता। वह तो केवल एक ही घर जाता है या भोजन का एक ही निवाला खाता है.....। वह एक दिन बीच देकर....दो-दो दिन...सात-सात दिन...आधे-आधे मास पर भोजन करता है" ।.....(पृष्ठ १७६)। यह प्रतिबन्ध-वर्णन जैन-ग्रन्थ 'दसवेकालिक' में वर्णित भोजन-सम्बन्धी प्रतिबन्धों के वर्णन से मिलता जुलता है।

'कूटदन्तसुत्त' (पृष्ठ १३७) उस रोमाञ्चक यज्ञ-कृत्य की झलक देता है, जिसमें असंख्य जीव 'यज्ञ-स्थूण' पर बलि के लिये लाये जाते थे। इन यज्ञों में सेवक-वर्ग से बेगार भी ली जाती थी। दण्ड से अत्यधिक भयभीत होने के कारण इनकी आँखें में आँसू भरे रहते थे।

(ग) यौगिक दृष्टि से

आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग के अन्तिम तीन अङ्ग 'सम्यक्-व्यायाम', 'सम्यक्-स्मृति' और 'सम्यक्-समाधि' ध्यान अथवा समाधि नामक योगि-चित्त के विकास के लिये व्यवहृत किये जाते हैं, जिससे समस्त मानसिक विकर्षणों पर विजय प्राप्त कर पूर्ण एकाग्रता प्राप्त की जाती है। इस अवस्था में परम सत्य का अनुभव होता है तथा अज्ञानान्धकार नष्ट हो जाता है और अर्हत्व की प्राप्ति होती है।

बुद्ध ने इस बात पर बल देते हुये कहा कि इन सब के अभ्यास से मनुष्य को अनेक दिव्य-शक्तियाँ प्राप्त होती है, जो 'इद्धियाँ ' कही जाती हैं। 'केवट्ट-सुत्त' (पृष्ठ २२४) में बुद्ध कहते हैं— "केवट्ट, मैनें स्वयं तीन दिव्य शक्तियों का साक्षात्कार कर अपने शिष्यों को उनका उपदेश दिया है, जो इस प्रकार हैं— आश्चर्यजनक कार्य करना, दूसरे के चित्त को समझना तथा दूसरों के विचारों पर अनुशासन करना। लेकिन बुद्ध ने अपने शिष्यों द्वारा इनका प्रदर्शन उचित नहीं समझा, क्योंकि जन-समाज उन्हें इन्द्रजाल (जादू)का मनोरंजक प्रदर्शन समझ सकता है। (पृष्ठ ८६)।

इस प्रकार की क्रियायें बुद्ध के शिष्यों तक ही सीमिति नहीं थी। इन 'सुत्तों' में ऐसे अवसरों का भी उल्लेख हुआ है, जिनमें अन्य सम्प्रदाय वालों ने भी इनमें अपनी रुचि प्रकट की है और बुद्ध ने उनकी सूक्ष्म जटिलताओं के विषय में प्रश्न किये हैं। एक स्थान पर 'महालि' को उनसे 'सुक्खत्त' द्वारा दिव्यरूप देखे जाने तथा दिव्य-शब्द सुनने की सम्भावना के यौगिक अनुभव की चर्चा करते हुये पाते हैं (पृ० १६४)। 'पोट्ठपाद' नामक एक अन्य सम्प्रदाय का परिव्राजक बुद्ध को 'अभिसंज्ञा(अभिसञ्ञा-)निरोध' के सम्बन्ध में अन्य लोगों के मतों का विवरण देते हुए उनसे 'अभिसंज्ञानिरोध' का उपदेश देने को कहता है (पृ० १८८-१८९)।

यौगिक दिव्य-शक्ति प्राप्त एक अन्य भिक्षु का भी उल्लेख हुआ है, जो अपने ऋद्धि बल से— याम तथा तुषित देवलोकों से लेकर महाब्रह्मा के लोक तक जाता है और उनसे यह पूछता है कि चारों 'महाभूत' अन्त में कहाँ जाकर निरुद्ध हो जाते हैं (पृष्ठ २२७-२२९)।

(घ) सामाजिक दृष्टि से

सामाजिक विधान पितृ-परम्परागत वर्णों पर आधृत था। 'अम्बट्ठ-सुत्त' से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा के विभिन्न अङ्गों से चार वर्णों की उत्पत्ति की प्राचीन पौराणिक कल्पना के आधार पर ब्राह्मण अपने को क्षत्रियों और श्रमणों से श्रेष्ठ कहते थे (पृष्ठ ९८)। परन्तु क्षत्रिय उनकी श्रेष्ठता को विरोध भाव से स्वीकार करते थे। ब्रह्मा 'सनङ्कुमार' की गाथा प्रस्तुत कर उन्होंने अपनी प्रमुखता स्थापित की है (पृष्ठ १०५)। इसी सुत्त में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच होने वाले अर्न्तजातीय विवाहों के सम्बन्ध में प्रचलित रीति-रिवाजों पर भी विचार किया गया है[१]। ब्राह्मण अपने सामाजिक सम्मान की रक्षा अत्यधिक उत्साह से करते थे। इस सम्बन्ध में यहाँ यह भी उल्लेख पाते हैं कि बुद्ध की महत्ता से पूर्णरूपेण सन्तुष्ट होकर भी 'सोणदण्ड' ने जनता के बीच उनका अभिवादन आदि करने में सङ्कोच प्रकट किया है। बुद्ध स्वयं समाज में जाति भेद को पश्रय नहीं देना चाहते थे, फिर भी वे सामान्य जनता की स्वीकृति की उपेक्षा करने में असमर्थ थे। इसीलिये सोलह परिष्कारों से युक्त त्रिविध सम्पदावाली यज्ञविधि का 'कूटदन्त' को उपदेश देते हुये, चक्रवर्ती राजा तथा पुरोहित के आवश्यक गुणों में मातृ-पक्ष के उच्चकुलीन होने के गुण को सम्मिलित किया है (पृष्ठ १४७)।

शूद्रों की चौथी जाति समाज में सबसे निम्नतर समझी जाती थी। लेकिन इसके अपवादस्वरूप राजा इक्ष्वाकु के दासीपुत्र 'कण्ह' जैसे कुछ व्यक्ति मिलते हैं, जिन्होंने अपनी शिक्षा और आध्यात्मिक प्राप्तियों के कारण समाज में ऋषि के उच्चपद को प्राप्त किया था।

सम्भवत: शिक्षा देने और पात्रों को उचित स्थान देने में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। इसीलिये गणिकापुत्र 'जीवक' वैद्यक की श्रेष्ठ शिक्षा प्राप्त करने और अजातशत्रु का राजवैद्य नियुक्त होने में सफलहुआ।

जनता के मनोरञ्जन के साधन निम्नलिखित थे— नृत्य, गीत, संगीत, नाटक, लीला, ताली, ताल देना, गागर बजाना, लोहे की गोली का खेल, बाँस का खेल, हस्ति-युद्ध, अश्व-युद्ध, महिष-युद्ध, बकरों का युद्ध, भेड़ों का युद्ध, मुर्गा लड़ाना, लाठी का खेल, मुष्टि-युद्ध, मल्ल-युद्ध तथा युद्ध का प्रदर्शन।

उस समय खेले जाने वाले जुए थे— अट्ठपद, दसपद, आकास, परिहारपथ, सन्तिक, खलिका, घटिका, सलाकहत्थ, अक्ख, पङ्गचीर, बङ्कक, मोक्खचिक, चिङ्गुलिक, पत्ताळ्हक, रथक, अक्खरिका, मनेसिक (पृष्ठ १०)।

'सामञ्ञफल-सुत्त' में निम्नलिखित व्यवसायों का उल्लेख हुआ है, जिन्हें लोग आजीविका के रूप में अपनाते थे— हस्ति-आरोहण, अश्व-आरोहण, रथिक, धनुर्ग्राह, कल्पक, सैनिक अधिकारी, आळारिक, चेलक, योद्धा, नाई, माली, रजक, पेसकार, नलकार, कुम्भकार, गणक इत्यादि।

---

१. क्षत्रिय पुरुष और ब्राह्मण स्त्री अथवा ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिय स्त्री से उत्पन्न पुत्र ब्राह्मणों से जल और आसन, भोजों तथा यज्ञों के अवसर पर निमन्त्रण, वेदों की शिक्षा तथा विवाह की सुविधा पाता था; किन्तु क्षत्रिय उसे राजा के रूप में अभिषिक्त नहीं करते थे। ब्राह्मणों द्वारा जाति-बहिष्कृत व्यक्ति, ब्राह्मण घर में उपर्युक्त सुविधाएँ नहीं पा सकता था, परन्तु क्षत्रियों द्वारा जाति-बहिष्कृत व्यक्ति सभी सुविधाएँ पाता था।

The Present volume

A Summary

With this much of introduction to the present volume, the Sīlakkhandhavagga of the Dīghanikāya, let us have a summary of the thirteen suttas contained in it, giving an outline of their contents and way of treatment :—

(1) Brahmajāla Sutta

The Buddha, accompanied by an assembly of Bhikkhus, was going on the high way between Rājagaha and Nālandā, closely followed by the mendicant Suppiya and his disciple Brahmadatta, who expressed opposite views on the Buddha, Dhamma and Sangha. The Bhikkhus reported about it to the Buddha.

The Buddha said— "If, O Bhikkhus, they speak ill of us, you must not, on that account, get offended or become depressed and angry; but, you should investigate into it and ascertain that what they say is false; and, if, O Bhikkhus, they bestow words of praise on us, you must not, on that account, be elated and feel overjoyed; but, you should try to find out the truth about it."

The Buddha said that the common man held him in high esteem simply in view of his excellence in ethical perfection, and failed to understand his deep philosophy in which did consist the real greatness of his. He said : *Idaṁ kho taṁ Bhikkhave appamattakaṁ oramattakaṁ sīlamattakaṁ yena puthujjano tathāgatassa vaṇṇaṁ vadamāno vadeyya. Atthi bhikkhave aññeva dhammā gambhirā duddasā duranubodhā santā atakkavacarā nipuṇā paṇḍitavedanīyā ye tathāgato sayaṁ abhiññā sacchikatvā pavedeti, yehi tathāgatassa yathābhuccaṁ vaṇṇaṁ sammā vadamānā vadeyyuṁ.*

The Buddha explained that it is due to the ignorance of time--of priority (Pubbanta) and posteriority (aparanta)—that all sorts of wrong views of philosophy originate. In course of the development of meditation and concentration, a *yogāvacara* is able to recall his previous births, for aeons in the past. This possibility had been the cause of the erroneous belief that the identity of the self is true a reality. Similarly, others, either due to some mystical experience or their own flights of philosophizing, are misled to take the future as reality and to hold various view about the maintenance of the identity of the self in ages to come.

The Sutta gives an enumeration of eighteen wrong views originating from the ignorance of the 'Past' and of fourty four from that of the 'Future', bringing the total to sixty-two. The Buddha said :— "As a fisherman were to catch all the fishes and other creatures of the pond with his net, just so, all the wrong Philosophical views have been caught in this enumeration." The first half of the Sutta gives a detailed elaboration of the stages of ethical discipline arranged under the three heads— primary, secondary and higher rules. The description of the same presents rich materials for studies in the then social and cultural history of the country. This gives lists of the then games, gambles,

pastime, articles of toilet and luxury, superstitious practices, astrological forecasts and black arts that were regarded as improper for the monks and recluse to indulge in.

(2) Sāmaññaphala Sutta

On a charming moonlit night, Ajātasattu, the king of Magadha, the son of Vedehī, was sitting on the topmost terrace of his palace, with his ministers and courtiers. The king exclaimed :— "What a beautiful night it is; how nice it would have been if I could have approached a religious teacher, a recluse or a Brāhmaṇa, and listened to his spiritual discourse"!

One of the courtiers said :— "Sir, here is the well known religious leader, Pūraṇa Kassapa, who commands a high respect in the society. Let the Lord approach him and get his doubts removed!" The other courtiers, similarly, suggested the names of Makkhalī Gosāla, Ajitakesakambala, Pakudha Kaccāyana, Sañjaya Belaṭṭhaputta and Nigaṇṭha Naṭaputta; but the king kept silent.

At last, the royal physician, Jīvaka Komārabhacca, said :— "Lord, here, in my mango grove, outside the city-walls, dwells the Buddha, the Supreme Enlightened One, the Teacher of gods and men. May the Lord be pleased to approach him for the purpose."

The king approved the suggestion, got necessary arrangements made and set out for the place. There, it was so calm and solitary that it made him suspicious if a plot was laid to make him over to his enemies. Jivaka encourged him and gave him the assurance that there was nothing as such, and that the Buddha sat in the yonder hall where the lamps were burning. The king approached the place. There, he saw the Buddha seated crosslegged, calm and serene, in front of an assembly of monks absorbed in the bliss of internal peace and purity, motionless like a painted picture. He approached slowly, paid his adoration to the Buddha, and took his seat on one side. With the permission of the Buddha, he asked :— "Sir we see before our eyes that people take recourse to different occupations according to their liking, earn their livelihood and performs meritorius acts. Are there such merits, Sir, that can be seen here and now of the life led by the homeless wandering Bhikkhu disciples of yours?"

The Buddha enquired :— "Did you, O king, ever put this question to the leaders of other sects"?

"yes Sir," said the king. "I had put this very question to Purana kassapa, Makkhali Gosāla and others; but none of them could give satisfactory answers."

The Buddha began explaining by putting a question :— "O king, if a devoted attendant of yours happens to leave your service and get himself ordained as a monk, would you like to order him to come back and wait upon you as before?"

"No Sir," said the king, "I would rather go to worship him and make necessary arrangements for his safe and convenient stay."

The Buddha pointed out that this was the first advantage of monkhood,

which, though not a matter of intrinsic value was significant enough as an apparent evidence to it. He explained in detail the real merits of the holy life of a monk— how he perfects the ethical discipline in him and feels the bliss of internal purity, how he is able to overcome the distractions of the mind, attain to different stages of Jhana, obtain miraculous superhuman powers and finally destroy the fetters of mundane existence and realise the ultimate liberation, the Summun Bonum, the Nibbana.

The king accepted the lay-discipleship of the Buddha, paid respect to him and took his leave.

(3) Ambaṭṭha Sutta

The Buddha was staying at Icchānaṅgala, a Brāhmana village in Kosala. Pokkharasāti, a rich and honoured Brāhmaṇa of the locality, ordered his disciple Ambaṭṭha to approach him and ascertain if he did possess the greatness attributed to him. Ambaṭṭha took with him a batch of co-students and went to the place where the Buddha was staying. He entered the Verandah and knocked at the door. The door was opened and they were admitted inside.

Out of his haughtiness, Ambaṭṭha did not behave politely; rather started blaming the Sakya clan of having a low descent and of being disrespectful to the Brāhmaṇas. He was, however, silenced when the Buddha traced the history of the origin of his family (Gotta), Kaṇhāyana, and proved that he was a descendant of a slave of the Sākyas, originated from Kaṇha, a bastard son of the famous king Okkāka (Iksvāku) an anscestor of the Sākyas. Ambaṭṭha was put to shame; and he sat crest-fallen. When the Buddha saw him embarassed like that, he took compassion on him and revealed that the said Kaṇha was a great sage, possessed of high superhuman power, and encouraged Ambaṭṭha to be proud of him. The Buddha, then, referred to the existing social customs in a case of intermarriage between a Brāhmaṇa boy and a Khattiya girl, or a Khattiya boy and a Brāhmaṇa girl, and established the superiority of Khattiya over the Brāhmaṇa. He also quoted a stanza of the Brahmā Sanaṅkumāra which supported the same view—

"Khattiya is the highest, for those who follow the hierarchy of family; but, truely it is the Buddha, possessed of wisdom and discipline, who is the highest of all, gods and men."

Ambaṭṭha was fully convinced of the greatness of the Buddha when he observed all the thirty two marks of a superman in his person. He went to his teacher Pokkharasāti and told him all about his visit to him. Filled with devotion, Pokkharasāti also approached the Buddha, listened to his preaching and accepted his discipleship.

(4) Soṇadaṇḍa Sutta

The Buddha, going on a tour in Aṅga, reached the city of Campā and was staying on the bank of the lake Gaggarā. Then, there lived an honoured Bhāhmaṇà leader, Soṇadaṇḍa, who had the privilage of receiving rich grants of land and property of Campā under the royal patronage of king Bimbisāra. He

expressed his desire to the Brāhmaṇas to go and see the Buddha. This they did not like. They tried to dissuade him saying that it was below the dignity of a great Brāhmaṇa like him-a learned master of the three vedas, a man of high personality, pure in character, of gentle and noble speech, and a teacher of the multitude of students— to approach Samaṇa Gotama, a young wandering monk. Soṇadaṇḍa refuted their objection and said that he was a liberated saint, possessed of the thirty two marks of a great Man, much honoured by king Bimbisāra and the Brāhmaṇa leader Pokkharasāti, and, above all, a guest to them, who deserved their best reception, respect and attendance. Consequently, Soṇadaṇḍa set out to see the Buddha, accompanied by a large number of followers. In the way, Soṇadaṇḍa reflected : "How very awkward it would be for me if I am unable to answer a question of the Buddha and am rediculed before this gathering! May he ask me a question concerning the stauts of a Brāhmaṇa, a subject in which I feel confident!" And, it so happened that the Buddha put him that very question :— "O Brāhmaṇa, what are the distinctive qualities that one must possess to be called a true Brāhmaṇa?"

Soṇadaṇḍa took a breath of relief and said with full confidence :— "O Samaṇa Gotama, such qualities are five in number, namely, noble descent, learning in the Vedas, high personality, noble character and wisdom."

"Can any of these five, O Soṇadaṇḍa," queried the Buddha, "Be left out as being not unavoidingly essential?"

Soṇadaṇḍa thought over it and agreed to leave out the quality of having a 'high personality', which is but a matter of external consideration. The Buddha pressed his analysis further and asked him if any of the remaining four qualities could be similarly dropped off. Under the pressure of a further critical examination, he had to yield that the other two qualities were also not essential requisites of a true Brāhmaṇa, namely, noble descent and learning in the Vedas. The Buddha agreed with Soṇadaṇḍa that the remaining two qualities— purity of character and wisdom— constituted the very core of true Bāhmaṇahood, and further explained in what does nobleness of character (Sīla) and wisdom (Paññā) consist.

Soṇadaṇḍa was convinced of the teaching of the Buddha; but he was very much afraid of the public opinion going against him if he openly accepted his discipleship. He said :— "Sir, the Brāhmaṇas, I apprehend, will look down up on me if in an open meeting I were to get up and offer you my salutation. Therefore, O Gotama, if I fold my hands, in a meeting, kindly consider it as my getting up to greet you; if I unfold my turben, kindly take it as my offering you my respectful adoration; if, while going on a chariot, I raise up the whip, kindly accepted it as my getting down in your honour; and if, there itself, I raise up the umbrella, kindly regrad it as my offering you my best adoration."

(5) Kūṭadanta Sutta

The Buddha, while going on a tour in Magadha, reached Khāṇumata a Brāhmana-village, and was staying there in a mango grove. Then, there lived

an honoured Bāhmaṇa leader, Kūṭadanta, who had the privilage of receiving rich grants of land and property under the patronage of king Bimbisāra. At that time, Kūṭadanta was going to perform a Great Sacrifice, for which large numbers of bulls, calfs, goats and other animals were brought before the sacrificial post for being slaughtered.

Kūṭadanta had heard that the Buddha was conversant with the three modes and sixteen accessories of a sacrifice. He therefore, approached him and requested him to explain the same.

The Buddha narrated to him how king Mahāvijita, of the past, had performed an ideal sacrifice, with its three modes and sixteen accessories. The king was instructed by his Brāhmaṇa priest, first of all, to remove poverty in his kingdom, which alone was the sure protection against corruption, theft and such other evils. King Mahāvijita had all the other necessary qualities required in one who intends to perform a sacrifice. he had a noble family, both maternally and paternally, had the most powerful army at his command, had a great liberality of heart, had mastery over the different branches of learning, possessed insight into the nature of reality. And, the Brāhmaṇa Priest too was possessed of similar qualities.

The king was instructed not to feel disheartened at the heavy expenses involved in performance of the sacrifice, or at the arrival of bad persons, or at the groundless complaints of the people. No cows, goats, hens or pigs were slaughtered in that sacrifice; nor were servants harrassed or punished, the subordinate kings, invited in the sacrifice, had brought much riches with themselves which they gave out in charity to the needy on the four corners of the Sacrificial Pyre.

This was an ideal sacrifice that the Mahāvijita had performed. But, there was a nobler sacrifice, said the Buddha, than this; which consisted in organising centres for giving out charity to the needy. The noblest of all noble sacrifices, however, was the fulfilment of the noble Eightfold Path— of right view, right resolution, right speech, right action, right livelihood, right effort, right mindfulness and right concentration.

Kūṭadanta had his doubts removed. He took refuge in the Buddha, Dhamma and Saṅgha.

(6) Mahālī Sutta

The Buddha was staying in Vesālī, in the Kūṭāgārasālā of Mahāvana. At that time, a number of Brāhmaṇa messengers from Magadha and Kosala were also sojourning in Vesālī. They went to Mahāvana to pay their respect to the Buddha. The Venerable Nagita, Who was the personal attendant of the Buddha at that time, asked them to wait till the Buddha came out. Oṭṭhaddha, the Licchavi son, also turned up with a large number of followers, and sat waiting outside with them.

At the proper time, the Buddha came out and took his seat in the shade at the back of the monastery. The Brāhmaṇas and the Licchavis ap-

proached him with reverence, paid their homage to him and took their seats all round.

Oṭṭhaddha asked the Buddha about the mystical experience that Sunakkhatta had in seeing celestial forms, but not in being able to hear celestial sounds. The Buddha said that Sunakkhatta did not hear celestial sounds because he did not devote to train himself for that; had he done it, he could have surely heard them too. He, however, made it clear that it was not for seeing celestial forms or for hearing such sounds that the Bhikkhus led the holy life under him. These experiences are but passing phases in the course of developing meditation and concentration. The real purpose of self-training, said the Buddha, is to overcome the distracting factors, to gain perfect concentration, to cut off the mundane fetters and realise the sublime liberation, the Nibbāna.

(7) Jāliya Sutta

The Buddha was staying in the Ghositārāma monastery of Kosāmbī. There, two mendicants, Muṇḍiya and Jāliya, the disciples of Dārupattaka, approached him and asked :— "Sir, is the self same as the body or is it distinct from it?"

The Buddha explained that this question troubles one who is under the spell of ignorance. This question does not arise to an Arhat who has dispelled all darkness. The insight of an Arhat, said, he, pierces into the reality of existences and rises above all such perverted philosophising.

(8) Mahāsīhanāda Sutta

The Buddha was staying at Urunna in the deer park of Kaṇṇakathala. Kassapa, the naked ascetic, approached him there and enquired if he denounced and disapproved all kinds of penance and practices of austerity. The Buddha said that he did not denounce all of those; for, it was know to him that some of their adherants were born in heaven and others in hell. Leaving out the questions that involved controversy, said he, it were his own follower Bhikkhus who excelled others in conduct considered good by both; for, he pointed out, the Noble Eightfold Path of his was so simple and perfect that it did not admit a possibility of criticism or disapproval.

Kassapa pleaded that the practices of penance and austerity were also held in high esteem such as - nudity, various self-imposed limitations for accepting alms, fasts of various lengths and rigour, living on coarse and abominable food, putting on rough and distasteful wearing, observing the vow of keeping standing or squatting, lying on a bed of thorns, etc.

The Buddha said that these practices were but external performances, which could be fulfilled by any one with a bit of exertion, and that they had no spiritual value. He taught that the real importance of a higher life consisted in purging the mind of all impurities and evils, and in training oneself in Universal Loving Kindness. He emphasised that there is no path, but the Noble Eightfold Path, for a sure way to ethical perfection, mental peace, concentration and insight into reality.

At the end of the discourse, Kassapa worshipped the Buddha and took refuge in the Triple Gem.

(9) Poṭṭhapāda Sutta

The Buddha was staying in the Jetavana Monastery, near Sāvatthī. At that time, the ascetic Poṭṭhapāda was putting up in Ekasālā, a hermitage donated by queen Mallikā.

On his way to Sāvatthī, the Buddha paid a short visit to Poṭṭhapāda and had a talk with him about the process of affecting a cessation of the cognitive process. Poṭṭhapāda described the different theories held about it— as, There is no difinite cause for the process to arise or to cease; the life of a man consists in the cognitive faculty, and that its process ceases to function no sooner he breaths his last; there are persons possessed of such superhuman power who can draw out the cognitive functioning of a man, etc.

The Buddha refused all these as mere superstition, and explained the process that gradually leads to the high mystical state called *nirodhasamāpatti,* in which the cognitive process comes to total cessation. cognition of desire ceases with the attainment of the First Stages of Jhana, thrill and ease cease with the attainment of the formless......the sphere of the subtlest cognition, The *Nevasaññānāsaññāyatana,* the highest stage of *Arūpāvacara Jhāna* On the basis of this, the Yogāvacara rises up, following a definite method, and attains to the state of *nirodhasamāpatti,* in which the cognitive process comes to a full stoppage.

Leaving this consideration aside, Poṭṭhapāda jumped up to the tangles of the inexplicable questions— is the world eternal or non-eternal, finite or infinite; is the self same as the body, or is it distinct from it; does the Tathāgata exist after death or cease to exist?

The Buddha, as usual, pointed out that these questions were based on wrong suppositions and that they could not be answered unreservedly by 'Yes' or 'No'. Moreover, he said, it is useless to indulge in such discussion; for, they serve no purpose towards the realisation of Peace, Liberation, Nibbāna.

Poṭṭhapāda expressed his reverential appreceation to the discourse of the Buddha, and respectfully saw him off as he left the place.

Soon after the Buddha had gone away, the assembly of ascetics raised a strong voice of protest against Poṭṭhapāda for so very easily yielding before the Buddha and accepting what he said.

After two or three days, Citta Hatthisāriputta and Poṭṭhāpada approached the Buddha to pay their respects to him.

The Buddha, in the course of conversation, made a reference to the view that, after death, the self enters a realm of ultimate bliss. This, he said is an absurd position; for, such a realm has never been practically realised nor logically proved. He compared the seekers of the realm to man who has fallen in love with a girl he knows not, or to a man who tries to raise a ladder to reach a mansion about the location and height of which he has no idea.

The Buddha, further, made a mention of the three planes of sentient existence, namely— physical, mental and formless; and preached that the highest goal consisted in getting freedom from all these.

Citta Hatthisāriputta raised a question about the nature of 'identity' of the se!f in course of transmission from one plane of existence of another. This was explained with the simile of milk in course of its fermentation, which elucidates the law of Universal Flux, and proves that the identity is to be accepted only for practical consideration, not as a metaphysical truth.

Citta Hatthisāriputta was convinced and converted. He received ordination under the Teacher, fulfilled the Path and attained to the highest stage of sainthood.

(10) Subha Sutta

Venerable Ānanda was staying in the Jetavana monastery, not long after the passing away of the Buddha. At that time, Subha, a young student, a son of Todeyya, had come to Sāvatthī on some piece of business. He sent a friend of his to Venerable Ānanda to offer him an invitation to visit his place. Venerable Ānanda could not accept the invitation that day, as he had taken a dose of medicine. Next morning, he took Bhikkhu Cetaka with him and went to meet Subha at his residence. Subha worshipped him with due honour and said:— "Venerable Sir, as you had been a personal attendant of the Buddha for a long time, I wish to learn from you what exactly did the Buddha propound."

Ānanda delivered to him a sermon on the four Noble Truths and the Noble Eightfold Path. He traced the full course of the Holy Life right from the beginning—

As one listens to the discourses preached by the Buddha, he gains faith in him and is enthused to follow the Dhamma. He feels that the household life is like a congested dirty abode, and the life of a monk is free and pure like the open sky. He renounces his home, property and circles of friends and relatives, and gets himself ordained. He follows the rules laid down in the Pātimokkha, sees fear even in the smallest transgression, does meritorious acts through body, speech and mind, takes recourse to pure livelihood, is constantly aware and alert, and, above all, is fully contented. He cultures an attitude of detachment and develops concentration of mind. He overcomes the five hinderances (*Nīvaraṇas*), namely— desire, ill will, sloth and torper, worry and flurry, and doubt; and obtains the five constituents of Jhana, namely—application of the mind over the object (*Vitakka*), sustaining on it (*Vicāra*), a thrill over the body (*Piti*), ease (*Sukha*) and perfect concentration (*Ekaggatā*). He continues the practice of meditation with all zeal and gradually obtains the higher stages of Jhāna. He cultivates that insight in which he gets the mystic experience of viewing the consciousness connected with the body so very clearly as one would see the string passing through a transparent bead. He is able to perform miracles, such as— disappearing at one place and appearing at the other, passing across unrestricted through the solid wall or parapet, walking

straight on the surface of water as one does on the ground, perceiving the thoughts of a different person, recalling previous births and so on. Finally, he realises the true nature of existence as transitory, substanceless and full of misery— Anicca, Anatta and Dukkha; cuts of the ten fetters of existence and becomes a saint, Arhat, freed from the cycle of birth and death.

(11) Kevaṭṭa Sutta

The Buddha was staying in the mango-grove of Pāvarikā at Nālandā. Then, Kevaṭṭa, a young man of the place, came up to him and offered him respectful salutation, and said :— "Sir, this town of Nālandā is so very prosperous and thickly populated. Let the Lord order a Bhikkhu to exhibit feats of superhuman powers in the public. This will generate deep faith in them." But, Buddha did not approve of it and said that it was liable to be misunderstood by the people as a show of black art, such as Gāndhārī Vijjā or Maṇika Vijjā. He asserted that his disciples did possess such superhuman powers; but, as they were aquisitions of spiritual trainings, their sanctity must be preserved.

Then, the Buddha narrated how a certain Bhikkhu, by his superhuman power, had approached the gods of different planes, up to the Mahābrahmā, and asked them to explain where do the four Elements come to an ultimate cessation. None of the gods could give ka satisfactory reply. At the advice of the Supreme Brahma, the Bhikkhu came back and approached the Buddha for its solution.

The Buddha chided him for approaching the gods for this purpose. He compared him to that crow on board the ship which flies far and high all round in the mid-ocean, and, not finding a place any where else to rest on, ultimately comes back to the mast of the ship itself. He called it stupid to ask :— "Where do you four Elements come to an ultimate cessation"? The proper way of putting the question, dictated the Buddha, would be :—

"Where do the four Elements arise not ? Where do the conceptions of long and short, minute and gross, good and bad, and name and form do not hold good?" And, the answer to it would be :—

"It is in Nibbāna, the unseen, the infinite, the all-illumine, that the four Elements arise not. And, it is there that the conceptions of long and short, minute and gross, good and bad, and name and form do not hold good."

(12) Lohicca Sutta

Going on a tour in Kosala, the Buddha reached the bank of the river Sālavatikā. Then, there lived an honoured Brāhmaṇa leader, Lohicca, who had the privilage of receiving rich grants of land and property under the patronage of king Pasenadi. He happened to fall a victim to grave error in view of maintaining that it is useless for a monk of Brāhmaṇa to attempt to teach others a noble Doctrine that he has realised; for, how can one help the other in matter like this?

Lohicca ordered his barber, Rosikā, to approach the Buddha and offer him an invitation for a meal next day at his residence. When Rosikā went to

him for it, he took the opportunity of acquainting him with the erroneous view of his master, Lohicca.

The Buddha accepted the invitation of Lohicca. Next day, at the proper time, he reached his house with an assembly of monks. Lohicca gave them a devoted reception. He served the alms with his own hands. And, When the Buddha had finished his meal and drawn his hand from the bowl, Lohicca took his seat on one side before him and waited with folded hands.

The Buddha enquired if Lohicca actually held an erroneous view as he was informed. He admitted that it was true. The Buddha compared him to the unjust king who would like to keep all the income of the government to himself without giving due share to his subjects and subordinates. He preached that it was sinful if one kept a truth to himself and did not reveal it to others for the good of the many. He, however, denounced that type of 'teacher' who goes to lecture to others without realising the truth himself; for, a sermon from the mouth of a man like this goes amiss; and, it is about him that one can truely say— how can one help the other?

The doubt of Lohicca was removed. He took refuge in the Buddha. Dhamma and saṅgha.

(13) Tevijja Sutta

While going on a tour in Kosala, the Buddha reached Manasākaṭā, a village of the Brāhmanas, and was staying on the northern bank of the river Aciravatī. At that time, the place was a seat of renowned Brāhmaṇas, like, Caṅkī, Tarukkha, Pokkharasāti, Janussoṇi, Todeyya and others. One day, a very controversial discussion took place between two young Brāhmaṇa students— Vāseṭṭha and Bhāradvāja— as regards the way to reach the realm of Brahmā; and, it so happened that none of them could convince the other. At last, both of them approached the Buddha and put their problem before him. They also suggested that, perhaps, the different ways taught by the different Brāhmaṇas are like the different paths from different directions that lead to the same destination.

The Buddha enquired if they themselves, or their teachers, or any of their forefathers had seen Brahmā face to face. The students admitted that they did not know definitely of any as such. The Buddha, therefore, compared their tradition to chain of blind men in which did neither the leader see the way nor any one else who followed him in the train. He compared them to one who has fallen in love with a girl he knows not, or to one who tries to raise a ladder to reach a mansion, about the location or hight of which he has no idea.

The Buddha further said that there was no sense in invoking the gods, like— Inda, Soma, Varuna, Issara, Pajāpati, Brahmā, Mahinda and Yama. He said that it was as absured as standing on this bank of the river and calling the other bank to him. He preached the Dhamma to them: attachment to the objects of five senses keep a man fettered in this world and does not let him cross over to the Sublime.

The present volume : Its importance

The thirteen Suttas contained in the present volume are discourses delivered by the Buddha at different places, addressed to persons from different spheres of life, such as— a homeless monk, a king, an honoured Brāhmaṇa leader, a young student, a common householder, a naked ascetic practising austere penance, and a sceptic thinker. No doubt, the Buddha preached the same philosophy and outlook of life to all of them; but, in view of the diversity of their inclinations, calibre and background of thinking, he gave explanations of them, not of the same standard and in the same method. He elucidated most difficult problems with the help of homely similes and examples taken from commaon instances of everyday life of the people. Hence, these Suttas represent vivid picture of the different aspects of life and thoughts of the time, providing valuable material for studies in the philosophical, religious and social history of that period.

(a) Philosophical

The Sāmaññaphala Sutta provides full descriptive accounts of the contemporary philosophies propounded by such sectarian leaders as Pūraṇa Kassapa, Makkhali Gosāla, Ajita Kesakambala, Pakudha Kaccāyana and Nigaṇṭha Nāṭaputta. Their views contain the germs of the later materialistic and hedonistic position of *Cārvāk*, of absolute determinism, and other thoughts. Besides these, there were many other minor thinkers, whose views have been mentioned in the Brahmajāla Sutta, without attributing them to specific thinkers, such as- both the self and the world are eternal (p.16); they are partially eternal and partially changing (p.21); the world is finite or infinite (p. 26); there is an accidental, abrupt and causeless beginning of the beings (p.32). Then again, we have got a list of the philosophical querries, called the inexplicables (*avyākatapañhas),* after which there might have existed their own lines of thinkers. The last Sutta, Tevijja Sutta, raises the question of the attainment of the realm of the Brahmā. The Buddha explains that a being is born in this realm as the result of practising the four Brahmaviharas— Mettā, Karuṇā, Muditā and Upekkhā.

Theis exhibits that the conception of Brahman as a principle of metaphysical reality was unknown at that time. The later Vedantic philosophy of Brahman as the ultimate substance seems to be a development of the same line of thought.

It is interesting to note that the Ambaṭṭha Sutta refers to the existence of centres in South India for culture in spiritualism, in one of which Kaṇha, the bastard son of king Okkāka, had received education.

(b) Religious

In these Suttas there are references to various contemporary sects of wandering monks and mendicants adhering to various kinds of vows and prac-

tices as their religious creeds. Often, they lost sight of their true objectives and took recourse to hypocracy for their selfish gain and fame in the society. Types of these have been mentioned in the Brahmajāla Sutta (p.9) as — *Kuhakā, lapakā, nemittikā, nippesikā, lābhena lābhaṁ nijigimsitāro.* Apart from these, there were others who exploited the people by superstitious practices, astrology and black arts (12.13). They maintained their lineage by organised traditions handed down from teachers to pupils.

The six heretical views represented in the Sāmaññaphala Sutta must have formed centres of their own sectarian organisations. It would be fruitful to make investigation in the present religious lifè of the country with a view to tracing out remnan's of the same. We are, at least, sure about the identity of Nigaṇṭha Nātaputta. It is Lord Mahāvīra, the last Tīrthaṅkara of Jainism. But, perhaps, the Pali version is wrong in putting the doctrine of fourfold restraint (Cātuyāmasamvara) in his mouth. In reality, it was Paraśvanāth. the previous Tīrthaṅkara who had propounded this Dharma of Cātuyāma—

Savvāto pāṇātivāyāo veramaṇam, evaṁ musāvāyāo veramaṇaṁ, savvāto adinnādānāo veramaṇaṁ, savvāo bahiddhādāṇāo veramaṇaṁ (Thananga- 266/201).

To these four, Mähāvīra, the succeeding Tīrthaṅkara, added one more—*Pariggahaviramaṇam*—and consituted the Dharma of Pañcamahāvrata, or of the Five Great Vows.

Again, it is interesting to note that the doctrine of Cātuyāmasamvara as quoted in Pali— *Sabbavārivārito ca hoti, sabbavāriyuto ca, sabbavāridhuto ca, subbavāriphuto ca*— does not occur any where in Jain literature, and that the meaning of the same does not seem to be clear. Any how, one cannot help thinking that there has been an attempt of sectarin distortion in this case.

Pūraṇa Kassapa and Ajitakesakambali seem to be representatives of the famous nihilist position of Cārvāka, the Indian materialist.

The naked ascetic Acelakassapa, of the Mahāsīhanādasutta (pp. 138-149) is also, perhaps, a Jain monk, who advocates the practice of Tapa or austere penance as a path of self-purification. The various restrictions that the describes to be obsereved in accepting food offered as alms are—

"....he does not accept alms from one who calls him out for it, nor does he accept food specially brought or prepared for him, nor does he accept an invitation. nor a food just taken out from the cooking utensil, or brought through a herd of sheep, or through men holding staffs and sticks, or through men taking their meal, not food brought by a pregnant woman, or a woman suckling her child....nor the food brought from a place where the dog is standing by, or where it is full of flies. He either goes to one house only or takes only one morsal of food.... He takes only one meal a day, or only one morsal in two days....or only one meal in a week...." (p.176). This is very much in similarity with the restrictions stated in the Jain book, the Dasavekālika.

The Kūṭadanta Sutta (p.137) gives a glimpse into the bloody perfor-

mance of Yajna, in which large number of animals were brought before the sacrificial post for being slaughtered, and, in which, forced labour was taken from the menials, full of tears in their eyes and terribly frightened of punishment.

(c) Yogic

The last three factors of the Noble Eightfold Path— Right Effort, Right Mindfulness and Right Concentration— are devoted to the development of that mystical state of consciousness that is known as Jhāna or Samādhi in which all mental distractions are overcome and perfect concentration is obtained. It is in this state that the ultimate realisation into reality in accomplished, ignorance is dispelled and Arhathood is obtained.

The Buddha asserts that, in course of this process, one achieves many superhuman powers, called Iddhis. In the Kevaṭṭasutta (p.224) the Buddha says: "O Kevaṭṭa, I have myself realised and preached three superhuman powers— performance of miracles, perceiving the minds of other persons, and dictating others' thoutht." But, the Buddha did not like his disciples to display feats of these in public, lest they might be mistaken for pieces of magical entertainment (p.86).

These practices, however, were not confined to the disciples of the Buddha. These Suttas exhibit occasions showing that the members of other sects, too, took interest in it and even asked the Buddha questions releting to its intricacies. thus, mahāli, an external monk, asks him about the mystical experience of Sunakkhatta, in seeing celestial froms, and about the possibility of hearing celestial sound (p.163). poṭṭhapāda, a mendicant of the outher order, gives to the buddha a discription of the ways of accomplishing a complete cessation of the cognitive process *(abhisaññānirodha),* and expresses his eagerness to learn the process that the Buddha tought for it (p.126).

There is mention of a certain Bhikkhu prossessed of yogic superhuman power ascending to the different planes of gods --yama, tusita....up to Mahābrahmā -- to ask them a question about the altimate cessation of the four elements.

(d) *Social*

The constitution of the society was based on an hierarchy of caste system.The Ambaṭṭha Sutta reveals that the Brāhmaṇa asserted their superiority over the Khattiyas and the mendicants (p. 98) on the old conception of the origin of the four castes from the different parts of the body of Brahma, The Khattiyas, however, did not accept social subordination to the Brahmanas without a protest, The stanza of the Brahmā Sanaṅkumara was quoted by them to assert their own eminence (p. 105). In the same Sutta there is a consideration of customs that prevail in cases of intermarriages between Brāhmaṇas and Khattiyas[1]. The Brāhamaṇas guarded their social prestige with great zeal; so

1. A son born of a Khattiya husband and a Brāhmaṇa wife or of a Brāhmaṇa husband and Khattiya wife does receive a respectable seat and water from the Brāhmaṇas, does

much so that, even after being full convinced of the greatness of the Buddha, Soṇadaṇḍa hesitates in doing reverence to him in the public, The Buddha himself did not approve the existence of caste differrece in the society, still he could not overlook the general recognition of it; and while preaching about the three modes and sixteen accessories of an ideal Yajna Kuṭadanta he included the quality of 'having a good birth', both maternally and paternally, as an essential requisite of the Cakkavattī king, as also of the Purohit— (p.147). The fourth caste, the Suddas, occupied the lowest status in the society; but an, exceptional individual, like Kaṇha, a bastard son of the king Okkāka rose up to the high eminence of a sage by dint of his education and spiritual acquisition. There was, perhaps, no distinction made in imparting education and giving due position to the deserving. Thus, the son of a harlot, Jīvaka, was able to receive the best education in medicine and to be appointed as the royal physician of king Ajātasattu.

The items of public entertainment were the following— dance, song, music, theatrical performance, story-telling, tuneful clapping, playing on earthen jars, play with iron ball, acrobatic feats, elephant-fight, horse-fight, buffalo-fight, bull-fight, goat-fight, ram-fight, cock-fight, fencing, boxing, wrestling, and military displays.

The gambles played by them were-*aṭṭhapada* (a chequered board having eight squares on each side), *dasapada* (a draught-board with ten squares on each side), *ākāsa* (a chess played in the air), *parihārapatha* (encircling game played over lines drawn on the ground), *Santika* (?), *Khalikā* (a dice board), *ghaṭikā* (a game with sticks), *saḷākahattha* (a kind of play in which the hand is dipped in lac or dye and used as a brush), *akkha* (a dice), *paṅgacīra* (a game palyed by blowing through toy pipes made of leaves), *vaṅkaka* (a game played with a toy-plough), *mokkhacika* (a game played with two sticks). *Ciṅgulika* (a toy-windmill made of palm leaves); *pattāḷhaka* (a toy-measure made of plam leaves), *rathaka* (a game played with a toy chariot), *akkharikā* (a game of recognising a letter written in the air or on one's back), *manesika* (guessing the thoughts of others) (p.10)

The Sāmaññaphala Sutta makes a mention of the following occupations adopted by them as their livelihood— elephant-soldier, horse-sodlier, chariot-sodlier, archer, hair-dresser, military officers, kitchen-manager in the cantonment, military-scout, swordsman, barder, cook, gardener, washerman, weaver, basket-maker, potter, accountant, etc.

---

get an invitation at ceremonial feasts and at sacrifices of the Brāhmaṇas, does receive education in the Vedas with the Brāhmaṇas, does get matrimonial privileges; but, he cannot be anointed as a king by the Khattiyas. In a Brāhmaṇa house, a person does not get the above privileges who has been excomunicated by the Brāhmaṇa society; while a person does get them who has been excomunicated by the Khattiya society.

THE PALI ALPHABET IN DEVNAGARI AND ROMAN CHARACTERS

VOWELS

अ = a आ = a इ = i ई = ī उ = u ऊ = ū ए = e ओ= o

CONSONANTS WITH VOWEL "A"

क ka	ख kha	ग ga	घ gha	ङ ṅa
च ca	छ cha	ज ja	झ jha	ञ ña
ट ṭa	ठ ṭha	ड ḍa	ढ ḍha	ण ṇa
त ta	थ tha	द da	ध dha	न na
प pa	फ pha	ब ba	भ bha	म ma
य ya	र ra	ल la	व va	स sa
	ह ha	ळ ḷa	अं aṁ	

VOWELS IN COMBINATION

क ka का kā कि ki की kī कु ku कू kū के ke को ko
ख kha खा khā खि khi खी khī खु khu खू khū खे khe खो kho

CONJUNCT-CONSONANTS

क्क kka	ञ्च ñca	द्व dva	म्ब mba
क्ख kkha	ञ्छ ñcha	ध्य dhya	म्भ mbha
क्य kya	ञ्ज ñja	ध्व dhva	म्म mma
क्रि kri	ञ्झ ñjha	न्त nta	म्य mya
क्ल kla	ट्ट ṭṭa	न्त्व ntva	म्ह mha
क्व kva	ट्ठ ṭṭha	न्थ ntha	य्य yya
ख्य khya	ड्ड ḍḍa	न्द nda	य्ह yha
ख्व khva	ड्ढ ḍḍha	न्द्र ndra	ल्ल lla
ग्ग gga	ण्ट ṇṭa	न्ध ndha	ल्य lya
ग्घ ggha	ण्ठ ṇṭha	न्न nna	ल्ह lha
ग्य gya	ण्ड ṇḍa	न्य nya	व्ह vha
ग्र gra	ण्ण ṇṇa	न्ह nha	स्त sta
ङ्क ṅka	ण्ह ṇha	प्प ppa	स्त्र stra
ङ्ख ṅkha	त्त tta	प्फ ppha	स्न sna
ङ्ग ṅga	त्थ ttha	प्य pya	स्य sya
ङ्घ ṅgha	त्व tva	प्ल pla	स्स ssa
च्च cca	त्य tya	ब्ब bba	स्म sma
च्छ ccha	त्र tra	ब्भ bbha	स्व sva
ज्ज jja	द्द dda	ब्य bya	ह्म hma
ज्झ jjha	द्ध ddha	ब्र bra	ह्व hva
ञ्ञ ñña	द्य dya	म्प mpa	ळ्ह ḷha
ञ्ह ñha	द्र dra	म्फ mpha	

ा = ā ि = i ी = ī ु = u ू = ū े = e ो = o

1	2	3	4	5	6	7	8	9	0
१	२	३	४	५	६	७	८	९	०

दीघनिकायपालि

(१. सीलक्खन्धवग्गो)

सुत्तसूची

३. अम्बट्ठसुत्तं

४. सोणदण्डसुत्तं

५. कूटदन्तसुत्तं

६. महालिसुत्तं

दीघनिकायपालि

१. सीलक्खन्धवग्गो

[हिन्दीरूपान्तरसहितो]

[1]

✿ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ✿

दीघनिकायपालि

१. सीलक्खन्धवग्गो

१. ब्रह्मजालसुत्तं

१. सुप्पियपरिब्बाजकवत्थु

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा अन्तरा च राजगहं अन्तरा [N. 3, B. 1, R. 1] च नाळन्दं अद्धानमग्गप्पटिपन्नो होति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि। सुप्पियो पि खो परिब्बाजको अन्तरा च राजगहं अन्तरा च नाळन्दं अद्धानमग्गप्पटिपन्नो होति सद्धिं अन्तेवासिना ब्रह्मदत्तेन माणवेन। तत्र सुदं सुप्पियो परिब्बाजको अनेकपरियायेन बुद्धस्स अवण्णं भासति, धम्मस्स अवण्णं भासति, सङ्घस्स अवण्णं भासति; सुप्पियस्स पन परिब्बाजकस्स अन्तेवासी ब्रह्मदत्तो माणवो अनेकपरियायेन बुद्धस्स वण्णं भासति, धम्मस्स वण्णं भासति, सङ्घस्स वण्णं भासति। इति ह ते उभो आचरियन्तेवासी अञ्ञमञ्ञस्स उजुविपच्चनीकवादा भगवन्तं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धा होन्ति भिक्खुसङ्घं च।

२. अथ खो भगवा अम्बलट्ठिकायं राजागारके एकरत्तिवासं उपगच्छि सद्धिं

✿ उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है ✿

दीघनिकायपालि

१. शीलस्कन्धवर्ग

१. ब्रह्मजालसूत्र

१. सुप्रियपरिव्राजकवस्तु

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) पाँच सौ भिक्षुओं के बृहत् सङ्घ के साथ राजगृह एवं नालन्दा के मध्य चारिका कर रहे थे। (उसी समय) सुप्रिय परिव्राजक भी अपने शिष्य ब्रह्मदत्त माणव के साथ राजगृह एवं नालन्दा के बीच जा रहा था। मार्ग में वह सुप्रिय परिव्राजक (अपने शिष्य से) बुद्ध, उनके धर्म तथा सङ्घ के विषय में नाना प्रकार की निन्दात्मक बातें करता चला जा रहा था; परन्तु (इसके उत्तर में) उसका शिष्य ब्रह्मदत्त माणव बुद्ध, धर्म और सङ्घ के विषय में नानाविध प्रशंसायुक्त बातें ही करता रहा। यों वे दोनों आचार्य और शिष्य परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध बोलते हुए (उजुविपच्चनीकवादा) भगवान् तथा सङ्घ के पीछे-पीछे चल रहे थे।

भिक्खुसङ्घेन। सुप्पियो पि खो परिब्बाजको अम्बलट्ठिकायं राजागारके एकरत्तिवासं उपगच्छि [B. 2] सद्धिं अन्तेवासिना ब्रह्मदत्तेन माणवेन। तत्र पि सुदं सुप्पियो परिब्बाजको अनेकपरि- [R. 2] यायेन बुद्धस्स अवण्णं भासति, धम्मस्स अवण्णं भासति, सङ्घस्स अवण्णं भासति; सुप्पियस्स पन परिब्बाजकस्स अन्तेवासी ब्रह्मदत्तो माणवो अनेकपरियायेन बुद्धस्स वण्णं [N. 4] भासति, धम्मस्स वण्णं भासति, सङ्घस्स वण्णं भासति। इति ह ते उभो आचरियन्तेवासी अञ्ञमञ्ञस्स उजुविपच्चनीकवादा विहरन्ति।

३. अथ खो सम्बहुलानं भिक्खूनं रत्तिया पच्चूससमयं पच्चुट्ठितानं मण्डलमाळे सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयं सङ्खियधम्मो उदपादि—"अच्छरियं, आवुसो, अब्भुतं, आवुसो, यावञ्चिदं तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सत्तानं नानाधिमुत्तिकता सुप्पटिविदिता। अयं हि सुप्पियो परिब्बाजको अनेकपरियायेन बुद्धस्स अवण्णं भासति, धम्मस्स अवण्णं भासति, सङ्घस्स अवण्णं भासति; सुप्पियस्स पन परिब्बाजकस्स अन्तेवासी ब्रह्मदत्तो माणवो अनेकपरियायेन बुद्धस्स वण्णं भासति, धम्मस्स वण्णं भासति, सङ्घस्स वण्णं भासति। इति ह मे उभो आचरियन्तेवासी अञ्ञमञ्ञस्स उजुविपच्चनीकवादा भगवन्तं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धा होन्ति भिक्खुसङ्घं चा" ति।

४. अथ खो भगवा तेसं भिक्खूनं इमं सङ्खियधम्मं विदित्वा येन मण्डलमाळो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"काय नुत्थ, भिक्खवे, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना सन्निपतिता, का च पन वो अन्तराकथा विप्पकता" ति? एवं वुत्ते ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोचुं—"इध, भन्ते, अम्हाकं रत्तिया

२. सायङ्काल होने पर भगवान् अम्बलट्ठिका नामक उद्यान में राज्यशासन द्वारा बनायी विश्रामशाला में एक रात्रि भर निवास के लिये अपने उस बृहत् भिक्षुसङ्घ के साथ ठहर गये। सुप्रिय परिव्राजक भी उसी अम्बलट्ठिका की राजकीय विश्रामशाला में एक तरफ रात्रि भर विश्राम के लिये अपने शिष्य के साथ ठहर गया। वहाँ भी वह सुप्रिय परिव्राजक ब्रह्मदत्त माणव के सम्मुख बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ के विषय में नाना प्रकार की निन्दात्मक बातें करता रहा तथा इस के उत्तर में ब्रह्मदत्त माणव बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ का प्रशंसात्मक वर्णन करता रहा।

३. तब रात्रि के व्यतीत होने पर ब्राह्म मुहूर्त में मण्डलमाल (वृत्ताकार मण्डप) में एकत्र बैठे भिक्षुओं में परस्पर यह चर्चा चल पड़ी—"आयुष्मानो! यह अत्यधिक आश्चर्यमय एवं अद्भुत बात है कि भगवान् तो सब कुछ जानते हैं, सब कुछ देख सकते हैं, वे ज्ञानी भी हैं और सम्यक्सम्बुद्ध भी। वे प्रत्येक प्राणी के हृदय की बात जान लेते हैं कि वह प्राणी उन के विषय में क्या विचार रखता है। यहाँ यह सुप्रिय परिव्राजक (कल से ही) बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ विषयक अनेक निन्दात्मक बातें करता आ रहा है, और इसका शिष्य ब्रह्मदत्त माणव नानाप्रकार से बुद्ध–धर्म–सङ्घविषयक प्रशंसात्मक बातें कर रहा है। यों, ये दोनों आचार्य–अन्तेवासी (शिष्य) परस्पर विरुद्ध संवाद करते हुए भगवान् तथा सङ्घ के पीछे–पीछे लगे आ रहे हैं। (फिर भी भगवान् इन्हें कुछ भी नहीं बोल रहे!)

४. तब भगवान् भी भिक्षुओं के इस सन्निपात को सुनकर उस वृत्ताकार मण्डप में पधारे और बिछे आसन पर विराजमान हुएं। यों विराज कर भगवान् ने भिक्षुओं से पूछा—"भिक्षुओ! इस समय तुम लोगों में परस्पर क्या संवाद हो रहा था? क्या कहते–कहते तुम लोग बीच में ही रुक गये?" ऐसा पूछे

पच्चूससमयं पच्चुट्ठितानं मण्डलमाले सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयं सङ्खियधम्मो उदपादि— 'अच्छरियं, आवुसो, अब्भुतं, आवुसो, यावञ्चिदं तेन भगवता जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सत्तानं नानाधिमुत्तिकता सुप्पटिविदिता। अयं हि सुप्पियो परिब्बाजको अनेकपरियायेन बुद्धस्स अवण्णं भासति, धम्मस्स अवण्णं भासति, सङ्घस्स अवण्णं भासति; सुप्पियस्स पन परिब्बाजकस्स अन्तेवासी ब्रह्मदत्तो माणवो अनेकपरियायेन बुद्धस्स वण्णं भासति, धम्मस्स वण्णं भासति, सङ्घस्स वण्णं भासति। इति ह मे उभो आचरियन्तेवासी अञ्ञमञ्ञस्स उजुविपच्चनीकवादा भगवन्तं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धा होन्ति भिक्खुसङ्घं[B.3] चा' ति। अयं खो नो, भन्ते, अन्तराकथा विप्पकता, अथ भगवा अनुप्पत्तो'' ति।

५. ''ममं वा, भिक्खवे, परे अवण्णं भासेय्युं, धम्मस्स वा अवण्णं भासेय्युं, [N.5] सङ्घस्स वा अवण्णं भासेय्युं, तत्र तुम्हेहि न आघातो न अप्पच्चयो न चेतसो अनभिरद्धि [R.3] करणीया। ममं वा, भिक्खवे, परे अवण्णं भासेय्युं, धम्मस्स वा अवण्णं भासेय्युं, सङ्घस्स वा अवण्णं भासेय्युं, तत्र चे तुम्हे अस्सथ कुपिता वा अनत्तमना वा तुम्हं येवस्स तेन अन्तरायो।

''ममं वा, भिक्खवे, परे अवण्णं भासेय्युं, धम्मस्स वा अवण्णं भासेय्युं, सङ्घस्स वा अवण्णं भासेय्युं, तत्र चे तुम्हे अस्सथ कुपिता वा अनत्तमना वा, अपि नु तुम्हे परेसं सुभासितं वा दुब्भासितं वा आजानेय्याथा'' ति? ''नो हेतं, भन्ते।''

''ममं वा, भिक्खवे, परे अवण्णं भासेय्युं, धम्मस्स वा अवण्णं भासेय्युं, सङ्घस्स वा अवण्णं भासेय्युं, तत्र तुम्हेहि अभूतं अभूततो निब्बेठेतब्बं—'इतिपेतं अभूतं, इतिपेतं अतच्छं, नत्थि चेतं अम्हेसु, न च पनेतं अम्हेसु संविज्जती' '' ति।

६. ''ममं वा, भिक्खवे, परे वण्णं भासेय्युं, धम्मस्स वा वण्णं भासेय्युं, सङ्घस्स वा वण्णं भासेय्युं, तत्र तुम्हेहि न आनन्दो न सोमनस्सं न चेतसो उप्पिलावितत्तं करणीयं। ममं

जाने पर उन भिक्षुओं ने भगवान् से यों निवेदन किया—''भन्ते! यहाँ रात्रि व्यतीत होने पर ब्राह्ममुहूर्त में एकत्र होकर बैठे हम लोगों में यह चर्चा....पूर्ववत्....। (फिर भी भगवान् कुछ नहीं कह रहे हैं।) भन्ते! यह चर्चा हो रही थी, इतने में ही आपका यहाँ पधारना हो गया।''

५. (भगवान् बोले—) ''भिक्षुओ! भले ही कोई मेरी या मेरे धर्म या सङ्घ की निन्दा करे; इस कारण तुम्हें उसके प्रति न वैर करना चाहिये, न असन्तोष और न क्रोध ही। क्योंकि भिक्षुओ! यदि कोई मेरी या मेरे धर्म तथा सङ्घ की निन्दा करे, उस पर तुम वैर, असन्तोष या क्रोध प्रकट करोगे तो इससे तुम्हारी धर्म–साधना में ही विघ्न पड़ेगा। (निन्दक की इससे क्या हानि होगी!)।

''हाँ, यदि भिक्षुओ! कोई मेरी, मेरे धर्म एवं सङ्घ की निन्दा करे; उसे तुम सुनो तो सुन कर तुम वैर, असन्तोष या क्रोध ही प्रकट करते रह जाओगे? क्या तुम उनकी की हुई उस निन्दा की समीक्षा नहीं करोगे कि उस में कितनी वास्तविकता है?'' ''ऐसा नहीं है, भन्ते!''

''हाँ, भिक्षुओ! दूसरे मेरी या मेरे धर्म एवं सङ्घ की निन्दा करते हों तो वे वैसा करते रहें, तुम्हें तो उनकी कही बातों पर यों विचार करना चाहिये कि उनमें कितना सत्य है और कितना असत्य। तुम्हें वहाँ उस असत्य को असत्य से भी परखना चाहिये कि यह (इसके द्वारा उक्त निन्दादोष) हम में नहीं है। यह हम पर मिथ्या आरोप ही है। यह तो हम में अल्प मात्रा में भी नहीं है।

६. ''भिक्षुओ! इसके विपरीत, यदि कोई मेरी या मेरे धर्म या सङ्घ की प्रशंसा करे तो उसे सुनकर

वा, भिक्खवे, परे वण्णं भासेय्युं, धम्मस्स वा वण्णं भासेय्युं, तत्र चे तुम्हे अस्सथ आनन्दिनो सुमना उप्पिलाविता तुम्हं येवस्स तेन अन्तरायो।

"ममं वा, भिक्खवे, परे वण्णं भासेय्युं, धम्मस्स वा वण्णं भासेय्युं, सङ्घस्स वा वण्णं भासेय्युं, तत्र तुम्हेहि भूतं भूततो पटिजानितब्बं—'इतिपेतं भूतं, इतिपेतं तच्छं, अत्थि चेतं अम्हेसु, संविज्जन्ति च पनेतं अम्हेसू' " ति।

२. सीलमत्तकं

(क) चूळसीलं

७. "अप्पमत्तकं खो पनेत, भिक्खवे, ओरमत्तकं सीलमत्तकं येन पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य। कतमं चेतं, भिक्खवे, अप्पमत्तकं ओरमत्तकं सीलमत्तकं येन पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य ?"

[B.4, R.4] ८. "'पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो समणो गोतमो निहितदण्डो निहितसत्थो लज्जी दयापन्नो, सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहरती' ति—इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य। (१)

[N.6] "'अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो समणो गोतमो दिन्नादायी दिन्नपाटिकङ्खी, अथेनेन सुचिभूतेन अत्तना विहरती' ति—इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य। (२)

" 'अब्रह्मचरियं पहाय ब्रह्मचारी समणो गोतमो आराचारी विरतो मेथुना गामधम्मा' ति— इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य। (३)

९." 'मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो समणो गोतमो सच्चवादी सच्चसन्धो थेतो

भी न तुम्हें आनन्दित होना चाहिये, न हर्षविभोर होकर न, तुम्हें उससे उद्भूत अपना सौमनस्य ही प्रकट करना चाहिये; क्योंकि इन क्रियाओं से तुम्हारी ही धर्मसाधना में विघ्नबाधा उपस्थित होगी। (प्रशंसक का तो इससे कुछ बनने-बिगड़ने वाला है नहीं!)

"अतः, भिक्षुओ! जब कोई मेरी, मेरे धर्म या सङ्घ की प्रशंसा करे तो तुम लोगों को उस प्रशंसा को सत्य की कसौटी पर कसना चाहिये कि यह जो कह रहा है, वह सत्य ही है, तथ्य ही है, वे सद्गुण हम में विद्यमान हैं।"

२. साधारण शील

(क) क्षुद्रशील—७. भिक्षुओ ! ये शील तो बहुत साधारण गौण एवं अल्पमात्रा वाले ही हैं जिनके कारण साधारण पृथग्जन तथागत की प्रशंसा करते हैं। भिक्षुओ! वे अत्यधिक साधारण, गौण एवं अल्प मात्रा वाले शील कौन से हैं, जिनके कारण साधारणजन तथागत की प्रशंसा के पुल बाँधते हैं?

८. "भिक्षुओ! कुछ साधारणजन तथागत की प्रशंसा करते हुए यह कहते हैं—'श्रमण गौतम प्राणातिपात (जीवहिंसा) को त्याग कर, प्राणातिपात से सर्वथा दूर रहते हैं। वे दूसरों पर शस्त्र या दण्ड प्रहार नहीं करते। वे लज्जालु, दयालु तथा सभी जीवों का हित चाहते हुए धर्मसाधना करते हैं। (१)

"भिक्षुओ! कुछ साधारणजन तथागत की प्रशंसा में यह भी कहते हैं—'श्रमण गौतम अदत्तादान (चौरी) को छोड़ कर अदत्तादान से सर्वथा दूर रहते हैं। वे दिया हुआ ही लेते हैं, दिये हुए की ही इच्छा रखते हैं। यों वे पवित्र आचरणशील हो कर धर्म-साधनारत रहते हैं। (२)

पच्चयिको अविसंवादको लोकस्सा' ति—इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य। (४)

"'पिसुणं वाचं पहाय पिसुणाय वाचाय पटिविरतो समणो गोतमो, इतो सुत्वा न अमुत्र अक्खाता इमेसं भेदाय, अमुत्र वा सुत्वा न इमेसं अक्खाता अमूसं भेदाय। इति भिन्नानं वा सन्धाता, सहितानं वा अनुप्पदाता समग्गारामो समग्गरतो समग्गनन्दी समग्गकरणिं वाचं भासिता' ति —इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य। (५)

"'फरुसं वाचं पहाय फरुसाय वाचाय पटिविरतो समणो गोतमो; या सा वाचा नेला कण्णसुखा पेमनीया हदयङ्गमा पोरी बहुजनकन्ता बहुजनमनापा तथारूपिं वाचं भासिता' ति —इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य। (६)

"'सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलापा पटिविरतो समणो गोतमो कालवादी भूतवादी अत्थवादी धम्मवादी विनयवादी निधानवतिं वाचं भासिता कालेन सापदेसं परियन्तवतिं [R.5] अत्थसंहितं' ति—इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य। (७)

१०."'बीजगामभूतगामसमारम्भा पटिविरतो समणो गोतमो' ति—इति वा हि,[B.5] भिक्खवे, ...पे०.... । (८)

"'एकभत्तिको समणो गोतमो रत्तूपरतो विरतो विकालभोजना ति—इति वा हि.... ।(९)

"भिक्षुओ! कुछ साधारणजन तथागत की प्रशंसा में यह कहते हैं—'श्रमण गौतम अब्रह्मचर्य (व्यभिचार = द्वयन्द्वयसमापत्ति) को छोड़ कर अब्रह्मचर्य (निकृष्ट मैथुनधर्म) से सर्वथा दूर रहते हैं'। (३)

९. "भिक्षुओ! कुछ साधारणजन तथागत की प्रशंसा में यह कहते हैं—'श्रमण गौतम मृषावाद (असत्यभाषण) को छोड़ कर मृषावाद से सर्वथा दूर रहते हैं'। वे सत्यवादी, सत्यचिन्तक (सत्यव्रत), दृढ़वक्ता, एवं विश्वसनीय हैं; क्योंकि वे जैसा कहते हैं वही करते हैं। लोगों को भ्रम में नहीं डालते।'(४)

"भिक्षुओ! कुछ साधारणजन तथागत की यों प्रशंसा करते हैं—'श्रमण गौतम दूसरों की चुगलखोरी छोड़ कर उस से सर्वथा विरत रहते हैं। न वे परस्पर कलह कराने या फूट डालने के लिये यहाँ (इस पक्ष) की सुनकर वहाँ (उस पक्ष को) कहते हैं, न वहाँ की सुनकर यहाँ कहते हैं। अपितु वे कलह करते लोगों को कलह से दूर हटाते हैं, उन्हें मिलाते हैं, उन की मैत्री को सुदृढ़ करते हैं। वे एकताप्रिय, एकता कराने में तत्पर, लोगों में एकता से प्रसन्न होने वाले एवं एकता-स्थापना हेतु ही लोगों को उपदेश करते हैं'। (५)

"भिक्षुओ! यहाँ कोई साधारणजन तथागत की यों प्रशंसा करते हैं—'श्रमण गौतम दूसरों के प्रति कठोर वचन बोलना छोड़कर उससे सर्वदा विरत रहते हैं। वे तो निर्दोष, कर्णप्रिय, स्नेहमयी, हृदयग्राह्य, समयोचित, शिष्ट एवं बहुजनप्रिय वाणी ही बोलते हैं'। (६)

"भिक्षुओ! यहाँ कोई साधारणजन तथागत की यों प्रशंसा करते हैं—'श्रमण गौतम व्यर्थ बकवाद (सम्प्रलाप) को छोड़ कर उससे सर्वथा दूर रहते हैं। वे समयोचित सार्थक एवं यथार्थ वक्ता हैं एवं वे धर्म एवं विनय बोधक बातें ही बताने वाली सार (तत्त्व) युक्त वाणी बोलते हैं'। (७)

१०. "भिक्षुओ! ....' श्रमण गौतम किसी भी पेड़-पौधे या प्राणी की हानि (नाश=समारम्भ) से विरत रहते हैं'। (८)

"भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम एक ही समय भोजन करते हैं तथा रात्रिभोजन एवं विकाल (असमय के) भोजन से सर्वदा विरत रहते हैं'। (९)

"नच्चगीतवादितविसूकदस्सना पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (१०)

"मालागन्धविलेपनधारणमण्डनविभूसनट्ठाना पटिविरतो समणो गोतमो ति-इति वा हि....। (११)

"उच्चासयनमहासयना पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (१२)

[N.7] "जातरूपरजतपटिग्गहणा पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (१३)

"आमकधञ्ञपटिग्गहणा पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (१४)

"आमकमंसपटिग्गहणा पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (१५)

"इत्थिकुमारिकपटिग्गहणा पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (१६)

"दासिदासपटिग्गहणा पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (१७)

"अजेळकपटिग्गहणा पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (१८)

"कुक्कुटसूकरपटिग्गहणा पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (१९)

"हत्थिगवस्सवळवपटिग्गहणा पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (२०)

"खेत्तवत्थुपटिग्गहणा पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (२१)

"भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम नृत्य गीत एवं वादित्र (वाद्य) तथा स्त्रियों के अश्लील हाव-भाव देखने से सर्वदा विरत रहते हैं'। (१०)

"भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम माला-धारण, गन्धविलेपन (उबटन) विशेष वस्त्रादि के धारण, अलङ्कार आदि से शरीर को सजाने-सँवारने से विरत रहते हैं'। (११)

"भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम ऊँची एवं महान् (नानाप्रकार) से अलंकृत शय्याओं का त्याग कर उन से सर्वथा दूर रहते हैं'। (१२)

"भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम दूसरों द्वारा प्रदत्त चान्दी, सोना आदि स्वीकार करना छोड़ कर उन से सर्वथा दूर रहते हैं'। (१३)

"भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम दूसरों द्वारा प्रदत्त कच्चा अन्न (आटे आदि की भिक्षा) त्याग कर उसे स्वीकार करने से सर्वथा दूर रहते हैं'। (१४)

"भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम कच्चा मांस (की भिक्षा) ग्रहण करना छोड़ कर उससे सर्वथा दूर रहते हैं'। (१५)

"भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम स्त्री या कुमारियों को दान में लेना छोड़ कर उनसे सर्वथा दूर रहते हैं'। (१६)

"भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम दास या दासी को दान में लेना छोड़ कर उनसे सर्वथा दूर रहते हैं'। (१७)

"भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम बकरी, भेड़ आदि को दान में लेना छोड़ कर उनसे सर्वथा दूर रहते हैं।' (१८)

"भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम कुक्कुट (मुर्गा),शूकर आदि को दान में लेना छोड़ कर उनसे सर्वथा दूर रहते हैं।' (१९)

"भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम हाथी, घोड़ा, घोड़ी, गौ, आदि को दान में न ले कर उनसे सर्वथा विरत रहते हैं।' (२०)

"भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम खेत या इसी प्रकार के अन्य द्रव्य लेने से विरत रह कर उनसे सर्वथा दूर रहते हैं।' (२१)

''दूतेय्यपहिणगमनानुयोगा पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (२२)

''कयविक्कया पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (२३)

''तुलाकूटकंसकूटमानकूटा पटिविरतो समणो गोतमो ति—इति वा हि....। (२४)

''उक्कोटनवञ्चननिकतिसाचियोगा पटिविरतो समणो गोतमो ति-इति वा हि....। (२५)

''छेदनवधबन्धनविपरामोसआलोपसहसाकारा पटिविरतो समणो गोतमो' ति-इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

चूळसीलं निट्ठितं॥

(ख) मज्झिमसीलं

११. '' 'यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा[B.6] ते एवरूपं बीजगामभूतगामसमारम्भं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथिदं—मूलबीजं खन्धबीजं फळुबीजं अग्गबीजं बीजबीजमेव पञ्चमं; इति एवरूपा बीजगामभूतगामसमारम्भा पटिविरतो समणो गोतमो' ति—इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

१२. '''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा [R.6] ते एवरूपं सन्निधिकारपरिभोगं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथिदं-अन्नसन्निधिं पानसन्निधिं वत्थसन्निधिं यानसन्निधिं सयनसन्निधिं गन्धसन्निधिं आमिससन्निधिं इति वा इति, एवरूपा सन्निधिकारपरिभोगा पटिविरतो समणो गोतमो ति-इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

''भिक्षुओ! ....'श्रमण गौतम दौत्य कर्म के लिये जाने तथा तदर्थ किसी को भेजने से दूर रह कर उससे सर्वथा विरत रहते हैं।' (२२)

'' भिक्षुओ! ....' .... वस्तुओं के क्रय-विक्रय से दूर रहकर उनसे सर्वथा दूर रहते हैं।' (२३)

''भिक्षुओ! ....'श्रमण गौतम तौल, तराजू या बटखरे द्वारा ठगी करने से दूर रह कर इन कार्यों से सर्वथा विरत रहते हैं।' (२४)

''भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम उत्कोटन (दलाली) वञ्चन (ठगी), नकली सोना-चान्दी बनाना (निकतिसाचियोग) से दूर रह कर इन कार्यों से सर्वथा विरत रहते हैं।' (२५)

''भिक्षुओ! .... 'श्रमण गौतम दूसरे का हाथ पैर काटने, उसका वध करने, उसको बाँधने, लूटने-पीटने और डाका डालने से दूर रहते हुए उन से सर्वथा विरत रहते हैं।' (२६)

क्षुद्रशीलवर्णन समाप्त॥

(ख) मध्यमशील-११. ''अथवा, भिक्षुओ! कोई साधारणजन तथागत की यों प्रशंसा कर सकता है- 'जिस तरह अन्य श्रमण-ब्राह्मण दूसरों का दिया हुआ भोजन खा कर बीजसमूह (पेड़,पौधों) जैसे- मूलबीज, स्कन्धबीज, फलबीज, अग्रबीज, एवं बीजबीज; या प्राणियों के समूह को हानि पहुँचाने में लगे रह कर धर्मसाधना का ढोंग करते हैं; उस तरह श्रमण गौतम वृक्षसमूह या प्राणिसमूह को हानि पहुँचाते हुए धर्मसाधना नहीं करते।'

१२. ''अथवा, भिक्षुओ! कुछ श्रमण ब्राह्मण गृहस्थों द्वारा श्रद्धाप्रदत्त भोजन खाकर, अवशिष्ट समय में नानविध गृहस्थोपयोगी द्रव्यों (वस्तुओं) के संग्रह में लगे रहते हैं; जैसे अन्न, पान, वस्त्र, यान, शयन, गन्ध या ऐसी ही अन्य गृहस्थोपयोगी वस्तुएँ; श्रमण गौतम इन वस्तुओं के परिग्रह से सर्वथा विरत रहते हैं।

[N.8] १३. " 'यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपं विसूकदस्सनं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथिदं नच्चं गीतं वादितं पेक्खं अक्खानं पाणिस्सरं वेताळं कुम्भथूणं सोभनकं चण्डालं वंसं धोवनं हत्थियुद्धं महिंसयुद्धं उसभयुद्धं अजयुद्धं मेण्डयुद्धं कुक्कुटयुद्धं वट्टकयुद्धं दण्डयुद्धं मुट्ठियुद्धं निब्बुद्धं उय्योधिकं बलग्गं सेनाब्यूहं अनीकदस्सनं इति वा इति, एवरूपा विसूकदस्सना पटिविरतो समणो गोतमो' ति-इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

१४. " ' यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपं जूतप्पमादट्ठानानुयोगं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथिदं—अट्ठपदं दसपदं आकासं परिहारपथं [R.7] सन्तिकं खलिकं घटिकं सलाकहत्थं अक्खं पङ्गचीरं वङ्ककं मोक्खचिकं चिङ्गुलिकं [B.7] पत्ताळ्हकं रथकं धनुकं अक्खरिकं मनेसिकं यथावज्जं इति वा इति, एवरूपा जूतप्पमाद-ट्ठानानुयोगा पटिविरतो समणो गोतमो' ति-इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

१५. " 'यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपं उच्चासयनमहासयनं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथिदं-आसन्दिं पल्लङ्कं गोनकं चित्तकं पटिकं पटलिकं तूलिकं विकतिकं उद्दलोमिं एकन्तलोमिं कट्टिस्सं कोसेय्यं कुत्तकं हत्थत्थरं अस्सत्थरं रथत्थरं अजिनप्पवेणिं कदलिमिगपवरपच्चत्थरणं सउत्तरच्छदं उभतोलोहितकूपधानं इति वा इति, एवरूपा उच्चासयनमहासयना पटिविरतो समणो गोतमो' ति-इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

१६. " ' यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते

---

१३. "अथवा, भिक्षुओ! .... भोजन खाकर इस तरह के अनुचित दृश्य-दर्शन में लगे रहते हैं; जैसे नृत्य, गीत, वाद्य, नाटक, (रास) लीला, कथा-कहानी, गायन के साथ हाथ से ताली बजाना या ताल देना, घड़ा तथा बंशी बजाना, गोली खेलना, बाँस के डण्डों से खेलना, धोवन (?) हाथी, घोड़े, भैंसे, वृषभ (साँड़), बकरा, भेड़ा, मुर्गा, तीतर-बटेर, लाठी, मुष्टिका आदि की लड़ाई, मल्लयुद्ध, मार-पीट, सेना तथा युद्ध की चालें; श्रमण गौतम इन अनुचित दृश्य-दर्शनों से विरत रहते हैं।

१४. "अथवा, भिक्षुओ! .... भोजन कर जूआ (द्यूत) आदि क्रीड़ाओं के मद में उन्मत्त हो कर आचरण करते हैं; जैसे-अष्टपद (शतरञ्ज), दशपद, आकाश, परिहार, सन्तिक, खलिक, घटिक, शलाकहस्त, अक्ष, पङ्गचिर, वङ्कक, मोक्कचिक, चिङ्गुलिक, पत्राढक, रथ की दौड़, तीरन्दाजी, पहेली बुझाना, दूसरे की नकल उतारना (बहुरूपीय अभिनय), या ऐसे ही अन्य कार्य; श्रमण गौतम ऐसे कार्यों से दूर रहते हैं।

१५. "अथवा, भिक्षुओ! .... भोजन कर ऐसी विशिष्ट सजी-धजी शय्याओं, पलङ्ग आदि शयनासनों पर सोने में ही अपना समय-यापन करते रहते हैं; जैसे-आसन्दी (दीर्घ आसन), पर्यङ्क (पलंग) बड़े रोओं वाले आसन, चित्रित आसन, श्वेत कम्बल, फूलदार (चित्रकारीयुक्त) आसन, रजाई (तूलिक), गद्दा, सिंह-व्याघ्र आदि के चर्मों का आसन, झालर वाले आसन, कढ़ाई किये हुए आसन, लम्बी दरी, हाथी, घोड़ों के तथा रथ के साज, मृगचर्म से बने आसन, चन्दवे वाले आसन, दोनों तरफ मसनद लगे आसन; श्रमण गौतम ऐसी सजावट वाली शय्याओं एवं आसनों के उपयोग से विरत रहते हैं।

एवरूपं मण्डनविभूसनट्ठानानुयोगं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथिदं-उच्छादनं परिमद्दनं न्हापनं सम्बाहनं आदासं अञ्जनं मालागन्धविलेपनं मुखचुण्णं मुखलेपनं हत्थबन्धं सिखाबन्धं दण्डं नाळिकं असिं छत्तं चित्रुपाहनं उण्हीसं मणिं वालबीजनिं ओदातानि वत्थानि दीघदसानि इति वा इति, एवरूपा मण्डनविभूसनट्ठानानुयोगा पटिविरतो समणो गोतमो' ति—इति [N. 9] वा हि, भिक्खवे पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

१७. " ' यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपं तिरच्छानकथं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथिदं-राजकथं चोरकथं महामत्तकथं सेनाकथं भयकथं युद्धकथं अन्नकथं पानकथं वत्थकथं सयनकथं मालाकथं गन्धकथं ञातिकथं यानकथं गामकथं निगमकथं नगरकथं जनपदकथं इत्थिकथं पुरिसकथं सूरकथं विसिखाकथं [R. 8] कुम्भट्ठानकथं पुब्बपेतकथं नानत्तकथं लोकक्खायिकं समुद्दक्खायिकं इतिभवाभवकथं इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानकथाय पटिविरतो समणो गोतमो' ति—इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

१८." 'यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा [B. 8] ते एवरूपं विग्गाहिककथं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथिदं—न त्वं इमं धम्मविनयं आजानासि, अहं इमं धम्मविनयं आजानामि, किं त्वं इमं धम्मविनयं आजानिस्ससि, मिच्छा पटिपन्नो त्वमसि, अहमस्मि सम्मा पटिपन्नो, सहितं मे, असहितं ते, पुरेवचनीयं पच्छा अवच, पच्छावचीनयं पुरे अवच, अधिचिण्णं ते विपरावत्तं, आरोपितो ते वादो, निग्गहितो त्वमसि, चर वादप्पमोक्खाय, निब्बेठेहि वा सचे पहोसी ति इति वा इति, एवरूपाय विग्गाहिककथाय

१६. "अथवा, भिक्षुओ! .... खा कर अवशिष्ट समय में वे स्वयं को ऐसे नानविध अलङ्कारों से सजाने-सँवारने में ही लगे रहते हैं; जैसे-उत्सादन (उबटन लगवाना) परिमर्दन (शरीर मलवाना), नहलाना-धुलाना, संवाहन (शरीर को दबवाना), दर्पण देखना, आँखों में अञ्जन, माला, गन्ध (इत्र आदि), विलेपन, मुख पर चूर्ण (सुगन्धित पाउडर) लगाना, हाथों में आभूषण बाँधना, चोटी में पुष्प आदि गूँथना (सोने-चान्दी की) छड़ी, बेंत, तलवार, छाता, चित्र-विचित्र जूतियाँ, पगड़ियाँ, मणिजटित पंखे, तथा श्वेत वस्त्र जिन में लम्बी झालरें लगी हो; ऐसी शारीरिक साज-सज्जा से श्रमण गौतम दूर ही रहते हैं।

१७. अथवा, भिक्षुओ! .... खा कर निरर्थक पशु-पक्षियों की या ऐसी ही अन्य कथाएँ सुनने में अपना अवशिष्ट समय बिताते हैं; जैसे-पुराने राजाओं के इतिहास, चोरों की, महामात्यों की, सेनाओं की, भयोत्पादक, युद्ध की, अन्न-पान-वस्त्र-शयनासनों की, ग्राम-निगम-नगर-जनपदों की, स्त्री-पुरुषों की, शूर-वीरों की, चौराहे-पनघट की, भूत-प्रेत की, सांसारिक विविध घटनाओं की, समुद्रयात्राओं की तथा अन्य ऐसी ही इधर-उधर की जनश्रुतियों के आधार पर हुई-न हुई (भवाभवकथा) कथाओं का सुनना-सुनाना; श्रमण गौतम ऐसी निरर्थक कथाओं के सुनने-सुनाने से विरत रहते हैं।

१८. "अथवा, भिक्षुओ! .... खा कर अपना अवशिष्ट समय व्यर्थ के वितण्डावादों में लगाये रखते हैं; जैसे- कोई किसी से कहता है-'तूँ इस धर्मविनय (मत) को नहीं जानता, इसको तो मैं ही सम्यक्तया जानता हूँ, तूँ इस विषय में क्या जानेगा! क्योंकि तूँने इस विषय का अध्ययन ही नहीं किया', मैं इस विषय को समीचीनतया जानता हूँ, क्यों कि मैंने इसे भली भाँति पढ़ा है; 'मैं ही धर्मानुकूल कह रहा हूँ, तुम्हारा कथन धर्मानुकूल नहीं हैं;' 'तुम ने तो जो पहले कहना चाहिये था वह पहले ही कह डाला'; 'तुम्हारा मत

पटिविरतो समणो गोतमो' ति—इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

१९. " 'यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपं दूतेय्यपहिणगमनानुयोगं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथिदं—रञ्ञं राजमहामत्तानं खत्तियानं ब्राह्मणानं गहपतिकानं कुमारानं: इध गच्छ, अमुत्रागच्छ, इदं हर अमुत्र, इदं आहरा ति इति वा इति, एवरूपा दूतेय्यपहिणगमनानुयोगा पटिविरतो समणो गोतमो' ति—इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

२०. " 'यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते [N.10] कुहका च होन्ति लपका च नेमित्तिका च निप्पेसिका च लाभेन लाभं निजिगिंसितारो च इति वा इति, एवरूपा कुहनलपना पटिविरतो समणो गोतमो' ति—इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

मज्झिमसीलं निट्ठितं ।।

(ग) महासीलं

२१. " 'यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते [R.9] एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथिदं—अङ्गं निमित्तं [B.9] उप्पातं सुपिनं लक्खणं मूसिकच्छिन्नं अग्गिहोमं दब्बिहोमं थुसहोमं कणहोमं तण्डुलहोमं

तुम्हारे लिये ही विरुद्ध पड़ रहा है', 'तुम्हारी युक्ति खण्डित हो गयी। तुम पर अब यह आरोप लग रहा है','तुम तो पकड़ में आ गये। उस आरोप से मुक्त होने का प्रयास करो', 'यदि सामर्थ्य हो तो हमारे तर्कों से छूटने का उपाय सोचो'—इस इस तरह के अनेकविध वितण्डावादों में लगे रहते हैं; श्रमण गौतम ऐसे वितण्डावादों से स्वयं को दूर रखते हैं।

१९. "अथवा, भिक्षुओ! .... खा कर अपना अवशिष्ट समय दूतों के योग्य सन्देश लाने ले जाने आदि के लिये जाना—आना आदि कार्यों में लगाये रहते हैं। जैसे—राजाओं, राजमहामात्यों, क्षत्रियों, ब्राह्मणों, उच्च गृहस्थों या राजकुमारों के ऐसे सन्देश या आज्ञाएँ; जैसे—'यहाँ जाओ', 'वहाँ आओ', 'यह वहाँ ले जाओ', 'इसे ले आओ', आदि दूतकार्य; श्रमण गौतम ऐसे दूत—कर्मों से पूर्णतः विरत रहते हैं।

२०. "अथवा, भिक्षुओ! .... खा कर अवशिष्ट समय में समाज में पाषण्डी, धूर्त, बातूनी, वञ्चक का आचरण करते हैं; वे ज्यौतिष विद्या द्वारा भविष्य का मिथ्या व्याख्यान करते हैं; जादू—टोना करते रहते हैं, या छोटे लाभ से बड़े लाभ की प्राप्ति की आशा में निरन्तर लगे रहते हैं। परन्तु श्रमण गौतम इन पाषण्ड एवं धूर्तता की बातों से सदैव दूर रहते हैं।।

मध्यमशीलवर्णन समाप्त ।।

(ग) महाशील—२१. और अनेक श्रमण ब्राह्मण .... श्रद्धायुक्त भोजन खा कर इस प्रकार की हीन (निम्नस्तर की) विद्याओं (आजीविकाओं) से अपना जीवन—यापन करते हैं; जैसे— अङ्गविद्या, लक्षणविद्या, उत्पातविद्या, स्वप्नविद्या, निमित्तविद्या, मूषक (चूहे आदि) का विष उतारना, अग्निहोम, दर्वीहोम, तुषहोम, कणहोम, तण्डुलहोम, घृतहोम, तैलहोम, मुख मे घी लेकर पुनः कुल्ला करके होम, रक्त से होम, वास्तुविद्या (गृहनिर्माण), क्षेत्रविद्या (कृषिकर्म) अथवा क्षत्रविद्या (धनुष्, तलवार चलाना) सिखाना, शिवविद्या (अघोरमन्त्रों की साधना), भूतविद्या (भूत—प्रेत भगाने के मन्त्र), भूरि—विद्या (गड़े धन की खोज), सर्प—

सप्पिहोमं तेलहोमं मुखहोमं लोहितहोमं अङ्गविज्जा वत्थुविज्जा खेत्तविज्जा सिवविज्जा भूतविज्जा भूरिविज्जा अहिविज्जा विसविज्जा विच्छिकविज्जा मूसिकविज्जा सकुणविज्जा वायसविज्जा पक्कज्झानं सरपरित्ताणं मिगचक्कं इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो समणो गोतमो' ति—इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

२२. '' 'यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धदेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथिदं-मणिलक्खणं वत्थलक्खणं दण्डलक्खणं सत्थलक्खणं असिलक्खणं उसुलक्खणं धनुलक्खणं आवुधलक्खणं इत्थिलक्खणं पुरिसलक्खणं कुमारलक्खणं कुमारिलक्खणं दासलक्खणं दासिलक्खणं हत्थिलक्खणं अस्सलक्खणं महिंसलक्खणं उसभलक्खणं गोलक्खणं अजलक्खणं मेण्डलक्खणं कुक्कुटलक्खणं वट्टकलक्खणं गोधालक्खणं कण्णिकालक्खणं कच्छपलक्खणं मिगलक्खणं इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो समणो गोतमो' ति—इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

२३. '''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथिदं—रञ्ञं निय्यानं भविस्सति, रञ्ञं अनिय्यानं भविस्सति, अब्भन्तरानं रञ्ञं उपयानं भविस्सति, बाहिरानं [N.11, R.10] रञ्ञं अपयानं भविस्सति, बाहिरानं रञ्ञं उपयानं भविस्सति, अब्भन्तरानं रञ्ञं अपयानं भविस्सति, अब्भन्तरानं रञ्ञं जयो भविस्सति, बाहिरानं रञ्ञं पराजयो भविस्सति, बाहिरानं रञ्ञं जयो भविस्सति,अब्भन्तरानं रञ्ञं पराजयो भविस्सति, इति इमस्स जयो भविस्सति, इमस्स पराजयो भविस्सति इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो समणो गोतमो' ति—इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

विद्या (सर्पों के काटे विष उतारना), विषविद्या (अन्य विषों के प्रभाव को दूर करने की विद्या) वृश्चिकविद्या (विच्छू द्वारा काटे विष को दूर करना), मूषकविद्या (चूहों के काटने से चढ़े विष को दूर करना) शकुनिविद्या (पक्षियों की बोली आदि से कुशल अकुशल बताना), वायस विद्या (कौए की बोली सुनकर उससे शकुन अपशकुन बताना), शरपरित्राण (ऐसे मन्त्रों, को बताना जिनसे युद्धों में बाण आदि शरीर पर न गिरे) और मृगचक्र (खेतों को हानि पहुँचाने वाले मृगों आदि के भगाने के लिये मन्त्र–तन्त्र); इस प्रकार श्रमण गौतम स्वजीवनयापन हेतु इन हीन विद्याओं का सहारा नहीं लेते .... ।

२२. ''अथवा, भिक्षुओ! जैसे कितने ही श्रमण–ब्राह्मण .... ऐसी हीन विद्याओं के सहारे से अपना जीवनयापन करते है, जैसे—मणि रत्नों की जाँच, नानाप्रकार के वस्त्रों की जाँच नानाविध दण्ड, शस्त्र, तलवार, धनुष्, बाण, आयुध(अस्त्र), स्त्री–पुरुष, कुमार–कुमारी, दास–दासी, हाथी, घोड़े, भैंस, गाय, बैल, बकरी, भेड़, मुर्गा, गोह, छिपकली, कछुआ, मृग, आदि के लक्षणों को बताना। परन्तु श्रमण गौतम ऐसी हीन विद्याओं से दूर ही रहते हैं .... ।

२३. ''अथवा, भिक्षुओ! समाज के श्रद्धेय अनेक श्रमण–ब्राह्मण .... ऐसी हीन विद्याओं का सहारा लेते हुए अपना जीवनयापन करते हैं, जैसे– (आज) यहाँ के राजा बाहर निकलेंगे या नहीं निकलेंगे, बाहर का राजा आज यहाँ चढ़ाई करेगा या नहीं, यहाँ के राजा की जीत होगी या बाहर के राजा

[B.10] २४. '''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणो सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथिदं—चन्दग्गाहो भविस्सति, सुरियग्गाहो भविस्सति, नक्खत्तग्गाहो भविस्सति; चन्दिमसुरियानं पथगमनं भविस्सति, चन्दिमसुरियानं उप्पथगमनं भविस्सति, नक्खत्तानं पथगमनं भविस्सति, नक्खत्तानं उप्पथगमनं भविस्सति, उक्कापातो भविस्सति, दिसाडाहो भविस्सति, भूमिचालो भविस्सति, देवदुन्दुभि भविस्सति, चन्दिमसुरियनक्खत्तानं उग्गमनं ओगमनं सङ्किलेसं वोदानं भविस्सति, एवंविपाको चन्दग्गाहो भविस्सति, एवंविपाको सुरियग्गाहो भविस्सति, एवंविपाको नक्खत्तग्गाहो भविस्सति, एवंविपाकं चन्दिमसुरियानं पथगमनं भविस्सति, एवंविपाकं चन्दिमसुरियानं उप्पथगमनं भविस्सति, एवंविपाकं नक्खत्तानं पथगमनं भविस्सति, एवंविपाकं नक्खत्तानं उप्पथगमनं भविस्सति, एवंविपाको उक्कापातो भविस्सति, एवंविपाको दिसाडाहो भविस्सति, एवंविपाको भूमिचालो भविस्सति, एवंविपाको देवदुन्दुभि भविस्सति, एवंविपाको चन्दिमसुरियनक्खत्तानं [R.11] उग्गमनं ओगमनं सङ्किलेसं वोदानं भविस्सति, इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो समणो गोतमो' ति—इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

२५. '''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथिदं—सुवुट्ठिका भविस्सति, दुब्बुट्ठिका भविस्सति, सुभिक्खं भविस्सति, दुब्भिक्खं भविस्सति, खेमं भविस्सति, भयं भविस्सति, रोगो भविस्सति, आरोग्यं भविस्सति, मुद्दा, गणना, सङ्खानं, कावेय्यं, लोकायतं

की, यहाँ के राजा की हार होगी या बाहर के राजा की, या इस की जय होगी, इसकी पराजय; परन्तु श्रमण गौतम ऐसी हीन विद्याओं से जीविका प्राप्त करना सर्वथा उचित नहीं समझते ....।

२४. ''अथवा, भिक्षुओ! यहाँ अनेक समाज में प्रतिष्ठित श्रमण-ब्राह्मण ऐसी हीन निम्नस्तर की विद्याओं का सहारा लेकर अपना जीवनयापन करते हैं, जैसे—वे यह बताने का ढोंग करते है कि आज चन्द्रग्रहण होगा, आज सूर्यग्रहण होगा, आज अमुक नक्षत्रग्रहण .... चन्द्रमा और सूर्य अपने नियत मार्ग पर ही चलेंगे, चन्द्रमा और सूर्य अपने नियत मार्ग पर नहीं चलेंगे, नक्षत्र नियत मार्ग पर चलेंगे, नियत मार्ग पर नहीं चलेंगे, आज उल्कापात होगा, आज दिशादाह होगा, आज भूकम्प आयगा, आज केवल बादल गरजेंगे (वर्षा नहीं होगी), चन्द्रमा-सूर्य नक्षत्रों का उदय-अस्त सदोष होगा या शुद्ध होगा, चन्द्रग्रहण का यह फल होगा, सूर्यग्रहण .... नक्षत्रग्रहण का यह फल होगा, चन्द्रमा सूर्य एवं नक्षत्रों के अपने नियत मार्ग पर चलने से यह फल होगा .... नियत मार्ग पर न चलने से यह फल होगा, उल्कापात, दिशादाह, भूकम्प, सूखे बादलों की गड़गड़ाहट का यह फल होगा, चन्द्रमा सूर्य-नक्षत्रों के सदोष उदय अस्त का यह फल होगा, ... शुद्ध उदय अस्त का यह फल होगा, आदि; इस प्रकार की हीन विद्याओं से श्रमण गौतम अपना जीव निन्दित नहीं करते ....।

२५. ''अथवा भिक्षुओ! हमारे समाज में अनेक श्रमण-ब्राह्मण .... इस प्रकार की हीन विद्याओं के सहारे से भी अपना जीवनयापन करते हैं, जैसे— सुवृष्टि होगी या दुर्वृष्टि (अकाल), सुभिक्ष होगा या दुर्भिक्ष, वस्तुओं के क्रय-विक्रय में मन्दी होगी या मँहगाई बढ़ेगी, कोई भयानक घटना होगी या कुशल, क्षेम रहेगा जनता में रोग फैलेगा या वह नीरोग रहेगी। इसी प्रकार वे (श्रमणब्राह्मण) स्वजीवनयापन के हेतु

इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो समणो गोतमो' ति–इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

२६. '''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा [N.12] ते एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथिदं–आवाहनं [B.11] विवाहनं संवरणं विवरणं सङ्किरणं विकिरणं सुभगकरणं दुब्भगकरणं विरुद्धगब्भकरणं जिव्हानिबन्धनं हनुसंहननं हत्थाभिजप्पनं हनुजप्पनं कण्णजप्पनं आदासपञ्हं कुमारिकपञ्हं देवपञ्हं आदिच्चुपट्ठानं महतुपट्ठानं अब्भुज्जलनं सिरिव्हायनं इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो समणो गोतमो' ति–इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

२७. '''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा [R.12] ते एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथिदं–सन्तिकम्मं पणिधिकम्मं भूतकम्मं भूरिकम्मं वस्सकम्मं वोस्सकम्मं वत्थुकम्मं वत्थुपरिकम्मं आचमनं न्हापनं जुहनं वमनं विरेचनं उद्धविरेचनं अधोविरेचनं सीसविरेचनं कण्णतेलं नेत्ततप्पनं नत्थुकम्मं अञ्जनं पच्चञ्जनं सालाकियं सल्लकत्तियं दारकतिकिच्छा मूलभेसज्जानं अनुप्पदानं ओसधीनं पटिमोक्खो इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो समणो गोतमो' ति–इति वा हि, भिक्खवे, पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

''इदं खो तं, भिक्खवे, अप्पमत्तकं ओरमत्तकं सीलमत्तकं येन पुथुज्जनो तथागतस्स वण्णं वदमानो वदेय्य।

महासीलं निट्ठितं।।

मुद्रा (हस्त रेखा) गणना, सङ्ख्या (लाटरी का नम्बर) लौकिक मनोरञ्जन हेतु कवितावाचन आदि भी करते रहते है; परन्तु श्रमण गौतम ऐसी हीन विद्याओं का सहारा कथमपि नहीं लेते ....।

२६. ''अथवा, भिक्षुओ! यहाँ (समाज में विख्यात) अनेक श्रमण ब्राह्मण.... ऐसी हीन विद्याओं का आलम्बन करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं; जैसे—आवाह (सगाई) विवाह (पाणिग्रहण) विवाहहेतु उचित लग्न (समय) बताना, (तलाक) विवाहविच्छेद के लिये .... उधार या ऋण में दिये धन की पुनः प्राप्ति के लिये .... शरीर को अलंकृत करना, किसी को नष्ट करना, गर्भ में पुत्र या पुत्री का बताना, मन्त्रबल से वाणी को स्तब्ध कर देना, ठुड्डी को .... हाथ को .... कान को बहरा कर देना, दर्पण पर किसी की आत्मा को बुलाकर उससे प्रश्न करना, कुमारी या देववाहिनी स्त्री के शरीर में देवता को बुला कर उससे प्रश्न पूछना, सूर्य–पूजा, महाब्रह्मपूजा, मन्त्र के प्रभाव से मुख से अग्नि निकालना, गड़ा धन बताना आदि; परन्तु श्रमण गौतम .... पूर्ववत् ....।

२७. ''अथवा, भिक्षुओ! वैसे ही अनेक श्रमण ब्राह्मण .... हीनविद्याओं से स्वजीवन निर्वाह करते हैं; जैसे— शान्ति कर्म (मन्नत मानना), प्रणिधिकर्म (मन्नत पूरी करना), उन्नति के लिये मन्त्र का अभ्यास, धनवृद्धि के लिये मन्त्रजाप, मन्त्र–बल से पुरुष को नपुंसक या नपुंसक को पुरुष बनाना, इन्द्रजाल (जादू–टोना, बलिकर्म, आचमन, मन्त्राभिषेक (स्नानकार्य), अग्निहोम, औषधप्रयुक्त वमन–विरेचन, ऊर्ध्वविरेचन, अधोविरेचन, शिरोविरेचन आदि कार्यों में प्रयोग के लिये तैलनिर्माण, आँखों में .... नाक में तैल देकर

३. मिच्छादिट्ठिट्ठानानि

२८. "अत्थि, भिक्खवे, अञ्ञेव धम्मा गम्भीरा दुद्दसा दुरनुबोधा सन्ता पणीता अतक्कावचरा निपुणा पण्डितवेदनीया, ये तथागतो सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति, येहि तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं। कतमे च पन ते, भिक्खवे, धम्मा गम्भीरा दुद्दसा दुरनुबोधा सन्ता पणीता अतक्कावचरा निपुणा पण्डितवेदनीया, ये तथागतो सयं अभिञ्ञा [N.13] सच्छिकत्वा पवेदेति, येहि तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं?

(क) पुब्बन्तानुदिट्ठि अट्ठारसहि वत्थूहि

[B.12] २९. "सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा पुब्बन्तकप्पिका पुब्बन्तानुदिट्ठिनो, पुब्बन्तं [R.13] आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति अट्ठारसहि वत्थूहि।" ते च खो भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ पुब्बन्तकप्पिका पुब्बन्तानुदिट्ठिनो, पुब्बन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति अट्ठारसहि वत्थूहि?

(१) सस्सतवादस्स पठमं ठानं

३०. "सन्ति, भिक्खवे,एके समणब्राह्मणा सस्सतवादा सस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि। ते च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ सस्सतवादा सस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि?

३१. "इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणा वा आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति

छींक दिलाना, अञ्जन-प्रत्यञ्जन बनाना, शल्य-शालाक्य चिकित्सा, बालचिकित्सा, मूल-औषधियों का प्रयोग, तथा उनका अप्रयोग; ऐसी हीनविद्याओं से श्रमण गौतम अपने को दूर ही रखते हैं ....।

"भिक्षुओ! ये उपर्युक्त शील (आचरण में) बहुत छोटे और हीन है, जिन के कारण साधारणजन मेरी प्रशंसा के पुल बाँधते हैं।।

महाशील का व्याख्यान पूर्ण।।

३. मिथ्यादृष्टिस्थान (दार्शनिक मत)

२८."भिक्षुओ! इन के अतिरिक्त अन्य दूसरे धर्म भी हैं, जो गम्भीर, दुर्ज्ञेय, कठिनता से समझने योग्य, शान्त, सुन्दर, तर्क से न जानने योग्य, निपुण एवं पण्डितों द्वारा ही बोधगम्य है, जिन्हें तथागत स्वयं जानकर साक्षात् कर (उनका जनता को) उपदेश करते हैं और जिन्हें तथागत के यथार्थ गुणों का प्रदर्शक कहा जा सकता है। भिक्षुओ! कौन से हैं वे वैसे गम्भीर धर्म....?

(क) पूर्व (आदि) के अन्त (छोर) सम्बन्ध की १८ धारणाएँ–२९. "भिक्षुओ! कितने ही ऐसे श्रमण ब्राह्मण हैं जो अट्ठारह कारणों से पूर्वान्तकल्पिक(जगत् के आदि किनारे वाले) मत को मानने वाले हैं और वे इस आदि छोर के आधार पर अनेक व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग करते हैं। वे पूर्वान्तकल्पिक श्रमण-ब्राह्मण किस कारण और किस प्रमाण के बल पर उन अनेक व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग करते हैं?

(१) शाश्वतवाद में पहला कारण–३०. "भिक्षुओ! (उन में) कुछ श्रमण-ब्राह्मण अपने के शाश्वतवा. घोषित करते हुए, इन चार कारणों से आत्मा और लोक-दोनों को शाश्वत (अविनाशी) मानते हैं। वे किस कारण और किस प्रमाण के बल पर आत्मा और लोक-दोनों को शाश्वत मानते हैं?

३१. "यहाँ, भिक्षुओ! कोई श्रमण या ब्राह्मण संयम, वीर्य, अध्यवसा[illegible]प्पाद एवं स्थिर चित्त

यथासमाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतुपक्किलेसे अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथिदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि अनेकानि पि जातिसतानि अनेकानि पि जातिसहस्सानि अनेकानि पि जातिसतसहस्सानि— 'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति ॥[R.14]

"सो एवमाह—'सस्सतो अत्ता च लोको च वञ्झो कूटट्ठो एसिकट्ठायिट्ठितो; ते च सत्ता सन्धावन्ति संसरन्ति चवन्ति उपपज्जन्ति, अत्थि त्वेव सस्सतिसमं। तं किस्स हेतु ?[B.13] अहं हि आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकार- [N.14] मन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसामि यथासमाहिते चित्ते अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि, सेय्यथिदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि अनेकानि पि जातिसतानि अनेकानि पि जातिसहस्सानि अनेकानि पि जातिसतसहस्सानि : 'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवंमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि। इमिना पाहं एतं जानामि यथा सस्सतो अत्ता च लोको च वञ्झो कूटट्ठो एसिकट्ठायिट्ठितो; ते च सत्ता सन्धावन्ति संसरन्ति चवन्ति उपपज्जन्ति अत्थित्वेव सस्सतिसमं' ति। इदं, भिक्खवे, पठमं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा सस्सतवादा सस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति।

(२) सस्सतवादस्स दुतियं ठानं

३२. " दुतिये च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ सस्सतवादा सस्सतं

से ऐसी चित्तसमाधि प्राप्त कर लेता है कि उस समाधिप्राप्त चित्त में नाना प्रकार के जैसे—एक, दो, ५स....बीस ....सौ, एक हजार या एक लाख अथवा अनेकों लाख पूर्वजन्मों की स्मृति होने लगती हैं कि जैसे—मैं उस जन्म में इस नाम का, इस गोत्र का, इस वर्ण का, इस आहार का उपयोग करने वाला, इस प्रकार के सुख–दुःखों का अनुभव करने वाला और इतनी आयु तक जीवित रहने वाला था। मैं वहाँ से च्युत हो(मर)कर वहाँ (दूसरे जन्म में) उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मैं इस नाम का .... पूर्ववत् ... यहाँ उत्पन्न हुआ। इस प्रकार अनेक पूर्व जन्मों के सभी आकार प्रकारों का स्मरण करता है।

"वह (इसी के बल पर) यों कहता है—"आत्मा और लोक शाश्वत अपरिणामी कूटस्थ एवं अचल हैं। भले ही प्राणी चलते हैं, फिरते है, उत्पन्न होते और मर जाते है, परन्तु उनका अस्तित्व शाश्वत है। वह किस कारण? मैं भी संयम .... पूर्ववत् .... उत्पन्न हुआ हूँ .... अस्तित्व शाश्वत है। भिक्षुओ! यह पहला कारण है कि वे इस आत्मा और लोक को शाश्वत मानते हैं। (१)

अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथिदं—एकं पि संवट्टविवट्टं द्वे पि संवट्टविवट्टानि तीणि पि संवट्टविवट्टानि चत्तारि पि संवट्टविवट्टानि पञ्च पि संवट्टविवट्टानि दस पि संवट्टविवट्टानि : 'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्ख- [R.15] प्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्मो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। सो एवमाह—'सस्सतो [B.14] अत्ता च लोको च वञ्झो कूटट्ठो एसिकट्ठायिट्ठितो; ते च सत्ता सन्धावन्ति संसरन्ति चवन्ति उपपज्जन्ति अत्थित्वेव सस्सतिसं। तं किस्स हेतु? अहं हि आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसामि यथा- [N.15] समाहिते चित्ते अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि, सेय्यथिदं—एकं पि संवट्टविवट्टं द्वे पि संवट्टविवट्टानि तीणि पि संवट्टविवट्टानि चत्तारि पि संवट्टविवट्टानि पञ्च पि संवट्टविवट्टानि दस पि संवट्टविवट्टानि : अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटि- संवेदी एवमायुपरियन्तो सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगात्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि। इमिना पाहं एतं जानामि यथा सस्सतो अत्ता च लोको च वञ्झो कूटट्ठो एसिकट्ठायिट्ठितो, ते च सत्ता सन्धावन्ति संसरन्ति चवन्ति उपपज्जन्ति अत्थित्वेव सस्सतिसमं' ति। इदं, भिक्खवे, दुतियं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा सस्सतवादा सस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति।

(३) सस्सतवादस्स ततियं ठानं

३३. ''ततिये च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ सस्सतवादा सस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथिदं—दस पि संवट्टविवट्टानि वीसं पि संवट्टविवट्टानि तिंसं पि संवट्टविवट्टानि चत्तालीसं पि संवट्टविवट्टानि

---

(२) शाश्वतवाद में दूसरा कारण– ३२. ''फिर वे शाश्वतवादी श्रमण–ब्राह्मण किस अन्य कारण और प्रमाण के बल पर आत्मा तथा लोक को शाश्वत मानते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई श्रमण या ब्राह्मण संयम, वीर्य .... पूर्वजन्म को स्मरण करता हूँ, जैसे कि एक संवर्त–विवर्त, दो, तीन, चार, पाँच, दस संवर्त–विवर्त में मैं इस नाम का, इस गोत्र का .... वहाँ से च्युत होकर यहाँ उत्पन्न हुआ है। इस तरह मैं अपने अनेक पूर्वजन्मों के सभी आकार प्रकारों का स्मरण करता हूँ। इस कारण भी मैं जानता हूँ कि यह आत्मा और लोक शाश्वत अपरिणामी, कूटस्थ एवं अचल है। भिक्षुओ! यह दूसरा कारण है कि वे शाश्वतवादी इस आत्मा और लोक को शाश्वत मानते हैं।

३३. ''तीसरे वे .... किस कारण से आत्मा और लोक को नित्य मानते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई

'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं : तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एंववण्णो एवमाहारो एवंसुख-दुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। सो एवमाह—'सस्सतो अत्ता च लोको च वञ्झो कूटट्ठो एसिकट्ठायिट्ठितो; ते च सत्ता सन्धावन्ति संसरन्ति चवन्ति उपपज्जन्ति, [B.15, R.16] अत्थित्वेव सस्सतिसमं। तं किस्स हेतु? अहं हि आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसामि यथासमाहिते चित्ते अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि, सेय्यथिदं—दस पि संवट्टविवट्टानि वीसं पि संवट्टविवट्टानि तिंसं पि संवट्टविवट्टानि चत्तालीसं पि संवट्टविवट्टानि : अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं [N.16] पुब्बेनिवासं अनुस्सरामि। इमिना पाहं एतं जानामि यथा सस्सतो अत्ता च लोको च वञ्झो कूटट्ठो एसिकट्ठायिट्ठितो, ते च सत्ता सन्धावन्ति संसरन्ति चवन्ति उपपज्जन्ति, अत्थित्वेव सस्सतिसमं' ति। इदं, भिक्खवे, ततियं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा सस्सतवादा सस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति।

(४) सस्सतवादस्स चतुत्थं ठानं

३४. "चतुत्थे च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ सस्सतवादा संस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा तक्की होति वीमंसी। सो तक्कपरियाहतं वीमंसानुचरितं सयंपटिभानं एवमाह—'सस्सतो अत्ता च लोको च वञ्झो कूटट्ठो एसिकट्ठायिट्ठितो; ते च सत्ता सन्धावन्ति संसरन्ति चवन्ति उपपज्जन्ति, अत्थित्वेव

कोई श्रमण ब्राह्मण .... उस प्रकार की चित्तसमाधि को प्राप्त करता है जिस समाहित चित्त में वह अनेक प्रकार के अपने पूर्वजन्मों का स्मरण करता है; जैसै दश संवर्त–विवर्त, बीस....तीस.... चालीस संवर्त–विवर्तों में मैं इस नाम का था, इस गोत्र का था .... पूर्ववत् .... सो मैं वहाँ देहपात के बाद यहाँ उत्पन्न हुआ। अतः वह इसी प्रमाण के बल पर कहता है कि आत्मा और लोक दोनों नित्य हैं। वह किस लिये? इसलिये कि वह कहता है– मैं भी ....उस चित्त–समाधि को प्राप्त करता हूँ जिस समाहित चित्त में नाना प्रकार के पूर्वजन्मों की स्मृति हो जाती है। अतः यह सिद्ध होता है कि आत्मा और लोक दोनों शाश्वत अपरिणामी है। भिक्षुओ! यह तीसरा कारण है जिसके बल पर वे श्रमण–ब्राह्मण आत्मा और लोक को शाश्वत मानते हैं। (३)

(४) शाश्वतवाद का चतुर्थ कारण–३४. "चौथे, वे श्रमण–ब्राह्मण किस कारण .... से आत्मा और लोक को नित्य मानते है? भिक्षुओ! उनमें कोई श्रमण या ब्राह्मण तार्किक एवं मीमांसक होता है वह प्रत्येक बात को तर्क तथा मीमांसा के बल पर ही स्वयं समझता है, और दूसरे को भी समझाने का प्रयास करता है। वह अपने तर्कों से विचार कर बात को समझता हुआ ऐसा मानता है–'यह आत्मा और लोक शाश्वत .... नित्य ही है; क्योकि भले ही वे प्राणी जन्म ले लेकर इधर–उधर आते–जाते हों, संसरण करते हों, वहाँ

सस्सतिसमं' ति। इदं, भिक्खवे, चतुत्थं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा सस्सतवादा सस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति।

३५. ''इमे खो ते, भिक्खवे, समणब्राह्मणा सस्सतवादा सस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि। ये हि केचि, भिक्खवे, समणब्राह्मणा सस्सतवादा सस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति, सब्बे ते इमेहेव चतूहि वत्थूहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन; नत्थि इतो बहिद्धा।

३६. ''तयिदं, भिक्खवे, तथागतो पजानाति—'इमे दिट्ठिट्ठाना एवंगहिता एवंपरामट्ठा [B.16] एवङ्गतिका भवन्ति एवं अभिसम्पराया' ति। तं च तथागतो पजानाति, ततो च उत्तरितरं [R.17] पजानाति; तं च पजाननं न परामसति। एवं अपरामसतो चस्स पच्चत्तञ्ञेव निब्बुति विदिता, वेदनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा अनुपादा विमुत्तो, भिक्खवे, तथागतो।

३७. ''इमे खो ते, भिक्खवे, धम्मा गम्भीरा दुद्दसा दुरनुबोधा सन्ता पणीता अतक्कावचरा निपुणा पण्डितवेदनीया, ये तथागतो सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति, येहि तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं॥

निट्ठितो पठमभाणवारो॥

(५) एकच्चसस्सतवादस्स पठमं ठानं

[N.17] ३८. ''सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा एकच्चसस्सतिका एकच्चअसस्सतिका, एकच्चं सस्सतं एकच्चं असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि। ते च भोन्तो

से च्युत होते हों, उत्पन्न होते हो; परन्तु उनका अस्तित्व तो नित्य ही है।' भिक्षुओ! यह चौथा कारण है जिसके बल पर वे शाश्वतवादी आत्मा और लोक को नित्य मानते हैं। (४)

३५. ''इस तरह, भिक्षुओ! वे शाश्वतवादी इन चार कारणों से ही आत्मा और लोक को शाश्वत (अपरिणामी) मानते हैं। भिक्षुओ! जो भी शाश्वतवादी श्रमण–ब्राह्मण आत्मा और लोक को शाश्वत मानते हैं वे इन्हीं चार कारणों से या इनमें से किसी एक कारण से ही आत्मा और लोक को शाश्वत मानते हैं, इन चारों से अतिरिक्त किसी अन्य कारण से नहीं।

३६. ''परन्तु भिक्षुओ! तथागत इन (शाश्वतवादी) मतों के कारणों तथा उनके आकार–प्रकार से, उनकी गति और परिणाम से भलीभाँति परिचित हैं। इतना ही नहीं, इससे आगे भी बहुत कुछ जानते हैं, परन्तु उस ज्ञान का उन्हें यत्किञ्चित् भी अभिमान नहीं है। यों, अभिमान न करते हुए स्वयं प्रत्येक मुक्ति को जानते हैं, साथ ही वेदनाओं की उत्पत्ति (समुदय), अस्त, रस (आस्वाद), दोष और उनके निराकरण को सम्यक्तया जान कर तथागत वहाँ अनासक्त होकर उनसे छुटकारा पाये रहते हैं।

३७. ''भिक्षुओ! निष्कर्ष यह है कि ये धर्म वस्तुतः गम्भीर दुर्दर्शय, दुरनुबोध, शान्त, प्रणीत, तर्कों से अगम्य, निपुण एवं ज्ञानी (पण्डित) के ही समझने योग्य हैं। जिनको तथागत ने स्वयं जानकर साक्षात् कर जनता को बताया है। इसी ज्ञान के वर्णन से तथागत के यथार्थ गुणों का वर्णन (प्रशंसा) किया जा सकता है।

प्रथम भाणवार समाप्त।।

(५) अंशतः शाश्वतवाद का प्रथम कारण–३८ ''भिक्षुओ! यहाँ कुछ ऐसे भी श्रमण–ब्राह्मण हैं जो आत्मा

समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ एकच्चसस्सतिका एकच्चअसस्सतिका एकच्चं सस्सते एकच्चं असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि ?

३९. ''होति खो सो, भिक्खवे, समयो यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन अयं लोको संवट्टति। संवट्टमाने लोके येभुय्येन सत्ता आभस्सरसंवत्तनिका होन्ति। ते तत्थ होन्ति मनोमया पीतिभक्खा सयम्पभा अन्तलिक्खचरा सुभट्ठायिनो, चिरं दीघमद्धानं तिट्ठन्ति।

४०.''होति खो सो, भिक्खवे, समयो यं कदाचि करहचि दीघस्स अद्धुनो अच्चयेन अयं लोको विवट्टति। विवट्टमाने लोके सुञ्ञं ब्रह्मविमानं पातुभवति। अथ खो अञ्ञतरो सत्तो आयुक्खया वा पुञ्ञक्खया वा आभस्सरकाया चवित्वा सुञ्ञं ब्रह्मविमानं उपपज्जति। सो तत्थ होति मनोमयो पीतिभक्खो सयम्पभो अन्तलिक्खचरो सुभट्ठायी, चिरं [B.17] दीघमद्धानं तिट्ठति।

४१. ''तस्स तत्थ एककस्स दीघरत्तं निवुसितत्ता अनभिरति परितस्सना उपपज्जति— 'अहो वत अञ्ञे पि सत्ता इत्थत्तं आगच्छेय्युं' ति! अथ अञ्ञतरे पि सत्ता आयुक्खया वा पुञ्ञक्खया वा आभस्सरकाया चवित्वा ब्रह्मविमानं उपपज्जन्ति तस्स सत्तस्स सहब्यतं। [R.18] ते पि तत्थ होन्ति मनोमया पीतिभक्खा सयम्पभा अन्तलिक्खचरा सुभट्ठायिनो, चिरं दीघमद्धानं तिट्ठन्ति।

४२. ''तत्र, भिक्खवे, यो सो सत्तो पठमं उपपन्नो तस्स एवं होति—'अहमस्मि ब्रह्मा महाब्रह्मा अभिभू अनभिभूतो अञ्ञदत्थुदसो वसवत्ती इस्सरो कत्ता निम्माता सेट्ठो सजिता

और इस लोक को अंशतः शाश्वत और अंशतः अशाश्वत मानते हैं तथा वे अपनी इस मान्यता को चार कारणों से प्रमाणित करते हैं। भिक्षुओ! वे चार कारण कौन से हैं जिनके सहारे वे आत्मा और लोक को अंशतः शाश्वत एवं अंशतः अशाश्वत सिद्ध करते है?

३९. ''भिक्षुओ! बहुत काल बीतने पर एक समय ऐसा आता है कि जब कभी–कदाचित् इस लोक का संवर्त (प्रलय) हो जाता है। लोक के प्रलीन हो जाने पर भी आभास्वर ब्रह्मलोक के निवासियों (देवताओं) की स्थिति बनी रहती हैं वे वहाँ मनोमय, समाधिजन्य प्रीति (प्रमोद) में ही मुदित रहने वाले, प्रभावान् अन्तरिक्ष में ही इधर उधर विचरण करते, मनोरम वस्त्र एवं आभूषणों से युक्त रहते हुए चिर काल तक अपनी स्थिति बनाये रखते हैं।

४०. ''भिक्षुओ! फिर धीरे–धीरे एक समय ऐसा भी आता है जब इस लोक का विवर्त (पुनरुत्पाद) होता है। इस पुनरुत्पाद (सृष्टि) के प्रारम्भ में एक शून्य ब्रह्मविमान प्रादुर्भूत होता है। तब कोई देवता अपने आयुःक्षय या पुण्यक्षय के कारण, उस (उपर्युक्त) आभास्वर काय से च्युत होकर इस ब्रह्मविमान में उत्पन्न होता है। यहाँ भी वह अपनी मनोमय, समाधिजन्य प्रीति से ही मुदित रहने वाली स्थिति बनाये रखता है।

४१. ''परन्तु वह वहाँ बहुत समय तक एकाकी रहते–रहते उद्विग्न हो उठता है तथा उसे भय होने लगता है कि मेरे इस ब्रह्मविमान में कोई दूसरा प्राणी आ कर आधिपत्य न कर बैठे। तभी कुछ दूसरे प्राणी (देवता) भी .... उस आभास्वर लोक से च्युत होकर इस ब्रह्मविमान में उस देवता के साथ आकर रहने लगते हैं। वे भी वहाँ उसी की तरह मनोमय ... अन्तरिक्ष में भ्रमण करते हुए तथा मनोरम वस्त्र एवं आभूषणों से अलंकृत रहते हुए चिरकाल तक वास करते हैं।

४२. ''भिक्षुओ! उस ब्रह्मविमान में जो प्राणी (देवता) सर्वप्रथम आया था उसे (कभी) यह विचार

वसी पिता भूतभब्यानं। मया इमे सत्ता निम्मिता। तं किस्स हेतु? ममं हि पुब्बे एतदहोसि— अहो वत अञ्ञे पि सत्ता इत्थत्तं आगच्छेय्युं ति। इति ममं च मनोपणिधि इमे च सत्ता इत्थत्तं आगता' ति।

"ये पि ते सत्ता पच्छा उपपन्ना, तेसं पि एवं होति—'अयं खो भवं ब्रह्मा महाब्रह्मा [N.18] अभिभू अनभिभूतो अञ्ञदत्थुदसो वसवत्ती इस्सरो कत्ता निम्माता सेट्ठो सजिता वसी पिता भूतभब्यानं। इमिना मयं भोता ब्रह्मुना निम्मिता। तं किस्स हेतु? इमं हि मयं अद्दसाम इध पठमं उपपन्नं, मयं पनम्हा पच्छा उपपन्ना' ति।

४३. "तत्र, भिक्खवे, यो सो सत्तो पठमं उपपन्नो, सो दीघायुकतरो च होति वण्णवन्ततरो च महेसक्खतरो च; ये पन ते सत्ता पच्छा उपपन्ना ते अप्पायुकतरा च होन्ति दुब्बण्णतरा च अप्पेसक्खतरा च।

४४. "ठानं खो पनेतं, भिक्खवे, विज्जति यं अञ्ञतरो सत्तो तम्हा काया चवित्वा इत्थत्तं आगच्छति। इत्थत्तं आगतो समानो अगारस्मा अनगारियं पब्बजति। अगारस्मा अनगारियं [B.18] पब्बजितो समानो आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मा-मनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते तं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, ततो परं नानुस्सरति।

"सो एवमाह—'यो खो सो भवं ब्रह्मा महाब्रह्मा अभिभू अनभिभूतो अञ्ञदत्थुदसो वसवत्ती इस्सरो कत्ता निम्माता सेट्ठो सजिता वसी पिता भूतभब्यानं, येन मयं भोता ब्रह्मुना

होता है कि मैं ब्रह्मा, महाब्रह्मा, सर्वजेता (अभिभू), किसी से भी अपराजित, सर्वद्रष्टा (अञ्ञदाथुदसो) स्वयंवशवर्ती (स्वतन्त्र) ईश्वर, सब का कर्ता, निर्माता, दूसरों को वश में रखने वाला हूँ। मैंने ही वर्तमान तथा भविष्य में होने वाले प्राणियों की सृष्टि की है। वह कैसे? वह ऐसे कि मेरे ही मन में ऐसा सङ्कल्प हुआ था कि दूसरे जीव भी मेरी ही तरह यहाँ अस्तित्व में आयें। तो मेरे उस मनःप्रणिधान (शुभ सङ्कल्प) का ही यह प्रभाव था कि इन प्राणियों का यह अस्तित्व हो पाया।

अन्य जो प्राणी वहाँ बाद में उत्पन्न हुए तो उन के मन में भी कभी यह विचार उठा कि ये (सर्वप्रथम उत्पन्न) ब्रह्मा, महाब्रह्मा .... पूर्ववत् .... हैं। हम सभी इन महाब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किये हुए हैं। कारण कि हमने अपने उत्पन्न होते समय इनको पहले देखा, हम लोग तो इनके बाद उत्पन्न हुए हैं।

४३. "वहाँ, भिक्षुओ! जो प्राणी सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ वह अपेक्षाकृत दीर्घायु अधिक सुन्दर एवं शक्तिसम्पन्न था। और जो प्राणी बाद में उत्पन्न हुए वे उस की अपेक्षा अल्पायु, कम सुन्दर एवं अल्प-शक्तिसम्पन्न हैं।

४४. "भिक्षुओ! यह मानना उचित ही है कि कोई प्राणी वहाँ (आभास्वर लोक) से च्युत होकर यहाँ (ब्रह्मलोक में) उत्पन्न हो। वह वहाँ उत्पन्न होकर इस रूप में आकर घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाय। प्रव्रजित होता हुआ वह प्रयत्नपूर्वक बलपूर्वक अनुयोग (अभ्यास) एवं अप्रमादपूर्वक चित्त को भली भाँति प्रणिहित कर वैसी चित्तसमाधि तक पहुँच जाय कि उस चित्तसमाधि से अपने एक पूर्वजन्म का स्मरण कर ले, इससे पहले का नहीं।

"तब वह ऐसे कहता है—'जो वे महाब्रह्मा हैं .... जिनने हम लोगों का सर्जन (उत्पत्ति) किया है तो वह नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अपरिणामधर्मा (अविनासी)और अचल है, आगे भी वह शाश्वत ही रहेगा।

निम्मिता, सो निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो सस्सतिसमं तथेव ठस्सति। ये [R.19] पन मयं अहुम्हा तेन भोता ब्रह्मुना निम्मिता, ते मयं अनिच्चा अद्धुवा अप्पायुका चवनधम्मा इत्थत्तं आगता' ति। इदं खो, भिक्खवे, पठमं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा एकच्चसस्सतिका एकच्चअसस्सतिका एकच्चं सस्सतं एकच्चं असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति।

(६) एकच्चसस्सतवादस्स दुतियं ठानं

४५. ''दुतिये च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ एकच्चसस्सतिका एकच्चअसस्सतिका एकच्चं सस्सतं एकच्चं असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति? सन्ति, भिक्खवे, खिड्डापदोसिका नाम देवा। ते अतिवेलं हस्सखिड्डारतिधम्मसमापन्ना विहरन्ति। तेसं अतिवेलं हस्सखिड्डारतिधम्मसमापन्नानं विहरतं सति सम्मुस्सति। सतिया सम्मोसा ते देवा तम्हा काया चवन्ति।

४६. ''ठानं खो पनेतं, भिक्खवे, विज्जति यं अञ्ञतरो सत्तो तम्हा काया चवित्वा इत्थत्तं आगच्छति। इत्थत्तं आगतो समानो अगारस्मा अनगारियं पब्बजति। अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो समानो आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय [N.19] सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते तं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, ततो परं नानुस्सरति।

''सो एवमाह—'ये खो तो भोन्तो देवा न खिड्डापदोसिका ते न अतिवेलं हस्सखिड्डारति-धम्मसमापन्ना विहरन्ति। तेसं न अतिवेलं हस्सखिड्डारतिधम्मसमापन्नानं विहरतं सति न सम्मुस्सति। सतिया असम्मोसा ते देवा तम्हा काया न चवन्ति ; निच्चा धुवा सस्सता [B.19] अविपरिणामधम्मा सस्सतिसमं तथेव ठस्सन्ति। ये पन मयं अहुम्हा खिड्डापदोसिका ते मयं अतिवेलं हस्सखिड्डारतिधम्मसमापन्ना विहरिम्हा। तेसं नो अतिवेलं हस्सखिड्डा-[R.20]

परन्तु हम तो उस ब्रह्मा द्वारा निर्मित हैं अतः हम अनित्य हैं, अध्रुव एवं अल्पायु हैं, मरणशील हैं तभी तो दूसरे शरीर से इस शरीर में आये हैं।' भिक्षुओ! यह पहला कारण है, जिसके आधार पर ये अंशतः शाश्वतवादी अपना मत प्रमाणित मानते हैं। (१)

(६) अंशतः शाश्वतवाद का दूसरा कारण– ४५.''और दूसरे अंशतः शाश्वतवादी श्रमण–ब्राह्मण किस कारण से, किसके बल पर, किस आधार पर अपने इस अंशतः शाश्वतवाद–मत का सर्मथन करते हैं? भिक्षुओ! क्रीड़ाप्रदूषक नाम वाले कुछ देवता होते हैं। वे चिरकाल तक हास्य एवं रमणक्रीड़ा में लगे रहते हैं। उनके इस तरह चिरकाल तक हास्य एवं रतिक्रीड़ा में लगे रहने के कारण, उनकी स्मृति क्षीण हो जाती हैं। स्मृति क्षीण होने से वे उस शरीर से च्युत होकर यहाँ उत्पन्न होते हैं।

४६. ''भिक्षुओ! यह उचित है कि उनमें से कोई एक सत्त्व यहाँ आकर भी घर छोड़ बेघर हो प्रव्रजित जाता है। प्रव्रजित हो प्रयत्नपूर्वक ....पूर्ववत्.... ऐसी चित्तसमाधि प्राप्त करता है कि उस के सहारे वह स्वचित्त से अपना प्रथम पूर्वजन्म स्मरण कर लेता है, उस से पूर्व का नहीं।

''वह (ऐसा परिव्राजक) यों कहता है–'जो श्रद्धेय देवता क्रीड़ाप्रदूषक देवता नहीं होते वे चिरकाल तक हास्य,मनोविनोद एवं रतिक्रीड़ा में नहीं लगे रहते। उक्त रतिक्रीड़ा में न लगे रहने के कारण उनकी स्मृति विनष्ट नहीं होती। स्मृति विनष्ट न होने से वे उस शरीर से च्युत नहीं होते (–अतः वे नित्य

रतिधम्मसमापन्नानं विहरतं सति सम्मुस्सति। सतिया सम्मोसा एवं मयं तम्हा काया चुता, अनिच्चा अद्धुवा अप्पायुका चवनधम्मा इत्थत्तं आगता' ति। इदं, भिक्खवे, दुतियं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा एकच्चसस्सतिका एकच्चअसस्सतिका एकच्चं सस्सतं एकच्चं असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति।

(७) एकच्चसस्सतवादस्स ततियं ठानं

४७. ''ततिये च भोन्तो समणब्रह्मणा किमागम्म किमारब्भ एकच्चसस्सतिका एकच्च-असस्सतिका एकच्चं सस्सतं एकच्चं असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति? सन्ति, भिक्खवे, मनोपदोसिका नाम देवा। ते अतिवेलं अञ्ञमञ्ञं उपनिज्झायन्ति। ते अतिवेलं अञ्ञमञ्ञं उपनिज्झायन्ता अञ्ञमञ्ञम्हि चित्तानि पदूसेन्ति। ते अञ्ञमञ्ञं पदुट्ठचित्ता किलन्तकाया किलन्तचित्ता। ते देवा तम्हा काया चवन्ति।

४८.''ठानं खो पनेतं, भिक्खवे, विज्जति यं अञ्ञतरो सत्तो तम्हा काया चवित्वा इत्थत्तं आगच्छति। इत्थत्तं आगतो समानो अगारस्मा अनगारियं पब्बजति। अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो समानो आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकार-मन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते तं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, ततो परं नानुस्सरति।

''सो एवमाह—'ये खो ते भोन्तो देवा मनोपदोसिका ते नातिवेलं अञ्ञमञ्ञं उपनिज्झायन्ति। ते नातिवेलं अञ्ञमञ्ञं उपनिज्झायन्ता अञ्ञमञ्ञम्हि चित्तानि नप्पदूसेन्ति। [N.20] ते अञ्ञमञ्ञं अप्पदुट्ठचित्ता अकिलन्तकाया अकिलन्तचित्ता। ते देवा तम्हा काया न [R.21] चवन्ति, निच्चा धुवा सस्सता अविपरिणामधम्मा सस्सतिसमं तथेव ठस्सन्ति। ये पन

शाश्वत बने रहते हैं) और हम तो क्योंकि क्रीड़ाप्रदोष के कारण अपनी स्मृति विनष्ट कर चुके होते हैं, अतः हमारी उस काया से च्युति होने के कारण हम अनित्य, अध्रुव, विनाशी एवं विपरिणामधर्मा हैं। इसी लिये वहाँ से च्युत हो कर इस लोक में आ पहुँचे है'। भिक्षुओ! यह दूसरा कारण है जिसके आधार पर वे अंशतः शाश्वतवादी अपना उक्त (अंशतः शाश्वत, अंशतः अशाश्त)मत प्रमाणित करते हैं। (२)

(७) अंशतः शाश्वतवाद का तृतीय कारण—४७. ''अंशतः शाश्वतवाद के तीसरे किस कारण को आधार मान कर ....वे अंशतः शाश्वतवादी अपना मत प्रमाणित करते हैं? भिक्षुओ! मनःप्रदूषक नामक कुछ देवता हैं। वे बहुत काल तक परस्पर एक दूसरे के प्रति क्रोधपूर्वक देखते रहते हैं। इस कारण उनका चित्त कलुषित हो जाता है। चित्त के क्लुषित हो जाने से वे परस्पर द्वेष करने लगते हैं। यों चिरकाल तक परस्पर द्वेष करते हुए चित्त और शरीर से क्लान्त होते रहते हैं। समय आते ही वे देवता अपने उस देवशरीर से च्युत हो जाते हैं।

४८.''भिक्षुओ! यह मान लेना उचित ही होगा कि कोई प्राणी (देवता) उस काया से च्युत होकर इस लोक में आ जाय। इस लोक में आकर, कभी वह घर छोड़कर बेघर हो प्रव्रजित हो जाय। प्रव्रजित होकर प्रयत्नपूर्वक ....पूर्ववत्.... वह ऐसी चित्तसमाधि प्राप्त कर ले कि उसके सहारे से वह अपने प्रथम पूर्वजन्म का स्मरण कर सके, इससे पहले का नहीं।

''वह (समाहित देवता)यों कहे—'जो मनःप्रदूषक देवता नहीं हैं वे चिर काल तक दूसरों के प्रति क्रोधदृष्टि से नहीं देखते। इस तरह न देखने के कारण उनकी उस काया से च्युति नहीं होती। वे नित्य ध्रुव

मयं अहुम्हा मनोपदोसिका, ते मयं अतिवेलं अञ्ञमञ्ञं उपनिज्झायिम्हा। ते मयं अतिवेलं अञ्ञमञ्ञं उपनिज्झायन्ता अञ्ञमञ्ञम्हि चित्तानि पदूसिम्हा। ते मयं अञ्ञमञ्ञं पदुट्ठचित्ता किलन्तकाया किलन्तचित्ता। एवं मयं तम्हा काया चुता अनिच्चा अद्धुवा अप्पायुका चवनधम्मा इत्थत्तं आगता' ति। इदं, भिक्खवे, ततियं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समण-[B.20] ब्राह्मणा एकच्चसस्सतिका एकच्चअसस्सतिका एकच्चं सस्सतं एकच्चं असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति।

(८) एकच्चसस्सतवादस्स चतुत्थं ठानं

४९. "चतुत्थे च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ एकच्चसस्सतिका एकच्चअसस्सतिका एकच्चं सस्सतं एकच्चं असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा तक्की होति वीमंसी। सो तक्कपरियाहतं वीमंसानुचरितं सयम्पटिभानं एवमाह—'यं खो इदं वुच्चति चक्खुं इति पि सोतं इति पि घानं इति पि जिव्हा इति पि कायो इति पि अयं अत्ता अनिच्चो अद्धुवो असस्सतो विपरिणामधम्मो। यं च खो इदं वुच्चति चित्तं ति वा मनो ति वा विञ्ञाणं ति वा अयं अत्ता निच्चो धुवो सस्सतो अविपरिणामधम्मो सस्सतिसमं तथेव ठस्सती' ति। इदं, भिक्खवे, चतुत्थं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा एकच्चसस्सतिका एकच्चअसस्सतिका एकच्चं सस्सतं एकच्चं असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति।

५०. "इमेहि खो ते, भिक्खवे, समणब्राह्मणा एकच्चसस्सतिका एकच्चअसस्सतिका एकच्चं सस्सतं एकच्चं असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा एकच्चसस्सतिका एकच्चअसस्सतिका एकच्चं सस्सतं एकच्चं

अविनाशी रूप से वहीं रहते हैं। परन्तु हम (मनःप्रदूषक देवता) परस्पर क्रोधदृष्टि रखने के क्लान्तकाय एवं क्लान्तचित्त हो कर उस काया से च्युत हो जाते हैं। अतः हम अनित्य, अध्रुव, अशाश्वत एवं परिणामधर्मा हैं, इसी लिये उस काया से च्युत हो कर हम इस लोक में आ पहुँचे। भिक्षुओं यह तीसरा कारण हैं जिसके सहारे .... अंशतः शाश्वतवादी दार्शनिक अपना वह मत पुष्ट करते हैं। (३)

(८) अंशतः शाश्वतवाद का चतुर्थ कारण—४९. "कुछ प्रतिष्ठित श्रमण-ब्राह्मण किस चतुर्थ कारण को आधार मान कर .... आत्मा और लोक को अंशतः शाश्वत एवं अंशतः अशाश्वत मानते है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई श्रमण यां ब्राह्मण तर्क एवं मीमांसा करने वाले होते हैं। वे तर्क और मीमांसा के आधार पर ही प्रत्येक तत्त्व की परीक्षा करते हैं, वे (इस प्रसङ्ग में) यों तर्क करते हैं— जिसे चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा एवं काय कहा जाता है, वे सब अनित्य अध्रुव .... हैं, और जो चित्त मन या विज्ञान है वह नित्य ध्रुव .... है। भिक्षुओ! यह चतुर्थ कारण है जिसके सहारे से अंशतः शाश्वतवादी अपना मत स्थिर करते हैं। (४)

५०. "भिक्षुओ! इन्हीं चार कारणों से कुछ श्रमण ब्राह्मण आत्मा और लोक को अंशतः शाश्वत और अशाश्वत सिद्ध करते हैं। जो भी श्रमण ब्राह्मण आत्मा और लोक को अंशतः शाश्वत और अंशतः अशाश्वत सिद्ध करते हैं, वे इन्हीं उपर्युक्त चारों कारणों का या इन में से किसी एक का सहारा लेकर ही ऐसा कहते हैं, इसके अतिरिक्त किसी अन्य का नहीं।

५१. "परन्तु, भिक्षुओ! तथागत इन (अंशतः शाश्वत एवं अंशतः अशाश्वत) मतों के कारणों से, उन कारणों के आकार-प्रकार से, उनकी गति और परिणाम से भली भाँति परिचित है। इतना ही नहीं

असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति, सब्बे ते इमेहेव चतूहि वत्थूहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन; नत्थि इतो बहिद्धा।

५१. ''तयिदं, भिक्खवे, तथागतो पजानाति—'इमे दिट्ठिट्ठाना एवंगहिता एवं-[R.22] परामट्ठा एवंगतिका भवन्ति एवंअभिसम्पराया' ति। तं च तथागतो पजानाति, ततो च उत्तरितरं पजानाति, तं च पजाननं न परामसति, अपरामसतो चस्स पच्चत्तञ्ञेव निब्बुति विदिता [N.21] वेदनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा अनुपादाविमुत्तो, भिक्खवे, तथागतो।

५२.''इमे खो ते, भिक्खवे, धम्मा गम्भीरा दुद्दसा दुरनुबोधा सन्ता पणीता अतक्कावचरा [B.21] निपुणा पण्डितवेदनीया, ये तथागतो सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति, येहि तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं।

(१) अन्तानन्तवादस्स पठमं ठानं

५३. ''सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा अन्तानन्तिका, अन्तानन्तं लोकस्स पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि। ते च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ अन्तानन्तिका अन्तानन्तं लोकस्स पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि?

५४. ''इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते अन्तसञ्ञी लोकस्मिं विहरति।

''सो एवमाह—'अन्तवा अयं लोको परिवटुमो। तं किस्स हेतु? अहं हि आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसामि यथासमाहिते चित्ते अन्तसञ्ञी लोकस्मिं विहरामि। इमिना पाहं एतं जानामि—यथा

इससे आगे भी वे बहुत कुछ जानते हैं। परन्तु इसे जानते हुए भी उस ज्ञान का उन्हें कोई अभिमान नहीं है। यों वे अभिमान न करते हुए स्वयं प्रत्येक की मुक्ति जानते हैं, साथ ही वेदनाओं की उत्पत्ति (समुदय), अन्त, रस (आस्वाद), दोष और त्याग को सम्यक्तया जान कर निर्वाणरस का आनन्द लेते हुए उन में अनासक्त हो उनसे छुटकारा पाये रहते हैं।

५२. भिक्षुओ! निष्कर्ष यह है .... पूर्ववत् .... तथागत के यथार्थ गुणों (प्रशंसा) का वर्णन किया जा सकता है।

(१) अन्तानन्तवाद का प्रथम कारण—५३. ''भिक्षुओ! यहाँ कोई-कोई श्रमण-ब्राह्मण आत्मा के विषय में अन्तानन्तवाद मानने वाले है। वे इस लोक का अन्तत्व या अनन्तत्व इन चार कारणों से स्थापित करते हैं। वे किस प्रमाण के सहारे .... अन्तानन्तवाद की स्थापना करते हैं?

५४. यहाँ, भिक्षुओ! कोई श्रमण-ब्राह्मण प्रयत्न कर.... ऐसी चित्तसमाधि तक पहुँच जाता है कि जिसके सहारे से लोक को अन्त वाला समझ लेता है। वह इस विषय में यों कहता है-'यह लोक अन्त वाला है। इसमें परिवर्तन होता रहता है। वह कैसे? वह ऐसे कि मैने प्रयत्न करके .... ऐसी चित्तसमाधि प्राप्त की है कि जिसके बल पर मैं लोक को अन्तवाला समझता हूँ। इसी आधार पर मैं लोक को सान्त कहता हूँ।' भिक्षुओ! यह पहला कारण है जिसके सहारे अन्तानन्तवादी दार्शनिक इस लोक का सान्तानन्तत्व ख्यापित करते हैं। (१)

अन्तवा अयं लोको परिवटुमो' ति। इदं, भिक्खवे, पठमं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा अन्तानन्तिका अन्तानन्तं लोकस्स पञ्ञपेन्ति। (१)

(१०) अन्तानन्तवादस्स दुतियं ठानं

५५. ''दुतिये च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ अन्तानन्तिका अन्तानन्तं लोकस्स पञ्ञपेन्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति [R.23] यथासमाहिते चित्ते अनन्तसञ्ञी लोकस्मिं विहरति।

''सो एवमाह—'अनन्तो अयं लोको अपरियन्तो। ये ते समणब्राह्मणा एवमाहंसु—अन्तवा अयं लोको परिवटुमो ति तेसं मुसा। अनन्तो अयं लोको अपरियन्तो। तं किस्स हेतु? अहं हि आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मा-[N.22] मनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसामि यथासमाहिते चित्ते अनन्तसञ्ञी [B.22] लोकस्मिं विहरामि। इमिना पाहं एतं जानामि—यथा अनन्तो अयं लोको अपरियन्तो' ति। इदं, भिक्खवे, दुतियं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा अन्तानन्तिका अन्तानन्तं लोकस्स पञ्ञपेन्ति। (२)

(११) अन्तानन्तवादस्स ततियं ठानं

५६. ''ततिये च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ अन्तानन्तिका अन्तानन्तं लोकस्स पञ्ञपेन्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते उद्धमधो अन्तसञ्ञी लोकस्मिं विहरति, तिरियं अनन्तसञ्ञी।

''सो एवमाह—'अन्तवा च अयं लोको अनन्तो च। ये ते समणब्राह्मणा एवमाहंसु—अन्तवा अयं लोको परिवटुमो ति, तेसं मुसा। ये पि ते समणब्राह्मणा एवमाहंसु— अनन्तो

---

(१०) अन्तानन्तवाद का दूसरा कारण—५५.''इन अन्तानन्तवादी श्रमण ब्राह्मणों में से दूसरे कुछ दार्शनिक क्या मान कर .... लोक का अन्तानन्तत्व स्थापित करते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई श्रमण या ब्राह्मण प्रयत्न कर के .... चित्तसमाधि द्वारा लोक को अनन्त सिद्ध करता है।

''वह कहता है—'यह लोक अन्तवाला नहीं है; जो श्रमण या ब्राह्मण यह कहते हैं कि 'यह लोक सान्त या परिवर्तनशील होता है' तो उन का यह कहना मिथ्या है। क्योंकि यह तो अनन्त है अपरिवर्तनशील है। वह किस लिये? वह इस लिये कि प्रयत्नपूर्वक .... ऐसी चित्तसमाधि तक पहुँच गया हूँ कि जिसके सहारे मैने इस लोक का अनन्तत्व साक्षात् किया है। इससे मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि यह लोक अनन्त एवं अपरिवर्तनशील है। भिक्षुओ! यह दूसरा कारण है, जिसके सहारे ये अन्तानन्तवादी लोक का अन्तत्व या अनन्तत्व सिद्ध करते हैं। (२)

(११) अन्तानन्तवाद का तृतीय कारण—५६. ''और तीसरे प्रकार के वे श्रमण–ब्राह्मण किसका सहारा ले कर ... इस लोक का अन्तत्व या अनन्तत्व प्रज्ञप्त करते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई श्रमण–ब्राह्मण प्रयत्नपूर्वक .... ऐसी चित्तसमाधि तक पहुँच जाता है कि जिससे वह इस लोक के ऊपर और नीचे वाले भाग को अन्तवान् एवं तिर्यग्भाग (दिशाओं की तरफ) अनन्त समझता है।

वह ऐसा कहता है—'यह लोक सान्त और अनन्त दोनों है। जो लोक को सान्त बताते हैं, या

अयं लोको अपरियन्तो ति, तेसं पि मुसा। अन्तवा च अयं लोको अनन्तो च। तं किस्स हेतु? अहं हि आतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मामनसिकारन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसामि यथा समाहिते चित्ते उद्धमधो अन्तसञ्ञी लोकस्मिं विहरामि, तिरियं अनन्तसञ्ञी। इमिना पाहं एतं जानामि—यथा अन्तवा च अयं लोको अनन्तो चा' ति। इदं, भिक्खवे, ततियं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा अन्तानन्तिका अन्तानन्तं लोकस्स पञ्ञपेन्ति। (३)

(१२) अन्तानन्तवादस्स चतुत्थं ठानं

५७. ''चतुत्थे च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ अन्तानन्तिका अन्तानन्तं लोकस्स पञ्ञपेन्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा तक्की होति वीमंसी। सो तक्कपरियाहतं वीमंसानुचरितं सयंपटिभानं एवमाह—'नेवायं लोको अन्तवा न पनानन्तो। ये ते, समणब्राह्मणा एवमाहंसु—अन्तवा अयं लोको परिवटुमो ति, तेसं मुसा। ये पि ते समणब्राह्मणा [R.24] एवमाहंसु—अनन्तो अयं लोको अपरियन्तो ति, तेसं पि मुसा। ये पि ते समणब्राह्मणा [B.23] एवमाहंसु—अन्तवा च अयं लोको अनन्तो चा ति तेसं पि मुसा। नेवायं लोको [N.23] अन्तवा न पनानन्तो' ति। इदं, भिक्खवे, चतुत्थं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा अन्तानन्तिका अन्तानन्तं लोकस्स पञ्ञपेन्ति।

५८. ''इमेहि खो ते, भिक्खवे, समणब्राह्मणा अन्तानन्तिका अन्तानन्तं लोकस्स पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा अन्तानन्तिका अन्तानन्तं लोकस्स पञ्ञपेन्ति, सब्बे ते इमेहेव चतूहि वत्थूहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन; नत्थि इतो बहिद्धा।

अनन्त–दोनों ही मिथ्या प्रतिपादन करने वाले हैं। सो कैसे? वह ऐसे कि यह लोक यथार्थ में सान्त और अनन्त दोनों है; क्योंकि मुझे चेतःसमाधि में ऐसा भान होता है। अतः मैं समझता हूँ कि यह लोक सान्त और अनन्त–दोनों हैं।' भिक्षुओ! यह तीसरा कारण है कि जिससे वे अन्तानन्तवादी लोक का सान्तत्व और अनन्त्व सिद्ध करते हैं। (३)

(१२) अन्तानन्तवाद का चतुर्थ कारण–५७. ''फिर यहाँ चौथे प्रकार के वे अन्तानन्तवादी श्रमण–ब्राह्मण किस युक्ति का सहारा ले कर .... लोक का अन्तत्व या अनन्तत्व सिद्ध करते हैं? यहाँ भिक्षुओ! कोई श्रमण तार्किक या मीमांसक होता है। वह तर्क और मीमांसा के सहारे सभी बातों की समीक्षा करता है। वह तर्क एवं मीमांसा के आधार पर स्वयं साक्षात् कर यह कहता है–'यह लोक न तो सान्त है न अनन्त। यहाँ जो श्रमण–ब्राह्मण कोई इस लोक को सान्त बताता है, या कोई अनन्त बताता है, या फिर कोई सान्त और अनन्त–दोनों ही बताता है–ये तीनों ही दार्शनिक मिथ्यावादी हैं। यथार्थ में यह लोक न सान्त है न अनन्त? भिक्षुओ! यह चौथा कारण है जिसके सहारे उन में से कुछ अन्तानन्तवादी इस लोक को न सान्त बताते है न अनन्त। (४)

५८. ''भिक्षुओ! इन चार कारणों से अन्तानन्तवादी श्रमण–ब्राह्मण लोक का अन्तत्व या अनन्तत्व सिद्ध करते हैं। निष्कर्ष यह है कि जो भी दार्शनिक इस लोक का सान्तत्व या अनन्तत्व सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, वे इन्हीं उपर्युक्त चार कारणों से वैसा सिद्ध कर पाते हैं, इन के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से नहीं।

५९. ''तयिदं, भिक्खवे, तथागतो पजानाति—'इमे दिट्ठिट्ठाना एवङ्गहिता एवंपरामट्ठा एवङ्गतिका भवन्ति एवंअभिसम्पराया' ति। तं च तथागतो पजानाति, ततो च उत्तरितरं पजानाति, तं च पजाननं न परामसति, अपरामसतो चस्स पच्चत्तञ्ञेव निब्बुति विदिता। वेदनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा अनुपादाविमुत्तो, भिक्खवे, तथागतो।

६०.''इमे खो ते, भिक्खवे, धम्मा गम्भीरा दुद्दसा दुरनुबोधा सन्ता पणीता अतक्कावचरा निपुणा पण्डितवेदनीया, ये तथागतो सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति, येहि तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं।

(१३) अमराविक्खेपवादस्स पठमं ठानं

६१. ''सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा अमराविक्खेपिका, तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठा समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं चतूहि वत्थूहि। ते च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ अमराविक्खेपिका तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठा समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं चतूहि वत्थूहि ?

६२. ''इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा 'इदं कुसलं' ति यथाभूतं नप्पजानाति, 'इदं अकुसलं' ति यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स एवं होति—'अहं खो [R.25] इदं कुसलं ति यथाभूतं नप्पजानामि, इदं अकुसलं ति यथाभूतं नप्पजानामि। अहं चे [B. 24] खो पन इदं कुसलं ति यथाभूतं अप्पजानन्तो, इदं अकुसलं ति यथाभूतं अप्पजानन्तो, इदं कुसलं ति वा ब्याकरेय्यं इदं अकुसलं ति वा ब्याकरेय्यं, तं ममस्स मुसा। यं ममस्स मुसा सो ममस्स विघातो। यो ममस्स विघातो सो ममस्स अन्तरायो' ति। इति सो मुसावादभया

---

५९. ''भिक्षुओ! तथागत भी इन सब मतों के विषय में जानते हैं कि ये किन कारणों से .... परिणाम वाले हैं। तथागत इस विषय में सब कुछ जानते हैं, तथा इससे अधिक भी जानते हैं .... पूर्ववत् .... निरासक्त हो कर विहार करते हैं।

६०. वस्तुतः भिक्षुओ! ये धर्म गम्भीर .... तथागत के गुणों के वास्तविक प्रशंसा करते हैं।

(१३) अमराविक्षेपवाद का प्रथम स्थान—६१. ''भिक्षुओ! कुछ श्रमण–ब्राह्मण 'अमराविक्षेप' नामक चञ्चल मछलियों की तरह प्रश्न किये जाने पर कोई एक निश्चित उत्तर (वाग्विक्षेप) नहीं दे पाते कि उन्हें वाद में निगृहीत किया जा सके। वे किस कारण .... निश्चित उत्तर नहीं दे पाते और वे घबरा क्यों जाते हैं?

६२. ''यहाँ, भिक्षुओ! कोई श्रमण–ब्राह्मण 'यह कार्य उचित है'—ऐसा भली–भाँति (निश्चत रूप से) नहीं जानता, और न ही 'यह कार्य अनुचित है'—ऐसा निश्चित रूप से जानता है। उस समय उसको यह सन्देह होता है—'मैं यह उचित है—ऐसा निश्चित रूप से नहीं जानता , यह अनुचित है—ऐसा भी निश्चित रूप से नहीं जानता। ऐसी स्थिति में इन दोनों ही बातों को निश्चित रूप से न जानते हुए यदि— यह उचित है—ऐसा इकतरफा उत्तर दे दूँ, तो मेरा यह उत्तर मेरा असत्यवचन ही होगा। यह मेरा असत्यवचन (मृषावाद) मेरे नाश का कारण (=विघात) होगा। यह विघात ही अन्त में मेरे लिये मुक्तिमार्ग में विघ्न (अन्तराय) उत्पन्न करेगा। अतः यह असत्य भाषण के भय और घृणा (जुगुप्सा) के कारण न तो 'यह उचित है' ऐसा कह पाता है, न 'यह अनुचित है' ऐसा ही कह पाता है। इसी लिये जब तब वादी द्वारा प्रश्न किये जाने पर दुतरफा (उभयपक्ष) सा उत्तर देता है। वह कहता है—यह भी मैने नहीं कहा, वह भी

[N.24] मुसावादपरिजेगुच्छा नेविदं कुसलं ति ब्याकरोति, न पनिदं अकुसलं ति ब्याकरोति, तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठो समानो वाचाविक्खेपं आपज्जति अमराविक्खेपं—एवं ति पि मे नो; तथा ति पि मे नो; अञ्ञथा ति पि मे नो; नो ति पि मे नो; नो नो ति पि मे नो' ति। इदं, भिक्खवे, पठमं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा अमराविक्खेपिका तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठा समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं। (१)

(१४) अमराविक्खेपवादस्स दुतियं ठानं

६३. ''दुतिये च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ अमराविक्खेपिका तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठा समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं? इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा इदं कुसलं ति यथाभूतं नप्पजानाति, इदं अकुसलं ति यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स एवं होति—'अहं खो इदं कुसलं ति यथाभूतं नप्पजानामि, इदं अकुसलं ति यथाभूतं नप्पजानामि। अहं चे खो पन इदं कुसलं ति यथाभूतं अप्पजानन्तो, इदं अकुसलं ति यथाभूतं अप्पजानन्तो, इदं कुसलं ति वा ब्याकरेय्यं, इदं अकुसलं ति वा ब्याकरेय्यं, तत्थ मे अस्स छन्दो वा रागो वा दोसो वा पटिघो वा। यत्थ मे अस्स छन्दो वा रागो वा दोसो वा पटिघो वा तं ममस्स उपादानं। यं ममस्स उपादानं सो ममस्स विघातो। यो ममस्स विघातो सो [R.26] ममस्स अन्तरायो' ति। इति सो उपादानभया उपादनपरिजेगुच्छा नेविदं कुसलं ति ब्याकरोति न पनिदं अकुसलं ति ब्याकरोति, तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठो समानो वाचाविक्खेपं आपज्जति अमराविक्खेपं—'एवं ति पि मे नो; तथा ति पि मे नो; अञ्ञथा ति पि मे नो; नो ति पि मे नो; नो नो ति पि मे नो ति। इदं, भिक्खवे, दुतियं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके [B.25] समणब्राह्मणा अमराविक्खेपिका तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठा समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं। (२)'

(१५) अमराविक्खेपवादस्स ततियं ठानं

६४. ''ततिये च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ अमराविक्खेपिका तत्थ

मैने नहीं कहा, इसी के विपरीत 'है'—ऐसा भी मैने नहीं कहा। इसके विपरीत 'नहीं है'—ऐसा भी मैने नहीं कहा 'नहीं है'—ऐसा भी मैने नहीं कहा; 'है' ऐसा भी मैने नहीं कहा। भिक्षुओ! यह है प्रथम कारण जिसके आधार पर .... कुछ श्रमण ब्राह्मण कोई प्रश्न पूछे जाने पर घबराते हुए अमराविक्षेप की तरह चञ्चलतामय (दुतरफा) उत्तर देते हैं।

(१४) अमराविक्षेपवाद का द्वितीय कारण—६३. ''दूसरे कुछ चतुर श्रमण-ब्राह्मण किस आधार पर .... प्रश्न पूछे जाने पर अमराविक्षेप की तरह घबराते हुए द्व्यर्थक उत्तर क्यों दे जाते हैं? भिक्षुओ! कोई श्रमण-ब्राह्मण पूछे जाने पर 'यह उचित है' ऐसा निश्चित रूप से नहीं जानता .... पूर्ववत् .... न जानते हुए—'यह उचित है'—यदि मैं ऐसा उत्तर दे दूँ तो यह मेरा लोभ, राग, द्वेष या क्रोध ही कहलायगा। और ये लोभ, राग, आदि मेरे लिये संसार में आसक्ति (=उपादान) बनेंगे और यह आसक्ति ही एक दिन मेरे लिये संसार से मुक्ति में अन्तराय (विघ्न) बन बैठेगी। इस तरह इस आसक्ति के भय से आसक्ति के प्रति घृणा से न तो वह—'यह उचित है'—ऐसा कह पाता है, न 'यह अनुचित है' ऐसा ही। न 'ऐसा मैने नहीं कहा'—ऐसा ही कह पाता है, न 'ऐसा कहा'—ऐसा ही। अपितु कोई भी प्रश्न पूछे जाने पर चञ्चलता एवं उद्वेग (घबराहट)

तत्थ पञ्हं पुट्ठा समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं? इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा इदं कुसलं ति यथाभूतं नप्पजानाति, इदं अकुसलं ति यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स एवं होति—'अहं खो इदं कुसलं ति यथाभूतं नप्पजानामि, इदं अकुसलं ति यथाभूतं नप्पजानामि। अहं चे खो पन इदं कुसलं ति यथाभूतं अप्पजानन्तो, इदं अकुसलं ति यथाभूतं अप्पजानन्तो, इदं कुसलं ति वा ब्याकरेय्यं, इदं अकुसलं ति वा [N.25] ब्याकरेय्यं, सन्ति हि खो समणब्राह्मणा पण्डिता निपुणा कतपरप्पवादा वालवेधिरूपा ते भिन्दन्ता मञ्ञे चरन्ति पञ्ञागतेन दिट्ठिगतानि, ते मं तत्थ समनुयुञ्जेय्युं समनुगाहेय्युं समनुभासेय्युं। ये मं तत्थ समनुयुञ्जेय्युं समनुगाहेय्युं समनुभासेय्युं तेसाहं न सम्पायेय्यं। येसाहं न सम्पायेय्यं सो ममस्स विघातो। यो ममस्स विघातो सो ममस्स अन्तरायो' ति। इति सो अनुयोगभया अनुयोगपरिजेगुच्छा नेविदं कुसलं ति ब्याकरोति, न पनिदं अकुसलं ति ब्याकरोति, तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठो समानो वाचाविक्खेपं आपज्जति अमराविक्खेपं—'एवं ति पि मे नो; तथा ति पि मे नो; अञ्ञथा ति पि मे नो; नो ति पि मे नो; नो नो ति पि मे नो' ति। इदं, भिक्खवे, ततियं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा अमराविक्खेपिका तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठा [R.27] समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं। (३)

(१६) अमराविक्खेपवादस्स चतुत्थं ठानं

६५. ''चतुत्थे च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ अमराविक्खेपिका तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठा समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं? इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा मन्दो होति मोमूहो। सो मन्दत्ता मोमूहत्ता तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठो समानो वाचाविक्खेपं आपज्जति अमराविक्खेपं—'अत्थि परो लोको ति इति चे मं पुच्छसि, अत्थि परो लोको ति इति चे मे अस्स, अत्थि परो लोको ति इति ते नं ब्याकरेय्यं। एवं ति [B.26]

के कारण वह दुतरफा उत्तर दे बैठता है। भिक्षुओ! यह है दूसरा कारण जिसके कारण वह अमराविक्षेपवादी कुछ भी पूछे जाने पर उचित उत्तर देने में उपेक्षा (टालमटोल) करता रहता है।

(१५) अमराविक्षेपवाद का तृतीय कारण–६४.''तीसरे, कुछ श्रमण–ब्राह्मण किस आधार पर कोई भी प्रश्न पूछे जाने पर उचित उत्तर देने में घबरा जाते हैं? यहाँ भिक्षुओ! कोई श्रमण ब्राह्मण कैसा भी प्रश्न पूछे जाने पर 'यह उचित है' ऐसा भी .... पूर्ववत् .... व्याख्या न करूँ तो जो पण्डित, सभाचतुर शास्त्रार्थ में कुशल, कुशाग्रबुद्धि, दूसरे के श्रमण ब्राह्मण मत को अपने अकाट्य तर्कों से परास्त करने वाले हैं वे यदि मुझसे पूछें, तर्क करें, तद्विषयक बातें करें और मैं उनका उत्तर न दे सकूँ तो मेरा यह दुर्भाव (विघात) होगा। और अन्त में यह दुर्भाव ही मेरी मुक्ति का अन्तराय बन बैठेगा। इस प्रकार वह पूछे जाने या तर्क के भय से न तो यह कहता है कि 'यह उचित है' .... पूर्ववत् .... यों वह चञ्चलता और उद्वेग (घबराहट) को प्राप्त होता है। और ऐसा कह बैठता है कि 'मैं यह नहीं कहता कि यह उचित है, न मैं यही कहता हूँ कि यह उचित नहीं है'– आदि। भिक्षुओ! यह तीसरा कारण है कि कुछ श्रमण–ब्राह्मण प्रश्न का उचित उत्तर देने में अपनी चञ्चलता, उद्विग्नता या हिचकिचाहट प्रकट करते हैं। और कोई निश्चित उत्तर नहीं दे पाते।

(१६) अमराविक्षेपवाद का चतुर्थ कारण–६५. ''चौथे, कुछ चतुर श्रमण ब्राह्मण किस आधार पर .... चञ्चल उद्विग्न हो जाते हैं? यहाँ भिक्षुओ! कोई श्रमण या ब्राह्मण बुद्धि से मन्द अतएव व्यवहार में मूर्ख होता है। वह अपनी इस मन्दता और मूर्खता के कारण, किसी के द्वारा कुछ पूछने पर उद्विग्न हो कर यह

पि मे नो, तथा ति पि मे नो, अञ्ञथा ति पि मे नो, नो ति पि मे नो, नो नो ति पि मे नो ति। नत्थि परो लोको....पे०....अत्थि च नत्थि च परो लोको....पे०....नेवत्थि न नत्थि परो लोको....पे०....अत्थि सत्ता ओपपातिका....पे०....नत्थि सत्ता ओपपातिका....पे०.... अत्थि च नत्थि च सत्ता ओपपातिका....पे०....नेवत्थि न नत्थि सत्ता ओपपातिका....पे०....अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको....पे०....नत्थि सुकतदुक्कटानं फलं विपाको....पे०.... अत्थि च नत्थि च सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको....पे०.... नेवत्थि न नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको....पे०....होति तथागतो परं मरणा....पे०....न होति तथागतो परं मरणा ....पे०.... होति च न होति च तथागतो परं मरणा....पे०.... नेव होति न न होति तथागतो परं [N.26] मरणा ति इति चे मं पुच्छसि, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणाति, इति चे मे अस्स नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति इति ते नं ब्याकरेय्यं। एवं ति पि मे नो, तथा ति पि मे नो, अञ्ञथा ति पि मे नो, नो ति पि मे नो, नो नो ति पि मे नो' ति। इदं, भिक्खवे, चतुत्थं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा अमराविक्खेपिका तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठा समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं। (४)

[R.28] ६६. "इमेहि खो ते, भिक्खवे, समणब्राह्मणा अमराविक्खेपिका तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठा समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं चतूहि वत्थूहि। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा अमराविक्खेपिका तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठा समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं, सब्बे ते इमेहेव चतूहि वत्थूहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन; नत्थि इतो बहिद्धा....पे०.... तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं।

(१७) अधिच्चसमुप्पन्नवादस्स पठमं ठानं

६७. "सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा अधिच्चसमुप्पन्निका, अधिच्चसमुप्पन्नं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति द्वीहि वत्थूहि। ते च खो भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म [B.27] किमारब्भ अधिच्चसमुप्पन्निका अधिच्चसमुप्पन्नं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति द्वीहि वत्थूहि?

सोचता है कि यदि कोई मुझसे इस तरह पूछे क्या परलोक है? तब यदि मैं समझूँ कि परलोक है तो कि हाँ! परलोक है। मैं ऐसा भी नहीं कहता, इस के विपरीत भी नहीं कहता। न तो यह कहता हूँ– परलोक हैं, न यह कहता हूँ परलोक नहीं है। न यह कहता हूँ–परलोक है भी नहीं भी है। न यह कहता हूँ कि वह नहीं है, क्यों कि मुझे स्वयं निश्चय नहीं है कि वह नहीं ही है। इसी तरह किसी के पूछने पर यह कहता हूँ–अयोनिज (औपपातिक) सत्त्व हैं .... पूर्ववत् .... सुकृत या दुष्कृतों का कोई कर्मफलविपाक है .... पूर्ववत् .... तथागत इस देहपात के बाद रहते हैं .... पूर्ववत् .... न नहीं ही रहते हैं। भिक्षुओ! यह चौथा कारण है जिससे वे .... कोई निश्चित (स्थिर) बात नहीं कह पाते।

६६."भिक्षुओ! ऐसे चञ्चल या उद्विग्न श्रमण–ब्राह्मण प्रश्न पूछे जाने पर कोई निश्चित उत्तर इन उपर्युक्त चार कारणों से ही नहीं दे पाते। इसके अतिरिक्त किसी अन्य से नहीं ....। तथागत के गुणों की उचित प्रशंसा कर पाते हैं।

(१७) अधीत्यसमुत्पन्नवाद का प्रथम कारण–६७."भिक्षुओ! कुछ प्रसिद्ध श्रमण–ब्राह्मण अधीत्यसमुत्पन्निक

६८. ''सन्ति, भिक्खवे, असञ्ञसत्ता, नाम देवा। सञ्ञुप्पादा च पन ते देवा तम्हा काया चवन्ति। ठानं खो पनेतं, भिक्खवे, विज्जति यं अञ्ञतरो सत्तो तम्हा काया चवित्वा इत्थत्तं आगच्छति। इत्थत्तं आगतो समानो अगारस्मा अनगारियं पब्बजति। अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो समानो आपतप्पमन्वाय पधानमन्वाय अनुयोगमन्वाय अप्पमादमन्वाय सम्मा-मनसिकारमन्वाय तथारूपं चेतोसमाधिं फुसति यथासमाहिते चित्ते सञ्ञुप्पादं [R. 29] अनुस्सरति, ततो परं नानुस्सरति। सो एवमाह—'अधिच्चसमुप्पन्नो अत्ता च लोको च। तं किस्स हेतु? अहं हि पुब्बे नाहोसिं, सोम्हि एतरहि अहुत्वा सन्तताय परिणतो' ति। इदं, भिक्खवे, पठमं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा अधिच्चसमुप्पन्निका अधिच्चसमुप्पन्नं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति। (१)

(१८) अधिच्चसमुप्पन्नवादस्स दुतियं ठानं

६९. ''दुतिये च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ अधिच्चसमुप्पन्निका [N.27] अधिच्चसमुप्पन्नं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति? इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा तक्की होति वीमंसी। सो तक्कपरियाहतं वीमंसानुचरितं सयम्पटिभानं एवमाह—अधिच्चसमुप्पन्नो अत्ता च लोको चा' ति। इदं, भिक्खवे, दुतियं ठानं यं आगम्म यं आरब्भ एके समणब्राह्मणा अधिच्चसमुप्पन्निका अधिच्चसमुप्पन्नं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति। (२)

७०. ''इमेहि खो ते, भिक्खवे, समणब्राह्मणा अधिच्चसमुप्पन्निका अधिच्चसमुप्पन्नं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति द्वीहि वत्थूहि। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा अधिच्चसमुप्पन्निका अधिच्चसमुप्पन्नं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति, सब्बे ते इमेहेव द्वीहि

(सभी पदार्थों की अकारण उत्पत्तिमानने वाले) होते हैं वे दो कारणों से आत्मा और लोक की बिना किसी कारण के उत्पत्ति मानते हैं। वे श्रमण–ब्राह्मण किस आधार पर किन दो कारणों से आत्मा और लोक की अकारण–उत्पत्ति मानते हैं?

६८. ''भिक्षुओ! असंज्ञिसत्त्व (संज्ञारहित) नामक कुछ देवता होते हैं। संज्ञा उत्पन्न होने पर वे उस शरीर से च्युत हो जाते हैं। और भिक्षुओ! तब यह सम्भव ही है कि कोई वैसे सत्त्व उस काया से च्युत हो कर हमारे जैसे रूप में आ जाय। इस रूप में आ जाने पर कभी वह घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाय .... पूर्ववत् .... चित्तसमाधि प्राप्त कर अपने संज्ञोत्पाद से पूर्व जन्म का अनुस्मरण करे, उससे पहले का नहीं। तब वह कहता है–'यह आत्मा और लोक अकारण उत्पन्न है। वह किस कारण? इस कारण कि मैं भी तो पहले नहीं था, मैं ऐसा (पहले न) होकर भी उत्पन्न हो गया। इसी तरह समग्र लोक भी अकारण ही उत्पन्न हुआ समझ में आता है।' भिक्षुओ! यह पहला कारण है जिस के आधार पर वे लोक और आत्मा को अकारण उत्पन्न मानते हैं।

(१८) अधीत्य समुत्पन्नवाद का द्वितीय कारण–६९.''दूसरे, कुछ श्रमण–ब्राह्मण किस आधार पर....इस आत्मा और लोक को अधीत्यसमुत्पन्न मानते है? यहाँ भिक्षुओ! कोई श्रमण–ब्राह्मण तार्किक एवं मीमांसक होता है। वह तर्क या मीमांसा के बल पर किसी भी बात को स्वयं साक्षात् कर यों मानने लगता है–'यह आत्मा और लोक विना किसी कारण के उत्पन्न है। यह ,भिक्षुओ! दूसरा कारण है जिसके सहारे वह लोक और आत्मा की अकारण उत्पत्ति मानते हैं।

७०. ''सभी अकारणवादी दार्शनिक इन्हीं दो युक्तियों के सहारे से लोक और आत्मा की

[R.30] वत्थूहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन; नत्थि इतो बहिद्धा....पे०....येहि तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं।

७१. "इमेहि खो ते, भिक्खवे, समणब्राह्मणा पुब्बन्तकप्पिका पुब्बन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तं [B.28] आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति अट्ठारसहि वत्थूहि। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा पुब्बन्तकप्पिका पुब्बन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तमारब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति, सब्बे ते इमेहेव अट्ठारसहि वत्थूहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन; नत्थि इतो बहिद्धा।

७२. "तयिदं, भिक्खवे, तथागतो पजानाति—'इमे दिट्ठिट्ठाना एवङ्गहिता एवम्परामट्ठा एवङ्गतिका भवन्ति एवंअभिसम्पराया' ति। तं च तथागतो पजानाति, ततो च उत्तरितरं पजानाति, तं च पजाननं न परामसति, अपरामसतो चस्स पच्चत्तञ्ञेव निब्बुति विदिता। वेदनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा अनुपादाविमुत्तो, भिक्खवे, तथागतो।

७३. "इमे खो ते, भिक्खवे, धम्मा गम्भीरा दुद्दसा दुरनुबोधा सन्ता पणीता अतक्कावचरा निपुणा पण्डितवेदनीया, ये तथागतो सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति, येहि तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं॥

(ख) अपरन्तानुदिट्ठि चतुचत्तारीसाय वत्थूहि

[N.28] ७४. "सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा अपरन्तकप्पिका अपरन्तानुदिट्ठिनो, अपरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति चतुचत्तारीसाय वत्थूहि। ते च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ अपरन्तकप्पिका अपरन्तानुदिट्ठिनो अपरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति चतुचत्तारीसाय वत्थूहि?

(१-१६) उद्धमाघातनिका सञ्ञीवादा

[R.31] ७५. "सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका सञ्ञीवादा, उद्धमाघातनं

अकारण उत्पत्ति मानते हैं। इन दो के अतिरिक्त किसी अन्य से नहीं .... पूर्ववत् .... तथागत के गुणों की उचित प्रशंसा करते हैं।

७१. "भिक्षुओ! वे सभी श्रमण-ब्राह्मण जो पूर्वान्त कल्पिक हैं लोक और आत्मा को पूर्वान्त कल्पित करते हैं, वे सभी उपर्युक्त अट्ठारह कारणों के आधार पर अनेक व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग करते हैं (उनमें वास्तविकता नहीं है)। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई कारण नहीं है।

७२. "भिक्षुओ! तथागत जानते हैं—....पूर्ववत् .... तथागत अनासक्तिपूर्वक विहार करते हैं।

७३. "भिक्षुओ! ये धर्म गम्भीर, कठिनता से साक्षात् किये जाने योग्य .... तथागत के गुणों की उचित प्रशंसा की जा सकती है।

(ख) अपर अन्त के सम्बन्ध में ४४ धारणाएँ—७४. "भिक्षुओ! यहाँ कितने ही श्रमण-ब्राह्मण जो (अधोलिखित) ४४ कारणों के बल पर स्वयं को अपरान्तकल्पिक कहते हैं और ये लोक और आत्मा के अपर अन्त (दूसरा किनारा) वाले मत को मानते हैं। एवं वे इसी ऊपर अन्त के आधार पर अनेक व्यावहारिक (अधिमुक्ति पद) पदों का प्रयोग करते हैं। वे किस कारण (युक्ति) और किस प्रमाण के बल पर .... अपरान्त के आधार पर अनेक व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग करते हैं?

सञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति सोळसहि वत्थूहि। ते च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ उद्धमाघातनिका सञ्ञीवादा उद्धमाघातनं सञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति सोळसहि वत्थूहि ?

७६. "(१) 'रूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा सञ्ञी' ति नं पञ्ञपेन्ति; [B.29] (२) 'अरूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा सञ्ञी' ति नं पञ्ञपेन्ति; (३) 'रूपी च अरूपी च अत्ता होति....पे०.... (४) नेवरूपी नारूपी अत्ता होति.... (५) अन्तवा अत्ता होति.... (६) अनन्तवा अत्ता होति.... (७) अन्तवा च अनन्तवा च अत्ता होति.... (८) नेवन्तवा नानन्तवा अत्ता होति.... (९) एकत्तसञ्ञी अत्ता होति.... (१०) नानत्तसञ्ञी अत्ता होति.... (११) परित्तसञ्ञी अत्ता होति.... (१२) अप्पमाणसञ्ञी अत्ता होति.... (१३) एकन्तसुखी अत्ता होति.... (१४) एकन्तदुक्खी अत्ता होति.... (१५) सुखदुक्खी अत्ता होति.... (१६)अदुक्खमसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा सञ्ञी' ति नं पञ्ञपेन्ति।

७७. "इमेहि खो ते, भिक्खवे, समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका सञ्ञीवादा उद्धमाघातनं सञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति सोळसहि वत्थूहि। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा उद्धमाघातनिका सञ्ञीवादा उद्धमाघातनं सञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति, सब्बे ते इमेहेव सोळसहि वत्थूहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन; नत्थि इतो बहिद्धा....पे०.... येहि तथागतस्स यथाभुच्चं [R. 32] वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं।

निट्ठितो दुतियभाणवारो॥

(१७-२४) उद्धमाघातनिका असञ्ञीवादा

७८. "सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका असञ्ञीवादा, उद्धमाघातनं असञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति अट्ठहि वत्थूहि। ते च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म [N.29] किमारब्भ उद्धमाघातनिका असञ्ञीवादा उद्धमाघातनं असञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति अट्ठहि वत्थूहि ?

(१-१६) मरणानन्तर भी संज्ञी वाला आत्मा—७५. "भिक्षुओ! कितने श्रमण-ब्राह्मण 'मरण (देहपात) के बाद भी आत्मा संज्ञी (स्वप्रतीति वाला) रहता है'—ऐसा मानते हैं। वे १६ कारणों से ऐसा मानते है। जैसे—

७६. (१) मरणानन्तर भी आत्मा रूपवान्, नीरोग एवं आत्मा प्रतीति (=संज्ञा) के साथ रहता है— वे ऐसा मानते हैं। (२) अरूपवान् आत्मा .... (३) रूपसहित और रूपवान् आत्मा .... (४) न रूपवान् व रूपरहित आत्मा ....(५) अन्तवान् आत्मा ..... (६) न अन्तवान् आत्मा ....(७) आत्मा सान्त भी है अनन्त भी ....(८) आत्मा न सान्त है न अनन्त .... (९) एकात्मसंज्ञी आत्मा .... (१०) नानात्मसंज्ञी आत्मा .... (११) आत्मा परिमित-संज्ञा वाला ....(१२) आत्मा अपरिमित (अप्रमाण) संज्ञा वाला ....(१३) आत्मा सर्वथा एकान्त सुखी.... (१४) आत्मा सर्वथा एकान्तदुक्खी.... (१५) आत्मा सुखी भी होता है दुःखी भी ....(१६) आत्मा सुखदुःख से रहित, नीरोग एवं मरणानन्तर भी संज्ञी रहता है।

७७. "भिक्षुओ! वे मरणानन्तर संज्ञावादी श्रमण-ब्राह्मण मरणानन्तर भी आत्मा को स्वप्रतीतिमान् इन सोलह कारणों से मानते हैं। यों कहा जा सकता है कि जो भी दार्शनिक आत्मा को मरणानन्तर भी स्वप्रतीतिमान् मानते हैं वे इन्ही उपर्युक्त सोलह कारणों में से ही मान सकते हैं। या इनमें से किसी एक से, इनसे बाहर से नहीं.... जिनके कारण तथागत के गुणों की वास्तविक प्रशंसा की जा सकती है।

द्वितीय भाणवार समाप्त॥

७९. "(१) 'रूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा असञ्ञी' ति नं पञ्ञपेन्ति; (२)'अरूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा असञ्ञी' ति नं पञ्ञपेन्ति; (३) 'रूपी च अरूपी च अत्ता होति ....पे०.... (४) नेवरूपी नारूपी अत्ता होति.... (५) अन्तवा अत्ता होति.... (६) अनन्तवा अत्ता होति.... (७) अन्तवा च अनन्तवा च अत्ता होति.... (८) 'नेवन्तवा नानन्तवा अत्ता होति अरोगो परं मरणा असञ्ञी' ति नं पञ्ञपेन्ति।

[B.30] ८०. "इमेहि खो ते, भिक्खवे, समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका असञ्ञीवादा उद्धमाघातनं असञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति अट्ठहि वत्थूहि। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा उद्धमाघातनिका असञ्ञीवादा उद्धमाघातनं असञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति, सब्बे ते इमेहेव [R.33] अट्ठहि वत्थूहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन, नत्थि इतो बहिद्धा ....पे०.... येहि तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं।

(२५-३२) उद्धमाघातनिका नेवसञ्ञीनासञ्ञीवादा

८१. "सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका नेवसञ्ञीनासञ्ञीवादा, उद्धमाघातनं नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति अट्ठहि वत्थूहि। ते च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ उद्धमाघातनिका नेवसञ्ञीनासञ्ञीवादा उद्धमाघातनं नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति अट्ठहि वत्थूहि ?

८२. "(१) 'रूपी अत्ता होति अरोगो परं मरणा नेवसञ्ञीनासञ्ञी' ति नं पञ्ञपेन्ति; (२)'अरूपी अत्ता होति .... पे० .... (३) रूपी च अरूपी च अत्ता होति .... (४) नेवरूपी नारूपी अत्ता होति .... (५) अन्तवा अत्ता होति ....(६) अनन्तवा अत्ता होति .... (७)

(१७–२४) मरणानन्तर संज्ञीवाद–७८ . "भिक्षुओ! इनमें कुछ श्रमण–ब्राह्मण अन्यथा भी मरणानन्तर असंज्ञिवादी होते हैं, जो कि आठ कारणों से मरणानन्तर भी आत्मा में संज्ञा की परिकल्पना नहीं करते। वे किन आठ कारणों के बल पर ....ऐसा मानते है?

७९. "वे ऐसा इस तरह मानते हैं–(१) आत्मा मरणानन्तर भी रूपवान् नीरोग परन्तु असंज्ञी होता है; (२) आत्मा अरूपवान्...(३) आत्मा रूपवान भी अरूपवान् भी और नीरोग.... (४) आत्मा न रूपवान् और अरूपवान् परन्तु नीरोग.... (५) आत्मा सान्त.... (६) ....आत्मा अनन्तवान् ...(७) आत्मा न अन्तवान् न अनन्तवान् .... (८) आत्मा न ही अन्तवान् नहीं अनन्तवान् होता है, परन्तु नीरोग एवं संज्ञारहित होता है।

८०. "इन आठ कारणों से ये श्रमण–ब्रह्मण मरणानन्तर आत्मा में असंज्ञित्व की ख्यापना करते हैं। जो भी दार्शनिक आत्मा के मरणानन्तर असंज्ञिवादी हैं वे इन आठ कारणों से या इन में किसी एक कारण से ही। इन के अतिरिक्त किसी अन्य से नहीं। ....पूर्ववत् ....तथागत के गुणों का वास्तविक वर्णन कर सकते हैं।

(२५–३२) मरणानन्तर आत्मा के न संज्ञी न असंज्ञी की कल्पना– ८१."भिक्षुओ! इन आठ कारणों से कोई श्रमण ब्राह्मण मरणानन्तर आत्मा में न संज्ञा मानते हैं न असंज्ञा। वे श्रमण–ब्राह्मण किस आधार पर .... अपना मत स्थिर करते हैं?

८२.(१) "आत्मा इस देहपात के बाद रूपवान् एवं नीरोग होता है। परन्तु न उस में संज्ञा रहती है न असंज्ञा, (२) .... रूपवान् भी नही होता.... (३) रूपवान् अरूपवान् दोनों ...(४).... न रूपवान् होता

अन्तवा च अनन्तवा च अत्ता होति .... (८) नेवन्तवा नानन्तवा अत्ता होति, अरोगो परं मरणा नेवसञ्ञीनासञ्ञी' ति नं पञ्ञपेन्ति।

८३.'' इमेहि खो ते, भिक्खवे, समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका नेवसञ्ञीनासञ्ञीवादा उद्धमाघातनं नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति अट्ठहि वत्थूहि। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा उद्धमाघातनिका नेवसञ्ञीनासञ्ञीवादा उद्धमाघातनं नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति, सब्बे ते इमेहेव अट्ठहि वत्थूहि .... पे०.... येहि तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं।

(३३) पठमो उच्छेदवादो

८४. ''सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा उच्छेदवादा, सतो सत्तस्स [N.30, R.34] उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेन्ति सत्तहि वत्थूहि। ते च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म[B.31] किमारब्भ उच्छेदवादा सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेन्ति सत्तहि वत्थूहि ?

८५. ''इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा एवंवादी होति एवंदिट्ठि— 'यतो खो, भो, अयं अत्ता रूपी चातुमहाभूतिको मातापेत्तिकसम्भवो कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति न होति परं मरणा, एत्तावता खो, भो, अयं अत्ता सम्मा समुच्छिन्नो होती' ति। इत्थेके सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेन्ति। (१)

(३४) दुतियो उच्छेदवादो

८६. ''तमञ्ञो एवमाह— 'अत्थि खो, भो, एसो अत्ता यं त्वं वदेसि, नेसो नत्थी ति वदामि; नो च खो भो अयं अत्ता एत्तावता सम्मा समुच्छिन्नो होति। अत्थि खो, भो, अञ्ञो अत्ता दिब्बो रूपी कामावचरो कबळीकाराहारभक्खो। तं त्वं न जानासि न पस्ससि, तमहं जानामि पस्सामि। सो खो, भो, अत्ता यतो कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति न होति परं

है न अरूपवान् .... (५) .... अन्तवान् होता है ...(६) अन्तवान् नहीं होता .... (७) अन्तवान् अनन्तवान् दोनों होता है ...(८)न अन्तवान् न अनन्तवान् और नीरोग होता है, परन्तु न संज्ञावान् होता हैं न असंज्ञावान्।

८३.''भिक्षुओ! ये मरणानन्तर आत्मा के विषय में नैवसंज्ञि–नासंज्ञिवादी श्रमण ब्राह्मण इन आठ कारणों से मरणानन्तर आत्मा को नैव संज्ञी नासंज्ञी परिकल्पित करते है।.... वे सभी इन्हीं आठ कारणों से .... जिनसे तथागत के गुणों की प्रशंसा यथोचित की जा सकती है।.

(३३) **प्रथम उच्छेदवाद**–८४. ''भिक्षुओ! यहाँ कुछ ऐसे श्रमण–ब्राह्मण भी है जो इन सात कारणों से आत्मा (सत्त्व) का उच्छेद विनाश लोप हो जाता है–ऐसा मानते हैं। वे .... ऐसा क्यों मानते हैं?

८५.''भिक्षुओ! कोई श्रमण ब्राह्मण ऐसा मानते है–यथार्थ में यह आत्मा रूपवान् (चार महाभूतों से निर्मित)है और माता–पिता के संयोग से उत्पन्न है। इस लिये इस शरीर के नष्ट होते ही यह आत्मा भी उछिन्न, विनष्ट एवं लुप्त हो जाता है। क्यों कि यह आत्मा सर्वथा उच्छिन्न हो जाता है अतः वे इस सत्त्व (जीवात्मा) का उच्छेद, विनाश और लोप बताते हैं।

(३४) **द्वितीय उच्छेदवाद**– ८६.''उसे दूसरा मतवादी यों कहता है– 'तुम आत्मा का जैसा रूप बता रहे हो, मैं नहीं कहता कि वह वैसा नहीं होता; परन्तु वह आत्मा इस तरह से उच्छिन्न नहीं होता। अपितु वह आत्मा दूसरा ही है जो दिव्य, रूपवान्, कामावचर लोक में रह क' सुखोपभोग एवं भोजन करने वाला

मरणा, एत्तावता खो, भो, अयं अत्ता सम्मा समुच्छिन्नो होती' ति। इत्थेके सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेन्ति। (२)

(३५) ततियो उच्छेदवादो

८७. 'तमञ्ञो एवमाह— 'अत्थि खो, भो, एसो अत्ता यं त्वं वदेसि, नेसो नत्थी ति वदामि; नो च खो, भो, अयं अत्ता एत्तावता सम्मा समुच्छिन्नो होति। अत्थि खो, भो, अञ्ञो अत्ता दिब्बो रूपी मनोमयो सब्बङ्गपच्चङ्गी अहीनिन्द्रियो। तं त्वं न जानासि न पस्ससि, तमहं जानामि पस्सामि। सो खो, भो, अत्ता यतो कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति न होति परं मरणा, एत्तावता खो, भो, अयं अत्ता सम्मा समुच्छिन्नो होती' ति। इत्थेके सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेन्ति। (३)

(३६) चतुत्थो उच्छेदवादो

[B. 32]८८. ''तमञ्ञो एवमाह— 'अत्थि खो, भो, एसो अत्ता यं त्वं वदेसि, नेसो नत्थी ति वदामि; नो च खो, भो, अयं अत्ता एत्तावता सम्मा समुच्छिन्नो होति। अत्थि खो, भो, अञ्ञो [N. 31] अत्ता सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा अनन्तो आकासो ति आकासानञ्चायतनूपगो। तं त्वं न जानासि न पस्ससि, तमहं [R. 35] जानामि पस्सामि। सो खो, भो अत्ता यतो कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति न होति परं मरणा, एत्तावता खो, भो, अयं अत्ता सम्मा समुच्छिन्नो होती' ति। इत्थेके सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेन्ति। (४)

(३७) पञ्चमो उच्छेदवादो

८९. ''तमञ्ञो एवमाह— 'अत्थि खो, भो, एसो अत्ता यं त्वं वदेसि, नेसो नत्थी ति वदामि; नो च खो, भो, अयं अत्ता एत्तावता सम्मा समुच्छिन्नो होति। अत्थि खो, भो, अञ्ञो अत्ता सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म अनन्तं विञ्ञाणं ति विञ्ञाणञ्चायतनूपगो। तं

होता है। उसको तुम न जानते हो, न देखते हो। उसके विषय में मैं जानता हूँ, देखता हूँ। वह आत्मा शरीर के नष्ट होने पर उच्छिन्न और विनष्ट हो जाता है, मरणानन्तर नहीं रहता। इसलिये यह आत्मा सम्यक् समुच्छिन्न हो जाता है। इस प्रकार कुछ श्रमण-ब्राह्मण सत्त्वों का उच्छेद, विनाश और लोप बताते हैं।

(३५) तृतीय उच्छेदवाद– ८७. ''उससे दूसरा कहता है– जिसके विषय में तुम कहते हो कि वह आत्मा है, उसके विषय में मैं नहीं कहता कि वह आत्मा नहीं है, अपितु मेरा कहना है कि वह इस तरह कथमपि समुच्छिन्न नहीं होता। वह तो दूसरा ही आत्मा है जो दिव्य, रूपवान्, मनोमय, अङ्ग-प्रत्यङ्गयुक्त और अहीनेन्द्रिय है। उसे तुम नहीं जानते, मैं जानता हूँ। वह सत् आत्मा शरीर के नष्ट होने पर, उच्छिन्न.... हो जाता है.... आत्मा सम्यक् समुच्छिन्न हो जाता है। इस प्रकार कुछ श्रमण-ब्राह्मण सत्त्वों का उच्छेद-विनाश और लोप (विभव) बताते हैं।

(३६) चतुर्थ उच्छेदवाद–८८. ''उससे दूसरा कहता है– जिसके विषय में.... पूर्ववत्.... कथमपि समुच्छिन्न नहीं होता। वह तो दूसरा ही आत्मा है जो सभी तरह के रूप और संज्ञाओं से भिन्न, प्रतिहिंसा (पटिघा) की संज्ञाओं के अस्त हो जाने से, नाना शरीरों की संज्ञाओं को मन में न करने से अनन्त आकाश की तरह अनन्ताकाश शरीर वाला है। उसे तुम नहीं जानते.... लोप (विभव) बताते हैं।

(३७) पञ्चम उच्छेदवाद– ८९. उस से दूसरा (दार्शनिक) कहता है– जिस आत्मा के विषय में....पूर्ववत्....

त्वं जानासि न पस्ससि, तमहं जानामि पस्सामि। सो खो, भो, अत्ता यतो कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति न होति परं मरणा, एत्तावता खो, भो, अयं अत्ता सम्मा समुच्छिन्नो होती' ति। इत्थेके सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेन्ति। (५)

(३८) छट्ठो उच्छेदवादो

९०. ''तमञ्ञो एवमाह— 'अत्थि खो, भो, सो अत्ता यं त्वं वदेसि, नेसो नत्थी ति वदामि; नो च खो, भो, अयं अत्ता एत्तावता सम्मा समुच्छिन्नो होति। अत्थि खो, भो, अञ्ञो अत्ता सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म नत्थि किञ्ची ति आकिञ्चञ्ञायतनूपगो। तं त्वं न जानासि न पस्ससि, तमहं जानामि पस्सामि। सो खो, भो, अत्ता यतो कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति न होति परं मरणा, एत्तावता खो, भो, अयं अत्ता सम्मा समुच्छिन्नो होती' ति। इत्थेके सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेन्ति। (६)

(३९) सत्तमो उच्छेदवादो

९१. ''तमञ्ञो एवमाह— 'अत्थि खो, भो, एसो अत्ता यं त्वं वदेसि, नेसो नत्थी ति वदामि; नो च खो, भो, अयं अत्ता एत्तावता सम्मा समुच्छिन्नो होति। अत्थि खो, भो, अञ्ञो अत्ता सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म सन्तमेतं पणीतमेतं ति नेवसञ्ञाना-[B.33] सञ्ञायतनूपगो। तं त्वं न जानासि न पस्ससि, तमहं जानामि पस्सामि। सो खो, भो, अत्ता यतो कायस्स भेदा उच्छिज्जति विनस्सति न होति परं मरणा, एत्तावता खो, भो, अयं अत्ता [N. 32] सम्मा समुच्छिन्नो होती' ति। इत्थेके सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेन्ति। (७)

९२. ''इमेहि खो ते, भिक्खवे, समणब्राह्मणा उच्छेदवादा सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेन्ति सत्तहि वत्थूहि। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा [R.36] उच्छेदवादा सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेन्ति, सब्बे ते इमेहेव सत्तहि वत्थूहि....पे०....येहि तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं।

(४०) पठमो दिट्ठधम्मनिब्बानवादो

९३. ''सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा दिट्ठधम्मनिब्बानवादा, सतो सत्तस्स

वह तो दूसरा ही आत्मा है जो; आकाशानन्त्यायतन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर अनन्त विज्ञान शरीर वाला है। उसे तुम नहीं जानते.... पूर्ववत्.... लोप बताते हैं।

(३८) छठा उच्छेदवाद– ९०. ''उस से भी दूसरा (दार्शनिक) कहता है– जिस आत्मा के विषय में.... पूर्ववत्..... वह तो दूसरा ही आत्मा है जो विज्ञानानन्त्यातन का भी सर्वथा अतिक्रमण कर आकिञ्चन्यायतन शरीर वाला है। उसे तुम नहीं जानते.... पूर्ववत्.... लोप बताते हैं।

(३९) सातवाँ उच्छेदवाद– ९१. ''उस से भी दूसरा (दार्शनिक) कहता है– जिस आत्मा के विषय में पूर्ववत् वह तो दूसरा ही आत्मा है जो आकिञ्चन्यायतन का भी समतिक्रमण कर शान्त और प्रणीत नैवसंज्ञानासंज्ञायतन शरीर वाला होता है। उसे तुम नहीं जानते पूर्ववत् लोप बताते हैं।

९२. ''भिक्षुओ! इन सात कारणों से ये आत्मा के उच्छेदवादी दार्शनिक आत्मा का उच्छेद, विनाश और लोप बताते हैं। भिक्षुओं! जो भी दार्शनिक....तथागत गुणों की स्वयं उचित प्रशंसा करेंगे।

(४०) प्रथम दृष्ट धर्म-(इसी जन्म में) निर्वाण– ९३. ''भिक्षुओ! कुछ श्रमण–ब्राह्मण दृष्टधर्म निर्वाणवादी हैं

परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पञ्ञपेन्ति पञ्चहि वत्थूहि। ते च भोन्तो समणब्राह्मणा किमागम्म किमारब्भ दिट्ठधम्मनिब्बानवादा सतो सत्तस्स परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पञ्ञपेन्ति पञ्चहि वत्थूहि?

९४. ''इध, भिक्खवे, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा एवंवादी होति एवंदिट्ठि— 'यतो खो, भो, अयं अत्ता पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेति, एत्तावता खो, भो, अयं अत्ता परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पत्तो होती' ति। इत्थेके सतो सत्तस्स परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पञ्ञपेन्ति। (१)

(४१) दुतियो दिट्ठधम्मनिब्बानवादो

९५. ''तमञ्ञो एवमाह— 'अत्थि खो, भो, एसो अत्ता यं त्वं वदेसि, नेसो नत्थी ति वदामि; नो च खो, भो, अयं अत्ता एत्तावता परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पत्तो होति। तं किस्स हेतु? कामा हि, भो, अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा, तेसं विपरिणामञ्ञथाभावा उप्पज्जन्ति सोक-[R. 37] परिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा। यतो खो, भो, अयं अत्ता विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति, [B. 34] एत्तावता खो, भो, अयं अत्ता परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पत्तो होती' ति। इत्थेके सतो सत्तस्स परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पञ्ञपेन्ति। (२)

(४२) ततियो दिट्ठधम्मनिब्बानवादो

९६. ''तमञ्ञो एवमाह— 'अत्थि खो, भो, एसो अत्ता यं त्वं वदेसि, नेसो नत्थी ति वदामि; नो च खो, भो, अयं अत्ता एत्तावता परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पत्तो होति। तं किस्स हेतु? यदेव तत्थ वितक्कितं विचारितं, एतेनेतं ओळारिकं अक्खायति। यतो खो, भो, अयं अत्ता [N. 33] वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं

जो पाँच कारणों से इसी जन्म में आत्मा का निर्वाण मानते हैं। वे श्रमण ब्राह्मण पाँच कारणों से किस आधार पर... दृष्टधर्मनिर्वाणवादी हैं?

९४. ''भिक्षुओ! यहाँ कोई श्रमण–ब्राह्मण ऐसा कहता है और ऐसे ही विचार रखता है; क्योंकि यह आत्मा पाँच काम–गुणों (कामभोगों) में लग कर सांसारिक सुख भोगता है। इसलिये यह इसी संसार में आँखों के देखते–देखते निर्वाण पा लेता है। अतः, वे दार्शनिक ऐसा बताते हैं कि सत्त्व (आत्मा) इसी जन्म देखते–देखते निर्वाण पा लेता है।

(४१) द्वितीय दृष्टधर्मनिर्वाणवाद– ९५. ''उस से दूसरा दार्शनिक कहता है– 'जिस आत्मा की बात तुम कह रहे हो, वह ऐसा नहीं है– यह तो मैं नहीं कहता, अपितु वह आत्मा इसी कारण इसी जन्म में निर्वाण नहीं पा सकता। कारण? कि वे पाँच कामगुण जिन्हें वह आजीवन भोगता है, वे अनित्य हैं, दुःखमय हैं, विनाशी हैं। उनके विनाशी और बदलते रहने के स्वभाव के कारण परिणामस्वरूप शोक परिदेव दुःख दौर्मनस्य आदि उत्पन्न होते रहते हैं। उनसे दुःखी, उद्विग्न होकर उन कामगुणों का एवं उनसे उत्पन्न पापधर्मों का परित्याग कर वितर्क विचार सहित विवेकजन्य प्रीति सुखमय प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। इस कारण यह आत्मा इसी जन्म में निर्वाण पा लेता है। (कामगुणों के उपभोगमात्र से नहीं)। ऐसा कुछ दार्शनिक मानते हैं।

(४२) तृतीय दृष्टधर्मनिर्वाणवाद– ९६. ''उस मतवादी को दूसरा दार्शनिक कहता है– 'जिस आत्मा.... पूर्ववत्.... कारण कि वितर्क और विचार करने से जो बड़ा स्थूल (उदार) ज्ञात होता है वह आत्मा वितर्क

समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति, एत्तावता खो, भो, अयं अत्ता परम-दिट्ठधम्मनिब्बानं पत्तो होती' ति। इत्थेके सतो सत्तस्स परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पञ्ञपेन्ति। (३)

(४३) चतुत्थो दिट्ठम्मनिब्बानवादो

९७. ''तमञ्ञो एवमाह— 'अत्थि खो, भो, एसो अत्ता यं त्वं वदेसि, नेसो नत्थी ति वदामि; नो च खो, भो, अयं अत्ता एत्तावता परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पत्तो होति। तं किस्स हेतु? यदेव तत्थ पीतिगतं चेतसो उप्पिलावितत्तं एतेनेतं ओळारिकं अक्खायति। यतो खो, भो, अयं अत्ता पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेति यं तं अरिया आचिक्खन्ति उपेक्खको सतिमा सुखविहारी ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति, एत्तावता खो, भो, अयं अत्ता परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पत्तो होती' ति— इत्थेके सतो सत्तस्स परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पञ्ञपेन्ति। (४)

४४. पञ्चमो दिट्ठधम्मनिब्बानवादो

९८. ''तमञ्ञो एवमाह— 'अत्थि खो, भो, एसो अत्ता यं त्वं वदेसि, नेसो नत्थी ति वदामि; नो च खो, भो, अयं अत्ता एत्तावता परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पत्तो होति। तं किस्स हेतु? यदेव तत्थ सुखमिति चेतसो आभोगो एतेनेतं ओळारिकं अक्खायति। यतो खो, भो, अयं अत्ता सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा [R.38] अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति, एत्तावता खो, भो, अयं अत्ता परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पत्तो होती' ति। इत्थेके सतो सत्तस्स परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पञ्ञपेन्ति। (५)

९९. ''इमेहि खो ते, भिक्खवे, समणब्राह्मणा दिट्ठधम्मनिब्बानवादा सतो [B. 35]

विचार के शान्त हो जाने से आध्यात्मिक सम्प्रसाद (भीतरी प्रसन्नता) से एकाग्रचित्त हो, वितर्क-विचाररहित समाधि से उप्पन्न प्रीति-सुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो कर जब साधना करता है, तब इसी जन्म में वह निर्वाण प्राप्त करता है (प्रथम ध्यान की साधनामात्र से नहीं)। ऐसा कुछ दार्शनिक मानते हैं।

(४३) चतुर्थ दृष्टधर्मनिर्वाणवाद– ९७.''ऐसे उस मतवादी को दूसरा दार्शनिक कहता है– जिस आत्मा पूर्ववत् कारण कि वहाँ जो प्रीति पा कर चित्त का आनन्द से भर जाना है, उसी से वह स्थूल (उदार) प्रतीत होता है; क्योंकि जब वह आत्मा प्रीति के प्रति वैराग्य से उपेक्षायुक्त, (अनासक्त) चित्त हो कर साधना करता है तब ज्ञानी पण्डितों द्वारा कहे गये सभी सुखों को शरीर से अनुभव करता है। अतः उपेक्षायुक्त स्मृतिमान् सुखविहारी आत्मा ही तृतीय ध्यान को प्राप्त हो कर साधना करता है तब इसी जन्म में वह निर्वाण प्राप्त कर पाता है (न कि केवल द्वितीय ध्यान तक की साधनामात्र से)। ऐसा कुछ दार्शनिक आत्मा का दृष्टधर्मनिर्वाण मानते हैं।

(४४) पञ्चम दृष्टधर्मनिर्वाणवाद– ९८. ''उस को दूसरा दार्शनिक यों उपालम्भ देता है– तुम जिस आत्मा.... पूर्ववत्.... कारण कि वहाँ इतने से चित्त का सुखविहार (सुखोपभोग) स्थूल प्रतीत होता है। अपितु यह आत्मा सुख और दुःख के नष्ट होने से सौमनस्य और दौर्मनस्य के पहले ही अस्त हो जाने से, न सुख न दुःख वाली उपेक्षा एवं स्मृति से परिशुद्ध चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। इस कारण वह आत्मा इसी जन्म में....। ऐसा कुछ दार्शनिक मानते हैं।

९९. ''भिक्षुओ! इन पाँच कारणों से ये दार्शनिक आत्मा का इसी जन्म में निर्वाण मानते हैं। यह

सत्तस्स परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पञ्ञपेन्ति पञ्चहि वत्थूहि। ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा दिट्ठधम्मनिब्बानवादा सतो सत्तस्स परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पञ्ञपेन्ति, सब्बे ते इमेहेव पञ्चहि वत्थूहि ....पे०.... येहि तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं।

१००. "इमेहि खो ते, भिक्खवे, समणब्राह्मणा अपरन्तकप्पिका अपरन्तानुदिट्ठिनो [N.34] अपरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति चतुचत्तारीसाय वत्थूहि। [R.39] ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा अपरन्तकप्पिका अपरन्तानुदिट्ठिनो अपरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति, सब्बे ते इमेहेव चतुचत्तारीसाय वत्थूहि....पे०....येहि तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं।

१०१. "इमेहि खो ते, भिक्खवे, समणब्राह्मणा पुब्बन्तकप्पिका च अपरन्तकप्पिका च पुब्बन्तापरन्तकप्पिका च पुब्बन्तापरन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तापरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति द्वासट्ठिया वत्थूहि।

१०२. "ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा पुब्बन्तकप्पिका वा अपरन्तकप्पिका वा पुब्बन्तापरन्तकप्पिका वा पुब्बन्तापरन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तापरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति, सब्बे ते इमेहेव द्वासट्ठिया वत्थूहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन; नत्थि इतो बहिद्धा।

१०३. "तयिदं, भिक्खवे, तथागतो पजानाति—'इमे दिट्ठिट्ठाना एवंगहिता एवंपरामट्ठा एवंगतिका भवन्ति एवंअभिसम्पराया' ति। तं च तथागतो पजानाति, ततो च उत्तरितरं पजानाति। तं च पजाननं न परामसति। अपरामसतो चस्स पच्चत्तञ्ञेव निब्बुति विदिता। वेदनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं विदित्वा अनुपादाविमुत्तो, भिक्खवे, तथागतो।

[B. 36]१०४. "इमे खो ते, भिक्खवे, धम्मा गम्भीरा दुद्दसा दुरनुबोधा सन्ता पणीता अतक्कावचरा

समझिये कि जितने भी दार्शनिक आत्मा का दृष्टधर्मनिर्वाण मानते हैं वे सब इन्हीं पाँच कारणों से मानते हैं, इन से बाहर (अतिरिक्त) किसी अन्य से नहीं।.... पूर्ववत्.... इसी से तथागत के गुणों के वर्णन द्वारा उनकी उचित प्रशंसा की जा सकती है।

१००. "भिक्षुओ! इन्हीं ४४ कारणों के सहारे से अपरान्तकल्पिक मत को मानने वाले वे श्रमण-ब्राह्मण अपर अन्त के आधार पर अनेक व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग (वाग्जालमात्र=जवानी जमा खर्च) करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं।....पूर्ववत्.... जिनके द्वारा वे तथागत का गुणगान करते हुए उनकी उचित प्रशंसा कर पायेंगे।

१०१. "भिक्षुओ! ये पूर्वान्तकल्पिक या अपरान्तकल्पिक, पूर्वान्त या अपरान्त मत के मानने वाले श्रमण-ब्राह्मण इन्हीं ६२ कारणों से पूर्वान्त या अपरान्त के आधार पर अनके व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग करते रहते हैं। (उनमें वास्तविकता कुछ भी नहीं)।

१०२. "भिक्षुओ! जो भी श्रमणब्राह्मण पूर्वान्तिकल्पिक .... शब्दों का प्रयोग करते हैं वे सभी इन ६२ कारणों के आधार पर ऐसा करते हैं, इन से अन्य या इनसे बाहर नहीं।

१०३. "भिक्षुओ! तथागत यह जानते हैं कि ये कैसे अवलम्बित, कैसे परामृष्ट किये जाते हैं, या इन की क्या गति होती है! तथागत इस विषय में यह तो जानते ही हैं कि अपितु इससे अधिक भी जानते

निपुणा पण्डितवेदनीया, ये तथागतो सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति, येहि तथागतस्स यथाभुच्चं वण्णं सम्मा वदमाना वदेय्युं।

४. दिट्ठियो तण्हागतानं विप्फन्दितमेव

१०५. ''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा सस्सतवादा सस्सतं अत्तानं च [R.40] लोकं च पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि, तदपि तेसं भवतं समणब्राह्मणानं अजानतं अपस्सतं वेदयितं तण्हागतानं परितस्सितविप्फन्दितमेव।

१०६. ''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा एकच्चसस्सतिका एकच्चअसस्सतिका एकच्चं सस्सतं एकच्चं असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि, तदपि [N. 35] तेसं भवतं समणब्राह्मणानं अजानतं अपस्सतं वेदयितं तण्हागतानं परितस्सितविप्फन्दितमेव।

१०७. ''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा अन्तानन्तिका अन्तानन्तं लोकस्स पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि, तदपि तेसं भवतं समणब्राह्मणानं अजानतं अपस्सतं वेदयितं तण्हागतानं परितस्सितविप्फन्दितमेव।

१०८. ''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा अमराविक्खेपिका तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठा समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं चतूहि वत्थूहि, तदपि तेसं भवतं समणब्राह्मणानं अजानतं अपस्सतं वेदयितं तण्हागतानं परितस्सितविप्फन्दितमेव।

१०९. ''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा अधिच्चसमुप्पन्निका अधिच्चसमुप्पन्नं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति द्वीहि वत्थूहि, तदपि तेसं भवतं समणब्राह्मणानं अजानतं अपस्सतं वेदयितं तण्हागतानं परितस्सितविप्फन्दितमेव।

हैं। परन्तु भिक्षुओ! उसे जानते हुए भी उस का अभिमान न करते हुए वे तथागत.... अनासक्तिपूर्वक साधनासुख का आनन्द लेते हैं।

१०४. ''भिक्षुओ! ये धर्म गम्भीर इन नियमों के ही जानने योग्य हैं जिनका तथागत स्वयं साक्षात् कर जनता को उपदेश करते हैं। जिनके द्वारा तथागत के गुणों की उचित प्रशंसा की जा सकती है।

४. ये अज्ञानियों के मत तृष्णाप्रयुक्त चञ्चलतामात्र

१०५. ''भिक्षुओ! ये जो शाश्वतवादी श्रमण–ब्राह्मण चार कारणों से आत्मा और लोक को शाश्वत (नित्य) मानते हैं वह अज्ञता के कारण सांसारिक वेदनाओं को भोगनेवाले तथा तृष्णा से चकित उन श्रमण–ब्राह्मणों की चञ्चलतामात्र है।

१०६. ''फिर, भिक्षुओ! जो एकान्ततः शाश्वतवादी एवं एकान्ततः अशाश्वतवादी श्रमण–ब्राह्मण चार कारणों से लोक और आत्मा को शाश्वत और अशाश्वत मानते हैं वह भी अज्ञता के कारण....।

१०७. ''फिर, भिक्षुओ! जो अन्तानन्तवादी श्रमण–ब्राह्मण चार कारणों से लोक का अन्तत्व या अनन्तत्व मान बैठते हैं, वह भी अज्ञता के कारण.....।

१०८. ''फिर, भिक्षुओ! जो श्रमण–ब्राह्मण चञ्चल मछलियों (अमराविक्षेप) की तरह, स्वचित्त की चञ्चलता के कारण, चार कारणों से किसी भी मत पर स्थिर नहीं रह पाते, वह भी अज्ञता के कारण....।

१०९. ''फिर, भिक्षुओ! जो श्रमण–ब्राह्मण दो कारणों से आत्मा और लोक की अकारण उत्पत्ति मानते हों वह भी अज्ञता के कारण....।

११०. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा पुब्बन्तकप्पिका पुब्बन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तं [B.37] आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति अट्ठारसहि वत्थूहि, तदपि तेसं भवतं समणब्राह्मणानं अजानतं अपस्सतं वेदयितं तण्हागतानं परितस्सितविप्फन्दितमेव।

१११. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका सञ्ञीवादा उद्धमाघातनं सञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति सोळसहि वत्थूहि, तदपि तेसं भवतं समणब्राह्मणानं अजानतं अपस्सतं वेदयितं तण्हागतानं परितस्सितविप्फन्दितमेव।

[R.41] ११२. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका असञ्ञीवादा उद्धमाघातनं असञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति अट्ठहि वत्थूहि, तदपि तेसं भवतं समणब्राह्मणानं अजानतं अपस्सतं वेदयितं तण्हागतानं परितस्सितविप्फन्दितमेव।

११३. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका नेवसञ्ञीनासञ्ञीवादा उद्धमाघातनं नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति अट्ठहि वत्थूहि, तदपि तेसं भवतं समण-ब्राह्मणानं अजानतं अपस्सतं वेदयितं तण्हागतानं परितस्सितविप्फन्दितमेव।

११४. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा उच्छेदवादा सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं [N.36] विभवं पञ्ञपेन्ति सत्तहि वत्थूहि, तदपि तेसं भवतं समणब्राह्मणानं अजानतं अपस्सतं वेदयितं तण्हागतानं परितस्सितविप्फन्दितमेव।

११५. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा दिट्ठधम्मनिब्बानवादा सतो सत्तस्स परम-दिट्ठधम्मनिब्बानं पञ्ञपेन्ति पञ्चहि वत्थूहि, तदपि तेसं भवतं समणब्राह्मणानं अजानतं अपस्सतं वेदयितं तण्हागतानं परितस्सितविप्फन्दितमेव।

११६. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा अपरन्तकप्पिका अपरन्तानुदिट्ठिनो अपरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति चतुचत्तारीसाय वत्थूहि, तदपि तेसं भवतं समणब्राह्मणानं अजानतं अपस्सतं वेदयितं तण्हागतानं परितस्सितविप्फन्दितमेव।

[B. 38] ११७. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा पुब्बन्तकप्पिका च अपरन्तकप्पिका च

---

११०. "फिर, भिक्षुओ! जो श्रमण–ब्राह्मण पूर्वान्तकल्पिक मतवादी होते हुए अट्ठारह कारणों से लोक के पूर्व अन्त के विषय में नाना प्रकार की व्यावहारिक बातें करते रहते हैं वह भी अज्ञता के कारण....।

१११. "फिर, भिक्षुओ! जो श्रमण–ब्राह्मण मरणानन्तर भी आत्मा में संज्ञा सोलह कारणों से मानते हैं वह भी अज्ञता के कारण....।

११२. "फिर, भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण आठ कारणों से मरणानन्तर आत्मा संज्ञा वाला नहीं होता– ऐसा मानते हैं वह भी अज्ञता के कारण.....।

११३. "फिर, भिक्षुओ! जो श्रमण–ब्राह्मण आठ कारणों आत्मा को न संज्ञा वाला न असंज्ञावाला मानते हैं वह भी अज्ञता के कारण....।

११४. "फिर, भिक्षुओ! जो श्रमण–ब्राह्मण सात कारणों से आत्मा का उच्छेद, विनाश, लोप मानते हैं, वह भी अज्ञता के कारण....।

११५. "फिर, भिक्षुओ! जो श्रमण–ब्राह्मण पाँच कारणों से आत्मा का इसी जन्म में निर्वाण मानते हैं वह भी अज्ञता के कारण....।

पुब्बन्तापरनकप्पिका च पुब्बन्तापरन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तापरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति द्वासट्ठिया वत्थूहि, तदपि तेसं भवतं समणब्राह्मणानं अजानतं अपस्सतं वेदयितं तण्हागतानं परितस्सितविप्फन्दितमेव।

५. दिट्ठियो फस्सपच्चया

११८. ''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा सस्सतवादा सस्सतं अत्तानं च [R. 42] लोकं च पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि, तदपि फस्सपच्चया।

११९. ''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा एकच्चसस्सतिका एकच्चअसस्सतिका एकच्चं सस्सतं एकच्चं असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि, तदपि फस्सपच्चया।

१२०. ''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा अन्तानन्तिका अन्तानन्तं लोकस्स पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि, तदपि फस्सपच्चया।

१२१. ''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा अमराविक्खेपिका तत्थ तत्थ पञ्हं पुट्ठा समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं चतूहि वत्थूहि, तदपि फस्सपच्चया।

१२२. ''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा अधिच्चसमुप्पन्निका अधिच्चसमुप्पन्नं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति द्वीहि वत्थूहि, तदपि फस्सपच्चया।

१२३. ''तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा पुब्बन्तकप्पिका पुब्बन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति अट्ठारसहि वत्थूहि, तदपि फस्सपच्चया।

---

११६. ''फिर, भिक्षुओ! जो श्रमण–ब्राह्मण ४४ कारणों से लोक के अपर अन्त को लेकर नाना प्रकार की बातें करते हैं वह भी अज्ञता के कारण।

११७. ''भिक्षुओ! (निष्कर्ष यह है कि) जो श्रमण–ब्राह्मण बासठ कारणों से पूर्वान्तकल्पिक, अपरान्तकल्पिक, पूर्वान्तापरान्तकल्पिक मतवादी होते हुए व्यवहार में नाना प्रकार की बातें करते हैं वह भी अज्ञता के कारण....।

५. स्पर्श की प्रतीति के कारण भी मत–भिन्नता

११८. ''वहाँ, भिक्षुओ! जो शाश्वतवादी श्रमण–ब्राह्मण चार कारणों से आत्मा और लोक को शाश्वत बताते हैं वे स्पर्श की ही प्रतीति होने से (ऐसा मानते हैं)।

११९. ''वहाँ, भिक्षुओ! एक जो श्रमण–ब्राह्मण चार कारणों से एकान्ततः शाश्वतवादी और एकान्ततः अशाश्वरवादी हैं, वे भी वहाँ स्पर्श की प्रतीति के कारण....।

१२०. वहाँ, भिक्षुओ! जो श्रमण–ब्राह्मण चार कारणों से लोक के विषय में अन्त या अनन्तवादी है वे भी वहाँ स्पर्श की प्रतीति के कारण....।

१२१. ''वहाँ भिक्षुओ! जो अमराविक्षेपक श्रमण–ब्राह्मण कोई भी प्रश्न पूछे जाने पर चार कारणों से चित्त चञ्चलता के कारण कोई निश्चित उत्तर नहीं दे पाते, वे भी वहाँ स्पर्श–प्रतीति होने से....।

१२२. ''वहाँ, भिक्षुओ! जो अकारणवादी श्रमण ब्राह्मण दे कारणों से आत्मा और लोक की अकारण उत्पत्ति मानते हैं वह भी वहाँ स्पर्श प्रतीति से....।

१२३. ''वहाँ, भिक्षुओ! जो पूर्वान्तकल्पिक श्रमण–ब्राह्मण लोक से पूर्वान्तकल्पिक श्रमण–ब्राह्मण लोक के पूर्वान्त के विषय में अठारह कारणों से नाना प्रकार के वाग्जाल करते हैं वह भी वहाँ स्पर्श प्रतीति के कारण....।

[N.37] १२४. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका सञ्ञीवादा उद्धमाघातनं सञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति सोळसहि वत्थूहि, तदपि फस्सपच्चया।

[B.39] १२५. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका असञ्ञीवादा उद्धमाघातनं असञ्ञिं च अत्तानं पञ्ञपेन्ति अट्ठहि वत्थूहि, तदपि फस्सपच्चया।

१२६. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका नेवसञ्ञीनासञ्ञीवादा उद्धमाघातनं नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति अट्ठहि वत्थूहि, तदपि फस्सपच्चया।

१२७. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा उच्छेदवादा सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेन्ति सत्तहि वत्थूहि, तदपि फस्सपच्चया।

१२८. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा दिट्ठधम्मनिब्बानवादा सतो सत्तस्स परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पञ्ञपेन्ति पञ्चहि वत्थूहि, तदपि फस्सपच्चया।

[R.43] १२९. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा पुब्बन्तकप्पिका च अपरन्तकप्पिका च पुब्बन्तापरन्तकप्पिका च पुब्बन्तापरन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तापरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति द्वासट्ठिया वत्थूहि, तदपि फस्सपच्चया।

१३०. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा पुब्बन्तकप्पिका च अपरन्तकप्पिका च पुब्बन्तापरन्तकप्पिका च पुब्बन्तापरन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तापरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति द्वासट्ठिया वत्थूहि, तदपि फस्सपच्चया।

नेतं ठानं विज्जति

१३१. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा सस्सतवादा सस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

१३२. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा एकच्चसस्सतिका एकच्च असस्सतिका एकच्चं सस्सतं एकच्चं असस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

---

१२४. "और, भिक्षुओ! जो श्रमण ब्राह्मण सोलह कारणों से मरणानन्तर भी आत्मा को संज्ञी मानते हैं ....।

१२५. "...आठ कारणों से मरणानन्तर आत्मा को असंज्ञी मानते हैं.....।

१२६. "....आठ कारणों से मरणानन्तर आत्मा को न संज्ञी न असंज्ञी मानते हैं....।

१२७. "....सात कारणों से मरणानन्तर आत्मा का उच्छेद....मानते हैं.....।

१२८. "....पाँच कारणों से इसी जन्म में आत्मा का निर्वाण मानते हैं.....।

१२९. "....चवालीस कारणों से आत्मा के विषय में अपर अन्त की कल्पना करके नाना प्रकार का वाग्व्यवहार करते हैं....।

१३०. "....बासठ कारणों से आत्मा के पूर्वान्त या अपरान्त की कल्पना करके नानाप्रकार का वाग्व्यहार करते है, वह भी स्पर्श प्रतीति के कारण।

यह सम्भव नहीं है– १३१. "वहाँ, भिक्षुओ! जो शाश्वतवादी श्रमण–ब्राह्मण आत्मा और लोक को चार कारण से शाश्वत मानते हैं उन्हे स्पर्श के विना ही ऐसी वेदना (अनुभव) होता है–यह सम्भव नहीं है।

१३३. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा अन्तानन्तिका अन्तानन्तं लोकस्स [B.40] पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

१३४. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा अमराविक्खेपिका तत्थ तत्थ पञ्हं [N.38] पुट्ठा समाना वाचाविक्खेपं आपज्जन्ति अमराविक्खेपं चतूहि वत्थूहि, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

१३५. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा अधिच्चसमुप्पन्निका अधिच्चसमुप्पन्नं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति द्वीहि वत्थूहि, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

१३६. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा पुब्बन्तकप्पिका पुब्बन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति अट्ठारसहि वत्थूहि, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

१३७. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका सञ्ञीवादा [R.44] उद्धमाघातनं सञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति सोळसहि वत्थूहि, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

१३८. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका असञ्ञीवादा, उद्धमाघातनं असञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति अट्ठहि वत्थूहि, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

१३९. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका नेवसञ्ञीनासञ्ञीवादा उद्धमाघातनं नेवसञ्ञीनासञ्ञिं अत्तानं पञ्ञपेन्ति अट्ठहि वत्थूहि, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

---

१३२. "वहाँ, भिक्षुओ! जो एकान्तशाश्वतिक एवं एकान्तअशाश्वतिक श्रमण ब्राह्मण चार कारणों से आत्मा और लोक को एक अन्त से शाश्वत और एक अन्त से अशाश्वत मानते हैं, उन्हे स्पर्श के बिना ही ऐसी वेदना (अनुभव) होती है.... ।

१३३. "वहाँ, भिक्षुओ! अन्तानन्तवादी श्रमण ब्राह्मण लोक को सान्त या अनन्त चार कारणों से घोषित करते हैं उन्हे ....।

१३४."वहाँ, भिक्षुओ! जो अमराविक्षेपक श्रमण ब्राह्मण वहाँ वहाँ प्रश्न पूछे जाने पर अपनी चञ्चलता के कारण चार कारणों से वाग्विक्षेप से उत्तर देते हैं उन्हें ....।

१३५. "वहाँ, भिक्षुओ! जो अकारणवादी श्रमण ब्राह्मण दो कारणों से आत्मा और लोक को अकारण उत्पन्न मानते हैं उन्हें ....।

१३६. "वहाँ, भिक्षुओ! जो पूर्वान्तकल्पिक श्रमण–ब्राह्मण अट्ठारह कारणों से लोक की पूर्वान्त कल्पना से नाना प्रकार की बातें बोलते रहते हैं, उन्हें ....।

१३७. "वहाँ, भिक्षुओ! मरणानन्तर आत्मा को सोलह कारणों से संज्ञी मानने वाले श्रमण ब्राह्मण आत्मा को मरणानन्तर संज्ञी बताते हैं, उन्हें ....।

१३८. "वहाँ, भिक्षुओ! मरणानन्तर आठ कारणों से आत्मा को असंज्ञी माने वाले श्रमण ब्राह्मण आत्मा को असंज्ञी घोषित करते हैं, उन्हें ....।

१४०. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा उच्छेदवादा सतो सत्तस्स उच्छेदं विनासं विभवं पञ्ञपेन्ति सत्तहि वत्थूहि, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

[B.41] १४१. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा दिट्ठधम्मनिब्बानवादा सतो सत्तस्स परमदिट्ठधम्मनिब्बानं पञ्ञपेन्ति पञ्चहि वत्थूहि, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

१४२. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा अपरन्तकप्पिका अपरन्तानुदिट्ठिनो अपरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति चतुचत्तारीसाय वत्थूहि, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

१४३. " तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा पुब्बन्तकप्पिका च अपरन्तकप्पिका च पुब्बन्तापरन्तकप्पिका च पुब्बन्तापरन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तापरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधि-
[N.39] मुत्तिपदानि अभिवदन्ति द्वासट्ठिया वत्थूहि, ते वत अञ्ञत्र फस्सा पटिसंवेदिस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

६. दिट्ठिगतिकसंसारवट्टं

१४४. "तत्र, भिक्खवे, ये ते समणब्राह्मणा सस्सतवादा सस्सतं अत्तानं च लोकं च पञ्ञपेन्ति चतूहि वत्थूहि, ये पि ते समणब्राह्मणा एकच्चसस्सतिका एकच्चअसस्सतिका .... पे०....ये पि ते समणब्राह्मणा अन्तानन्तिका....ये पि ते समणब्राह्मणा अमराविक्खपिखे.... ये
[R.45] पि ते समणब्राह्मणा अधिच्चसमुप्पन्निका .... ये पि ते समणब्राह्मणा पुब्बन्तकप्पिका .... ये पि ते समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका सञ्ञीवादा .... ये पि ते समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका असञ्ञीवादा .... ये पि ते समणब्राह्मणा उद्धमाघातनिका नेवसञ्ञीनासञ्ञीवादा .... ये पि

---

१३९. "वहाँ भिक्षुओ! मरणानन्तर आत्मा को आठ कारणों से नैवसंज्ञी मानने वाले श्रमण ब्राह्मण आत्मा को न संज्ञावान् न असंज्ञावान् बताते हैं, उन्हें ....।

१४०. "वहाँ, भिक्षुओ! जो उच्छेदवादी, श्रमण–ब्राह्मण सात कारणों से आत्मा का उच्छेद विनाश एवं लोप मानते हैं, उन्हें ....।

१४१. "वहाँ, भिक्षुओ! जो श्रमण–ब्राह्मण पाँच कारणों से आत्मा का इसी जन्म में निर्वाण मानते हैं, उन्हें ....।

१४२. "वहाँ, भिक्षुओ! जो अपरान्तकल्पिक श्रमण–ब्राह्मण ४४ कारणों से आत्मा के अपर अन्त की कल्पना करते हैं उन्हें ....।

१४३. "वहाँ, भिक्षुओ! जो श्रमण–ब्राह्मण आत्मा के पूर्व और अपर–दोनों ही अन्तों की ६२ कारणों से कल्पना करते हैं, उन्हें स्पर्श के विना ही ऐसी अनुभूति (वेदना) हो–यह सम्भव नहीं।

६. संसार में आवागमन दृष्टि से सम्बद्ध

१४४. "वहाँ, भिक्षुओ! जो शाश्वतवादी श्रमण–ब्राह्मण चार कारणों से आत्मा और लोक का शाश्वतत्व मानते हैं .... और जो श्रमण–ब्राह्मण एकान्ततः शाश्वतवादी हैं या एकान्ततः अशाश्वतवादी हैं .... जो श्रमण ब्राह्मण अन्तानन्तवादी है .... अमराविक्षेपक हैं .... अकारण उत्पत्तिवादी हैं .... जो श्रमण ब्राह्मण आत्मा के पूर्वान्तकल्पिक हैं .... जो श्रमण–ब्राह्मण आत्मा को मरणानन्तर भी संज्ञी बताते हैं ....

ते समणब्राह्मणा उच्छेदवादा .... ये पि ते समणब्राह्मणा दिट्ठधम्मनिब्बानवादा .... ये पि ते समणब्राह्मणा अपरन्तकप्पिका .... ये पि ते समणब्राह्मणा पुब्बन्तकप्पिका च अपरन्तकप्पिका च पुब्बन्तापरन्तकप्पिका च पुब्बन्तापरन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तापरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति द्वासट्ठिया वत्थूहि सब्बे ते छहि फस्सायतनेहि फुस्स फुस्स पटिसंवेदेन्ति। तेसं वेदनापच्चया तण्हा, तण्हापच्चया उपादानं, उपादानपच्चया भवो, भवपच्चया जाति, जातिपच्चया जरामरणं सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा सम्भवन्ति।

७. दिट्ठिजालं

१४५. ''यतो खो, भिक्खवे, भिक्खु छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं [B.42] च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति, अयं इमेहि सब्बेहेव उत्तरितरं पजानाति।

१४६. ''ये हि केचि, भिक्खवे, समणा वा ब्राह्मणा वा पुब्बन्तकप्पिका वा अपरन्तकप्पिका वा पुब्बन्तापरन्तकप्पिका वा पुब्बन्तापरन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तापरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति, सब्बे ते इमेहेव द्वासट्ठिया वत्थूहि अन्तोजालीकता एत्थ सिता व उम्मुज्जमाना उम्मुज्जन्ति, एत्थ परियापन्ना अन्तोजालीकता व उम्मुज्जमाना उम्मुज्जन्ति।

''सेय्यथापि, भिक्खवे, दक्खो केवट्टो वा केवट्टन्तेवासी वा सुखुमच्छिकेन [N.40] जालेन परित्तं उदकदहं ओत्थरेय्य। तस्स एवमस्स—'ये खो केचि इमस्मिं उदकदहे ओळारिका

या जो श्रमण–ब्राह्मण आत्मा को मरणानन्तर असंज्ञी बताते हैं .... या जो श्रमण–ब्राह्मण मरणानन्तर आत्मा को न संज्ञी मानते हैं, न असंज्ञी .... जो श्रमण–ब्राह्मण मरणानन्तर आत्मा का उच्छेद मानते हैं .... जो श्रमण–ब्राह्मण आत्मा का इसी जन्म में निर्वाण मानते हैं .... जो भी श्रमण–ब्राह्मण आत्मा के अपर अन्त की कल्पना करते हैं .... जो श्रमण–ब्राह्मण पूर्व अन्त या अपर अन्त या पूर्वान्त और अपर अन्त दोनों की कल्पना करके बासठ कारणों से नानाविध वाग्व्यवहार करते हैं वे सभी छह स्पर्शायतनों के सहारे उन उन का स्पर्श करके वेदना का अनुभव करते हैं। उन की वेदना के कारण तृष्णा, तृष्णा के कारण उपादान (आसक्ति), उपादान के कारण भव, भव के कारण जन्म, जन्म के कारण जरा–मरण, शोक, परिदेव, दुःख दौर्मनस्य और खेद होता है।

७. दृष्टिजाल

१४५. ''भिक्षुओ! जब भिक्षु इन छह स्पर्शायतनों के समुदय (उत्पत्ति), अस्तगमन (नाश), आस्वाद, दोष और त्याग (निःसरण) को भली भाँति जान लेता है तब वह इन से ऊपर की बातें भी जान लेता है।

१४६. ''भिक्षुओ! जो कोई भी श्रमण–ब्राह्मण, वे भले ही पूर्व अन्त को कल्पना करते हों या अपर अन्त की या पूर्व अपर अन्त दोनों की ही कल्पना करते हों और इन से पूर्व और अपर अन्त के विषय में सोचते हुए नानाप्रकार का वाग्जाल जनता के सम्मुख प्रकट करते हों, वे सभी इन्हीं बासठ कारणों के जाल में फँस कर वहीं डूबते–उतराते रहते हैं।

''जैसे भिक्षुओ! कोई दक्ष मल्लाह (मछुआरा) या मल्लाह का शिष्य छोटे छोटे (सूक्ष्म) छिद्रों वाले जाल को सम्पूर्ण जलाशय (तालाब) में इधर उधर सबतरफ हिलावे। तब उसके मन में ऐसा विचार

पाणा सब्बे ते अन्तोजालीकता। एत्थ सिता व उम्मुज्जमाना उम्मुज्जन्ति; एत्थ [R. 46] परियापन्ना अन्तोजालीकता व उम्मुज्जमाना उम्मुज्जन्ती' ति। एवमेव खो, भिक्खवे, ये हि केचि समणा वा ब्राह्मणा वा पुब्बन्तकप्पिका वा अपरन्तकप्पिका वा पुब्बन्तापरन्तकप्पिका वा पुब्बन्तापरन्तानुदिट्ठिनो पुब्बन्तापरन्तं आरब्भ अनेकविहितानि अधिमुत्तिपदानि अभिवदन्ति, सब्बे ते इमेहेव द्वासट्ठिया वत्थूहि अन्तोजालीकता एत्थ सिता व उम्मुज्जमाना उम्मुज्जन्ति, एत्थ परियापन्ना अन्तोजालीकता व उम्मुज्जमाना उम्मुज्जन्ति।

१४७. "उच्छिन्नभवनेत्तिको, भिक्खवे, तथागतस्स कायो तिट्ठति। यावस्स कायो ठस्सति ताव नं दक्खन्ति देवमनुस्सा। कायस्स भेदा उद्धं जीवितपरियादाना न नं दक्खन्ति देवमनुस्सा।

"सेय्यथापि, भिक्खवे, अम्बपिण्डिया वण्टच्छिन्नाय यानि कानिचि अम्बानि वण्टपटिबन्धानि सब्बानि तानि तदन्वयानि भवन्ति; एवमेव खो, भिक्खवे, उच्छिन्नभवनेत्तिको तथागतस्स कायो तिट्ठति। यावस्स कायो ठस्सति ताव नं दक्खन्ति देवमनुस्सा। कायस्स भेदा उद्धं जीवितपरियादाना न नं दक्खन्ति देवमनुस्सा" ति।

[B. 43] १४८. "एवं वुत्ते आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! को नामो अयं, भन्ते धम्मपरियायो" ति? "तस्मातिह त्वं, आनन्द, इमं धम्मपरियायं 'अत्थजालं' ति पि नं धारेहि, 'धम्मजालं' ति पि नं धारेहि, 'ब्रह्मजालं' ति पि नं धारेहि, 'दिट्ठिजालं' ति पि नं धारेहि, 'अनुत्तरो सङ्गामविजयो' ति पि नं धारेहि" ति।

आवे—'इस जलाशय में जितनी भी छोटी-बड़ी मछलियाँ हैं सभी मेरे इस जाल में फँस गयी हैं, इसी में उलझ कर ऊपर-नीचे हो रही हैं। इसी तरह, भिक्षुओ! जितने भी वे (उपर्युक्त) श्रमण या ब्राह्मण फिर भले ही वे पूर्वान्तकल्पिक या अपरान्तकल्पिक या पूर्वान्तापरान्तकल्पिक, इन पूर्वान्त या अपरान्त वाली दृष्टियों के अनुसार सोचते हुए पूर्व और अपर अन्त के विषय में अनेक तरह के व्याख्यान (वागव्यवहार=अधिमुक्तिपद) करते रहते हों, वे सभी इन पूर्वोक्त ६२ कारणों के सहारे इस दृष्टि जाल में फँसे हैं, इसी में ऊपर नीचे डूब-उतरा रहे हैं।

१४७. " भिक्षुओ! भवतृष्णा (पुनर्जन्म के लोभ) के उच्छिन्न हो जाने पर भी तथागत का शरीर रहता है। जब तक उन का शरीर रहेगा तभी तक देवता और मनुष्य उन्हें देख सकेंगे। देहपात के बाद, उनका जीवन-प्रवाह निरुद्ध हो जाने पर, देवता या मनुष्य—कोई उन्हें नहीं देख सकता।

"भिक्षुओ! जैसे किसी आमके गुच्छे की वण्ट (डण्ठल) टूट जाने पर उस वृन्त में लगे सभी आम भी उसी समय नीचे आ गिरते हैं; क्योंकि वे उससे सम्बद्ध होते हैं। उसी तरह भवतृष्णा के छिन्न होने पर भी तथागत का शरीर होता है। जब तक उनका शरीर रहेगा; तभी तक उसे देवता और मनुष्य देख सकेंगे। देहपात के बाद उन का जीवनप्रवाह निरुद्ध हो जाने के बाद उन्हें न देवता न मनुष्य कोई नहीं देख पायगा।

१४८. ऐसा कहे जाने पर आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से पूछा—"भन्ते! आश्चर्य है ! आपका उपदेश अद्भुत है। भन्ते! आप के इस उपदेश का क्या नाम रखा जाय?

"आनन्द! तो तुम इस धर्मोपदेश को 'अर्थजाल' भी कह सकते हो, 'धर्मजाल' भी...., 'ब्रह्मजाल' भी...., 'दृष्टिजाल' भी.... या फिर 'अलौकिक संग्रामविजय' भी कह सकते हो।"

१४९. ''इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति। इमस्मिं च पन वेय्याकरणस्मिं भञ्ञमाने दससहस्सी लोकधातु अकम्पित्था ति॥

ब्रह्मजालसुत्तं निट्ठितं पठमं॥

---

१४९. भगवान् ने यह कहा! उन भिक्षुओं ने विश्वस्त मन से भगवान् के कथन का अभिनन्दन किया। भगवान् के इस धर्मोपदेश के बाद दश हजार ब्रह्माण्ड (हर्षविभोर होकर) काँप उठे।।

प्रथम ब्रह्मजालसूत्र समाप्त॥

२. सामञ्ञफलसुत्तं

१. छ अञ्ञतित्थिया

[N. 41, B. 44, R.47] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा राजगहे विहरति जीवकस्स कोमारभच्चस्स अम्बवने महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेहि। तेन खो पन समयेन राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो तदहुपोसथे पन्नरसे कोमुदिया चातुमासिनिया पुण्णाय पुण्णमाय रत्तिया राजामच्चपरिवुतो उपरिपासादवरगतो निसिन्नो होति। अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो तदहुपोसथे उदानं उदानेसि—"रमणीया वत भो दोसिना रत्ति, अभिरूपा वत भो दोसिना रत्ति, दस्सनीया वत भो दोसिना रत्ति, पासादिका वत भो दोसिना रत्ति, लक्खञ्ञा वत भो दोसिना रत्ति! कं नु ख्वज्ज समणं वा ब्राह्मणं वा पयिरुपासेय्याम, यं नो पयिरुपासतो चित्तं पसीदेय्या" ति?

२. एवं वुत्ते, अञ्ञतरो राजामच्चो राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं एतदवोच—"अयं, देव, पूरणो कस्सपो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च, ञातो, यसस्सी, तित्थकरो, साधुसम्मतो बहुजनस्स, रत्तञ्ञू, चिरपब्बजितो, अद्धगतो, वयोअनुप्पत्तो। तं देवो पूरणं कस्सपं पयिरुपासतु। अप्पेव नाम देवस्स पूरणं कस्सपं पयिरुपासतो चित्तं पसीदेय्या" ति। एवं वुत्ते, राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो तुण्ही अहोसि।

३. अञ्ञतरो पि खो राजामच्चो राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं एतदवोच—[R.48] "अयं, देव, मक्खलि गोसालो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च, ञातो, यसस्सी, तित्थकरो, साधुसम्मतो बहुजनस्स, रत्तञ्ञू, चिरपब्बजितो, अद्धगतो, वयोअनुप्पत्तो। तं देवो

---

२. श्रामण्यफलसूत्र

१. छह अन्य मतावलम्बी आचार्य

१. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह नगर के जीवक कौमारभृत्य के आम्रवन में साढ़े बारह सौ भिक्षुओं (के सङ्घ) के साथ साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय मगधसाम्राज्य का राजा वैदेहीपुत्र अजातशत्रु उपोसथ के चातुर्मास की पूर्णिमा की चाँदनी रात्रि में राजामात्यों से घिरा हुआ अपने उत्तम प्रासाद की छत पर बैठा था। उसने अनायास अपना यह स्वाभाविक हृदयोद्गार प्रकट किया—"अरे! कैसी सुन्दर चान्दनी रात है! कैसी दर्शनीय चान्दनी रात है! कैसी लुभावनी चान्दनी रात है! आज (इस समय) हम किस श्रमण या ब्राह्मण के साथ धर्मचर्चा करें कि उस के साथ धर्मचर्चा करते-करते हमारा चित्त प्रमुदित हो उठे!"

२. (राजा द्वारा) ऐसा कहे जाने पर राजा का कोई अमात्य उस मागध राजा वैदेहीपुत्र अजातशत्रु को यों बोला—"देव! यह पूर्णकाश्यप अपने बड़े भारी शिष्य-समूह वाला (सङ्घी), गणाचार्य, गणाध्यक्ष (मण्डलेश्वर), ज्ञानी, समाज में यशस्वी तीर्थङ्कर (स्वतन्त्र मत-स्थापक), समाज के बहुत बड़े समुदाय में सम्मानित, दीर्घकालीन अनुभवी, चिरकाल से प्रव्रज्या लिये हुए, सन्मार्ग पर चलने वाला एवं वर्तमान अन्य श्रमणों की अपेक्षा अवस्थावृद्ध है। महाराज! इसी पूर्णकाश्यप से आप चल कर धर्मचर्चा करें तो सम्भव है आप का चित्त प्रसन्न हो जाय।" महामात्य द्वारा ऐसा कहने पर राजा मागध अजातशत्रु वैदेहीपुत्र चुप ही रहा।

मक्खलिं गोसालं पयिरुपासतु। अप्पेव नाम देवस्स मक्खलिं गोसालं पयिरुपासतो चित्तं पसीदेय्या'' ति। एवं वुत्ते, राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो तुण्ही अहोसि।

४. अञ्ञतरो पि खो राजामच्चो राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं [B.45] एतदवोच—''अयं, देव, अजितो केसकम्बलो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च, [N. 42] ञातो, यसस्सी, तित्थकरो, साधुसम्मतो बहुजनस्स, रत्तञ्ञू, चिरपब्बजितो, अद्धगतो, वयो-अनुप्पत्तो। तं देवो अजितं केसकम्बलं पयिरुपासतु। अप्पेव नाम देवस्स अजितं केसकम्बलं पयिरुपासतो चित्तं पसीदेय्या'' ति। एवं वुत्ते, राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो तुण्ही अहोसि।

५. अञ्ञतरो पि खो राजामच्चो राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं एतदवोच—''अयं, देव, पकुधो कच्चायनो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च, ञातो, यसस्सी, तित्थकरो, साधुसम्मतो बहुजनस्स, रत्तञ्ञू, चिरपब्बजितो, अद्धगतो, वयोअनुप्पत्तो। तं देवो पकुधं कच्चायनं परियरुपासतु। अप्पेव नाम देवस्स पकुधं कच्चायनं पयिरुपासतो चित्तं पसीदेय्या'' ति। एवं वुत्ते, राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो तुण्ही अहोसि।

६. अञ्ञतरो पि खो राजामच्चो राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं एतदतवोच—''अयं, देव, सञ्ञयो बेलट्ठपुत्तो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च, ञातो, यसस्सी, तित्थकरो, साधुसम्मतो बहुजनस्स, रत्तञ्ञू, चिरपब्बजितो, अद्धगतो, वयोअनुप्पत्तो। तं देवो सञ्ञयं बेलट्ठपुत्तं पयिरुपासतु। अप्पेव नाम देवस्स सञ्ञयं बेलट्ठपुत्तं पयिरुपासतो चित्तं पसीदेय्या'' ति। एवं वुत्ते, राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो तुण्ही अहोसि।

७. अञ्ञतरो पि खो राजामच्चो राजानं मागधं अजातसत्तुं वेदेहिपुत्तं एतदवोच—''अयं, देव, निगण्ठो नाटपुत्तो सङ्घी चेव गणी च गणाचरियो च, ञातो, यसस्सी, [R.49] तित्थकरो, साधुसम्मतो बहुजनस्स, रत्तञ्ञू, चिरपब्बजितो, अद्धगतो, वयोअनुप्पत्तो। [B.46] तं देवो निगण्ठं नाटपुत्तं पयिरुपासतु। अप्पेव नाम देवस्स निगण्ठं नाटपुत्तं पयिरुपासतो चित्तं पसीदेय्या'' ति। एवं वुत्ते, राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो तुण्ही अहोसि।

---

३. तब उसके दूसरे मन्त्री ने उससे निवेदन किया—''देव! यह मक्खलि (मस्करि) गोसाल भी आजकल बड़े शिष्य समूह वाला, गणी, गणाचार्य .... पूर्ववत् .... चुप ही रहा।''

४. तब उसके किसी अन्य मन्त्री ने उससे यों निवेदन किया —'देव यह अजितकेशकम्बल बड़े शिष्यसमूह वाला, गणी,गणाचार्य .... पूर्ववत् .... चुप ही रहा।

५. तब उसके किसी अन्य मन्त्री ने उससे यों निवेदन किया—''देव! यह पकुध कात्यायन आजकल बड़े शिष्यसमूह वाला, गणी, गणाचार्य .... पूर्ववत् .... चुप ही रहा।

६. फिर उसके किसी अन्य मन्त्री ने उससे निवेदन किया—''देव! यह सञय वेलट्ठपुत्त भी आजकल बड़े शिष्यसमूह वाला गणी, गणाचार्य .... पूर्ववत् .... चुप ही रहा।

७. तब उसके एक अन्य मन्त्री ने उससे यों निवेदन किया—''देव यह निगण्ठनाटपुत्त आज कल अपने बृहत् शिष्यसङ्घ से घिरा रहता है, यह गणी है, गणाचार्य है, तत्त्वज्ञानी है, लोक में ख्यातिप्राप्त है, दर्शन में अपना स्वतन्त्र मत रखता है, यह समाज में प्रतिष्ठित है, दीर्घकाल के मत–मतान्तरों का अनुभवी

२. राजा जीवकम्बवने भगवन्तं उपसङ्कमि

८. तेन खो पन समयेन जीवको कोमारभच्चो रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुस्स वेदेहिपुत्तस्स अविदूरे तुण्हीभूतो निसिन्नो होति। अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—"त्वं पन, सम्म जीवक, किं तुण्ही" ति?

"अयं, देव, भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो अम्हाकं अम्बवने विहरति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अड्ढतेळसेहि भिक्खुसतेहि। तं खो पन भगवन्तं एवंकल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—[N. 43] 'इति पि सो भगवा, अरहं, सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो, लोकविदू, अनुत्तरो, पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो, भगवा' ति। तं देवो भगवन्तं पयिरुपासतु। अप्पेव नाम देवस्स भगवन्तं पयिरुपासतो चित्तं पसीदेय्या" ति।

९. "तेन हि, सम्म जीवक, हत्थियानानि कप्पापेही" ति। "एवं, देवा" ति खो जीवको कोमारभच्चो रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुस्स वेदेहिपुत्तस्स पटिस्सुणित्वा, पञ्चमत्तानि हत्थिनिकासतानि कप्पापेत्वा रञ्ञो च आरोहणीयं नागं, रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुस्स वेदेहिपुत्तस्स पटिवेदेसि—"कप्पितानि खो ते, देव, हत्थियानानि। यस्सदानि कालं मञ्ञसी" ति।

१०. अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो पञ्चसु हत्थिनिकासतेसु पच्चेका इत्थियो आरोपेत्वा, आरोहणीयं नागं अभिरुहित्वा, उक्कासु धारियमानासु, राजगहम्हा निय्यासि महच्चा राजानुभावेन; येन जीवकस्स कोमारभच्चस्स अम्बवनं तेन पायासि।

है, और अपेक्षाकृत अन्य आचार्यों से वृद्ध भी है। अच्छा हो कि देव! इस निगण्ठनाटपुत्र से चल कर धर्मचर्चा करें। हो सकता है इस धर्मचर्चा से देव का मन प्रमुदित हो उठे।" मन्त्री द्वारा ऐसा कहने पर राजा.... चुप ही रहा।

२. राजा जीवकाम्रवन में भगवान् के पास पहुँचा

८. उस समय जीवक कौमारभृत्य (वैद्य) उस मागध राजा अजातशत्रु वैदेहिपुत्र के समीप ही चुपचाप बैठे थे। वैदेहिपुत्र मगधराज अजातशत्रु ने जीवक कौमारभृत्य की तरफ देख कर पूछा–"सौम्य जीवक ! तुम चुप क्यों बैठे हो?"

(तब जीवक कौमारभृत्य ने कहा–)"देव ! ये भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हमारे आम्रवन में साधनाहेतु विराजमान हैं, उनके साथ साढ़े बारह सौ भिक्षुओं का बहुत बड़ा भिक्षुसङ्घ भी है। उन भगवान् के प्रति जनता में यह मङ्गलयश (कित्तिसद्द) फैला हुआ है–'वह भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध (=परमज्ञानी) विद्या और आचरण से युक्त, सुन्दर गति को प्राप्त (सुगत) या सुमधुरभाषी, लोकविद् (लोकव्यवहारज्ञ), अज्ञानी पुरुषों का दमन करने (सन्मार्ग पर लाने) के लिये अनुपम चाबुकसवार (=सारथि), देव मनुष्यों के शास्ता (=उपदेशक), बुद्ध (ज्ञानी) भगवान् हैं। देव! उस भगवान् के पास चल कर धर्मचर्चा करें। हो सकता है भगवान् के साथ धर्मचर्चा से आप का चित्त प्रमुदित हो उठे।"

९. (यह सुन कर राजा ने आदेश दिया–) "तो सौम्य जीवक! (वहाँ चलने के लिये) हस्तियान (हाथियों की सवारी) तय्यार कराओ।" (यह सुनकर) जीवक कौमारभृत्य ने राजा मागध अजातशत्रु वैदेहिपुत्र को "अच्छा देव! जैसी आप की आज्ञा"–ऐसे उत्तर देकर पाँच सौ हथिनियों के साथ, राजा की सवारी के योग्य एक हाथी को समझ कर राजा अजातशत्रु के पास आकर यों निवेदन किया–"देव! हाथियों के यान तैयार हैं, अब आप जैसा उचित समझें।"

१०. तब राजा मागध अजातशत्रु वैदेहिपुत्र पाँच सौ हथिनियों में से प्रत्येक पर अपनी एक–एक

अथ खो रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुस्स वेदेहिपुत्तस्स अविदूरे अम्बवनस्स अहुदेव भयं, अहु छम्भितत्तं, अहु लोमहंसो। अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु [R.50, B.47] वेदेहिपुत्तो भीतो संविग्गो लोमहट्ठजातो जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—"कच्चि मं, सम्म जीवक, न वञ्चेसि? कच्चि मं, सम्म जीवक, न पलम्भेसि? कच्चि मं, सम्म जीवक, न पच्चत्थिकानं देसि? कथं हि नाम ताव महतो भिक्खुसङ्घस्स अड्ढतेळसानं भिक्खुसतानं नेव खिपितसद्दो भविस्सति न उक्कासितसद्दो न निग्घोसो" ति!

"मा भायि, महाराज; मा भायि, महाराज। न ते, देव, वञ्चेमि। न तं, देव, पलम्भामि। न तं, देव, पच्चत्थिकानं देमि। अभिक्कम, महाराज, अभिक्कम, महाराज। एते मण्डलमाळे दीपा झायन्ती" ति।

११. अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो यावतिका नागस्स भूमि नागेन गन्त्वा, नागा पच्चोरोहित्वा, पत्तिको व येन मण्डलमाळस्स द्वारं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा जीवकं कोमारभच्चं एतदवोच—"कहं पन, सम्म जीवक, भगवा" ति?

"एसो, महाराज, भगवा; एसो, महाराज, भगवा मज्झिमं थम्भं निस्साय [N. 44] पुरत्थाभिमुखो निसिन्नो, पुरक्खतो भिक्खुसङ्घस्सा" ति।

१२. अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो तुण्हीभूतं भिक्खुसङ्घं

रानी को बैठा कर और अपने बैठने योग्य हाथी पर स्वयं सवार हो कर दोनों ओर जलती हुई मशालों (उल्का) के साथ, के राजगृह–राजदरबार से बड़ी भारी राजकीय सज–धज के साथ, जहाँ जीवक कौमारभृत्य का आम्रवन था, उधर चल पड़ा।

तब राजा मागध अजातशत्रु वैदेहिपुत्र को आम्रवन के समीप पहुँचने पर, भय, उद्विग्नता और रोमाञ्च होने लगा। मगधराज अजातशत्रु डरकर, घबराकर, रोमाञ्चप्राप्त जीवक कौमारभृत्य से यों बोला– 'जीवक कौमारभृत्य! कहीं तुम मुझे धोखा तो नहीं दे रहे हो! कहीं तुम मुझे मेरे शत्रुओं के हाथ में तो नहीं दे रहे हो। अरे भाई! यह कैसे सम्भव है कि साढ़े बारह सौ भिक्षुओं के बृहत् सङ्घ के एक साथ रहने पर भी किसी चीज के गिरने की ध्वनि तक न हो रही हो, न खाँसने–थूँकने तक का कोई शब्द सुनायी दे रहा हो।"

(जीवक ने कहा–) "महाराज! आप डरें नहीं! आपको मैं कहीं से भी धोखा नहीं दे रहा! न आप को आपके किसी शत्रु के हाथ ही सौंप रहा हूँ। महाराज! आप आगे बढ़िये तो! देखिये उस मण्डलमाल (मण्डप) में दीपक जल रहे हैं।"

११. तब मगध राजा अजातशत्रु जितनी दूर तक हाथी की सवारी से जाने का मार्ग था वहाँ तक हाथी से जा कर, फिर उस से उतर कर पैदल ही चलकर जहाँ उस आम्रवन के मण्डलमाल का द्वार था, वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने जीवक कौमारभृत्य से पूछा–"सौम्य जीवक! भगवान् कहाँ विराजमान हैं?"

(जीवक बोले–) "महाराज! भगवान् यहाँ विराजमान हैं। महाराज! भगवान् यहाँ भिक्षुसङ्घ को सामने कर बीचवाले खम्भे के सहारे पूर्व दिशा की ओर मुख कर के बैठे हैं।"

१२. तब मागध राजा अजातशत्रु वैदेहिपुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचा। पहुँचकर, एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े राजा अजातशत्रु ने निर्मल जलाशय की भाँति सर्वथा निःशब्द (चुपचाप),

अनुविलोकेत्वा रहदमिव विप्पसन्नं, उदानं उदानेसि— "इमिना मे उपसमेन उदयभद्दो कुमारो समन्नागतो होतु येनेतरहि उपसमनेन भिक्खुसङ्घो समन्नागतो" ति।

"अगमा खो त्वं, महाराज, यथापेमं" ति।

"पियो मे, भन्ते, उदयभद्दो कुमारो। इमिना मे, भन्ते, उपसमेन उदयभद्दो कुमारो समन्नागतो होतु येनेतरहि उपसमेन भिक्खुसङ्घो समन्नागतो" ति।

[R.51] १३. अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो भगवन्तं अभिवादेत्वा, भिक्खुसङ्घस्स [B.48] अञ्जलिं पणामेत्वा, एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच— "पुच्छेय्यामहं, भन्ते, भगवन्तं किञ्चिदेव देसं, सचे मे भगवा ओकासं करोति पञ्हस्स वेय्याकरणाया" ति।

"पुच्छ, महाराज, यदाकङ्खसी" ति।

३. सामञ्ञफलपुच्छा

१४. "यथा नु खो इमानि, भन्ते, पुथुसिप्पायतनानि, सेय्यथिदं— हत्थारोहा अस्सारोहा रथिका धनुग्गहा चेलका चलका पिण्डदायका उग्गा राजपुत्ता पक्खन्दिनो महानागा सूरा चम्मयोधिनो दासिकपुत्ता आळारिका कप्पका न्हापका सूदा मालाकारा रजका पेसकारा, नळकारा कुम्भकारा गणका मुद्दिका, यानि वा पनञ्ञानि पि एवङ्गतानि पुथुसिप्पायतनानि, ते दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सिप्पफलं उपजीवन्ति; ते तेन अत्तानं सुखेन्ति पीणेन्ति, मातापितरो सुखेन्ति पीणेन्ति, पुत्तदारं सुखेन्ति पीणेन्ति, मित्तामच्चे सुखेन्ति पीणेन्ति, समणब्राह्मणेसु

शान्त भिक्षुसङ्घ को देखकर यह प्रीतिमय हृदयोद्गार (उदार) अपने मुख से कहा—"मेरा राजकुमार उदयभद्र भी ऐसी ही शान्ति से युक्त हो, जिस शान्ति से युक्त होकर इस समय यह भिक्षुसङ्घ विराजमान है।"

(राजा को देखकर भगवान् ने कहा—) "महाराज! प्रेमपूर्वक चले आइये।"

"भन्ते! मेरा कुमार उदयभद्र मुझे बहुत प्रिय है, मेरा वह कुमार उदयभद्र भी इसी शान्ति से सम्पन्न हो जाय जिस शान्ति से सम्पन्न होकर आपका यह भिक्षुसङ्घ इस समय विराजमान है।"

१३. तब मागध राजा अजातशत्रु वैदेहीपुत्र भगवान् को अभिवादन कर भिक्षुसङ्घ को हाथ जोड़ते हुए एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे उस मागध राजा अजातशत्रु वैदेहिपुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। यदि आप अनुमति दें तो मैं आप से कुछ पूछूँ।"

"पूछो, महाराज! जो चाहो पूछो।"

३. श्रामण्यफलपृच्छा

१४. भन्ते! लोक में ये भिन्न-भिन्न (पृथक्) शिल्प स्थान (विद्या-कला) हैं; जैसे— हस्त्यारोहण (हाथी की सवारी), अश्वारोहण (घुड़सवारी), रथिक (रथ चलाना), धनुर्ग्रह (धनुष् चलाना), चेलक (युद्ध में ध्वजा उठाना), चलक (व्यूह रचना); पिण्डदायक (पिण्ड बाँटने वाला) उग्र (वीर), राजपुत्र, महानाग (हाथी पर चढ़कर युद्ध करने वाले), शूर (वीर), प्रस्कन्दी (इस सवारी से उस सवारीपर छलांग लगाकर युद्ध करने वाले) ढाल (धर्म) के सहारे लड़ने वाले, दासपुत्र (गुलाम), आलारिक (रसोइया) कल्पक (नाई), स्नापक (स्नान कराने वाला), सूद (पाचक), मालाकार (माली), रजक (धोबी), पेशकार (जुलाहा) नडकार (टोकरी बनाने वाला), कुम्भकार (कुम्हार), गणक (मुनीम), मुद्रिक (मुद्रा बनाने वाला) और जो

उद्धग्गिकं दक्खिणं पतिट्ठपेन्ति सोवग्गिकं सुखविपाकं सग्गसंवत्तनिकं। सक्का नु खो, [N.45] भन्ते, एवमेव दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पञ्ञपेतुं'' ति?

४. छ तित्थियवादा

१५. ''अभिजानासि नो त्वं, महाराज, इमं पञ्हं अञ्ञे समणब्राह्मणे पुच्छिता'' ति?

''अभिजानामहं, भन्ते, इमं पञ्हं अञ्ञे समणब्राह्मणे पुच्छिता'' ति।

''यथा कथं पन ते, महाराज, ब्याकरिंसु, सचे ते अगरु, भासस्सू'' ति।

''न खो मे, भन्ते, गरु, यत्थस्स भगवा निसिन्नो, भगवन्तरूपो वा'' ति।

''तेन हि, महाराज, भासस्सू'' ति। [R. 52]

(१) पूरणकस्सपवादो

१६. ''एकमिदाहं, भन्ते, समयं येन पूरणो कस्सपो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पूरणेन कस्सपेन सद्धिं सम्मोदिं। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिं। एकमन्तं निसिन्नो खो अहं, भन्ते, पूरणं कस्सपं एतदवोचं—'यथा नु खो इमानि, भो [B. 49] कस्सप, पुथुसिप्पायतनानि, सेय्यथिदं—हत्थारोहा अस्सारोहा रथिका धनुग्गहा चेलका चलका पिण्डदायका उग्गा राजपुत्ता पक्खन्दिनो महानागा सूरा चम्मयोधिनो दासिकपुत्ता आळारिका कप्पका न्हापका सूदा मालाकारा रजका पेसकारा नळकारा कुम्भकारा गणका मुद्दिका, यानि वा पनञ्ञानि पि एवङ्गतानि पुथुसिप्पायतनानि, ते दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सिप्पफलं उपजीवन्ति; ते तेन अत्तानं सुखेन्ति पीणेन्ति, मातापितरो सुखेन्ति पीणेन्ति, पुत्तदारं सुखेन्ति पीणेन्ति, मित्तामच्चे सुखेन्ति पीणेन्ति, समणब्राह्मणेसु उद्धग्गिकं दक्खिणं पतिट्ठपेन्ति सोवग्गिकं सुखविपाकं सग्गसंवत्तनिकं। सक्का नु खो, भो कस्सप, एवमेव दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पञ्ञपेतुं' ति?

दूसरे भी इसी प्रकार के पृथक् पृथक् शिल्प हैं उनके सहारे लोग अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, उसके सहारे वे अपने को सुखी रखते हैं प्रसन्न रखते हैं, पुत्र-पुत्रियों को पत्नियों को माता-पिता को मित्र तथा साथियों को सुखी एवं प्रसन्न रखते हैं, श्रमण ब्राह्मणों में उच्च स्थान दिलाने वाला दान स्थापित करते हैं, जो आगे चलकर स्वर्ग को ले जाने वाला, सुख परिणाम वाला और स्वर्ग में उत्पत्ति कराने वाला होता है। भन्ते! क्या ऐसे ही श्रामण्य (भिक्षुभाव) का भी इसी जन्म में कोई प्रत्यक्ष फल बताया जा सकता है?''

४. अन्य छह आचार्यों के मत

१५. ''महाराज! क्या आपने अपने इस प्रश्न का उत्तर दूसरे श्रमण-ब्राह्मण से भी पूछा है?''

''हाँ, भन्ते! इसका उत्तर मैने दूसरे श्रमणब्राह्मणों से भी पूछा है।''

''उन्होंने इस का क्या उत्तर दिया? राजन्! यदि आपको कठिनाई न हो तो उसे हमें भी सुनावें।''

''नहीं, भन्ते! आप जैसे ज्ञानी के सामने उसके कहने में कोई कठिनाई नहीं है।''

''तो महाराज! कहिये।''

(१) पूरण काश्यप का अक्रियवाद— १६. ''भन्ते! एक समय मैं जहाँ पूरण काश्यप थे वहाँ गया। जा कर मैंने पूरण काश्यप के साथ सम्मोदन (नम्रता से कुशलक्षेम पूछना) किया। कुशलक्षेम पूछने के बाद मैं एक ओर बैठ गया। भन्ते! एक और बैठा में पूरण काश्यप से यों बोला— ''भो काश्यप! लोक में से पृथक् पृथक् शिल्पस्थान है, जैसे....पूर्ववत्.... (क्रम सं० १४ के समान) फल बताया जा सकता है।

१७. "एवं वुत्ते, भन्ते, पूरणो कस्सपो मं एतदवोच— 'करोतो खो, महाराज, कारयतो छिन्दतो छेदापयतो पचतो पाचापयतो सोचयतो सोचापयतो किलमतो किलमापयतो फन्दतो [N. 46] फन्दापयतो पाणमतिपातापयतो अदिन्नं आदियतो सन्धिं छिन्दतो निल्लोपं हरतो एकागारिकं करोतो परिपन्थे तिट्ठतो परदारं गच्छतो मुसा भणतो करोतो न करीयति पापं। खुरपरियन्तेन चे पि चक्केन यो इमिस्सा पठविया पाणे एकं मंसखलं एकं मंसपुञ्जं करेय्य, नत्थि ततोनिदानं पापं, नत्थि पापस्स आगमो। दक्खिणं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य हनन्तो घातेन्तो छिन्दन्तो छेदापेन्तो पचन्तो पाचापेन्तो, नत्थि ततोनिदानं पापं, नत्थि पापस्स आगमो। उत्तरं चे पि गङ्गाय तीरं गच्छेय्य ददन्तो दापेन्तो यजन्तो यजापेन्तो, नत्थि ततोनिदानं पुञ्ञं, [R.53] नत्थि पुञ्ञस्स आगमो। दानेन दमेन संयमेन सच्चवज्जेन नत्थि पुञ्ञं, नत्थि पुञ्ञस्स आगमो' ति। इत्थं खो मे, भन्ते, पूरणो कस्सपो सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुट्ठो समानो अकिरियं ब्याकासि। सेय्यथापि, भन्ते, अम्बं वा पुट्ठो लबुजं ब्याकरेय्य, लबुजं वा पुट्ठो अम्बं ब्याकरेय्य; एवमेव खो मे, भन्ते, पूरणो कस्सपो सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुट्ठो समानो अकिरियं ब्याकासि। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि— 'कथं हि नाम मादिसो समणं वा ब्राह्मणं वा विजिते वसन्तं [B.50] अपसादेतब्बं मञ्ञेय्या' ति। सो खो अहं, भन्ते, पूरणस्स कस्सपस्स भासितं नेव अभिनन्दिं नप्पटिक्कोसिं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिकोसित्वा अनत्तमनो, अनत्तमनवाचं अनिच्छारेत्वा, तमेव वाचं अनुग्गण्हन्तो अनिकुज्जन्तो उट्ठायासना पक्कमिं।

---

१७. "(मेरे द्वारा) ऐसा कहे जाने पर पूरण काश्यप मुझसे यों बोले—'महाराज! किसी भी मनुष्य द्वारा कोई कार्य करते कराते, किसी का छेदन करते कराते, पकाते पकवाते, शोक करते कराते, दुःखी करते कराते, चलते चलाते, प्राणि हिंसा करते कराते, विना दिया हुआ लेते (चोरी करते), सेंध लगाते, गाँव लूटते, चोरी करते, बटमारी करते, परस्त्रीगमन (व्यभिचार) करते, झूठ बोलते कोई पाप न किया जाता है, न कराया जाता है। तेज छुरों की धार वाले चक्र से कोई मनुष्य उस पृथ्वी के प्राणियों के मांस का एक खलिहान बना दें, मांस की राशि एकत्र कर दे तो भी इसके कारण उस को किसी तरह का पाप नहीं लगेगा, पाप का आगम (प्राप्ति) नहीं होगा। वह भले ही गङ्गा के दक्षिण किनारे पर जा कर कितने ही प्राणियों का वध करे करावे, उन्हें काटे या कटावे, पकावे या पकवाये, इस के कारण न उसे पाप लगेगा, न किसी पाप का आगम होगा। इसी तरह वहाँ गङ्गा के उत्तरी किनारे पर जाकर दान देते दिलवाते, यज्ञ करते करवाते को भी न कोई पुण्य होगा, न किसी पुण्य का आगम'। यों, भन्ते! मेरे द्वारा श्रामण्य भाव का साक्षात्कार पूछे जाने पर भी उस पूरण काश्यप ने अक्रियवाद का ही व्याख्यान किया। भन्ते! यह तो वैसी ही बात हुई कि जैसे किसी से आम्रफल के विषय में पूछा जाय और वह कटहल के फल का गुण बखान करने लगे। इसी तरह भन्ते! इस पूरण काश्यप ने मेरे द्वारा श्रामण्यभाव का साक्षात् फल पूछने पर अक्रियवाद का व्याख्यान किया। उस समय मुझको उसके विषय में यह विचार आया कि यदि मैं इसे अपने राज्य से निकाल भी दूँ तो मेरे जैसे राजा के लिये शोभा की बात नहीं होगी; क्योंकि अन्ततः है तो यह श्रमण–ब्राह्मण ही। तब लोग मेरी ही निन्दा करेंगे कि 'इतने बड़े, समर्थ होकर भी एक साधारण श्रमण–बाह्मण को अपने राज्य से भगा दिया।' अतः, भन्ते! मैंने उस पूरण काश्यप (की बातें सुन कर भी उन) का न तो किसी प्रकार का अभिनन्दन किया, न ही उसको किसी प्रकार का कटुवचन (निन्दावाक्य) ही कहा। यों, विना किसी अभिनन्दन या प्रतिक्रोश के, असन्तुष्ट होकर, परन्तु विना किसी

(२) मक्खलिगोसालवादो

१८. ''एकमिदाहं, भन्ते, समयं येन मक्खलि गोसालो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा मक्खलिना गोसालेन सद्धिं सम्मोदिं। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिं। एकमन्तं निसिन्नो खो अहं, भन्ते, मक्खलिं गोसालं एतदवोचं— 'यथा नु खो इमानि, भो गोसाल, पुथुसिप्पायतनानि....पे.....सक्का नु खो, भो गोसाल, एवमेव दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पञ्ञपेतुं' ति?

१९. ''एवं वुत्ते, भन्ते, मक्खलि गोसालो मं एतदवोच—'नत्थि, महाराज, [N.47] हेतु, नत्थि पच्चयो सत्तानं सङ्किलेसाय। अहेतू अपच्चया सत्ता सङ्किलिस्सन्ति। नत्थि हेतु, नत्थि पच्चयो सत्तानं विसुद्धिया। अहेतू अपच्चया सत्ता विसुज्झन्ति। नत्थि अत्तकारे, नत्थि परकारे, नत्थि पुरिसकारे, नत्थि बलं, नत्थि विरियं, नत्थि पुरिसथामो, नत्थि पुरिसपरक्कमो। सब्बे सत्ता सब्बे पाणा सब्बे भूता सब्बे जीवा अवसा अबला अविरिया नियति-[R.54] सङ्गतिभावपरिणता, छस्वेवाभिजातीसु सुखदुक्खं पटिसंवेदेन्ति। चुद्दस खो पनिमानि योनिपमुख-सतसहस्सानि सट्ठि च सतानि छ च सतानि, पञ्ञ च कम्मुनो सतानि, पञ्च च कम्मानि तीणि च कम्मानि कम्मे च अड्ढकम्मे च, द्वट्ठिपटिपदा, द्वट्ठन्तरकप्पा, छळाभिजातियो, अट्ठ पुरिसभूमियो, एकूनपञ्ञास आजीवकसते, एकून-पञ्ञास परिब्बाजकसते, एकूनपञ्ञास नागावाससते, वीसे इन्द्रियसते, तिंसे निरयसते, छत्तिंस रजोधातुयो, सत्त सञ्ञीगब्भा, सत्त असञ्ञीगब्भा, सत्त निगण्ठिगब्भा, सत्त देवा, सत्त मानुसा, सत्त पिसाचा, सत्त सरा, सत्त पवुटा, सत्त पवुटसतानि,

---

प्रकार का असन्तोष प्रकट किया जाने वाला वचन कहे ही, उसी की हाँ में हाँ मिलाता हुआ, विना कोई भाव प्रकट करते हुए मैं आसन से उठकर वहाँ से चल दिया।

(२) मक्खलि गोसाल का दैववाद (अहेतुकवाद)– १८. ''फिर एक बार, भन्ते! मैं जहाँ मक्खलि गोसाल था वहा (उसके आश्रम में) गया। वहाँ जाकर, मक्खलि गोसाल से कुशल प्रश्न किया। कुशलक्षेम पूछने के बाद, मैं एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठ कर, भन्ते! मैंने उससे यों पूछा– 'भो गोसाल! लोक में ये पृथक् पृथक् शिल्पस्थान....पूर्ववत्....(क्रम सं० १४ के समान) फल बताया जा सकता है?'

१९. ''(मेरे द्वारा) यों कहे जाने पर, भन्ते! मक्खलि गोसाल ने यह उत्तर दिया–'महाराज! प्राणियों के किसी क्लेश का कोई हेतु नहीं है। विना हेतु या विना प्रत्यय के ही ये प्राणी क्लेश पाते हैं। इसी तरह प्राणियों का क्लेश से छुटकारा पाने का भी न कोई हेतु है न कोई उपाय। विना किसी हेतु या प्रत्यय के वे क्लेशों से छुटकारा भी पा लेते हैं। उससे छुटकारा पाने के लिये न वे स्वयं कुछ कर सकते हैं, न दूसरे ही उनके लिये कुछ (सहायता) कर सकते हैं। कोई पुरुष किसी के लिये कुछ नहीं कर सकता। इसमें किसी का न कोई बल काम आता है न वीर्य न कोई शक्ति (सामर्थ्य) और न कोई पराक्रम ही। क्योंकि सभी सत्त्व, प्राणी, सभी भूत, सभी जीव अपने आप में विवश हैं, निर्बल हैं, वे तो भाग्य और संयोग के बल से छह ऊँची जातियों में उत्पन्न हो हो कर सुख-दुःख भोगते रहते हैं। वे प्रमुख योनियाँ चौदह लाख छयासठ सौ (१४०६६००) हैं, पाँच सौ पाँच (५०५) कर्म, तीन (३) अर्ध कर्म (क्योंकि वे केवल मन से होते हैं, शरीर से नहीं), बासठ (६२) प्रतिपदाएँ (मार्ग), बासठ (६२) अन्तरकल्प, छह (६) अभिजातियाँ, आठ (८) पुरुषभूमियाँ, उनचास सौ (४९००) आजीवक, उनचास सौ (४९००) परिव्राजक, उनचास सौ नाग (सर्प) आवास, बीस सौ (२०००) इन्द्रियाँ, तीस सौ (३०००) नरक, छत्तीस (३६) रजोधातु, सात (७) संज्ञी गर्भ, सात (७) असंज्ञी गर्भ, सात (७) निर्ग्रन्थ गर्भ, सात (७) देव, सात (७) मनुष्य, सात (७)

[B.51] सत्त पपाता, सत्त पपातसतानि, सत्त सुपिना, सत्त सुपिनसतानि, चुल्लासीति महाकप्पिनो सतसहस्सानि यानि बाले च पण्डिते च सन्धावित्वा संसरित्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति। तत्थ नत्थि इमिनाहं सीलेन वा वतेन वा तपेन वा ब्रह्मचरियेन वा अपरिपक्कं वा कम्मं परिपाचेस्सामि, परिपक्कं वा कम्मं फुस्स फुस्स ब्यन्ति करिस्सामी ति। हेवं नत्थि दोणमिते सुखदुक्खे परियन्तकते संसारे, नत्थि हायनवड्ढने, नत्थि उक्कंसावकंसे। सेय्यथापि नाम सुत्तगुळे खित्ते निब्बेठियमानमेव पलेति, एवमेव बाले च पण्डिते च सन्धावित्वा संसरित्वा दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ती' ति।

२०. "इत्थं खो मे, भन्ते, मक्खलि गोसालो सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुट्ठो समानो संसारसुद्धिं ब्याकासि। सेय्यथापि, भन्ते, अम्बं वा पुट्ठो लबुजं ब्याकरेय्य, लबुजं वा पुट्ठो [N.48] अम्बं ब्याकरेय्य, एवमेव खो मे, भन्ते, मक्खलि गोसालो सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुट्ठो समानो संसारसुद्धिं ब्याकासि। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि— 'कथं हि नाम मादिसो [R. 55] समणं वा ब्राह्मणं वा विजिते वसन्तं अपसादेतब्बं मञ्ञेय्या' ति। सो खो अहं, भन्ते, मक्खलिस्स गोसालस्स भासितं नेव अभिनन्दिं नप्पटिक्कोसिं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा अनत्तमनो, अनत्तमनवाचं अनिच्छारेत्वा, तमेव वाचं अनुग्गण्हन्तो अनिक्कुज्जन्तो उट्ठायासना पक्कमिं।

(३) अजितकेसकम्बलवादो

२१. "एकमिदाहं, भन्ते, समयं येन अजितो केसकम्बलो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा अजितेन केसकम्बलेन सद्धिं सम्मोदिं। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिं। एकमन्तं निसिन्नो खो अहं, भन्ते, अजितं केसकम्बलं एतदवोचं— 'यथा नु खो इमानि, भो अजित, पुथुसिप्पायतनानि....पे०.... सक्का नु खो, भो अजित, एवमेव दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पञ्ञपेतुं' ति?

पिशाच, सात (७) स्वर, सात सौ सात (७०७) ग्रन्थियाँ (पवुट), सात सौ सात (७०७) प्रपात, सात सौ सात (७०७) स्वप्न, और अस्सी लाख (८००००००) छोटे (क्षुद्र) एवं बड़े (महान्) कंल्प हैं, जिन्हें मूर्ख और पण्डित जन उन तक जाकर पहुँच कर दुःखों का अन्त कर सकेंगे। वहाँ यह नहीं है कि इस शील व्रत या तप अथवा ब्रह्मचर्य के सहारे मैं अपरिपक्व कर्म को परिपक्व करूँगा या परिपक्व कर्म भोग कर उस का नाश करूँगा। सुख और दुःख तो द्रोण (नाप) से तुले हुए हैं। संसार में उनका घटना-बढ़ना या उत्कर्ष-अपकर्ष नहीं हुआ करता। जैसे कि सूत का गोला दूर फैंकने पर उधरता (खुलता) हुआ ही गिरता है उसी तरह मूर्खों को भी पण्डितों को भी संसरण कर आवागमन में पड़ कर ही दुःखों का अन्त करना होगा।'

२०. "भन्ते! इस तरह उस मक्खलि गोसाल ने मेरे द्वारा श्रामण्य भाव का प्रत्यक्ष फल पूछने पर मुझ पर यह संसार-शुद्धि का प्रवचन उसी तरह झाड़ दिया, जैसे भन्ते! किसी से आम्रफल के विषय में पूछा जाय और वह कटहल के विषय में बताने लगे। उसके विषय में भी मुझ को यही विचार आया कि यदि मैं ऐसे जीव श्रमण-ब्राह्मण को अपने राज्य से देश-निकाला दे दूँ तो लोग मुझे ही तरह-तरह से बुरा-भला कहेंगे। यह तो फिर भी अपनी मूर्खता को छोड़ेगा नहीं। अतः, भन्ते! मैं उस मक्खलि गोसाल के कथन का अभिनन्दन या निन्दन-कुछ भी न करता हुआ वहाँ से आसन से उठ कर चल दिया।

(३) अजित केसकम्बल का उच्छेदवाद—२१. "भन्ते! एक समय मैं जहाँ अजित केशकम्बल था वहाँ पहुँचा। पहुँच कर उससे कुशल-क्षेम पूछा। कुशल-क्षेम पूछने के बाद मैं एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे हुए

२२. ''एवं वुत्ते, भन्ते, अजितो केसकम्बलो मं एतदवोच— 'नत्थि, महाराज, दिन्नं, नत्थि यिट्ठं, नत्थि हुतं, नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको, नत्थि अयं लोको, नत्थि परो लोको, नत्थि माता, नत्थि पिता, नत्थि सत्ता ओपपातिका, नत्थि लोके समणब्राह्मणा सम्मग्गता सम्मापटिपन्ना ये इमं च लोकं परं च लोकं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा [B.52] पवेदेन्ति। चातुमहाभूतिको अयं पुरिसो यदा कालं करोति, पठवी पठविकायं अनुपेति अनुपगच्छति, आपो आपोकायं अनुपेति अनुपगच्छति, तेजो तेजोकायं अनुपेति अनुपगच्छति, वायो वायोकायं अनुपेति अनुपगच्छति, आकासं इन्द्रियानि सङ्कमन्ति। आसन्दिपञ्चमा पुरिसा मतं आदाय गच्छन्ति। यावाळाहना पदानि पञ्ञायन्ति। कापोतकानि अट्ठीनि भवन्ति। भस्सन्ता आहुतियो। दत्तुपञ्ञत्तं यदिदं दानं। तेसं तुच्छं मुसा विलापो ये केचि अत्थिकवादं वदन्ति। बाले च पण्डिते च कायस्स भेदा उच्छिज्जन्ति विनस्सन्ति, न होन्ति परं मरणा' ति।

२३. ''इत्थं खो मे, भन्ते, अजितो केसकम्बलो सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुट्ठो समानो उच्छेदं ब्याकासि। सेय्यथापि, भन्ते, अम्बं वा पुट्ठो लबुजं ब्याकरेय्य, लबुजं [N. 49, R. 56] वा पुट्ठो अम्बं ब्याकरेय्य; एवमेव खो मे, भन्ते, अजितो केसकम्बलो सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुट्ठो समानो उच्छेदं ब्याकासि। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि— 'कथं हि नाम मादिसो समणं वा ब्राह्मणं वा विजिते वसन्तं अपसादेतब्बं मञ्ञेय्या' ति। सो खो अहं, भन्ते, अजितस्स केसकम्बलस्स भासितं नेव अभिनन्दिं नप्पटिक्कोसिं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा अनत्तमनो, अनत्तमनवाचं अनिच्छारेत्वा, तमेव वाचं अनुग्गण्हन्तो अनिक्कुज्जन्तो, उट्ठायासना पक्कमिं।

मैने, भन्ते! अजितकेशसम्बल से भी वही प्रश्न किया कि 'भो अजित! लोक में ये पृथक् पृथक् शिल्पस्थान ....पूर्ववत्.... फल बताया जा सकता है?'

२२. ऐसा पूछे जाने पर, अजित केशकम्बल ने मुझ का इसका उत्तर यों दिया—'महाराज! न यहाँ कोई दान है, न यज्ञ, न हवन, न कोई किये हुए पुण्य-पाप का अच्छा-बुरा फल। न यह लोक है न परलोक, न माता न पिता, न अयोनिज (औपपातिक) देव न लोक में कोई ऐसा श्रमण है न ब्राह्मण जो ज्ञानी हो, समर्थ हो और जो इस लोक और परलोक की वास्तविकता स्वयं जान कर साक्षात् कर बता सके। यह मानव शरीर चार महाभूतों से मिल कर बना है। इस का जब पात होता है तब पृथ्वी महापृथ्वी में लीन हो जाती है, जल महाजल में...., तेज महातेज में...., वायु महावायु में.... और इन्द्रियाँ महाकाश में लीन हो जाती है। इस मृत देह को चार लोग चौकी (आसनी) पर लिटा कर ले जाते हैं। दाहक्रिया (आदाहन) तक उसकी निन्दा-प्रशंसा (पदानि) सीमित है। जलने पर उस की हड्डियाँ कबूतर के पंखों की तरह उजली हो कर बिखर जाती हैं। इस से तो यही सिद्ध होता है कि यज्ञादि में किया हुआ हवन (आहुति) शरीर के भस्म होने तक ही साथ देता है। और यह नानविध दान भी दाता के अस्तित्व पर ही निर्भर है। (जब दाता ही नहीं रहा तो इस दान का फल कौन लेगा!) इतने पर भी जो पण्डित जन परलोकवाद (आस्तिकवाद) का समर्थन करते हैं तो यह उनका तुच्छ एवं मिथ्या प्रलाप ही माना जायगा, क्योंकि सचाई तो यह है कि सभी मानव, भले ही वे विद्वान् हों या मूर्ख, उन के देहपात के बाद वे भी उच्छिन्न हो जाते हैं, विनष्ट हो जाते हैं। मरने के बाद कहीं कुछ नहीं रहता।

२३. "भन्ते! मेरे द्वारा अजित केशकम्बल से श्रामण्य भाव के प्रत्यक्ष फल विषयक प्रश्न करने पर उसने वही बात की जैसे कोई आम के विषय में पूछने पर कटहल के बारे में बताने लगे। भन्ते! उसने

(४) पकुधकच्चायनवादो

२४. ''एकमिदाहं, भन्ते, समयं येन पकुधो कच्चायनो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा पकुधेन कच्चायनेन सद्धिं सम्मोदिं। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिं। एकमन्तं निसिन्नो खो अहं, भन्ते, पकुधं कच्चायनं एतदवोचं— 'यथा नु खो इमानि, भो कच्चायन, पुथुसिप्पायतनानि....पे०.... सक्का नु खो, भो कच्चायन, एवमेव दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पञ्ञपेतुं' ति?

२५. ''एवं वुत्ते, भन्ते, पकुधो कच्चायनो मं एतदवोच— 'सत्तिमे, महाराज, काया अकटा अकटविधा अनिम्मिता अनिम्माता वञ्झा कूटट्ठा एसिकट्ठायिट्ठिता। ते न इञ्जन्ति, [B.53] न विपरिणामेन्ति, न अञ्ञमञ्ञं ब्याबाधेन्ति, नालं अञ्ञमञ्ञस्स सुखाय वा दुक्खाय वा सुखदुक्खाय वा। कतमे सत्त? पठविकायो, आपोकायो, तेजोकायो, वायोकायो, सुखे, दुक्खे, जीवे सत्तमे— इमे सत्त काया अकटा अकटविधा अनिम्मिता अनिम्माता वञ्झा कूटट्ठा एसिकट्ठायिट्ठिता। ते न इञ्जन्ति, न विपरिणामेन्ति, न अञ्ञमञ्ञं ब्याबाधेन्ति, नालं अञ्ञमञ्ञस्स सुखाय वा दुक्खाय वा सुखदुक्खाय वा। तत्थ नत्थि हन्ता वा घातेता वा सोता वा सावेता वा विञ्ञाता वा विञ्ञापेता वा। यो पि तिण्हेन सत्थेन सीसं छिन्दति, न कोचि किञ्चि जीविता वोरोपेति; सत्तन्नं त्वेव कायानमन्तरेन सत्थं विवरमनुपतती' ति।

[R.57] २६. ''इत्थं खो मे, भन्ते, पकुधो कच्चायनो सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुट्ठो समानो अञ्ञेन अञ्ञं ब्याकासि। सेय्यथापि, भन्ते, अम्बं वा पुट्ठो लबुजं ब्याकरेय्य, लबुजं वा पुट्ठो [N.50] अम्बं ब्याकरेय्य; एवमेव खो मे, भन्ते, पकुधो कच्चायनो सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुट्ठो समानो अञ्ञेन अञ्ञं ब्याकासि। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि— 'कथं हि नाम मादिसो समणं वा ब्राह्मणं वा विजिते वसन्तं अपसादेतब्बं मञ्ञेय्या' ति। सो खो अहं, भन्ते पकुधस्स

मेरे श्रामण्य भाव के प्रत्यक्ष फल विषयक प्रश्न के उत्तर में उच्छेदवाद पर प्रवचन प्रारम्भ कर दिया। उस के विषय में मुझको विचार आया .... पूर्ववत् .... (क्रम सं० २०) आसन से उठ कर चल दिया।

(४) प्रकुध कात्यायन का अकृतवाद– २४. ''भन्ते! एक समय मैं जहाँ प्रकुध कात्यायन था वहाँ गया। .... पूर्ववत् .... (क्रम सं० १६) श्रमणभाव के पालन का प्रत्यक्ष फल क्या है?

२५. ''भन्ते! मेरे द्वारा ऐसा पूछने पर, प्रकुध कात्यायन मुझको यों बोला–''महाराज! यहाँ ये सात काय (समूह) अकृत, अकृत के समान, अनिर्मित, निर्माणरहित, अवन्ध्य, कूटस्थ एवं स्तम्भवत् अचल (ऐसिकट्ठायिट्ठित) हैं। ये न चल हैं, न किसी विकार (विपरिणाम) को प्राप्त होते हैं, न एक–दूसरे को कोई हानि पहुँचाते हैं, न ये परस्पर सुख या दुःख या सुख–दुःख देने में ही समर्थ हैं। कौन से सात? १. पृथ्वीकाय, २. अप्काय, तेजःकाय, वायुकाय, सुख,दुःख एवं सातवाँ जीव। ये सात काय (समूह) अकृत .... पूर्ववत्.... स्तम्भवत् अचल हैं। ये न चलते हैं .... सुख–दुःख देने में समर्थ हैं। वहाँ न कोई हन्ता (मारने वाला) है, न कोई हनन कराने वाला (घातयिता), न कोई श्रोता, न सुनाने वाला (श्रावयिता); न जानने वाला (ज्ञाता) हैं न जनाने वाला (विज्ञापयिता)। इस स्थिति में जो कोई तीक्ष्ण शस्त्र से किसी का शिर भी काट ले तो भी वह किसी को प्राणों से विहीन नहीं करता; क्यों कि वह शस्त्र तो इन उपर्युक्त सातों कार्यों से पृथक् विवर (रिक्त स्थान) में गिरता है।'

२६. ''इस प्रकार, भन्ते! प्रकुध कात्यायन (भी) श्रमणभाव के प्रत्यक्षफलविषयक प्रश्न पूछे जाने

कच्चायनस्स भासितं नेव अभिनन्दिं नप्पटिक्कोसिं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा अनत्तमनो, अनत्तमनवाचं अनिच्छारेत्वा, तमेव वाचं अनुग्गण्हन्तो अनिकुज्जन्तो, उट्ठायासना पक्कमिं।

(५) निगण्ठनाटपुत्तवादो

२७. "एकमिदाहं, भन्ते, समयं येन निगण्ठो नाटपुत्तो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा निगण्ठेन नाटपुत्तेन सद्धिं सम्मोदिं। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिं। एकमन्तं निसिन्नो खो अहं, भन्ते, निगण्ठं नाटपुत्तं एतदवोचं— 'यथा नु खो इमानि, भो अग्गिवेस्सन, पुथुसिप्पायतनानि....पे०....सक्का नु खो, भो अग्गिवेस्सन, एवमेव दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पञ्ञपेतुं' ति?

२८. "एवं वुत्ते, भन्ते, निगण्ठो नाटपुत्तो मं एतदवोच— 'इध, महाराज, [B.54] निगण्ठो चातुयामसंवरसंवुतो होति। कथं च, महाराज, निगण्ठो चातुयामसंवरसंवुतो होति? इध, महाराज, निगण्ठो सब्बवारिवारितो च होति, सब्बवारियुत्तो च, सब्बवारिधुतो च, सब्बवारिफुटो च। एवं खो, महाराज, निगण्ठो चातुयामसंवरसंवुतो होति। यतो खो, महाराज, निगण्ठो एवं चातुयामसंवरसंवुतो होति; अयं वुच्चति, महाराज, निगण्ठो गतत्तो च यतत्तो च ठितत्तो चा' ति।

२९. "इत्थं खो मे, भन्ते, निगण्ठो नाटपुत्तो सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुट्ठो [R.58] समानो चातुयामसंवरं ब्याकासि। सेय्यथापि, भन्ते, अम्बं वा पुट्ठो लबुजं ब्याकरेय्य, लबुजं वा पुट्ठो अम्बं ब्याकरेय्य; एवमेव खो मे, भन्ते, निगण्ठो नाटपुत्तो सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुट्ठो समानो चातुयामसंवरं ब्याकासि। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि— 'कथं हि नाम मादिसो समणं वा ब्राह्मणं वा विजिते वसन्तं अपसादेतब्बं मञ्ञेय्या' ति। सो खो अहं, भन्ते, निगण्ठस्स नाटपुत्तस्स भासितं नेव अभिनन्दिं नप्पटिक्कोसिं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा [N.51] अनत्तमनो, अनत्तमनवाचं अनिच्छारेत्वा, तमेव वाचं अनुग्गण्हन्तो अनिक्कुज्जन्तो, उट्ठायासना पक्कमिं।

पर .... पूर्ववत् .... दूसरा ही दूसरा उत्तर देता रहा। तब मुझे यह विचार आया.... पूर्ववत् .... आसन से उठ कर चल दिया।

(५) निगण्ठ नाटपुत्त का चातुर्यामसंवरवाद–२७. "भन्ते! एक समय (एकमिदा=एकदा) मैं जहाँ निगण्ठ नाटपुत्त थे वहाँ गया। .... श्रमणभाव–पालन का प्रत्यक्ष फल बताया जा सकता है?'

२८. "ऐसा कहने पर, भन्ते! निगण्ठ नाटपुत्त ने मुझको यह उत्तर दिया–'महाराज! यहाँ कोई भी निर्ग्रन्थ (निगण्ठ=जैन साधु) चार संवारों (संयमों) से संवृत (आच्छादित) रहता है। महाराज! वह निगण्ठ संवरों से कैसे संवृत रहता है? यहाँ, महाराज! कोई भी निगण्ठ १. जल के व्यवहार का अधिक से अधिक वारण करता है, (ताकि जल में रहने वाले सूक्ष्म जीवों का हनन न हो), २. सभी प्रकार के पापों को धो डालने में तत्पर रहता है, ३. सभी प्रकार के पापों के निवारण से धुतपाप (पापरहित) होता है, ४. और भविष्य में होने वाले(सम्भाव्य) पापों के निवारण करने में लगा रहता है। महाराज! इस प्रकार निगण्ठ चार संवरों से संवृत रहता है। इसीलिये लोक में इस निगण्ठ को संसार के विषयों के प्रति अनिच्छुक *(गतत्तो)*, संयमी *(यतत्तो)*, और स्थिरवृत्ति *(ठितत्तो)* कहा जाता है।

२९. "इस तरह, भन्ते! मेरे द्वारा श्रमणभाव के प्रत्यक्षफल विषयक प्रश्न का उत्तर निगण्ठनाटपुत्त

(६) सञ्जयबेलट्ठपुत्तवादो

३०. ''एकमिदाहं, भन्ते, समयं येन सञ्जयो बेलट्ठपुत्तो तेनुपसङ्कमिं; उपसङ्कमित्वा सञ्जयेन बेलट्ठपुत्तेन सद्धिं सम्मोदिं। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिं। एकमन्तं निसिन्नो खो अहं, भन्ते, सञ्जयं बेलट्ठपुत्तं एतदवोचं—'यथा नु खो इमानि, भो सञ्जय, पुथुसिप्पायतनानि....पे... सक्का नु खो, भो सञ्जय, एवमेव दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पञ्ञपेतुं' ति?

३१. ''एवं वुत्ते, भन्ते, सञ्जयो बेलट्ठपुत्तो मं एतदवोच—'अत्थि परो लोको ति इति चे मं पुच्छसि, अत्थि परो लोको ति इति चे मे अस्स, अत्थि परो लोको ति इति ते नं ब्याकरेय्यं। एवं ति पि मे नो, तथा ति पि मे नो, अञ्ञथा ति पि मे नो, नो ति पि मे नो, [B.55] नो नो ति पि मे नो। नत्थि परो लोको....पे०....अत्थि च नत्थि च परो लोको....पे०....नेवत्थि न नत्थि परो लोको....पे०....। अत्थि सत्ता ओपपातिका....पे०....नत्थि सत्ता ओपपातिका....पे०....अत्थि च नत्थि च सत्ता ओपपातिका....पे०....नेवत्थि न नत्थि सत्ता ओपपातिका.....पे०....। अत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको....पे०....नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको....पे०....अत्थि च नत्थि च सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको....पे०....नेवत्थि न नत्थि सुकतदुक्कटानं कम्मानं फलं विपाको....पे०....। होति [R. 59] तथागतो परं मरणा....पे०.... न होति तथागतो परं मरणा....पे०....होति च न होति च तथागतो परं मरणा....पे०.... नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति इति चे मं पुच्छसि, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति इति चे मे अस्स, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति इति ते नं ब्याकरेय्यं। एवं ति पि मे नो, तथा ति पि मे नो, अञ्ञथा ति पि मे नो, नो ति पि मे नो, नो नो ति पि मे नो' ति।

३२. ''इत्थं खो मे, भन्ते, सञ्जयो बेलट्ठपुत्तो सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुट्ठो समानो विक्खेपं ब्याकासि। सेय्यथापि, भन्ते, अम्बं वा पुट्ठो लबुजं ब्याकरेय्य, लबुजं वा पुट्ठो अम्बं

ने अपना चातुर्यामसंवर सिद्धान्त सुना कर दिया। जैसे, भन्ते! कोई आम .... मैं आसन से उठ कर चल दिया।

(६) सञ्जयवेलट्ठिपुत्त का अनिश्चिततावाद—३०. ''एक समय, भन्ते! मैं जहाँ सञ्जय वेलट्ठपुत्त था, वहाँ गया। जाकर मैने सञ्जय वेलट्ठपुत्त के साथ ....पूर्ववत् ....श्रामण्य भाव का प्रत्यक्ष फल बताया जा सकता है?'

३१. ''ऐसा कहे जाने पर सञ्जय वेलट्ठपुत्त ने मुझ से यों कहा—'महाराज! यदि आप पूछें कि क्या परलोक हैं? और यदि मैं समझूँ कि परलोक है, तभी न मैं आप को बताऊँ कि परलोक है। परन्तु मैं ऐसा भी नहीं कहता, मैं वैसा भी नहीं कहता, मैं अन्यथा (दूसरी तरह से) भी नहीं कहता, मैं यह भी नहीं कहता कि यह नहीं हैं, मैं यह भी नहीं कहता कि यह नहीं नहीं है। परलोक नहीं हैं, ... परलोक है भी और नहीं भी .... परलोक न है न नहीं है ....। अयोनिज (औपपातिक) सत्त्व प्राणी हैं .... अयोनिज प्राणी नहीं है .... हैं भी और नहीं भी, न है न नहीं है ....। अच्छे बुरे कर्मों का फल है .... नहीं है .... है भी और नहीं भी है .... न नहीं हैं, न नहीं नहीं ही है। तथागत मरने के बाद होते हैं .... नहीं होते हैं ....और यदि आप मुझ से ऐसा पूछे और मैं ऐसा समझूँ कि मरने के बाद तथागत न रहते हैं और न नहीं रहते तो मैं आपको ऐसा कहूँ। परन्तु महाराज! मैं ऐसा भी नहीं कहता मैं वैसा भी नहीं कहता ....।'

ब्याकरेय्य; एवमेव खो मे, भन्ते, सञ्जयो बेलट्ठपुत्तो सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुट्ठो समानो विक्खेपं ब्याकासि। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि— 'अयं च इमेसं समणब्राह्मणानं सब्बबालो सब्बमूळ्हो। कथं हि नाम सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुट्ठो समानो विक्खेपं ब्याकरिस्सती' ति। तस्स मय्हं, भन्ते, एतदहोसि—'कथं हि नाम मादिसो समणं वा ब्राह्मणं वा विजिते [N.52] वसन्तं अपसादेतब्बं मञ्ञेय्या' ति। सो खो अहं, भन्ते, सञ्जयस्स बेलट्ठपुत्तस्स भासितं नेव अभिनन्दिं नप्पटिक्कोसिं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा अनत्तमनो, अनत्तमनवाचं अनिच्छारेत्वा, तमेव वाचं अनुग्गण्हन्तो अनिक्कुज्जन्तो, उट्ठायासना पक्कमिं।

५. बुद्धवादो

(१) पठमसन्दिट्ठिकसामञ्ञफलं

३३. ''सोहं, भन्ते, भगवन्तं पि पुच्छामि— 'यथा नु खो, इमानि, भन्ते, पुथुसिप्पायतनानि, सेय्यथिदं—हत्थारोहा अस्सारोहा रथिका धनुग्गहा चेलका चलका [B.56] पिण्डदायका उग्गा राजपुत्ता पक्खन्दिनो महानागा सूरा चम्मयोधिनो दासिकपुत्ता आळारिका कप्पका न्हापका सूदा मालाकारा रजका पेसकारा नळकारा कुम्भकारा गणका मुद्दिका, यानि वा पनञ्ञानि पि एवंगतानि पुथुसिप्पायतनानि, ते दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सिप्पफलं उपजीवन्ति, ते तेन अत्तानं सुखेन्ति पीणेन्ति, मातापितरो सुखेन्ति पीणेन्ति, पुत्तदारं सुखेन्ति पीणेन्ति, मित्तामच्चे सुखेन्ति पीणेन्ति, समणब्राह्मणेसु उद्धग्गिकं दक्खिणं पतिट्ठपेन्ति सोवग्गिकं सुखविपाकं सग्गसंवत्तनिकं। सक्का नु खो, भन्ते, एवमेव दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं [R.60] सामञ्ञफलं पञ्ञपेतुं' '' ति?

३४.''सक्का, महाराज। तेन हि, महाराज, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा तं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध ते अस्स पुरिसो दासो कम्मकारो पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी मुखुल्लोकको। तस्स एवमस्स— 'अच्छरियं, वत भो, अब्भुतं वत भो, पुञ्ञानं गति पुञ्ञानं विपाको! अयं हि राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो मनुस्सो, अहं पि मनुस्सो। अयं हि राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो

---

३२. ''भन्ते! मेरे द्वारा ऐसे पूछे जाने पर सञ्जय वेलट्ठपुत्त ने कोई निश्चित बात नहीं की। .... भन्ते! तब मैने सोचा .... मैं आसन से उठ कर चल दिया।

५. बुद्धवाद

१. श्रमणभाव का प्रथम प्रत्यक्ष फल–३३. ''तो मैं, भन्ते! अब मैं आप से भी पूछता हूँ कि भन्ते! लोक में ये भिन्न–भिन्न शिल्पस्थान .... पूर्ववत् ...(क्रम सं०१४) क्या इसी तरह श्रामण्य (भिक्षुभाव) का भी कोई प्रत्यक्ष (इसी जन्म में होने वाला) फल बताया जा सकता है?

३४. ''हाँ, महाराज! बताया जा सकता है। तो महाराज! मैं आपसे ही पूछता हूँ, जैसा आपको उचित समझ में आवे वैसा उत्तर दें। तो क्या मानते हो, महाराज ! यहाँ आप का ऐसा दास (नौकर) हो जो आपके समग्र कार्य करता हो, आपके कहने के पूर्व ही वह आपके सभी कार्य कर चुकता हो, आपके सोने या बैठने के बाद ही स्वयं सोता बैठता हो, आपकी आज्ञा सुनने के लिये सदा तत्पर रहता हो *(किङ्कारपटिस्सावी)* प्रिय आचरण करने वाला, प्रिय बोलने वाला और आपकी आज्ञाओं को सुनने हेतु

पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेति, देवो मञ्ञे। अहं पनम्हिस्स दासो कम्मकारो पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी मुखुल्लोकको। सो वतस्साहं पुञ्ञानि करेय्यं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा [N.53] अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति। सो अपरेन समयेन केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्य। सो एवं पब्बजितो समानो कायेन संवुतो विहरेय्य, वाचाय संवुतो विहरेय्य, मनसा संवुतो विहरेय्य, घासच्छादनपरमताय सन्तुट्ठो, अभिरतो पविवेके। तं चे ते पुरिसा एवमारोचेय्युं—'यग्घे, देव, जानेय्यासि, यो ते सो पुरिसो दासो कम्मकारो पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी मुखुल्लोकको; सो, देव, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। [B.57] सो एवं पब्बजितो समानो कायेन संवुतो विहरति, वाचाय संवुतो विहरति, मनसा संवुतो विहरति, घासच्छादनपरमताय सन्तुट्ठो, अभिरतो पविवेके' ति। अपि नु त्वं एवं वदेय्यासि—'एतु मे, भो, सो पुरिसो पुनदेव होतु दासो कम्मकारो पुब्बुट्ठायी पच्छानिपाती किङ्कारपटिस्सावी मनापचारी पियवादी मुखुल्लोकको' '' ति?

[R.61] ३५. ''नोहेतं, भन्ते। अथ खो नं मयमेव अभिवादेय्याम पि, पच्चुट्ठेय्याम पि, आसनेन पि निमन्तेय्याम, अभिनिमन्तेय्याम पि नं चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेहि, धम्मिकं पिस्स रक्खावरणगुत्तिं संविदहेय्यामा'' ति।

सदा आप के मुख की ओर देखता रहता हो *(मुखुल्लोकको)*, उस दास के मन में यह विचार उठे—'पुण्य की गति और पुण्य का फल अत्यन्त अद्भुत और आश्चर्यमय है। यह मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र भी मनुष्य ही है और मैं भी मनुष्य ही हूँ। यह वैदेहिपुत्र मगधराज अजातशत्रु पाँच प्रकार के भोगों (कर्मगुणों) का देवताओं की तरह मनचाहा उपभोग करते हैं और एक मैं हूँ कि उनके सभी कार्यों को उनकी आज्ञा के पूर्व ही पूरा करने को तत्पर रहता हूँ .... प्रतिक्षण उनके किसी भी आदेश को सुनने के उनका मुख देखता रहता हूँ। तो क्यों न मैं भी इसी की तरह पुण्य करूँ। तों मैं अब ऐसा करता हूँ कि शिर और दाढ़ी मुँडवा कर काषाय, वस्त्र धारण कर, घर से बेघर हो प्रव्रजित हो जाऊँ'। उसके बाद वह (दास) दूसरे किसी समय शिर और दाढ़ी के बाल मुँढवा कर काषाय वस्त्र धारण घर से बेघर हो, प्रव्रज्या की दीक्षा ले ले। वह इस प्रकार प्रव्रज्या (संन्यास) की दीक्षा ले कर शरीर,मन, वचन, से संयत रहता हुआ धर्मसाधना करता हुआ साधारण खाना—पान, ओढ़ने पहनने से सन्तुष्ट रहे और निरन्तर संसार से वैराग्य (प्रविवेक)चित्त ही रहे। उसके विषय में आपके अन्य सेवक कभी आप को बतावें —'देव! आप जानते हैं कि नहीं कि आप का अमुक दास जो कभी आपकी सेवा में तत्पर रहता था .... देव आज वह शिर और दाढ़ी के बाल .... संसार से विरक्तचित्त हो चुका है।' तो क्या आप उस पुरुष को यह आज्ञा देंगे कि 'जाओ, उस पुरुष को पकड़ लाओ। और वह पुनः हमारा पूर्ववत् आज्ञापालक .... एवं मुखोल्लोकक रहे'?''

३५. ''नहीं, भन्ते! इसके विपरीत हम ही उसे प्रणाम करेंगे, उसको प्रत्युत्थान (उसके आने पर खड़े होना) करेंगे, घर आने पर उसे ऊँचे आसन पर बैठायँगे, उसे वस्त्र, भिक्षा, शयन, आसन, एवं भेषजदान आदि के लिये आमन्त्रित करेंगे। और वह निरन्तर यथावत् धर्मसाधना करता रहे—एतदर्थ उसकी रक्षा (रक्खावरणगुत्ति) का प्रबन्ध करेंगे।''

३६. ''तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदि एवं सन्ते होति वा सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं नो वा'' ति? ''अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते होति सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं'' ति।

''इदं खो ते, महाराज, मया पठमं दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पञ्ञत्तं'' ति। (१)

(२) दुतियसन्दिट्ठिकसामञ्ञफलं

३७. ''सक्का पन, भन्ते, अञ्ञं पि एवमेव दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पञ्ञपेतुं'' ति? ''सक्का, महाराज। तेन हि, महाराज, तञ्ञेवेत्थ पटिपुच्छिस्सामि। यथा ते खमेय्य तथा नं ब्याकरेय्यासि। तं किं मञ्ञसि, महाराज, इध ते अस्स पुरिसो कस्सको गहपतिको करकारको रासिवड्ढको। तस्स एवमस्स—'अच्छरियं वत भो, अब्भुतं वत भो, पुञ्ञानं गति, पुञ्ञानं विपाको! अयं हि राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो मनुस्सो, अहं पि मनुस्सो। अयं हि राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितो समङ्गीभूतो परिचारेति, देवो मञ्ञे। अहं पनम्हिस्स कस्सको गहपतिको करकारको रासिवड्ढको। [N.54] सो वतस्साहं पुञ्ञानि करेय्यं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति।

''सो अपरेन समयेन अप्पं वा भोगक्खन्धं पहाय महन्तं वा भोगक्खन्धं पहाय, अप्पं वा ञातिपरिवट्टं पहाय महन्तं वा ञातिपरिवट्टं पहाय केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि [B.58] वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्य। सो एवं पब्बजितो समानो कायेन संवुतो विहरेय्य, वाचाय संवुतो विहरेय्य, मनसा संवुतो विहरेय्य, घासच्छादनपरमताय सन्तुट्ठो, अभिरतो पविवेके। तं चे ते पुरिसा एवमारोचेय्युं—'यग्घे, देव जानेय्यासि, यो ते सो पुरिसो

३६.''तो क्या मानते हो, महाराज! ऐसा होने पर इस श्रमणभाव का यह(लोकसम्मान) प्रथम प्रत्यक्ष फल हुआ कि नहीं?'' ''अवश्य, भन्ते! ऐसा होने पर तो श्रमण–भाव–पालन करने का फल यहीं आँखों के सामने मिल रहा है।''

''महाराज! यह तो मैने श्रमणभाव पालन का पहला ही फल बतलाया जो कि यहीं आखों के सामने मिल जाता है। (१)

२. श्रमण भाव का द्वितीय प्रत्यक्ष फल–३७.''तो क्या, भन्ते! और भी कोई इस श्रमणभाव के पालन का प्रत्यक्ष फल बताया जा सकता है?'' ''हाँ, महाराज! बताया जा सकता है। यहाँ भी मैं पहले तुम्हीं से पूछना चाहता हूँ। जैसा तुम्हें उचित लगे मेरे प्रश्न का उत्तर देना। तो क्या मानते हो, महाराज! आप (के राज्य) का कोई ऐसा धनिक किसान हो जो आपको कर देता हो, और इस तरह कर देकर आपके कोष की वृद्धि करता हो। उसके मन में कभी विचार उठे–'यह पुण्यों की गति एवं उनका फल आश्चर्यमय है कि एक तरफ तो यह मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु पाँच प्रकार के कामभोगों से तृप्त रहता हुआ दूसरों से देवताओं की तरह अपनी सेवा–परिचर्या कराता है और एक मैं हूँ कि (दिन रात गृहस्थ के जंजाल में फँसा हुआ) कृषि कर्म करता हुआ अपना, अपने परिवार का पालन–पोषण भी करता हूँ और (उसी में से कुछ बचा कर) इस राजा को कर देता हुआ उसके कोष की वृद्धि में सहायक होता हूँ। क्या ही अच्छा हो कि मैं भी कुछ ऐसे पुण्य अर्जित करूँ। तो क्यों न मैं शिर दाढ़ी मुँडवा कर .... प्रव्रज्या ले लूँ।'

''वह (कृषक) दूसरे समय अपने कम या अधिक सांसारिक सुखों को त्याग कर छोटे–बड़े

कस्सको गहपतिको करकारको रासिवड्ढको; सो, देव, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो। सो एवं पब्बजितो समानो कायेन [R.62] संवुतो विहरति, वाचाय संवुतो विहरति, मनसा संवुतो विहरति, घासच्छादनपरमताय सन्तुट्ठो, अभिरतो पविवेके' ति। अपि नु त्वं एवं वेदय्यासि—'एतु मे, भो, सो पुरिसो, पुनदेव होतु कस्सको गहपतिको करकारको रासिवड्ढको' '' ति?

३८. ''नोहेतं, भन्ते। अथ खो नं मयमेव अभिवादेय्याम पि, पच्चुट्ठेय्याम पि, आसनेन पि निमन्तेय्याम, अभिनिमन्तेय्याम पि नं चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेहि, धम्मिकं पिस्स रक्खावरणगुत्तिं संविदहेय्यामा'' ति।

३९. ''तं किं मञ्ञसि, महाराज, यदि एवं सन्ते होति वा सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं नो वा'' ति? ''अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते होति सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं'' ति। ''इदं खो ते, महाराज, मया दुतियं दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पञ्ञत्तं'' ति। (२)

(३) पणीततरसामञ्ञफलं

४०. ''सक्का पन, भन्ते, अञ्ञं पि दिट्ठेव धम्मे सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पञ्ञपेतुं इमेहि सन्दिट्ठिकेहि सामञ्ञफलेहि अभिक्कन्ततरं च पणीततरं चा'' ति? ''सक्का, महाराज। तेन हि, महाराज, सुणोहि, साधुकं मनसि करोहि, भासिस्सामी'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो भगवतो पच्चस्सोसि।

४१. भगवा एतदवोच—''इध, महाराज, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं, [N. 55] सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो, लोकविदू, अनुत्तरो, पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो, भगवा। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं [B. 59] पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति।

नाते–रिश्तेदारों (सम्बन्धिजनों) का मोह भी त्याग कर शिर और दाढ़ी ....पूर्ववत् ....कोष बढाने में सहायक हो?''

३८. ''नहीं, भन्ते! हम तो उसे प्रणाम करेंगे .... उसकी रक्षा का प्रबन्ध करेंगे।''

३९.''तो क्या मानते हो महाराज! ...पूर्ववत् ....श्रमण भाव का द्वितीय प्रत्यक्ष फल बताया।'' (२)

३. श्रमण भाव का प्रणीततर प्रत्यक्ष फल– ४०. ''भन्ते! क्या इस श्रमण भाव का और भी कोई प्रत्यक्ष फल बताया जा सकता है।'' ''हाँ, महाराज! बताया जा सकता है। तो महाराज! सुनें! मेरी बात पर अच्छी तरह ध्यान दें। मैं आपको बताता हूँ।'' ''ठीक है, भन्ते!'' राजा ने उत्तर दिया।

४१. भगवान् यों बोले–''यहाँ, महाराज! लोक में तथागत, अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध विद्या एव आचरण से सम्पन्न, सुगत (शोभन गति वाले या सुवक्ता) लोकविद्, अलौकिक (अनुत्तर), पुरुषों को सन्मार्ग पर चलने के लिये चाबुक (धर्मदण्ड) लिये सारथि के सदृश, देव–मनुष्यों के शास्ता, बुद्ध (ज्ञानी) उत्पन्न होते हैं। वे देवताओं के साथ, मार के साथ, ब्रह्मा के साथ, श्रमण–ब्राह्मण प्रजा के साथ तथा देव मनुष्यों के साथ इस लोक को स्वयं जान कर समझ कर साक्षात् किये धर्म का उपदेश करते हैं। वे आदिकल्याणक मध्यकल्याणक एवं अन्त में भी कल्याणकारक धर्म का उपदेश करते हैं। सार्थक, स्पष्ट, सर्वथा पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्य (धर्मसाधना) का बोध कराते हैं।

४२.''तं धम्मं सुणाति गहपति वा गहपतिपुत्तो वा अञ्ञतरस्मिं वा कुले [R. 63] पच्चाजातो। सो तं धम्मं सुत्वा तथागते सद्धं पटिलभति। सो तेन सद्धापटिलाभेन समन्नागतो इति पटिसञ्चिक्खति—'सम्बाधो घरावासो रजोपथो, अब्भोकासो पब्बज्जा। नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति।

४३. ''सो अपरेन समयेन अप्पं वा भोगक्खन्धं पहाय महन्तं वा भोगक्खन्धं पहाय अप्पं वा ञातिपरिवट्टं पहाय महन्तं वा ञातिपरिवट्टं पहाय केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजति।

४४. ''सो एवं पब्बजितो समानो पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो, अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु, कायकम्मवचीकम्मेन समन्नागतो कुसलेन, परिसुद्धाजीवो, सीलसम्पन्नो, इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो, सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो, सन्तुट्ठो।

चूळसीलं

४५.''कथं च, महाराज, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति? इध, महाराज, भिक्खु पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति। निहितदण्डो निहितसत्थो लज्जी दयापन्नो सब्बपाण-भूतहितानुकम्पी विहरति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं। (१)

''अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो होति दिन्नादायी दिन्नपाटिकङ्खी। [B.60] अथेनेन सुचिभूतेन अत्तना विहरति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं। (२)

---

४२. ''कोई गृहपति या उसका पुत्र या दूसरे कुल में उत्पन्न हुआ पुरुष उस धर्म को सुनता है। उस धर्म को सुन कर तथागत के प्रति श्रद्धालु हो जाता है। श्रद्धालु होकर वह ऐसे विचार करता है – 'गृहस्थ-जीवन नाना बाधाओं एवं आसक्तियों (राग) से भरा पड़ा है। उधर प्रव्रज्या (लोकसंन्यास) सर्वथा स्वच्छन्द एवं खुला स्थान (अब्भोकासो) है। घर में रहने वाला सर्वथा परिशुद्ध और यन्त्र से साफ किये श्वेत शङ्ख के समान निर्मल इस ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता। इस लिये क्यों न मैं शिर और दाढी-मूँछ मुँडवा कर प्रव्रजित हो जाऊँ।'

४३. ''वह फिर दूसरे समय कम अधिक सांसारिक भोगों को, छोटे-बड़े नाते-रिश्तेदारों को त्याग कर दाढी मूँछ मुँडवा कर काषाय वस्त्र पहन कर घर से बेघर हो जाता है।

४४. ''यों, घर से प्रव्रजित होता हुआ भिक्षु प्रातिशोक्ष के नियमों का पालन करता हुआ धर्म साधना करता है। आचार-व्यवहार से सम्पन्न, छोटे से छोटे निन्द्य कर्म के आचरण में भी भय मानने वाला, काय-वाक्-कर्मों से परिशुद्ध हो कर भगवान् के कहे शिक्षापदों का अभ्यास करता है, कुशल वाक्काय कर्मों से युक्त होता है, उसका जीवन-यापन परिशुद्ध होता है, इन्द्रियों पर निग्रह रखता है, स्मृतिमान्, सावधान और सन्तुष्ट रहता है।

साधारण शील–४५. ''महाराज! कैसे कोई भिक्षु शीलसम्पन्न कहलाता है?

(१) यहाँ, महाराज! कोई भिक्षु प्राणातिपात का (हिंसा) त्याग कर उससे सर्वथा विरत रहता है। दण्ड, शस्त्र आदि को छोड़, लज्जा देने वाले पाप-कर्मों को छोड़, सब पर करुणाभाव रखता हुआ सब प्राणियों के हित में लगा रहता है। ऐसे आचरण की भी शील में गणना है।

''अब्रह्मचरियं पहाय ब्रह्मचारी होति आराचारी, विरतो मेथुना गामधम्मा। इदं पिस्स होति सीलस्मिं। (३)

[N.56] ''मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो होति सच्चवादी सच्चसन्धो थेतो पच्चायिको अविसंवादको लोकस्स। इदं पिस्स होति सीलस्मिं। (४)

[R.64] ''पिसुणं वाचं पहाय पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति; इतो सुत्वा न अमुत्र अक्खाता, इमेसं भेदाय; अमुत्र वा सुत्वा न इमेसं अक्खाता, अमूसं भेदाय। इति भिन्नानं वा सन्धाता, सहितानं वा अनुप्पदाता, समग्गारामो, समग्गरतो, समग्गनन्दी, समग्गकरणिं वाचं भासिता होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं। (५)

''फरुसं वाचं पहाय फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति। या सा वाचा नेला कण्णसुखा पेमनीया हदयङ्गमा पोरी बहुजनकन्ता बहुजनमनापा तथारूपिं वाचं भासिता होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं। (६)

''सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलापा पटिविरो होति कालवादी भूतवादी अत्थवादी धम्मवादी विनयवादी, निधानवतिं वाचं भासिता होति कालेन सापदेसं परियन्तवतिं अत्थसञ्हितं। इदं पिस्स होति सीलस्मिं। (७)

''बीजगामभूतगामसमारम्भा पटिविरतो होति ....पे०.... । (८)

---

(२) वह किसी के द्वारा न दिए हुए का ग्रहण छोड़ कर अदत्तादान (=चोरी) से प्रतिविरत (दूर) रहता है। और इस तरह अपना आचरण शुद्ध पवित्र रखते हुए धर्म साधना करता है। ऐसे आचरण की भी 'शील' में गणना है।

(३)''वह अब्रह्मचर्य (व्यभिचार) को छोड़ कर ब्रह्मचारी रहता है, किसी भी प्रकार के मैथुन–कर्म से दूर रहता है। इस आचरण की भी 'शील' मे गणना है।

(४) ''मिथ्याभाषण (असत्यवचन) छोड़ कर मिथ्या भाषण से दूर रहता है, अपितु सत्यवक्ता, सत्य ही से जुड़ा हुआ (सच्चसन्ध), अपनी बात पर अडिग रहने वाला, विश्वसनीय एवं यथार्थवक्त। होता है। ऐसे आचरण की भी 'शील' में गणना है।

(५) ''चुगली खाना (पीठ पीछे निन्दा करना) छोड़ कर दूसरे की चुगली खाने से विरत रहता है। यहाँ तक कि वह इस पक्ष की सुन कर उस पक्ष को नहीं कहता और उस पक्ष की सुनकर इस पक्ष को नहीं कहता। अपितु कलह किये हुओं की सुलह कराता (सन्धाता) है और सुलह किये लोगों में और भी दृढ़ मेल कराने वाला, लोगों को इकट्ठा रखने में लगा हुआ लोगों को इकट्ठे रहते हुए देख कर प्रमुदित होने वाला, आनन्दित होने वाला, ऐसी ही वाणी बोलने का सतत प्रयास करता है कि जिसके प्रभाव से लोग परस्पर मिल–जुल कर रहें। ऐसा आचरण भी 'शील' कहलाता है।

(६) ''वह कठोर वाणी का प्रयोग करना छोड़कर कठोर वाणी बोलने से विरत रहता है। इसके विपरीत, उसे जो बात निर्दोष, कर्णप्रिय (हृदयहारिणी) मन को भाने वाली, सभ्य, तथा जनता को प्रिय लगने वाली होती है उसे ही बोलता है। ऐसा आचार भी 'शील' कहलाता है।

(७)''सम्प्रलाप (निरर्थक बातचीत=बकवाद) को छोड़ कर सम्प्रलाप से दूर रहता है और इसके विपरीत, समयोचित सत्य, सार्थक, धर्मपद, विनययुक्त, दूसरों को भी उचित लगने वाली बात ही बोलता है। या फिर समय और अवस्था के अनुकूल विषय–विभाजन कर सार्थक बात ही बोलता है। ऐसा आचार भी 'शील' कहलाता है।

''एकभत्तिको होति रत्तूपरतो विरतो विकालभोजना.... । (९)

''नच्चगीतवादितविसूकदस्सना पटिविरतो होति.... । (१०)

''मालागन्धविलेपनधारणमण्डनविभूसनट्ठाना पटिविरतो होति.... । (११)

''उच्चासयनमहासयना पटिविरतो होति.... । (१२)

''जातरूपरजतपटिग्गहणा पटिविरतो होति.... । (१३)

''आमकधञ्ञपटिग्गहणा पटिविरतो होति.... । (१४)

''आमकमंसपटिग्गहणा पटिविरतो होति.... । (१५)

''इत्थिकुमारिकपटिग्गहणा पटिविरतो होति.... । (१६)

''दासिदासपटिग्गहणा पटिविरतो होति.... । (१७)

''अजेळकपटिग्गहणा पटिविरतो होति.... । (१८)

''कुक्कुटसूकरपटिग्गहणा पटिविरतो होति.... । (१९) [B. 61]

''हत्थिगवस्सवळवपटिग्गहणा पटिविरतो होति.... । (२०)

''खेत्तवत्थुपटिग्गहणा पटिविरतो होति.... । (२१)

''दूतेय्यपहिणगमनानुयोगा पटिविरतो होति.... । (२२)

''कयविक्कया पटिविरतो होति.... । (२३)

''तुलाकूटकंसकूटमानकूटा पटिविरतो होति.... । (२४)

---

(८) ''बीजसमूह या जीवसमूह के नाश की चर्चा छोड़ कर सभी तरह के बीजों एवं जीवों के नाश से विरत रहता है। यह कार्य भी 'शील' कहलाता है।

(९) ''दिन में एक बार ही भोजन करता है और विकाल (मध्याह्न आदि) में भोजन से विरत रहता है। ....

(१०) ''नृत्य गीत, नाट्य और भद्दे (अश्लील) प्रदर्शन से विरत रहता है। ....

(११) ''माला, गन्ध, विलेपन, धारण, मण्डन, विभूषण आदि शरीर को अलंकृत करने वाले कार्यों से दूर रहता है....।

(१२) ''ऊँची या सजी–धजी (अलंकृत) शय्या का उपभोग नहीं करता....।

(१३) ''सोने–चाँदी के स्पर्श से भी विरत रहता है, उसका उपयोग तो उससे सम्भव ही नहीं....।

(१४) ''कच्चा अन्न, ग्रहण करने से ....।

(१५) ''कच्चा मांस (भोजन में) ग्रहण करने से ....।

(१६) ''स्त्री या कुमारी का (किसी भी प्रयोजन से)ग्रहण नहीं करता....।

(१७) ''दास या दासी का (किसी भी प्रयोजन से) ग्रहण नहीं करता ....।

(१८) ''भेड़ या बकरी का प्रतिग्रहण नहीं करता ....।

(१९) ''मुर्गा या सूअर का प्रतिग्रहण नहीं करता ....।

(२०) ''हाथी, घोड़ा, घोड़ी, गाय–बैल का प्रतिग्रहण नहीं करता ....।

(२१) ''खेत या गृहस्थ के उपयुक्त किसी वस्तु का प्रतिग्रहण नहीं करता ....।

(२२) ''दूत–कर्म के लिये किसी के यहाँ जाने–आने का कार्य नहीं करता ....।

(२३) ''वस्तुओं के क्रय–विक्रय से दूर रहता है ....।

(२४) ''नाप–तौल, तराजू–बटखरा आदि से धूर्त व्यापार नहीं करता ....।

''उक्कोटनवञ्चननिकतिसाचियोगा पटिविरतो होति.... । (२५)

''छेदनवधबन्धनविपरामोसआलोपसहसाकारा पटिविरतो होति.... । (२६) । इदं पिस्स होति सीलस्मिं ।

चूळसीलं निट्ठितं ॥

मज्झिमसीलं

[N.57] ४६. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपं बीजगामभूतगामसमारम्भं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथीदं—मूलबीजं खन्धबीजं फळुबीजं [R.65] अग्गबीजं बीजबीजमेव पञ्चमं, इति एवरूपा बीजगामभूतगामसमारम्भा पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

४७. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपं सन्निधिकारपरिभोगं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथीदं—अन्नसन्निधिं पानसन्निधिं वत्थसन्निधिं यानसन्निधिं सयनसन्निधिं गन्धसन्निधिं आमिससन्निधिं इति वा इति एवरूपा सन्निधिकारपरिभोगा पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

४८. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपं विसूकदस्सनं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथीदं-नच्चं गीतं वादितं पेक्खं अक्खानं पाणिस्सरं वेताळं कुम्भथूणं सोभनकं चण्डालं वंसं धोवनं हत्थियुद्धं अस्सयुद्धं महिंसयुद्धं उसभयुद्धं अजयुद्धं मेण्डयुद्धं कुक्कुटयुद्धं वट्टकयुद्धं दण्डयुद्धं मुट्ठियुद्धं निब्बुद्धं उय्योधिकं बलग्गं सेनाब्यूहं अनीकदस्सनं इति वा इति, एवरूपा विसूकदस्सना पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

---

(२५) ''घूस लेने, ठगने और नकली सोना चाँदी बनाने आदि से विरत रहता है ....।

(२६) ''किसी के हाथ-पैर काटने, उसे मारने, बाँधने, लूटने और डाका डालने आदि से विरत रहता है। ऐसा आचार भी 'शील' कहलाता है।'

साधारण शील (का वर्णन) समाप्त ।।

२. मध्यमशील– ४६. ''जैसे कितने श्रमण-ब्राह्मण (गृहस्थों द्वारा) श्रद्धापूर्वक दिया गया भोजन कर, इस प्रकार के सभी बीजों और सभी प्राणियों के नाश में लगे रहते हैं; जैसे– मूल (जड़) से उगने वाले बीज, इक्षु आदि गाँठ से प्ररोह पाने वाले बीज (=स्कन्ध बीज), फल बीज (फल से पैदा होने वाले बीज), अग्र भाग से पैदा होने वाले बीज एवं पाँचवें बीज से पैदा होने वाले बीज। ऐसे बीज-(वृक्ष-)समूह और प्राणिसमूह के नाश (=समारम्भ) से वह योगी प्रतिविरत रहता है। इस आचार की भी शील में गणना है।

४७. ''जैसे कितने श्रमण-ब्राह्मण....भोजन कर इस प्रकार की चीजों के परिग्रह करने में लगे रहते हैं, जैसे– अन्न, पान, वस्त्र, वाहन, शय्या, गन्धद्रव्य एवं अन्य भोग्य वस्तुओं का परिग्रह करना। इनसे वह साधक दूर रहता है। यह आचार भी 'शील' में गिना जाता है।

४८. ''या जैसे कितने ही श्रमण....भोजन कर, इस अधोलिखित प्रकार के अनुचित खेल-तमाशों के दर्शन में अपने को लगाये रखते हैं, जैसे– नृत्य, गीत, वाद्य, दृश्य (नाटक आदि), कथा-कहानी सुनना (आख्यात), ताली, ताल देना (ढोल आदि बजाना), घटवाद्य, गीत मण्डली, लोहे की गोली का खेल, बांस पर उछलना-कूदना, आदि (बुद्ध-काल के) खेल, हाथी, घोड़े, भैंसे, सांड, बकरे, भेड़, मुर्गे, बत्तक आदि पशु-पक्षियों के युद्ध, लाठी का खेल, मुष्टियुद्ध, कुश्ती, मारपीट का अभिनय, सेना एवं

४९. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा [B.62] ते एवरूपं जूतप्पमादट्ठानानुयोगं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथीदं—अट्ठपदं दसपदं आकासं परिहारपथं सन्तिकं खलिकं घटिकं सलाकहत्थं अक्खं पङ्गचीरं वङ्ककं मोक्खचिकं चिङ्गुलिकं पत्ताळ्हकं रथकं धनुकं अक्खरिकं मनेसिकं यथावज्जं इति वा इति, एवरूपा जूतप्पमादट्ठानानुयोगा पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

५०. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपं उच्चासयनमहासयनं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथीदं—आसन्दिं पल्लङ्कं गोनकं [N.58] चित्तकं पटिकं पटलिकं तूलिकं विकतिकं उद्दलोमिं एकन्तलोमिं कट्टिस्सं कोसेय्यं कुत्तकं हत्थत्थरं अस्सत्थरं रथत्थरं अजिनप्पवेणिं कदलिमिगपवरपच्चत्थरणं सउत्तरच्छदं उभतोलोहित-भिंसनकं इति वा इति, एवरूपा उच्चासयनमहासयना पटिविरतो होति। इदं पिस्स [R.66] होति सीलस्मिं।

५१. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपं मण्डनविभूसनट्ठानानुयोगं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथीदं—उच्छादनं परिमद्दनं न्हापनं सम्बाहनं आदासं अञ्जनं मालागन्धविलेपनं मुखचुण्णं मुखलेपनं हत्थबन्धं सिखाबन्धं दण्डं नाळिकं असिं छत्तं चित्रुपाहनं उण्हीसं मणिं बालबीजनिं ओदातानि वत्थानि दीघदसानि इति वा इति, एवरूपा मण्डनविभूसनट्ठानानुयोगा पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

५२. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते

युद्ध का व्यूह—आदि देखने में अपना समय बिताते हैं। इस आर्यविनय का साधक ऐसे अनुचित दर्शनों से दूर रहता है।....

४९. अथवा जैसे अनेक श्रमण....भोजन कर द्यूत आदि क्रीड़ाओं के व्यसन में लगे रहते हैं, जैसे— अष्टपद (शतरंज), दशपद (चौपड़), आकाश, परिहारपथ, सन्तिक, खलिक, घटिक, शलाकहस्त, अक्ष (पासा) पङ्गचीर, वङ्कक, मोक्खचिक, चिलिंगुलिक, पचाढक, रथों की दौड़, तीरन्दाजी, पहेली बुझौवल (अक्खरिक), दूसरे के मन की बात जानना (मनेसिक), और दूसरों के हाव–भाव का अनुकरण (नकल) करना आदि। साधक ऐसे द्यूत–क्रीड़ाव्यसनों से दूर ही रहता है।....।

५०. अथवा जैसे अनेक श्रमण....भोजन कर ऐसी ऊँची सजी–धजी शय्याओं पर लेटते हुए सुखोपभोग करते हैं; जैसे—लम्बी–चौड़ी खाट, पलंग, बड़े–बड़े रोमों वाला आसन, चित्रित आसन, स्फटिक (उज्ज्वल) आसन, फूलदार विछावन (पटलिक), रजाई (तूलिक), गद्दा (विकतिक), ऊँचे–ऊँचे रोएँ वाला आसन, सिंह–व्याघ्र आदि के चित्रों वाला आसन, मखमली आसन, लम्बी दरी, हाथी घोड़े या रथ का साज, कदलिमृग के चर्म से बना मृदु आसन, चँदवा वाला आसन, दोनों ओर तकिये–मसनद रखा हुआ आसन आदि। साधक योगी ऐसी सजी–धजी शय्याओं के उपयोग से दूर रहता है।....।

५१. अथवा जैसे कई श्रमण... भोजन कर इस तरह अपने को अलंकृत करने में लगे रहते हैं; जैसे— उबटन लगाना, शरीर को मलवाना (मछन) दूसरों के हाथों नहाना, शरीर दबवाना (सम्बाहन), दर्पण देखना आँखों में अञ्जन लगाना, माला, केशर आदि का लेप, मुखचूर्ण (पाउडर) मुखलेपन (क्रीम लगाना), हाथों में आभूषण, शिखा का आभूषण, छड़ी, तलवार, छाता, सुन्दर जूते, टोपी, मणि–रत्न चँवर, लम्बे–लम्बे झालर वाले श्वेत–शुद्ध वस्त्र आदि। ऐसे अलंङ्करणों से वह साधक विरत रहता है।....।

एवरूपं तिरच्छानकथं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथीदं—राजकथं चोरकथं महामत्तकथं सेनाकथं भयकथं युद्धकथं अन्नकथं पानकथं वत्थकथं सयनकथं मालाकथं गन्धकथं ञातिकथं यानकथं गामकथं निगमकथं नगरकथं जनपदकथं इत्थिकथिं सूरकथं विसिखाकथं कुम्भट्ठानकथं [B.63] पुब्बपेतकथं नानत्तकथं लोकक्खायिकं समुद्दक्खायिकं इतिभवाभवकथं इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानकथाय पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

५३. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपं विग्गाहिककथं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथीदं—न त्वं इमं धम्मविनयं आजानासि, अहं इमं धम्मविनयं आजानामि; किं त्वं इमं धम्मविनयं आजानिस्ससि; मिच्छा पटिपन्नो त्वमसि, अहमस्मि सम्मा पटिपन्नो; सहितं मे, असहितं ते, पुरे वचनीयं पच्छा अवच, पच्छा वचनीयं पुरे अवच; अधिचिण्णं ते [N.59] विपरावत्तं, आरोपितो ते वादो, निग्गहितो त्वमसि, चर वादप्पमोक्खाय, निब्बेठेहि वा सचे पहोसी ति इति वा इति, एवरूपाय विग्गाहिककथाय पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

५४. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपं दूतेय्यपहिणगमनानुयोगं अनुयुत्ता विहरन्ति, सेय्यथीदं— रञ्ञं राजमहामत्तानं खत्तियानं [R.67] ब्राह्मणानं गहपतिकानं कुमारानं—'इध गच्छ, अमुत्रागच्छ, इद हर, अमुत्र इदं आहरा' ति इति वा इति, एवरूपा दूतेय्यपहिणगमनानुयोगा पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

---

५२. ''अथवा– जैसे कई दूसरे श्रमण... खाकर इस प्रकार की निरर्थक बातों में लगे रहते हैं; जैसे– राजकथा, चौरकथा, मन्त्रिकथा, सेनाकथा, भयोत्पादक कथाएँ, युद्धकथा, अन्न–पान कथा, वस्त्रकथा, शयनकथा, ,माला–गन्धकथा, नाते–रिश्तेदारों (ज्ञाति) कथा, रथ–ग्राम–निगम–जनपद–नगर कथा, तरह–तरह की स्त्रियों के विषय में बातें, शूर–वीरों की कहानियाँ, चौराहे (विशिखा) की कहानियाँ, पनघट कथा (कुम्भट्ठानकथा), मरे हुए (भूत–प्रेत) की कथाएँ, संसार की विविध घटनाएँ, सामुद्रिक यात्रा की कहानियाँ; तथा इसी प्रकार की इधर–उधर की गप्पभरी जनश्रुतियाँ। ऐसी निरर्थक बातें (कथाओं) से वह साधक दूर ही रहता है ....।

५३. अथवा जैसे अनेक श्रमण....भोजन कर इस तरह की लड़ाई–झगड़ों की बातों में लगे रहते हैं; जैसे– 'तुम इस मत (=धर्मविनय) को नहीं जानते, मैं जानता हूँ', 'तुम इसे क्या जानोगे; तुमने तो इसे ठीक ढंग से समझा ही नहीं है', 'मैंने इसे ठीक तरह से समझा है', 'मैं धर्मानुकूल कह रहा हूँ, तुम्हारा कथन धर्मानुकूल नहीं है', 'तुम्हें जो पहले कहना चाहिये था वह बाद में कह रहे हो, और जो बाद में कहना चाहिये था उसे पहले ही कह बैठे', 'तुम्हारा मत खण्डित हो गया', 'तुम पर यह दोषारोपण हुआ', 'तुम इस वाद में निगृहीत हो गये', 'तुम इस वाद में हमारे द्वारा लगाये गये आरोप से मुक्त होने का प्रयास करो', 'यदि तुम्हारे में सामर्थ्य हो तो हमारी बात का उत्तर दो' इत्यादि। हमारे धर्मविनय का साधक ऐसी कलहकारक बातों से दूर ही रहता है।....

५४. ''और जैसे अनेक श्रमण....भोजन कर ऐसी–ऐसी दूतों द्वारा भेजने या लाने योग्य सन्देशों में लगा रह कर राजा, महामन्त्री, क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहस्थ, राजकुमारों आदि का दूत–कर्म– 'यहाँ आओ, 'वहाँ से आओ' 'यह यहाँ लाओ', 'वह वहाँ ले जाओ' आदि दूतों के नानाविध कर्म करते रहते हैं। (आर्यधर्म विनय का) साधक इन सब लौकिक बन्धनों के कार्यों से दूर ही रहता है।....।

५५. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते कुहका च होन्ति, लपका च, नेमित्तिका च, निप्पेसिका च, लाभेन लाभं निजिगीसितारो च। इति एवरूपा कुहनलपना पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं''॥

मज्झिमसीलं निट्ठितं।॥

महासीलं

५६. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथीदं—अङ्गं निमित्तं उप्पातं सुपिनं लक्खणं मूसिकच्छिन्नं अग्गिहोमं दब्बिहोमं थुसहोमं कणहोमं तण्डुलहोमं सप्पिहोमं तेलहोमं मुखहोमं लोहितहोमं अङ्गविज्जा वत्थुविज्जा खत्तविज्जा सिवविज्जा भूतविज्जा [B.64] भूरिविज्जा अहिविज्जा विसविज्जा विच्छिकविज्जा मूसिकविज्जा सकुणविज्जा वायसविज्जा पक्कज्झानं सरपरित्ताणं मिगचक्कं इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

५७. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपं तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथीदं—मणिलक्खणं वत्थलक्खणं

---

५५. ''अथवा जैसे अनेक श्रमण....भोजन कर पाखण्डी, धूर्त, ज्योतिष का झूठा अभिनय करने वाले, जादू-टोना करने वाले, और छोटे लाभ से बड़े लाभ की आशा रखने वाले कार्यों को खोजते रहते हैं। श्रमण गौतम का अनुयायी साधक ऐसी बातों से दूर रहता है। यह आचार भी (श्रमण-परम्परा में) 'शील' ही कहलाता है।।

प्रणीततर (मध्यम) शील का वर्णन पूर्ण।।

३. उत्कृष्टतम (महान्) शील– ५६. ''जिस प्रकार कितने ही श्रमण-ब्राह्मण गृहस्थों द्वारा श्रद्धापूर्वक दिया गया भोजन ग्रहण कर ऐसी हीन (नीच) प्रवृत्तियों (विद्याओं-कलाओं) से अपना जीवन-निर्वाह करते हैं; जैसे– शरीर के अङ्गों को देखकर उनसे स्त्री-पुरुष का शुभ-अशुभ बताना (अङ्ग-विद्या), शरीर में उभरे हुये नये लक्षणों (निमित्तों) को देखकर शुभ-अशुभ बताना, निमित्त-विद्या, उत्पातों को देखकर... स्वप्नों के सहारे...लक्षणों के सहारे...चूहे के काटने से उत्पन्न विष को दूर करना....अग्नि में हवन, दर्वी (स्रुवा) से होम....तुष तथा अन्नकणों से होम...तण्डुल होम....घृत होम....तैल होम.... मुखमें घी लेकर उस से कुल्लाकर के होम....रक्त से होम..... अङ्गविद्या.... वास्तुविद्या (भवननिर्माण)....क्षत्रविद्या (धनुर्विद्या) या क्षेत्रविद्या (कृषिविद्या)... शिवविद्या (अघोर मन्त्र) या शवविद्या (श्मशान में बैठ कर मन्त्र-जाप)... भूत (प्रेत) विद्या....भूरि विद्या (जमीन में गड़ा धन बताना)....मन्त्रबल से सर्पविष उतारना....अन्य विषों को मन्त्र या ओषधियाँ से प्रभावहीन करना...विच्छू के विष को मन्त्र-बल से उतारना.... मूषक-विष.... नाना पक्षियों के गमनागमन से शुभ-अशुभ बताना....कौओं की बोली सुन कर शुभ-अशुभ बताना....मन्त्र बल के सहारे युद्ध में बाण-तलवार आदि प्रहारों से शरीररक्षा (शर-परित्राण).... और खेती आदि जंगली पशुओं से मन्त्र-प्रभाव से रक्षा करना, खेत के चारों तरफ अभिमन्त्रित मृगचक्र आदि। ऐसी हीन वृत्तियों द्वारा जीवन-यापन करने से भिक्षु साधक विरत रहता है। ऐसा आचरण भी 'शील' कहलाता है।

५७. ''अथवा जैसे अनेक श्रमण... ऐसी हीन वृत्तियों से अपना कलुषित जीवनयापन करते हैं; जैसे– मणिरत्नों की पहचान (परीक्षा), वस्त्र की पहचान, दण्ड की पहचान, शस्त्र की पहचान, तलवार की पहचान, वाण की पहचान; धनुष् की पहचान, आयुध की पहचान, स्त्री-पुरुष की पहचान, कुमार-

दण्डलक्खणं सत्थलक्खणं असिलक्खणं उसुलक्खणं धनुलक्खणं आवुधलक्खणं इत्थिलक्खणं पुरिसलक्खणं कुमारलक्खणं कुमारिलक्खणं दासलक्खणं दासिलक्खणं हत्थिलक्खणं अस्स- [N.60] लक्खणं महिंसलक्खणं उसभलक्खणं गोलक्खणं अजलक्खणं मेण्डलक्खणं कुक्कुट- लक्खणं वट्टलक्खणं गोधालक्खणं कण्णिकलक्खणं कच्छपलक्खणं मिगलक्खणं इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

५८. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते [R.68] एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथिदं—रञ्ञं निय्यानं भविस्सति, रञ्ञं अनिय्यानं भविस्सति, अब्भन्तरानं रञ्ञं उपयानं भविस्सति, बाहिरानं रञ्ञं अपयानं भविस्सति, बाहिरानं रञ्ञं उपयानं भविस्सति, अब्भन्तरानं रञ्ञं अपयानं भविस्सति, अब्भन्तरानं रञ्ञं जयो भविस्सति, बाहिरानं रञ्ञं पराजयो भविस्सति, बाहिरानं रञ्ञं जयो भविस्सति, अब्भन्तरानं रञ्ञं पराजयो भविस्सति, इति इमस्स जयो भविस्सति, इमस्स पराजयो भविस्सति इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

५९. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथिदं—चन्दग्गाहो भविस्सति, सुरियग्गाहो भविस्सति, नक्खत्तग्गाहो भविस्सति, चन्दिमसुरियानं पथगमनं भविस्सति, चन्दिमसुरियानं उप्पथगमनं भविस्सति, नक्खत्तानं पथगमनं भविस्सति, नक्खत्तानं उप्पथगमनं भविस्सति, [B.65] उक्कापातो भविस्सति, दिसाडाहो भविस्सति, भूमिचालो भविस्सति, देवदुद्रभि भविस्सति, चन्दिमसुरियनक्खत्तानं उग्गमनं ओगमनं सङ्किलेसं वोदानं भविस्सति, एवंविपाको चन्दग्गाहो भविस्सति, एवंविपाको सुरियग्गाहो भविस्सति, एवंविपाको नक्खत्तग्गाहो भविस्सति, एवंविपाकं चन्दिमसुरियानं पथगमनं भविस्सति, एवंविपाकं

कुमारी की पहचान, दास–दासी की पहचान, हाथी–घोड़ों की पहचान, भैंसे और साँड़ (वृषभ) की पहचान, गाय या बकरी की पहचान, भेड़ों, मुर्गों एवं वत्तकों की पहचान, गोधा (गोह=गिरगट की तरह का एक भयंकर विषधर सरीसृप) की पहचान, कान के आभूषणों की पहचान, कछुओं की (या कनखजूरे की) पहचान, मृग जाति की पहचान बताने वाली विद्या। ऐसी हीन विद्याओं के सहारे हीन वृत्ति के जीवनयापन से भिक्षु–साधक दूर रहता है।....

५८. ''अथवा जैसे अनेक श्रमण....ऐसी हीन विद्याओं के सहारे अपना निकृष्ट जीवन बिताते हैं, जैसे– आज राजा का अपने अधीन देश से बहिर्गमन (यात्रा–निर्माण) होगा....नहीं होगा, यहाँ का राजा बहिर्गमन करेगा...नहीं करेगा, बाहर का राजा यहाँ आयगा...नहीं आयगा, यहाँ के राजा की जीत होगी... नहीं होगी, बाहर के राजा की जीत होगी...नहीं होगी, यहाँ के राजा की पराजय होगी....नहीं होगी (या) इसकी जीत होगी, इस की पराजय; ऐसी हीन विद्याओं से....।

५९. ''अथवा जैसे अनेक श्रमण....ऐसी हीन वृत्तियों से अपना निकृष्ट जीवन बिताते हैं; जैसे– चन्द्रग्रहण....सूर्यग्रहण.....नक्षत्र ग्रहण होगा, चन्द्र–सूर्य या नक्षत्र अपने अनुकूल पथ पर... प्रतिकूल (अपने मार्ग से हटकर) पथ पर गमन करेंगे; उल्का पात (आकाश से तापतन)...दिग्दाह (दिशाओं में ऐसी लाली छा जाना मानों वहाँ अग्नि लगी हो) होगा, भूकम्प होगा, देवताओं के नगाड़े बजेंगे, चन्द्रमा–सूर्य–

चन्दिमसुरियानं उप्पथगमनं भविस्सति, एवंविपाकं नक्खत्तानं पथगमनं भविस्सति, एवंविपाकं नक्खत्तानं उप्पथगमनं भविस्सति, एवंविपाको उक्कापातो भविस्सति, एवंविपाको दिसाडाहो भविस्सति, एवंविपाको भूमिचालो भविस्सति, एवंविपाको देवदुद्रभि भविस्सति, एवंविपाकं चन्दिमसुरियनक्खत्तानं उग्गमनं ओगमनं सङ्किलेसं वोदानं भविस्सति इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

६०. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा [N.61] ते एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथिदं— सुवुट्ठिका [R.69] भविस्सति, दुब्बुट्ठिका भविस्सति, सुभिक्खं भविस्सति, दुब्भिक्खं भविस्सति, खेमं भविस्सति, भयं भविस्सति, रोगो भविस्सति, आरोग्यं भविस्सति, मुद्दा, गणना, सङ्खानं, कावेय्यं, लोकायतं, इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविच्चाय मिच्छाजीवा पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

६१. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथिदं— आवाहनं विवाहनं संवरणं विवरणं सङ्किरणं विकिरणं सुभगकरणं दुब्भगकरणं विरुद्धगब्भकरणं जिव्हानिबन्धनं हनुसंहननं हत्थाभिजप्पनं हनुजप्पनं कण्णजप्पनं आदासपञ्हं कुमारिकपञ्हं देवपञ्हं आदिच्चुपट्ठानं महतुपट्ठानं अब्भुज्जलनं सिरिव्हायनं इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

६२. ''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते

नक्षत्रों का उदय, अस्त, दोषग्रस्त एवं परिशुद्धि होगी, चन्द्र–सूर्य एवं नक्षत्रों के ग्रहण का यह फल होगा, चन्द्र–सूर्य–नक्षत्रों के अनुकूल गमन का.... प्रतिकूल गमन का यह फल होगा, उल्कापात....दिशादाह.... भूकम्प....आकाश में देवताओं के नगाड़े बजने का....चन्द्र–सूर्य–नक्षत्रों का उद्गमन, अस्तगमन, संक्लेश दोष ग्रस्त होना या उनकी शुद्धि का यह फल होगा आदि। ऐसी हीन वृत्तियों से....।...शील कहलाता है।

६०.''अथवा, जैसे अनेक श्रमण....निन्दित जीवन बिताते हैं, जैसे– अच्छी वृष्टि (सुवृष्टि) होगी, दुर्वृष्टि होगी, सुभिक्ष होगा, दुर्भिक्ष (अकाल) पड़ेगा, कुशल होगा, भय होगा, रोग.... आरोग्य होगा, या फिर मुद्रा, गणना, सङ्ख्यान, कविता या हीन जनों को अच्छी लगने वाली बातें कह–सुनकर अपना निकृष्ट जीवन बिताते हैं। ऐसी हीन वृत्तियों से ....'शील' कहलाता है।

६१. ''अथवा जैसे अनेक श्रमण....जीवन बिताते हैं, जैसे– सगाई, विवाह, विवाह के लिये उचित लग्न बताना, तलाक (विवाह विच्छेद) के लिये....उदार या ऋण के रूप में दिये धन की पुनः प्राप्ति के लिये; अच्छा मुहूर्त (नक्षत्र) बताना, शरीर को नाना प्रकार से अलंकृत करना, कुरूप करना, गर्भ में पुत्री की जगह पुत्र का परिवर्तन (विरुद्धगर्भकरण), मन्त्रबल से किसी की जिह्वा का स्तम्भन,....ठुड्डी (हनु) का... कानों का...हाथ का स्तम्भन ...दूसरे के हाथ को उलट देना, दूसरे के कान को बहरा कर देना, (अभिमन्त्रित) दर्पण पर किसी देवता के बुलाकर प्रश्न–पूछना, कुमारी के या किसी देववाहिनी के शरीर पर देवता का आह्वान कर उससे प्रश्न पूछना, सूर्यपूजा, महाब्रह्मपूजा, मन्त्रबल द्वारा मुख से अग्नि निकालना आदि। भिक्षु–साधक ऐसी हीनवृत्तियों स्वजीवनयापन नहीं करते। ऐसी हीन वृत्तियों से....शील....।

६२.''अथवा– अनेक श्रमण....जैसे– पापों के लिये शान्ति कर्म, इस शान्ति के लिये देवता के

[B.66] एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथिदं—सन्तिकम्मं पणिधिकम्मं भूतकम्मं भूरिकम्मं वस्सकम्मं वोस्सकम्मं वत्थुकम्मं वत्थुपरिकम्मं आचमनं न्हापनं जुहनं वमनं विरेचनं उद्धंविरेजनं अधोविरेचनं सीसविरेचनं कण्णतेलं नेत्ततप्पनं नत्थुकम्मं अञ्जनं पच्चञ्जनं सालाकियं सल्लकत्तियं दारकतिकिच्छा मूलभेसज्जानं अनुप्पदानं ओसधीनं पटिमोक्खो इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

६३. ''अथ खो सो, महाराज, भिक्खु एवं सीलसम्पन्नो न कुतोचि भयं समनुपस्सति [R.70] यदिदं सीलसंवरतो। सेय्यथापि, महाराज, खत्तियो मुद्धाभिसित्तो निहतपच्चामित्तो न कुतोचि भयं समनुपस्सति यदिदं पच्चत्थिकतो; एवमेव खो, महाराज, भिक्खु एवं सीलसम्पन्नो [N.62] न कुतोचि भयं समनुपस्सति यदिदं सीलसंवरतो। सो इमिना अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो अज्झत्तं अनवज्जसुखं पटिसंवेदेति। एवं खो, महाराज, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति।

महासीलं निट्ठितं।॥

इन्द्रियसंवरो

६४. ''कथं च, महाराज, भिक्खु इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति? इध, महाराज, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झा दोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति चक्खुन्द्रियं, चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सुद्दं सुत्वा....पे०....घानेन गन्धं घायित्वा....पे०...जिव्हाय रसं सायित्वा....पे०....कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा....पे०....मनसा

सामने प्रसाद आदि चढ़ाने की प्रतिज्ञा को पूर्ण करना (प्रणिधिकर्म) किसी मन्त्र का अभ्यास (सिद्धि) करना, भूतप्रेतों को बलि देना, गड़ा धन बताना, मन्त्रबल से पुरुष को नपुंसक या नपुंसक को पुरुष बनाना, इन्द्रजाल, बलिकर्म, किसी कार्य विशेष के लिये मन्त्रों से आचमन, स्नान कराना, या हवन कराना, वमन-विरेचन कराना, ऊर्ध्वविरेचन (शिरोविरेचन) या अधोविरेचन (दस्त कराना) कानों में डालने के लिये मन्त्रभावित तैल बनाना, आँखों में....नाक में तैल देकर छिंकवाना, अञ्जन, प्रत्यञ्जन (अञ्जन के विरुद्ध अञ्जन डालना), शल्यचिकित्सा, शालाक्यचिकित्सा, बच्चों की चिकित्सा, काष्ठौषधों का प्रयोग, औषधियों से छुटकारा दिलाना आदि.... स्वजीवनयापन करते हैं। ऐसी हीन वृत्तियों से....शील....।

६३. ''तब, महाराज! वह भिक्षु शीलसम्पन्न होकर अपने इस शील-संवरण के कारण कहीं से भय नहीं देखता। जैसे, महाराज, कोई मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा जिस के सभी शत्रु नष्ट हो चुके हों तो उसे शत्रुओं से कोई भय नहीं होता; इसी तरह, महाराज! उपर्युक्त शीलसम्पन्न भिक्षु अपने शीलसंवरण के कारण (अपनी सांधना में) कहीं से भी भय नहीं देखता! अपितु वह अपनी इस श्रेष्ठ शीलरक्षा के कारण अपने अन्दर (आध्यात्मिक) निर्दुष्ट सुख का अनुभव करता है। इस प्रकार भिक्षु शीलसम्पन्न होता है।।

उत्कृष्ट(महान्)शील का निरूपण समाप्त।।

इन्द्रियसंवर- ६४. ''और कैसे महाराज! भिक्षु अपनी इन्द्रियों को वश में रखता है? महाराज! भिक्षु चक्षुरिन्द्रिय के रूप को देख कर भी न उस के आकार को ग्रहण करता है न उस (रूप) में आसक्त होता है। जिस चक्षुरिन्द्रिय का संयम (संवर) न रखने से मन में दौर्मनस्य (बुराईयाँ) और पाप चले आते हैं, उनसे उस की रक्षा (संवर) के लिये वह यत्न करता है। तब वह चक्षुरिन्द्रिय को वहाँ जाने से बचाता है

धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झा दोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। सो इमिना अरियेन इन्द्रियसंवरेन समन्नागतो अज्झत्तं अब्यासेकसुखं पटिसंवेदेति। एवं खो, महाराज, भिक्खु इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति।

सतिसम्पजञ्ञं

६५. ''कथं च, महाराज, भिक्खु सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो होति? इध, [B.67] महाराज, भिक्खु अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी होति, आलोकिते विलोकिते सम्पजानकारी होति, समिञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी होति, सङ्घाटिपत्तचीवरधारणे सम्पजानकारी होति, असिते पीते खायिते सायिते सम्पजानकारी होति, उच्चारपस्सावकम्मे सम्पजानकारी होति, गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी होति। एवं खो, [R.71] महाराज, भिक्खु सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो होति।

सन्तोसो

६६. ''कथं च, महाराज, भिक्खु सन्तुट्ठो होति? इध, महाराज, भिक्खु सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन, कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमति [N.63] समादायेव पक्कमति। सेय्यथापि, महाराज, पक्खी सकुणो येन येनेव डेति सपत्तभारो व डेति; एवमेव खो, महाराज, भिक्खु सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमति समादायेव पक्कमति। एवं खो, महाराज, भिक्खु सन्तुट्ठो होति।

नीवरणप्पहानं

६७. ''सो इमिना च अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो, इमिना च अरियेन इन्द्रियसंवरेन

उसे संवृत करता है। श्रोत्र से शब्द सुन कर...घ्राण से गन्ध सूँघ कर...जिह्वा से रस का आस्वाद लेकर....काया से स्पर्श करने योग्य विषय का स्पर्श कर....मन से धर्मों (विषयों) को जान कर न उन के आकार का ग्रहण करता है न वहाँ आसक्त होता है। जिस मन इन्द्रिय का संयम न रखने से मन में दौर्मनस्य एवं पाप उत्पन्न होते हों उन से उनकी रक्षा का प्रयत्न करता है। मन इन्द्रिय को वहाँ से दूर हटाता है, इस मन इन्द्रिय में संवर करता है। इस तरह के आर्य संवर से युक्त हो कर वह भिक्षु आध्यात्मिक परम सुख प्राप्त करता है। इस प्रकार भिक्षु अपनी इन्द्रियों को वश में रखता है।

स्मृतिसम्प्रजन्य– ६५. ''और कैसे, महाराज! भिक्षु स्मृति और सम्प्रजन्य (सावधानी) से युक्त होता है? महाराज! जाने–आने में सावधान रहता है, देखने–भालने में .... हाथ पैरों को मोड़ने–पसारने में, सङ्घाटी, पात्र और चीवर के धारण करने में...खाने, पीने, चलने और सोने में...शौच और मूत्रत्याग में....चलते, खड़ा रहते, बैठते, सोते, जागते, बोलते, चुप रहते हुए वह सावधानी बर्तता है। यों, महाराज! भिक्षु स्मृति और सम्प्रजन्य से युक्त रहता है।

सन्तोष– ६६. ''महाराज! कैसे भिक्षु सन्तुष्ट रहता है? महाराज! भिक्षु इस प्रकार शरीर–आच्छादन मात्र के चीवर से तथा पेट भरने मात्र के भोजन (भिक्षा) से सन्तुष्ट रहता है। वह जहाँ–जहाँ जाता है, अपना सब कुछ साथ ले कर जाता है। जैसे महाराज! कोई भी पक्षी जहाँ–जहाँ जाता है अपने पंखों को लिये हुए ही उड़ता है, उसी प्रकार, महाराज! शरीर–आच्छादनमात्र के तथा पेट भरने मात्र के भोजन से सन्तुष्ट रहता है। वह जहाँ–जहाँ भी जाता है अपना सब कुछ साथ ले कर जाता है।

समन्नागतो, इमिना च अरियेन सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो, इमाय च अरियाय सन्तुट्ठिया समन्नागतो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। सो पच्छाभत्तं पिण्डपातप्पटिक्कन्तो निसीदति, पल्लङ्कं आभुजित्वा, उजुं कायं पणिधाय, परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा।

[B.68] ६८. ''सो अभिज्झं लोके पहाय विगताभिज्झेन चेतसा विहरति, अभिज्झायचित्तं परिसोधेति। ब्यापादपदोसं पहाय अब्यापन्नचित्तो विहरति सब्बपाणभूतहितानुकम्पी, ब्यापादपदोसा चित्तं परिसोधेति। थिनमिद्धं पहाय विगतथिनमिद्धो विहरति आलोकसञ्ञी, सतो सम्पजानो थिनमिद्धा चित्तं परिसोधेति। उद्धच्चकुक्कुच्चं पहाय अनुद्धतो विहरति, अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो, उद्धच्चकुक्कुच्चा चित्तं परिसोधेति। विचिकिच्छं पहाय तिण्णविचिकिच्छो विहरति, अकथङ्कथी कुसलेसु धम्मेसु, विचिकिच्छाय चित्तं परिसोधेति।

६९. ''सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो इणं आदाय कम्मन्ते पयोजेय्य। तस्स ते कम्मन्ता समिज्झेयुं। सो यानि च पोराणानि इणमूलानि तानि च ब्यन्तिं करेय्य, सिया चस्स उत्तरिं अवसिट्ठं दारभरणाय। तस्स एवमस्स– 'अहं खो पुब्बे इणं आदाय कम्मन्ते पयोजेसिं। [R.72] तस्स मे ते कम्मन्ता समिज्झिंसु। सोहं यानि च पोराणानि इणमूलानि तानि च ब्यन्तिं अकासिं, अत्थि च मे उत्तरिं अवसिट्ठं दारभरणाया' ति। सो ततोनिदानं लभेथ पामोज्जं, अधिगच्छेय्य सोमनस्सं।

[N.64] ७०. ''सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो आबाधिको अस्स दुक्खितो बाळ्हगिलानो; भत्तं

नीवरणों का प्रहाण– ६७. ''वह भिक्षु इन उपर्युक्त आर्य शीलस्कन्ध, आर्योचित इन्द्रियसंवर तथा आर्योचित स्मृतिसम्प्रजन्य युक्त एवं आर्योचित सन्तोष से युक्त हो कर इस तरह के एकान्त में वास करता है जैसे कि जंगल में वृक्ष के नीचे, पर्वत, कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, जंगल का रास्ता, खुले स्थान या पलालपुञ्ज (पुआल का ढेर)। पिण्डपात से लौटने के बाद भोजन के अनन्तर आसन लगा कर, शरीर को सीधा कर, चारों ओर से स्मृतिमान् होकर बाह्य विषयों से ध्यान हटाकर आध्यात्मिक वृत्तियों की तरफ ध्यान लगाता हुआ साधना करता है।

६८. ''वह भिक्षु– (१) अभिध्या (लोभ) को छोड़ कर निर्लोभ चित्त से ध्यानाभ्यास द्वारा चित्त की परिशुद्धि करता है। (२) हिंसा भाव (व्यापाद) को छोड़कर निरलस चित्त से....। (३) स्त्यानमृद्ध (आलस्य) को छोड़कर निरलस चित्त से....। (४) औद्धत्य–कौकृत्य छोड़कर अनुद्धत चित्त से....। (५) विचिकित्सा (सन्देह) को छोड़कर निर्विचिकित्स चित्त से....। प्रकाशयुक्त संज्ञा से युक्त सावधान हो स्वचित्त की आलस्य से परिशुद्धि करता है, अपनी चञ्चलता एवं शङ्काओं को छोड़ सभी सन्देहों से *(अकथङ्कथी)* चित्त को शुद्ध करता है और कुशल धर्मों में असन्दिग्ध रहता है।

६९. ''जैसे, महाराज! कोई पुरुष (किसी अन्य पुरुष से) ऋण ले कर काम चलावे। जब उसका कार्य सम्पन्न हो जाय तब उस ऋण को पूर्णतः वापस लौटा दे। बाल–बच्चों के पालन–पोषण के लिये उस के पास कुछ धन बच जाय। तब उसके मन में ऐसा विचार उठे– मैंने ऋण ले कर अपना काम चलाया, मेरा कार्य सम्पन्न हो गया, अतः मैंने पुराने ऋण को पूर्णतः चुका दिया, अपितु मेरे पास इतना कुछ धन बच भी गया कि उससे मैं अपने बाल–बच्चों का पालन–पोषण भी कर सकूँगा। इस विचार से वह आनन्दित एवं प्रसन्न हो।

७०. ''जैसे महाराज! कोई पुरुष कभी ऐसा रोगग्रस्त हो जाय कि न उसे खाया–पीया अच्छा

चस्स नच्छादेय्य, न चस्स काये बलमत्ता। सो अपरेन समयेन तम्हा आबाधा मुच्चेय्य; भत्तं चस्स छादेय्य, सिया चस्स काये बलमत्ता। तस्स एवमस्स— 'अहं खो पुब्बे आबाधिको अहोसिं दुक्खितो बाळ्हगिलानो; भत्तं च मे नच्छादेसि, न च मे आसि काये बलमत्ता। सोम्हि एतरहि तम्हा आबाधा मुत्तो; भत्तं च मे छादेति, अत्थि च मे काये बलमत्ता' ति। सो ततोनिदानं लभेथ पामोज्जं, अधिगच्छेय्य सोमनस्सं।

७१. "सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो बन्धनागारे बद्धो अस्स। सो अपरेन समयेन तम्हा बन्धनागारा मुच्चेय्य सोत्थिना अब्भयेन, न चस्स किञ्चि भोगानं वयो। तस्स एवमस्स—'अहं खो पुब्बे बन्धनागारे बद्धो अहोसिं। सोम्हि एतरहि तम्हा बन्धनागारा मुत्तो सोत्थिना [B.69] अब्भयेन। नत्थि च मे किञ्चि भोगानं वयो' ति। सो ततोनिदानं लभेथ पामोज्जं, अधिगच्छेय्य सोमनस्सं।

७२. "सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो दासो अस्स अनत्ताधीनो पराधीनो न येनकामङ्गमो। सो अपरेन समयेन तम्हा दासब्या मुच्चेय्य अत्ताधीनो अपराधीनो भुजिस्सो येनकामङ्गमो। तस्स एवमस्स— 'अहं खो पुब्बे दासो अहोसिं अनत्ताधीनो पराधीनो न येनकामङ्गमो; सोम्हि एतरहि तम्हा दासब्या मुत्तो, अत्ताधीनो अपराधीनो भुजिस्सो येनकामङ्गमो' ति। सो [R.73] ततोनिदानं लभेथ पामोज्जं, अधिगच्छेय्य सोमनस्सं।

७३. "सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो सधनो सभोगो कन्तारद्धानमग्गं पटिपज्जेय्य दुब्भिक्खं सप्पटिभयं। सो अपरेन समयेन तं कन्तारं नित्थरेय्य सोत्थिना, गामन्तं अनुपापुणेय्य खेमं अप्पटिभयं। तस्स एवमस्स—'अहं खो पुब्बे सधनो सभोगो कन्तारद्धानमग्गं पटिपज्जिं दुब्भिक्खं सप्पटिभयं। सोम्हि एतरहि तं कन्तारं नित्थिण्णो सोत्थिना, गामन्तं अनुप्पत्तो खेमं अप्पटिभयं'

लगे, न उसके शरीर में किसी प्रकार के चलने-फिरने या अन्य कार्य करने की शक्ति ही रह जाय। तननन्तर वह अच्छे वैद्य से चिकित्सा कराने के बाद स्वास्थ्य-लाभ कर ले। तब उसे खाया-पीया भी अच्छा लगे और उसके शरीर में घर का कार्य करने की शक्ति भी आ जाय। फिर कभी उसके मन में यह विचार हो— 'मैं पहले ऐसा रोगी....घर का कार्य करने की शक्ति भी आ गयी।' इस विचार से वह आनन्दित एवं प्रसन्न हो।

७१. "जैसे महाराज! कोई पुरुष कारागार (जेल) में बन्द हो। वह कुछ दिनों बाद सकुशल विना किसी प्रकार की हानि के उस कारागार से मुक्त हो जाय। और इस मुक्ति में उसके धन का भी कोई व्यय न हो। तब कभी उसके मन में यह विचार उठे— 'मैं पहले कारागार में....धन का भी कोई व्यय नहीं हुआ'। तब उसे इस विचार से सौहार्द और सौमनस्य प्राप्त हो।

७२. "जैसे, महाराज! कोई पुरुष किसी का दास हो, पराधीन हो और अपना मनचाहा कोई कार्य न कर सके। यह बाद में कभी उस दासता से मुक्त हो जाय, स्वाधीन हो जाय, और मनचाहा कार्य करने की उसे स्वच्छन्दता मिल जाय तब उसे कभी यों विचार हो— 'मैं पहले दास..... स्वच्छन्दता मिल गयी है।' तब उसे इस विचार से आनन्द (प्रमोद) और हर्ष (सौमनस्य) की अनुभूति हो।

७३. "जैसे महाराज! कोई धनी एवं सुखी पुरुष किसी कान्तार (गहन जंगल) में जाता हुआ मार्ग भटक जाय, जहाँ न खाने-पीने की कोई सामग्री हो साथ ही जंगली जानवरों या चोर डाकुओं का भी भय हो। वह कुछ समय बाद, सौभाग्य से, उस जंगल से सकुशल, बिना किसी विघ्न-बाधा के, पार

ति। सो ततोनिदानं लभेथ पामोज्जं, अधिगच्छेय्य सोमनस्सं।

७४. ''एवमेव खो, महाराज, भिक्खु यथा इणं यथा रोगं यथा बन्धागारं यथा दासब्यं यथा कन्तारद्धानमग्गं, एवं इमे पञ्च नीवरणे अप्पहीने अत्तनि समनुपस्सति।

[N.65] ७५. ''सेय्यथापि, महाराज, यथा आनण्यं यथा आरोग्यं यथा बन्धनामोक्खं यथा भुजिस्सं यथा खेमन्तभूमिं; एवमेव खो, महाराज, भिक्खु इमे पञ्च नीवरणे पहीने अत्तनि समनुपस्सति।

७६. ''तस्सिमे पञ्च नीवरणे पहीने अत्तनि समनुपस्सतो पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदेति। सुखिनो चित्तं समाधियति।

पठमज्झानं

७७. ''सो विविच्चेव कामेहि, विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि, सवितक्कं सविचारं [B.70] विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव, कायं विवेकजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स विवेकजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति।

[R.74] ७८. ''सेय्यथापि, महाराज, दक्खो न्हापको वा न्हापकन्तेवासी वा कंसथाले न्हानीयचुण्णानि आकिरित्वा उदकेन परिप्फोसकं परिप्फोसकं सन्नेय्य, सायं न्हानीयपिण्डि स्नेहानुगता स्नेहपरेता सन्तरबाहिरा फुटा स्नेहेन, न च पग्घरणी; एवमेव खो, महाराज, भिक्खु इममेव

हो जाय और किसी निर्भय, सकुशल खान–पान की सामग्री से युक्त किसी गाँव में पहुँच जाय। तब उस के मन में ऐसा हो– 'मैं पहले कान्तार में जाता हुआ....गाँव के पास पहुँच गया हूँ।' उसे इस विचार से सौमनस्य एवं सौहार्द प्राप्त हो।

७४. ''इसी तरह, महाराज! १. ऋण, २. रोग, ३. कारागार, ४. दासता एवं ५. जंगल में भटकने की तरह ही भिक्षु अपने में वर्तमान पाँच नीवरणों १. काम, २. व्यापाद, ३. स्त्यानमृद्ध, ४. औद्धत्य कौकृत्य एवं ५. विचिकित्सा को देखता है।

७५. ''जैसे, महाराज! ऋण से छुटकारा, नीरोगता, दासता से मुक्ति, स्वतन्त्रता एवं जंगल से पार जाना है वैसे ही, महाराज! साधक भिक्षु का इन उक्त पाँच नीवरणों को अपने में नष्ट हुए देखता है।

७६. ''उस साधक के पाँच नीवरण प्रहीण होने पर उस का मन प्रमुदित होता है। प्रमोद से प्रीति उत्पन्न होती है। प्रीति उत्पन्न होने से उस की काया में प्रश्रब्धि (=शान्ति) आ जाती है। और इस प्रश्रब्धि से इस की काया को सुखानुभूति होती है। और ऐसे सुखी चित्त को समाधि सरलता से प्राप्त हो जाती है।

समाधि– प्रथम ध्यान– ७७. ''वह साधक भिक्षु सांसारिक भोगों की वासना त्याग कर पापमय अकुसल कर्मों का प्रहाण कर सवितर्क, सविचार और विवेक से उत्पन्न प्रीति–सुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना (विहार) करता है। वह इसी शरीर को विवेकजन्य प्रीतिसुख से अभिष्यन्द (सिञ्चन) करता है, परिष्विन्न करता (भिगोता) है, परिपूर्ण करता है, यह चारों और व्याप्त करता है इसके शरीर का कोई भी भाग विवेकजन्य प्रीति सुख से अस्पृष्ट (अव्याप्त) नहीं रहता।

७८. ''जैसे, महाराज! कोइ चतुर स्नान कराने वाला (नाई) या उसका अन्तेवासी काँसे के थाल में स्नानीय चूर्ण डाकर जल से थोड़ा–थोड़ा गीला कर उसका पिण्ड बनावे, सायङ्काल उस पिण्ड को तैल में इस तरह भिगोवे कि तैल उस से बाहर न गिरने लगे। महाराज! इसी तरह इस शरीर को साधक

कायं विवेकजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स विवेकजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति। इदं पि खो, महाराज, सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुरिमेहि सन्दिट्ठिकेहि सामञ्ञफलेहि अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। (३)

दुतियज्झानं

७९. "पुन च परं, महाराज, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं समाधिजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स समाधिजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति।

८०. "सेय्यथापि, महाराज, उदकरहदो गम्भीरो उब्भिदोदको। तस्स नेवस्स पुरत्थिमाय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न दक्खिणाय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न पच्छिमाय [N.66] दिसाय उदकस्स आयमुखं, न उत्तराय दिसाय उदकस्स आयमुखं, देवो च न कालेनकालं सम्माधारं अनुप्पवेच्छेय्य। अथ खो तम्हा व उदकरहदा सीता वारिधारा उब्भिज्जित्वा तमेव उदकरहदं सीतेन वारिना अभिसन्देय्य परिसन्देय्य परिपूरेय्य परिप्फरेय्य, नास्स किञ्चि सब्बावतो उदकरहदस्स सीतेन वारिना अप्फुटं अस्स। एवमेव खो, महाराज, भिक्खु इममेव [R.75] कायं समाधिजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स [B.71] किञ्चि सब्बावतो कायस्स समाधिजेन पीतिसुखेन अप्फुटं हाति। इदं पि खो, महाराज, सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुरिमेहि सन्दिट्ठिकेहि सामञ्ञफलेहि अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च।(४)

ततियज्झानं

८१. "पुन च परं, महाराज, भिक्खु पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो

विवेकजन्य प्रीतिसुख से....। उस के शरीर का कोई भाग विवेकजन्य प्रीतिसुख से अस्पृष्ट नहीं रहता। महाराज! यह भी श्रमणभाव का इसी जन्म में प्राप्त होने वाला प्रत्यक्ष फल है। यह, पहले (अनुपद में) जो इसके प्रत्यक्षफल बताये गये हैं, उनसे भी बढ़कर = प्रशस्ततर है। (३)

द्वितीय ध्यान– ७९. "फिर महाराज! वह भिक्षु वितर्क–विचारों के शान्त हो जाने से आध्यात्मिक प्रसाद, चित्त की एकाग्रता से युक्त किन्तु वितर्क–विचार रहित समाधि से उत्पन्न प्रीति सुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। वह इसी शरीर को समाधि से उत्पन्न प्रीतिसुख से....पूर्ववत्....उसके शरीर का कोई भाग......।

८०. "महाराज! जैसे कोई गम्भीर जलाशय जिसमें भीतर ही भीतर जलस्रोत भी बह रहा हो। न उस जलाशय में पूर्व दिशा की तरफ से, न पश्चिम दिशा की तरफ से, न उत्तर दिशा की तरफ से और न दक्षिण की तरफ से, जल की आय का कोई मार्ग हो। समय–समय पर वर्षा भी न बरसती हो। तब उस जलाशय के भीतर से शीतल जलधारा फूटकर उस को शीतल जल से भर दे.... और उस जलाशय का कोई भी भाग उस शीतल जलधारा से रहित न हो। इसी तरह, महाराज! इसी शरीर को समाधि से उत्पन्न प्रीति सुख से अभिष्विन्न करे....प्रीति सुख से अव्याप्त न रह जाय।

'यह भी महाराज! इस श्रमण भाव का इसी जन्म में दिखायी देने वाला एक प्रत्यक्ष फल है जो कि पूर्वोक्त प्रत्यक्षफलों से और अधिक बढ़ कर ही है। (४)

तृतीय ध्यान– ८१. "फिर, महाराज! वह साधक भिक्षु प्रीति और वैराग्य से भी अन्यमनस्क (उपेक्षक)

सम्पजानो, सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति— 'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं निप्पीतिकेन सुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स निप्पीतिकेन सुखेन अप्फुटं होति।

८२. ''सेय्यथापि, महाराज, उप्पलिनियं वा पदुमिनियं वा पुण्डरीकिनियं वा अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदकानुग्गतानि अन्तोनिमुग्गपोसीनि, तानि याव चग्गा याव च मूला सीतेन वारिना अभिसन्नानि परिसन्नानि परिपूरानि परिप्फुटानि, नास्स किञ्चि सब्बावतं उप्पलानं वा पदुमानं वा पुण्डरीकानं वा सीतेन वारिना अप्फुटं अस्स; एवमेव खो, महाराज, भिक्खु इममेव कायं निप्पीतिकेन सुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स निप्पीतिकेन सुखेन अप्फुटं हाति। इदं पि खो, महाराज, सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुरिमेहि सन्दिट्ठिकेहि सामञ्ञफलेहि अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। (५)

चतुत्थं झानं

[N.67] ८३. ''पुन चपरं, महाराज, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना, पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा, अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज [R.76] विहरति। सो इममेव कायं परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन फरित्वा निसिन्नो होति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन अप्फुटं होति।

[B.72] ८४. ''सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो ओदातेन वत्थेन ससीसं पारुपित्वा निसिन्नो अस्स, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स ओदातेन वत्थेन अप्फुटं अस्स; एवमेव खो, महाराज,

---

होकर स्मृति–सम्प्रजन्य से युक्त हो कर साधना करता है। तथा अपना शरीर से आर्यों (ज्ञानियों) द्वारा कथित सभी सुखों का अनुभव करता है, और उपेक्षा के साथ, स्मृतिमान् सुखविहार वाला तृतीय ध्यान प्राप्त कर साधना करता है। वह इसी शरीर को प्रीतिरहित सुख से अभिष्यन्दन (सींचना)....। इसके शरीर का कोई भी भाग प्रीतिरहित सुख से अव्याप्त नहीं होता।

८२."जैसे, महाराज! उत्पल (नील कमल) तथा पुण्डरीक (श्वेत कमल) वाली पुष्करिणी में कोई–कोई नीलकमल या श्वेत कमल जल में उत्पन्न हुए, जल में वृद्धिङ्गत हुए, जल में ही पुष्ट हुए अपने अग्रभाग (शिखर) तक जल से स्विन्न....व्याप्त रहते हैं, इन का कोई भी भाग जल से अव्याप्त (अपदिष्ट) नहीं रहता इसी तरह, महाराज! वह भिक्षु साधक इस शरीर को प्रीतिरहित सुख से स्विन्न (सिक्त)....रखता है, इसके शरीर का कोई भी भाग प्रीतिरहित सुख से अव्याप्त नहीं रहता। महाराज! इस श्रमणभाव का यह भी इसी जन्म में एक प्रत्यक्ष फल है। अपितु यों कहिये कि यह प्रत्यक्ष फल (तृतीय ध्यान की प्राप्ति) पहले बताये गये प्रत्यक्ष फलों से उत्कृष्टतम हैं। (५)

चतुर्थ ध्यान– ८३."और फिर, महाराज! वह भिक्षु साधक, सुख एवं दुःख का प्रहाण होने के बाद, उससे भी पहले सौमनस्य–दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से, न दुःख न सुख वाले तथा स्मृति एवं उपेक्षा से परिशुद्धिमय चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर साधना करता है। सो वह इसी शरीर को अपने शुद्ध चित्त से निर्मल बना कर बैठता है। उस के शरीर का कोई भी भाग निर्मल चित्त से अव्याप्त नहीं रहता।

८४."जैसे, महाराज! कोई पुरुष श्वेत वस्त्र से (अपने शरीर को) शिर तक ढक कर, पहन कर

भिक्खु इममेव कायं परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन फरित्वा निसिन्नो होति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन अप्फुटं होति। इदं पि खो, महाराज, सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुरिमेहि सन्दिट्ठिकेहि सामञ्ञफलेहि अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। (६)

विपस्सनाञाणं

८५. ''सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते ञाणदस्सनाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो एवं पजानाति— 'अयं खो मे कायो रूपी चातुमहाभूतिको मातापेत्तिकसम्भवो ओदनकुम्मासूपचयो अनिच्चुच्छादनपरिमद्दनभेदनविद्धंसनधम्मो; इदं च पन मे विञ्ञाणं एत्थ सितं एत्थ पटिबद्धं' ति।

८६. ''सेय्यथापि, महाराज, मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो सब्बाकारसम्पन्नो। तत्रास्स सुत्तं आवुतं नीलं वा पीतं वा लोहितं वा ओदातं व पण्डुसुत्तं वा। तमेनं चक्खुमा पुरिसो हत्थे करित्वा पच्चवेक्खेय्य— 'अयं खो मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो सब्बाकारसम्पन्नो; तत्रिदं सुत्तं आवुतं नीलं वा पीतं वा लोहितं वा ओदातं वा पण्डुसुत्तं वा' ति। एवमेव खो, महाराज, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते ञाणदस्सनाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो एवं पजानाति— 'अयं खो मे कायो रूपी चातुमहाभूतिको मातापेत्तिकसम्भवो ओदनकुम्मासूपचयो अनिच्चुच्छादनपरिमद्दनभेदनविद्धंसनधम्मो; इदं च पन मे विञ्ञाणं एत्थ सितं [N.68, R.77] एत्थ पटिबद्धं' ति। इदं पि खो, महाराज, सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुरिमेहि सन्दिट्ठिकेहि सामञ्ञफलेहि अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। (७)

बैठे और उस के शरीर का कोई भी भाग उस श्वेत वस्त्र से विना ढका (आवृत्त) न रहे; इसी तरह महाराज! भिक्षु इसी शरीर को....चतुर्थ ध्यान से अव्याप्त नहीं रहता। महाराज! यह भी इस श्रमण भाव का....पूर्ववत्... उत्कृष्टतर प्रत्यक्ष फल है। (६)

विपश्यना ज्ञान (प्रज्ञा)— ८५. वह (भिक्षु) इस तरह परिशुद्ध, पर्यवदात (स्वच्छ), निरङ्गण (निर्मल), निष्पाप, क्लेशरहित, मृदु, मनोरम और निश्चल (स्थिर) चित्त करने के बाद सम्यग्ज्ञान के साक्षात्कार के लिये स्वचित्त को और भी नम्र करता है। वह इस प्रकार जानता है— 'मेरा यह शरीर रूपी (आकार वाला), भौतिक, माता-पिता से उत्पन्न, दाल-भात खाकर बढने वाला, अनित्य, छेदन-भेदन-मर्दन एवं नाशन योग्य है। यह मेरा विज्ञान (मन) इसमें लग (आबद्ध) जाता है और बँध (आसक्त हो) जाता है।

८६.''महाराज! जैसे अच्छी जाति की वैदूर्य मणि (हीरा), जो कि आठ कोणों में कटी हुई अच्छी पच्चीकारी की हुई, स्वच्छ, प्रसन्न (सुरूप) निर्मल और (रत्नों के) सभी गुणों से सम्पन्न हो और उसमें नीला, पीला, लाल, सफेद, या पाण्डु रंग का तागा (सूत) पिरोया हो। उसे कोई चक्षुष्मान् (आँख वाला)पुरुष हाथ में ले कर देखे—'यह अच्छी जाति की वैदूर्य मणि .... इसमें .... सूत पिरोया है।' इसी तरह महाराज! भिक्षु एकाग्र, शुद्ध .... पूर्ववत् .... चित्त को लगाता है। वह ऐसा जान लेता है—'यह मेरा काय रूपवान् .... नाश योग्य है और यह मेरा विज्ञान (मन) इसमें आबद्ध एवं आसक्त हो गया है।' महाराज! इस श्रमणभाव का प्रत्यक्षफल .... उत्कृष्ट है। (७)

मनोमय ऋद्धिज्ञान—८७. ''वह इस प्रकार का एकाग्र, शुद्ध .... चित्त पाने के बाद, उस स्वचित्त को (कभी-

मनोमयिद्धिञाणं

[B.73] ८७. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते मनोमयं कायं अभिनिम्मिनाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो इमम्हा काया अञ्ञं कायं अभिनिम्मिनाति— रूपिं मनोमयं सब्बङ्गपच्चङ्गिं अहीनिन्द्रियं।

८८. "सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो मुञ्जम्हा ईसिकं पवाहेय्य। तस्स एवमस्स—'अयं मुञ्जो, अयं ईसिका, अञ्ञो मुञ्जो, अञ्ञा ईसिका, मुञ्जम्हा त्वेव ईसिका पवाळ्हा' ति। सेय्यथा वा पन, महाराज, पुरिसो असिं कोसिया पवाहेय्य। तस्स एवमस्स—'अयं असि, अयं कोसि, अञ्ञो असि, अञ्ञा कोसि, कोसिया त्वेव असि पवाळ्हो' ति। सेय्यथा वा पन, महाराज, पुरिसो अहिं करण्डा उद्धरेय्य। तस्स एवमस्स—'अयं अहि, अयं करण्डो, अञ्ञो अहि, अञ्ञो करण्डो, करण्डा त्वेव अहि उब्भतो' ति। एवमेव खो, महाराज, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते मनोमयं कायं अभिनिम्मिनाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो इमम्हा काया अञ्ञं कायं अभिनिम्मिनाति रूपिं मनोमयं सब्बङ्गपच्चङ्गिं अहीनिन्द्रियं। इदं पि खो, महाराज, सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुरिमेहि सन्दिट्ठिकेहि सामञ्ञफलेहि अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। (८)

इद्धिविधञाणं

८९. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते [R.78] कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति—एको पि हुत्वा बहुधा होति, बहुधा पि हुत्वा एको होति; आविभावं, तिरोभावं; तिरोकुड्डं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमानो गच्छति, सेय्यथापि आकासे; पथविया

कभी) मनोमय शरीर के निर्माण के लिये लगाता है। वह इस शरीर से पृथक्, एक अन्य भौतिक, मनोमय सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों से युक्त, पुष्ट इन्द्रियों से सम्पन्न शरीर का निर्माण करता है।

८८. "महाराज! जैसे कोई पुरुष मूँज से सरकण्डा (मोटी सींक) निकाले। उसके विषय में उसको यह हो—'यह मूँज है, यह सींक है, इनमें मूँज दूसरा है, सींक दूसरी है; हाँ, इस मूँज से यह सींक निकाली गयी है'। (क) अथवा, महाराज! जैसे कोई पुरुष तलवार को म्यान से निकाले। तब उस को यह ध्यान आवे—'यह तलवार है, यह म्यान है। यहाँ तलवार दूसरी चीज है म्यान दूसरी चीज; हाँ, यह तलवार से ही निकली है'। (ख) अथवा महाराज! जैसे कोई सँपेरा पिटारी (=करण्ड) से साँप को निकाले। वहाँ उसे यह विचार हो—'यह साँप है, यह पिटारी। यहाँ साँप पिटारी से भिन्न है। हाँ, यह अवश्य है कि साँप पिटारी से ही निकला है'। (ग) इसी तरह, महाराज! भिक्षुओं (उपर्युक्त प्रकार से) चित्त के समाहित .... हो जाने के बाद मनोमय काय के निर्माण हेतु अपने चित्त का अभिनीहार (लगाना) करता है, उस तरफ झुकाता है। तब वह इस काया से पृथक् एक अन्य भौतिक आकार वाला, मनोमय, सर्वाङ्गप्रत्यङ्ग सम्पन्न एवं पुष्ट इन्द्रियों से सम्पन्न शरीर का निर्माण करता है। महाराज! इस श्रमण भाव का यह भी एक प्रत्यक्ष फल है, जो पूर्वोक्त फलों से उत्कृष्ट तर एवं प्रणीततर है। (८)

ऋद्धिविध (चमत्कार) ज्ञान—८९. "वह भिक्षु अपने चित्त को यों समाहित .... निश्चल होने के बाद जनता को ऋद्धिविध (चमत्कार) दिखाने के लिये स्वचित्त को लगाता है, उस तरफ झुकाता है। वह अनेक प्रकार

पि उम्मुज्जनिमुज्जं करोति, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमानो गच्छति, [N.69] सेय्यथापि पथविया; आकासे पि पल्लङ्केन कमति, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि [B.74] चन्दिमसुरिये एंवमहिद्धिके एवंमहानुभावे पाणिना परामसति परिमज्जति; याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेति।

९०. ''सेय्यथापि, महाराज, दक्खो कुम्भकारो वा कुम्भकारन्तेवासी वा सुपरिकम्मकताय मत्तिकाय यं यदेव भाजनविकतिं आकङ्खेय्य तं तदेव करेय्य अभिनिप्फादेय्य। सेय्यथा वा पन, महाराज, दक्खो दन्तकारो वा दन्तकारन्तेवासी वा सुपरिकम्मकतस्मिं दन्तस्मिं यं यदेव दन्तविकतिं आकङ्खेय्य तं तदेव करेय्य अभिनिप्फादेय्य। सेय्यथा वा पन, महाराज, दक्खो सुवण्णकारो वा सुवण्णकारन्तेवासी वा सुपरिकम्मकतस्मिं सुवण्णस्मिं यं यदेव सुवण्णविकतिं आकङ्खेय्य तं तदेव करेय्य अभिनिप्फादेय्य। एवमेव खो, महाराज, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते इद्धिविधाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति—एको पि हुत्वा बहुधा होति, बहुधा पि हुत्वा एको होति; आविभावं, तिरोभावं; तिरोकुड्डं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमानो गच्छति, सेय्यथापि आकासे; पथविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करोति, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमानो गच्छति, सेय्यथापि पथविया; आकासे पि पल्लङ्केन कमति, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके [R.79] एवंमहानुभावे पाणिना परामसति परिमज्जति; याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेति। इदं पि खो, महाराज, सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुरिमेहि सन्दिट्ठिकेहि सामञ्ञफलेहि अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। (९)

दिब्बसोतञाणं

९१. ''सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते

की ऋद्धियों की अनुभव करता है—एक हो कर बहुत होता है, प्रकट (दृष्टिगत)होता है, अन्तर्धान होता है,दीवार के उस पार, प्राकार के उस पार या पर्वत के उस पार, विना टकराये, चला जाता है मानो आकाश में जा रहा हो। पृथ्वी में जल के सदृश गोता लगाता है, जल पर पृथ्वी तल की तरह चलता है। आकाश में भी, पृथ्वी पर आसन लगा कर पक्षी की तरह, उड़ता है। महातेजःसम्पन्न इन सूर्य और चन्द्रमा का भी हाथ से स्पर्श करता है उन्हें मसलता है। अधिक क्या कहा जाय वह(ऋद्धिमान् भिक्षु) ब्रह्मलोक तक को अपने वश में किये रहता है।

९०. ''महाराज! जैसे कोई चतुर कुम्भकार या उस का कोई शिष्य भली भाँति तय्यार की गयी मिट्टी से जिस बर्तन (पात्रभाजन) को चाहे बना ले या फिर उसे बिगाड़ दे। (क) अथवा, महाराज! जैसे कोई हाथी दाँत के कार्य में कुशल कारीगर या उसका शिष्य अच्छी तरह साफ किये हाथी दाँत से जो भी अलङ्कार बनाना चाहे बना ले, या फिर बिगाड़ दे। (ख) अथवा, महाराज! जैसे कोई चतुर सुवर्णकार या उसका कोई शिष्य भली भाँति तपाये, शुद्ध किये सोने से जैसा भी आभूषण बनाना चाहे बना ले, या फिर उसे बिगाड़ दे। (ग) इसी तरह, महाराज! वह साधक भिक्षु स्वचित्त को समाहित .... निश्चल करने के बाद .... पूर्ववत् .... ब्रह्मलोक तक अपने वश में किये रहता है। महाराज! यह भी इस हमारे श्रमण भाव का .... उत्कृष्टतर प्रत्यक्षफल है। (९)

कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते दिब्बाय सोतधातुया चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अदितक्कन्तमानुसिकाय उभो सद्दे सुणाति—दिब्बे च मानुसे च, ये दूरे सन्तिके च।

[B.75] ९२. ''सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो अद्धानमग्गप्पटिपन्नो। सो सुणेय्य भेरिसद्दं पि [N.70] मुदिङ्गसद्दं पि सङ्खपणवदिन्दिमसद्दं पि। तस्स एवमस्स—'भेरिसद्दो इति पि मुदिङ्गसद्दो इति पि सङ्खपणवदिन्दिमसद्दो इति पि'। एवमेव खो, महाराज, भिक्खु एवंसमाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते दिब्बाय सोतधातुया चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानुसिकाय उभो सद्दे सुणाति—दिब्बे च मानुसे च, ये दूरे सन्तिके च। इदं पि खो, महाराज, सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुरिमेहि सन्दिट्ठिकेहि सामञ्ञफलेहि अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। (१०)

चेतोपरियञाणं

९३. ''सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते चेतोपरियञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानाति—सरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानाति, वीतरागं वा चित्तं वीतरागं चित्तं ति पजानाति, सदोसं वा चित्तं सदोसं चित्तं ति पजानाति, वीतदोसं [R.80] वा चित्तं वीतदोसं चित्तं ति पजानाति, समोहं वा चित्तं समोहं चित्तं ति पजानाति, वीतमोहं वा चित्तं वीतमोहं चित्तं ति पजानाति, सङ्खित्तं वा चित्तं सङ्खित्तं चित्तं ति पजानाति, विक्खित्तं वा चित्तं विक्खित्तं चित्तं ति पजानाति, महग्गतं वा चित्तं महग्गतं चित्तं ति पजानाति, अमहग्गतं वा चित्तं अमहग्गतं चित्तं ति पजानाति, सउत्तरं वा चित्तं सउत्तरं चित्तं ति पजानाति, अनुत्तरं वा चित्तं अनुत्तरं चित्तं ति पजानाति, समाहितं वा चित्तं समाहितं चित्तं ति पजानाति, असमाहितं वा चित्तं असमाहितं चित्तं ति पजानाति, विमुत्तं वा चित्तं विमुत्तं चित्तं ति पाजानाति, अविमुत्तं वा चित्तं अविमुत्तं चित्तं ति पजानाति।

दिव्य श्रोत्रज्ञान—९१. ''वह साधक भिक्षु इस प्रकार एकाग्र शुद्ध, ... पूर्ववत् .... निश्चल स्वचित्त को दिव्य श्रोत्र धातु (श्रवणज्ञान) प्राप्त करने के लिये लगाता है, उस तरफ झुकाता है। तब वह अपने इस अलौकिक शुद्ध दिव्य श्रोत्र (कान) से दोनों प्रकार के शब्द—देवताओं के भी, मनुष्यों के भी; पास के भी, दूर के भी —सुनने में समर्थ हो जाता है।

९२. ''महाराज! जैसे कोई पुरुष मार्ग में चल रहा हो वहाँ वह भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख, और ढोल (प्रणव) के शब्द सुने। तब उसे यह समझ में आता रहे—यह भेरी का शब्द है, यह मृदङ्ग की ध्वनि है .... यह ढोल बजने की आवाज है। इसी तरह महाराज! वह साधक भिक्षु एकाग्र शुद्ध .... निश्चल चित्त से दिव्य श्रोत्रधातु प्राप्त करने के लिये .... । यह भी इस श्रमण भाव का .... उत्कृष्टतर प्रत्यक्ष फल है। (१०)

परचित्तज्ञान—९३. ''वह साधक भिक्षु यों एकाग्र, शुद्ध .... निश्चल चित्त से दूसरे के चित्त की बातों को जानने के लिये स्वचित्त को लगाता है। वह अन्य सत्त्वों के अन्य मनुष्यों के चित्त को स्वचित्त से जान लेता है—रागसहित चित्त को रागसहित, वैराग्यसहित चित्त को वैराग्य सहित .... द्वेषसहित चित्त को ....

९४. ''सेय्यथापि, महाराज, इत्थी वा पुरिसो वा दहरो युवा मण्डनजातिको [B.76] आदासे वा परिसुद्धे परियोदाते अच्छे वा उदकपत्ते सकं मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो सकणिकं वा सकणिकं ति जानेय्य, अकणिकं वा अकणिकं ति जानेय्य; एवमेव खो, महाराज, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते चेतोपरियञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानाति—सरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानाति, वीतरागं वा चित्तं वीतरागं चित्तं ति पजानाति, सदोसं वा चित्तं सदोसं चित्तं ति पजानाति, वीतदोसं वा [N.71] चित्तं वीतदोसं चित्तं ति पजानाति, समोहं वा चित्तं समोहं चित्तं ति पजानाति, वीतमोहं वा चित्तं वीतमोहं चित्तं ति पजानाति, सङ्खित्तं वा चित्तं सङ्खित्तं चित्तं ति पजानाति, विक्खित्तं वा चित्तं विक्खित्तं चित्तं ति पजानाति, महग्गतं वा चित्तं महग्गतं चित्तं ति पजानाति, अमहग्गतं वा चित्तं अमहग्गतं चित्तं ति पजानाति, सउत्तरं वा चित्तं सउत्तरं चित्तं ति पजानाति, अनुत्तरं वा चित्तं अनुत्तरं चित्तं ति पजानाति, समाहितं वा चित्तं समाहितं चित्तं ति पजानाति, [R.81] असमाहितं वा चित्तं असमाहितं चित्तं ति पजानाति, विमुत्तं वा चित्तं विमुत्तं चित्तं ति पजानाति, अविमुत्तं वा चित्तं अविमुत्तं चित्तं ति पजानाति। इदं पि खो, महाराज, सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुरिमेहि सन्दिट्ठिकेहि सामञ्ञफलेहि अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। (११)

पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणं

९५. ''सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथिदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि

द्वेषरहित चित्त को .... मोहसहित चित्त को .... मोहरहित चित्त को ...., सङ्कीर्ण चित्त को ...., विक्षिप्त चित्त को .... उदार (महद्गत) चित्त को .... अनुदार चित्त को ...., सांसारिक (साधारण) चित्त को .... अलौकिक (असाधारण) चित्त को .... एकाग्र चित्त को .... अनेकाग्रचित्त को ..... विमुक्त चित्त को .... अविमुक्त चित्त को अविमुक्त चित्त के रूप में जान लेता है।

९४. ''महाराज! जैसे कोई स्त्री या पुरुष, बालक या युवा अपने को अलंकृत कर, शुद्ध दर्पण या निर्मल स्वच्छ जल के पात्र में अपना मुख देखते हुए अपने मुख के मैल या स्वच्छता को ज्यों का त्यों (यथावत्) जानले; उसी तरह महाराज! साधक भिक्षु अपने एकाग्र (समाहित) .... निश्चल चित्त से दूसरे का चित्त (के भाव) जानने के लिये उस तरफ झुकाता है, नँवाता है। तब वह दूसरे प्राणियों या दूसरे पुरुषों के चित्त के भावों को अपने चित्त से यों जान लेता है—सराग चित्त को .... अविमुक्त चित्त को अविमुक्त चित्त जान लेता है। महाराज! श्रमण भाव का इसी लोक में दिखायी देने वाला यह (प्रत्यक्ष) फल भी पूर्वोक्त फलों से उत्कृष्टतर और प्रणीततर है। (११)

पूर्वजन्मों का स्मरण– ९५.'' वह इस प्रकार अपना चित्त एकाग्र .... निश्चल हो जाने पर उससे अपने अनेक पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करने लगता है। जैसे—'एक दो, तीन, चार, पाँच, दस,बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, हजार, लाख पूर्वजन्म, या फिर अनेक संवर्त (प्रलय) कल्प, अनेक विवर्त (सृष्टि का प्रारम्भ) कल्प, या अनेक संवर्त–विवर्त कल्प में मैं वहाँ इस नाम का, इस गोत्र का, इस वर्ण का, ऐसा भोजन करने

जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि अनेक पि संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे—'अमुत्रासिं [B.77] एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुख-दुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति।

९६. ''सेय्यथापि, महाराज, पुरिसो सकम्हा गामा अञ्ञं गामं गच्छेय्य, तम्हा पि गामा अञ्ञं गामं गच्छेय्य। सो तम्हा गामा सकंयेव गामं पच्चागच्छेय्य। तस्स एवमस्स—'अहं खो सकम्हा गामा अमुं गामं अगच्छि, तत्रा पि एवं अट्ठासिं एवं निसीदिं एवं अभासिं एवं तुण्ही अहोसिं, तम्हा पि गामा अमुं गामं अगच्छिं, तत्रा पि एवं अट्ठासिं एवं निसीदिं एवं [N.72, R.82] अभासिं एवं तुण्ही अहोसिं, सोम्हि तम्हा गामा सकंयेव गामं पच्चागतो' ति। एवमेव खो, महाराज, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथिदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि अनेके पि संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे—'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति। इदं पि खो, महाराज, सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुरिमेहि सन्दिट्ठिकेहि सामञ्ञफलेहि अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। (१२)

दिब्बचक्खुञाणं

[B.78] ९७. ''सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते

वाला, तथा इस तरह के सुख–दुःख का अनुभव आयुःपर्यन्त करता था; वहाँ से च्युत होकर वहाँ (दूसरी जगह) उत्पन्न हुआ, वहाँ भी मैं इस नाम का .... पूर्ववत्.... आयुःपर्यन्त इस तरह के सुख–दुःख का अनुभव करता था, वहाँ से च्युत हो कर यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ। इस तरह आकार प्रकार(उद्देश्य) के साथ वह अनेक पूर्व जन्मों का स्मरण करता है।

९६. ''जैसे महाराज! कोई पुरुष अपने ग्राम से दूसरे ग्राम जाय, और फिर वह उस गाँव से अपने गाँव लौट आय। तब उसके मन में ऐसा विचार उठे–'मैं अपने गाँव से अमुक ग्राम गया, वहाँ ऐसे ठहरा, ऐसे खड़ा हुआ, ऐसे बोला, ऐसे चुप रहा। उस ग्राम से अमुक गाँव गया ,वहाँ भी ऐसे ठहरा, ऐसे बोला, ऐसे बैठा, ऐसे चुप रहा। फिर मैं उस ग्राम से पुनः अपने ग्राम लौट आया।' इसी तरह, महाराज! वह साधक भिक्षु अपने समाहित (एकाग्र) .... निश्चल चित्त को नवाँ कर, झुका कर अपने अनेक पूर्व जन्मों को .... स्मरण करता है। यह भी, महाराज! इस श्रमण भाव का .... उत्कृष्टतर प्रत्यक्ष फल है। (१२)

कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चितं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे सुगते दुग्गते। यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति—'इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना। इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समनन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना' ति। इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन [R.83] अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे सुगते दुग्गते। यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति।

९८. "सेय्यथापि, महाराज, मज्झे सिङ्घाटके पासादो। तत्थ चक्खुमा पुरिसो ठितो पस्सेय्य मनुस्से गेहं पविसन्ते पि निक्खमन्ते पि रथिकाय पि वीथिं सञ्चरन्ते मज्झे [N.73] सिङ्घाटके निसिन्ने पि। तस्स एवमस्स—'एते मनुस्सा गेहं पविसन्ति, एते निक्खमन्ति, एते रथिकाय वीथिं सञ्चरन्ति, एते मनुस्सा मज्झे सिङ्घाटके निसिन्ना' ति । एवमेव खो, महाराज, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे सुगते दुग्गते। यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति—'इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं [B.79] उपपन्ना।इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा

दिव्यचक्षुज्ञान—९७. " वह भिक्षु इस प्रकार एकाग्र .... निश्चल चित्त को दूसरे प्राणियों का जन्म–मरण जानने के लिये लगाता है। इस तरह वह शुद्ध, अलौकिक दिव्य चक्षु से मरते–उत्पन्न होते, हीन या अच्छी अवस्था में आये, अच्छे वर्ण या बुरे वर्ण वाले, अच्छी या बुरी गतिको प्राप्त, स्व स्व कर्मानुसार अवस्था में पहुँचे हुए प्राणियों को जान लेता है कि ये प्राणी शरीर वचन या मन से दुराचरण करते हुए सज्जनों की निन्दा करते थे, मिथ्या दृष्टि (गलत सिद्धान्त) रखते थे, मिथ्या दृष्टियुक्त कर्म करते थे। अब ये मरने के बाद, नरक या दुर्गति को प्राप्त हुए हैं। और ये दूसरे लोग काय वाक् और मन से सुचरित करते सज्जनों (आर्यों) की प्रशंसा करते सम्यग्दृष्टि (अच्छे सिद्धान्त) वाले सम्यग्दृष्टि के अनुकूल आचरण करते थे। सो अब अच्छी गति और स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं। इस तरह दिव्य एवं शुद्ध चक्षु से .... जान लेता है।

९८. "जैसे, महाराज! चौराहे (सिङ्घाटक) पर कोई प्रासाद (महल) बना हो, वहाँ बैठ कर कोई चक्षुष्मान् पुरुष घर से निकलते, वहाँ प्रवेश करते या सड़कों पर घूमते घरों मैं बैठे पुरुषों को देखता है। तब उसे यह विचार हो—यहाँ ये मनुष्य घर में प्रविष्ट भी होते हैं, बाहर भी निकलते हैं, सड़कों पर भी घूमते हैं, घरों में भी बैठे है।' इसी तरह महाराज! वह साधक भिक्षु अपने शुद्ध .... निश्चल चित्त को .... पूर्ववत् .... प्राणियों को देखता है। महाराज! यह भी श्रमण भाव का एक उत्कृष्टतर प्रत्यक्ष फल है। (१३)

—

परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना' ति। इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे सुगते दुग्गते; यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति। इदं पि खो, महाराज, सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुरमेहि सन्दिट्ठिकेहि सामञ्ञफलेहि अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। (१३)

आसवक्खयञाणं

९९. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते [R.84] कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति; 'इमे आसवा' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति।

[N.74] १००. "सेय्यथापि, महाराज, पब्बतसङ्खेपे उदकरहदो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो। तत्थ चक्खुमा पुरिसो तीरे ठितो पस्सेय्य सिप्पिकसम्बुकं पि सक्खरकथलं पि मच्छगुम्बं पि चरन्तं पि तिट्ठन्तं पि। तस्स एवमस्स—'अयं खो उदकरहदो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो। तत्रिमे सिप्पिकसम्बुका पि सक्खरकथला पि मच्छगुम्बा पि चरन्ति पि तिट्ठन्ति पी' ति; एवमेव खो, महाराज, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो इदं दुक्खं ति यथाभूतं पजानाति, अयं दुक्खसमुदयो ति यथाभूतं पजानाति, अयं दुक्खनिरोधो [B.80] ति यथाभूतं पजानाति, अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा ति यथाभूतं पजानाति; इमे

दु:खक्षय-ज्ञान—९९. "वह इस प्रकार एकाग्र .... चित्त को .... झुकाता है। वह 'यह दु:ख है'—ऐसा भली भाँति जानता है, यह 'दु:ख-समुदय(=दु:ख का कारण) है'—ऐसा .... 'यह दु:खनिरोध है'—ऐसा ... 'यह दु:खनिरोध की तरफ ले जाने वाला मार्ग है'—ऐसा ...। 'ये आस्रव हैं (अकुशल विचार) है'—ऐसा .... 'यह आस्रवसमुदय है'— ऐसा ....'यह आस्रवनिरोध है'— ऐसा ....'यह आस्रवनिरोध की तरफ पहुँचाने वाला मार्ग है' —ऐसा भली भाँति जानता है। इस तरह जानने-समझने पर उस के कामास्रव (भोगों के भोगने की इच्छा) भवास्रव (जन्म लेने की इच्छा) तथा अविद्यास्रव (मिथ्याज्ञान)—इन तीनों आस्रवों (चित्तमलों) से चित्त विमुक्त हो जाता है। चित्त के विमुक्त होने पर उस भिक्षु को 'मेरा चित्त विमुक्त हो गया'—ऐसा ज्ञान होता है। वह यह जान लेता है कि 'मेरा जन्म-मरण क्षीण हो चुका है, ब्रह्मचर्य धारण (धर्मसाधना) पूर्ण हो चुका है, मैं अपना कर्तव्य पूरा कर चुका हूँ, इससे आगे मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है।'

१०० जैसे महाराज, किसी पहाड़ की चोटी (पब्बतसङ्खेप) पर स्वच्छ, प्रसन्न और निर्मल जलाशय हो। वहाँ कोई चक्षुष्मान् पुरुष किनारे पर खड़ा हो कर सीप, घोंघा, या अन्य जलजन्तु जैसे चलती-फिरती मछलियों को देखे। तब उसके मन में ऐसा हो—'यह जलाशय स्वच्छ, प्रसन्न और निर्मल है। इसमें मैं ये सीप .... मछलियाँ है।' इसी तरह, महाराज! वह साधक भिक्षु इस प्रकार एकाग्र .... . निश्चल

आसवा ति यथाभूतं पजानाति, अयं आसवसमुदयो ति यथाभूतं पजानाति, अयं आसवनिरोधो ति यथाभूतं पजानाति, अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं [R.85] ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। इदं खो, महाराज, सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं पुरिमेहि सन्दिट्ठिकेहि सामञ्ञफलेहि अभिक्कन्ततरं च पणीततरं च। इमस्मा च पन, महाराज, सन्दिट्ठिका सामञ्ञफला अञ्ञं सन्दिट्ठिकं सामञ्ञफलं उत्तरितरं वा पणीततरं वा नत्थी'' ति। (१४)

६. अजातसत्तुउपासकत्तपटिवेदना

१०१. एवं वुत्ते, राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—''अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते। सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं, भन्ते, भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं। अच्चयो मं, भन्ते, अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं, योहं पितरं धम्मिकं [N.75] धम्मराजानं इस्सरियकारणा जीविता वोरोपेसिं। तस्स मे, भगवा अच्चयं अच्चयतो पटिग्गण्हातु आयतिं संवराया'' ति।

१०२. ''तग्घ त्वं, महाराज, अच्चयो अच्चगमा यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं, यं त्वं पितरं धम्मिकं धम्मराजानं जीविता वोरोपेसि। यतो च खो त्वं, महाराज, अच्चयं अच्चयतो

चित्त को प्राप्त कर आस्रवों के क्षय के लिये .... 'यह दुःख है' ....'यह आस्रवनिरोध का मार्ग'— ऐसा जान लेता है। ऐसा जानने से कामास्रव .... अविद्यास्रव .... अब मेरा कोई कर्तव्यशेष नहीं है। यह भी, महाराज! इस श्रमण भाव का .... एक उत्कृष्टतर प्रत्यक्ष फल है। महाराज! इस (आश्रवज्ञान) से बढ़ कर श्रमणभाव का दूसरा कोई उत्कृष्टतर प्रत्यक्ष फल नहीं है।'' (१४)

अजातशत्रु द्वारा भगवान् से अपना उपासक बनाने का निवेदन—१०१. भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु ने भगवान् से यों निवेदन किया—''आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! जैसे कोई उलटे पात्र को सीधा कर दे, ढँके को खोल दे, यह फटके (मूढ़) को सही रास्ता दिखा दे, अन्धकार तैल से जला दीपक ले कर खड़ा हो जाय कि देखने वाले रास्ता देख ले; उसी तरह, भन्ते! भगवान् (आप) ने अनेक तरह से धर्म का व्याख्यान किया। भन्ते! यह मैं (अजातशत्रु) भगवान् धर्म एवं सङ्घ की शरण में आया हूँ। आज से यावज्जीवन भगवान् मुझे अपनी शरण में आया स्वीकार करें। भन्ते! मैने अपने जीवन में एक बहुत बड़ा अपराध कर दिया है जो अपनी मूर्खता, मूढ़ता और पापों के कारण राज्यप्राप्ति के लिये मैने अपने धार्मिक धर्मराज पिता की हत्या कर दी। अतः, भन्ते! भविष्य में ऐसी भूल कभी नहीं करूँगा, इस अपराध के लिये मुझे क्षमा कर दीजिये।''

१०२. ''तो, महाराज! आपने जो अपनी मूढता, मूर्खता एवं पापों से अपने धार्मिक धर्मराज पिता की हत्या कर दी यह बहुत भारी अपराध और पाप किया। किन्तु क्योंकि, महाराज! आप अपनी मूर्खता एवं पाप को स्वीकार कर भविष्य में सावधान रहने की प्रतिज्ञा करते हो, अतः मैं आप को क्षमा करता

दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोसि, तं ते मयं पटिग्गण्हाम। वुद्धिहेसा, महाराज, अरियस्स विनये यो अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोति, आयतिं संवरं आपज्जती'' ति।

१०३. एवं वुत्ते, राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—[B.81] ''हन्द च दानि मयं, भन्ते, गच्छाम। बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया'' ति।

''यस्सदानि त्वं, महाराज, कालं मञ्ञसी'' ति।

अथ खो राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

१०४. अथ खो भगवा अचिरपक्कन्तस्स रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुस्स [R.86] वेदेहिपुत्तस्स भिक्खू आमन्तेसि—''खतायं, भिक्खवे, राजा। उपहतायं, भिक्खवे, राजा। सचायं, भिक्खवे, राजा पितरं धम्मिकं धम्मराजानं जीविता न वोरोपेस्सथ, इमस्मिं येव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उप्पज्जिस्सथा'' ति।

इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥

सामञ्ञफलसुत्तं निट्ठितं दुतियं॥

हूँ। आर्यधर्म में यह (पुण्य) वृद्धि की ही बात समझी जाती है कि कोई अपनी मूढता, मूर्खता और पाप को समझ कर स्वीकार करते हुए भविष्य में उस पाप को न करने और धर्माचरण की प्रतिज्ञा करता हो।''

१०३. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र भगवान से यों बोला— ''भन्ते! अब मै चलना चाह रहा हूँ। (आज्ञा दीजिये); क्योंकि मुझे और भी बहुत से कार्य करने हैं।''

''ठीक है, महाराज! जैसा तुम उचित समझो।'' तब राजा मागध अजातशत्रु वैदेहिपुत्र भगवान् के उपदेश का अभिनन्दन एवं अनुमोदन कर आसन से उठ कर भगवान् को (पुनः) प्रणाम तथा प्रदक्षिणा कर चल दिया।

१०४. भगवान् ने, मगधराज अजातशत्रु के चले जाने के कुछ देर बाद, ''भिक्षुओ! इस राजा का संस्कार अच्छा नहीं रहा, यह तो मन्दभाग्य निकला। यदि, भिक्षुओ! यह राजा अपने धार्मिक धर्मराज पिता की हत्या न करता तो आज इसे इसी आसन पर बैठे–बैठे विकाररहित (विरज) निर्मल धर्मचक्षु (धर्मज्ञान) उत्पन्न हो जाता।''

भगवान् ने यह कहा। भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का प्रसन्नता से अभिनन्दन किया।।

द्वितीय श्रामण्यफलसूत्र समाप्त॥

३. अम्बट्ठसुत्तं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसलेसु चारिकं चरमानो [N.76, B.82, R.87] महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि येन इच्छानङ्गलं नाम कोसलानं ब्राह्मणगामो तदवसरि। तत्र सुदं भगवा इच्छानङ्गले विहरति इच्छानङ्गलवनसण्डे।

१. पोक्खरसातिवत्थु

२. तेन खो पन समयेन ब्राह्मणो पोक्खरसाति उक्कट्ठं अज्झावसति सत्तुस्सदं सतिणकट्ठोदकं सधञ्ञं राजभोग्गं, रञ्ञा पसेनदिना कोसलेन दिन्नं, राजदायं ब्रह्मदेय्यं। अस्सोसि खो ब्राह्मणो पोक्खरसाति– "समणो खलु, भो, गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि इच्छानङ्गलं अनुप्पत्तो इच्छानङ्गले विहरति इच्छानङ्गलवनसण्डे। तं खो पन भगवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो– 'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं [R.88] देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती' " ति।

३. तेन खो पन समयेन ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स अम्बट्ठो नाम माणवो अन्तेवासी होति अज्झायको मन्तधरो, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको, वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो, अनुञ्ञात-

---

३. अम्बष्ठसूत्र

१. ऐसा मैंने सुना (है) कि एक समय भगवान् (बुद्ध) पाँच सौ भिक्षुओं के एक बृहत् सङ्घ के साथ कोसल देश के इच्छानङ्गल नामक ब्राह्मणग्राम के इच्छानङ्गल वनप्रदेश में चारिका कर रहे थे।

१. पोक्खरसाति ब्राह्मणवस्तु

२. उस समय पौष्करसाति नामक ब्राह्मण कोसल देशाधिपति प्रसेनजित् द्वारा राजभोग्य, राजा के द्वारा दी गयी, ब्रह्मदेय, जनबहुल, तृण–काष्ठ, उदक, धन–धान्य से सम्पन्न उक्कट्ठा का स्वामी था। उस पौष्करसाति ब्राह्मण ने (कभी) सुना– "शाक्य कुल से प्रव्रजित यह श्रमण–गौतम....पूर्ववत्....इच्छानङ्गल वनप्रदेश में चारिका कर रहे हैं। उन भगवान् गौतम के विषय में जनता में ऐसा कीर्ति–शब्द फैला हुआ है– 'वे भगवान् अर्हन्, सम्यक्सम्बुद्ध, विद्या–आचरण से सम्पन्न, सुगत (या सुगद), लोकविद्, अनुपम, पुरुषदम्य सारथि, देव–मानवों के शास्ता, बुद्ध भगवान् हैं। वे देव–मारसहित इस लोक तथा श्रमण–ब्राह्मण–देव–मनुष्य सहित प्रजा को (धर्मविषयक बातें) स्वयं जानकर, साक्षात् कर समझाते हैं। वे आदि–कल्याण, मध्येकल्याण एवं अन्त में भी कल्याणप्रद धर्म का उपदेश करते हैं। वे ऐसी धर्मसाधना (ब्रह्मचर्य) का उपदेश करते हैं जो एकान्ततः परिपूर्ण परिशुद्ध एवं सार्थक या सुस्पष्ट है।' इस प्रकार के अर्हत् का दर्शन शुभ एवं मङ्गलमय होता है।"

३. उस समय पौष्करसाति ब्राह्मण का अम्बष्ठ नामक माणवक ऐसा शिष्य था जो वेदपाठी, मन्त्रधर, तीनों वेदों का पारङ्गत, जिन में निघण्टु (वैदिकशब्दकोश), केटुभ (कल्प), अक्षरप्रभेद (घनपाठ–

[B.83] पटिञ्ञातो सके आचरियके तेविज्जके पावचने— "यमहं जानामि तं त्वं जानासि, यं त्वं जानासि तमहं जानामी" ति।

४. अथ खो ब्राह्मणो पोक्खरसाति अम्बट्ठं माणवं आमन्तेसि— "अयं, तात अम्बट्ठ, समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन [N.77] सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि इच्छानङ्गलं अनुप्पत्तो इच्छानङ्गले विहरति इच्छानङ्गल-वनसण्डे। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो— 'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती' ति। एहि त्वं, तात अम्बट्ठ, येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा समणं गोतमं जानाहि— 'यदि वा तं भवन्तं गोतमं तथासन्तं येव सद्दो अब्भुग्गतो यदि वा नो तथा, यदि वा सो भवं गोतमो तादिसो यदि वा न तादिसो। तथा मयं तं भवन्तं गोतमं वेदिस्सामा' " ति।

५. "यथा कथं पनाहं, भो[१], तं भवन्तं गोतमं जानिस्सामि— 'यदि वा तं भवन्तं गोतमं तथासन्तं येव सद्दो अब्भुग्गतो यदि वा नो तथा, यदि वा सो भवं गोतमो तादिसो यदि वा न तादिसो' " ति?

"आगतानि खो, तात अम्बट्ठ, अम्हाकं मन्तेसु द्वत्तिंस महापुरिसलक्खणानि, येहि समन्नागतस्स महापुरिसस्स द्वेयेव गतियो भवन्ति, अनञ्ञा। सचे अगारं अज्झावसति, राजा

जटापाठ आदि) शिक्षा (निरुक्त) एवं इतिहास सम्मिलित हैं। पदज्ञ (कवि), वैयाकरण, लोकायत एवं ज्यौतिष (सामुद्रिक) शास्त्र (महापुरुषलक्षण–ज्ञान) में निपुण अपने पाण्डित्य एवं व्याख्यान में उन के आचार्य गुरुओं द्वारा भी इस तरह अनुमोदित था– 'जो मैं जानता हूँ सो तू जानता है, जो तूँ जानता है (उतना ही) मैं भी जानता हूँ'।"

४. तब पौष्करसाति ब्राह्मण ने उस अम्बष्ठ माणवक को बुलाकर यों आदेश दिया– "प्रिय अम्बष्ठ! यह शाक्यकुल से प्रव्रजित शाक्यपुत्र गौतम.... पूर्ववत्....इस प्रकार के अर्हतों का दर्शन शुभ एवं मङ्गलमय होता है। जाओ! प्रिय अम्बष्ठ! तुम जहाँ श्रमण गौतम हैं वहाँ पहुँचो। वहाँ पहुँच कर उस श्रमण गौतम के विषय में जानो कि उन माननीय गौतम का यह गुणगान जनता द्वारा यथार्थ हो रहा है या अन्यथा (किसी के बहकावे में आ कर)। तुम निश्चित रूप से पता लगाओ कि वे वैसे ही हैं या नहीं। तब हम तुम्हारे कथन (निर्णय) के अनुसार ही उनके विषय में अपना मत स्थिर करेंगे।"

५. "श्रीमन्! मैं उन श्रमण गौतम को कैसे जान पाऊँगा कि उनके विषय जनता में फैला हुआ कीर्तिशब्द यथार्थ है? या नहीं?"

"प्रिय अम्बष्ठ! हमारे (वेद) मन्त्रों में यथाप्रसङ्ग महापुरुषों को ३२ लक्षण बताये गये हैं। उन से युक्त महापुरुष की दो ही गति होती हैं, तीसरी नहीं। वह या तो (यदि घर में रहता है तो) धार्मिक, धर्म से

---

१. भगवान् बुद्ध के समय ब्राह्मण विद्वान् परस्पर वार्तालाप-प्रसङ्ग में अपने से पूज्य को आदरार्थक 'भो' शब्द का प्रयोग करते थे।

होति चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतन-[R.89] समन्नागतो। तस्सिमानि सत्त रतनानि भवन्ति, सेय्यथिदं—चक्करतनं, हत्थिरतनं, अस्सरतनं, मणिरतनं, इत्थिरतनं, गहपतिरतनं परिणायकरतनमेव सत्तमं। परोसहस्सं खो पनस्स [B.84] पुत्ता भवन्ति सूरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना। सो इमं पथविं सागरपरियन्तं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजिय अज्झावसति। सचे खो पन अगारस्मा अनगारियं पब्बजति, अरहं होति सम्मासम्बुद्धो लोके विवट्टच्छदो। अहं खो पन, तात अम्बट्ठ, मन्तानं दाता; त्वं मन्तानं पटिग्गहेता'' ति।

२. अम्बट्ठमाणवो भगवन्तं उपगच्छि

६. ''एवं, भो'' ति खो अम्बट्ठो माणवो ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स पटिस्सुत्वा उट्ठायासना ब्राह्मणं पोक्खरसातिं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा वळवारथमारुय्ह [N.78] सम्बहुलेहि माणवकेहि सद्धिं येन इच्छानङ्गलवनसण्डो तेन पायासि। यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा, याना पच्चोरोहित्वा पत्तिको व आरामं पाविसि। तेन खो पन समयेन सम्बहुला भिक्खू अब्भोकासे चङ्कमन्ति। अथ खो अम्बट्ठो माणवो येन ते भिक्खू तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते भिक्खू एतदवोच—''कहं नु खो, भो, एतरहि सो भवं गोतमो विहरति? तं हि मयं भवन्तं गोतमं दस्सनाय इधूपसङ्कन्ता'' ति।

७. अथ खो तेसं भिक्खूनं एतदहोसि—''अयं खो अम्बट्ठो माणवो अभिञ्ञातकोलञ्ञो चेव अभिञ्ञातस्स च ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स अन्तेवासी। अगरु खो पन भगवतो एवरूपेहि कुलपुत्तेहि सद्धिं कथासल्लापो होती'' ति। ते अम्बट्ठं माणवं एतदवोचुं—''एसो, अम्बट्ठ,

---

प्रजा का पालन करने वाला, समुद्रपर्यन्त चारों दिशाओं को जीतने वाला, स्थायी राज्य का शासक, सात रत्नों से युक्त जैसे– १. चक्ररत्न, २. हस्तिरत्न, ३. अश्वरत्न, ४. मणिरत्न, ५. स्त्रीरत्न, ६. गृहपति (मन्त्रि) रत्न एवं ७. परिणायक रत्न। उसके हजारों (शत्रुसेना विजयी) वीर पुत्र होते हैं....चक्रवर्ती राजा होता है। यदि घर से बाहर प्रव्रजित हो जाय तो अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हो जाता है। जनता को ज्ञान प्रकाश के सहारे भवबन्धन से मुक्त कराने वाला। तात अम्बष्ठ! मैं तुम्हारा मन्त्रों का दाता (गुरु) हूँ और तू मुझसे उन मन्त्रों को सीखने वाला प्रतिग्रहीता (शिष्य) है। (अतः तूँ दूसरों को समझने–पहचानने में मुझ से कम सामर्थ्य वाला नहीं है।'')

२. अम्बष्ठ माणवक का भगवान् के पास पहुँचना

६. वह अम्बष्ठ माणवक अपने गुरु पौष्करसाति को ''अच्छा भगवन्!'' उत्तर देकर, आसन से उठ कर गुरु पौष्करसाति को प्रणाम–प्रदक्षिणा कर, घोड़ियाँ जुते हुए रथ पर सवार हो कर बहुत से माणवकों के साथ जहाँ इच्छानङ्गल ग्राम का वनप्रदेश (वनखण्ड) था, वहाँ पहुँचा। जहाँ तक यान (रथ) से जाने योग्य मार्ग था वहाँ तक यान से गया; फिर रथ से उतर कर पैदल ही उस विहार में प्रविष्ट हुआ जहाँ भगवान् विराजमान थे। उस समय बहुत से भिक्षु खुले मैदान में घूम रहे थे। तब वह अम्बष्ठ माणवक जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर उसने उन भिक्षुओं से यों पूछा– ''सज्जनो! इस समय माननीय गौतम कहाँ विराजमान हैं? हम उनके दर्शन के लिये यहाँ आये हैं।''

७. तब उन भिक्षुओं के मन में वह विचार आया– ''यह अम्बष्ठ माणवक स्वयं प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न है, और अभिजातकुलोत्पन्न पौष्करसाति ब्राह्मण का शिष्य है। ऐसे कुलपुत्रों के साथ कथासंलाप

विहारो संवुतद्वारो, तेन अप्पसद्दो उपसङ्कमित्वा अतरमानो आळिन्दं पविसित्वा उक्कासित्वा अग्गळं आकोटेहि। विवरिस्सति ते भगवा द्वारं'' ति।

८. अथ खो अम्बट्ठो माणवो येन सो विहारो संवुतद्वारो तेन अप्पसद्दो उपसङ्कमित्वा अतरमानो आळिन्दं पविसित्वा उक्कासित्वा अग्गळं आकोटेसि। विवरि भगवा द्वारं। पाविसि अम्बट्ठो माणवो। माणवका पि पविसित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं [B.85, R.90] वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। अम्बट्ठो पन माणवो चङ्कमन्तो पि निसिन्नेन भगवता किञ्चि किञ्चि कथं सारणीयं वीतिसारेति, ठितो पि निसिन्नेन भगवता किञ्चि किञ्चि कथं सारणीयं वीतिसारेति।

९. अथ खो भगवा अम्बट्ठं माणवं एतदवोच— ''एवं नु ते, अम्बट्ठ, ब्राह्मणेहि वुद्धेहि महल्लकेहि आचरियपाचरियेहि सद्धिं कथासल्लापो होति यथयिदं चरं तिट्ठं निसिन्नेन मया किञ्चि किञ्चि कथं सारणीयं वीतिसारेसी'' ति?

३. अम्बट्ठो सक्येसु इब्भवादं निपातेसि

१०. ''नो हिदं, भो गोतम। गच्छन्तो वा हि, भो गोतम, गच्छन्तेन ब्राह्मणो ब्राह्मणेन सद्धिं सल्लपितुमरहति। ठितो वा हि, भो गोतम, ठितेन ब्राह्मणो ब्राह्मणेन सद्धिं सल्लपितुमरहति। [N.79] निसिन्नो वा हि, भो गोतम, निसिन्नेन ब्राह्मणो ब्राह्मणेन सद्धिं सल्लपितुमरहति। सयानो वा हि, भो गोतम, सयानेन ब्राह्मणो ब्राह्मणेन सद्धिं सल्लपितुमरहति। ये च खो ते, भो गोतम, मुण्डका समणका इब्भा कण्हा बन्धुपादापच्चा तेहि पि मे सद्धिं एवं कथासल्लापो होति यथरिव भोता गोतमेना'' ति।

(बातचीत) भगवान् को कठिन नहीं होता।'' उन्होंने अम्बष्ठ माणवक को बताया— 'अम्बष्ठ! यह बन्द दरवाजे वाला विहार (कमरा) देख रहे हो ना! तुम वहाँ चुपचाप धीरे से जाओ, और बरामदे (आलिन्द) में प्रवेश कर, खांस कर, जंजीर खट-खटाना। भगवान् दरवाजा खोल देंगे।''

८. तब अम्बष्ठ माणवक ने, जहाँ वह बन्द दरवाजे वाला विहार था वहाँ चुपचाप धीरे से पहुँच कर खांस कर दरवाजे की जंजीर से खट-खटाया। भगवान् ने दरवाजा खोल दिया। अम्बष्ठ माणवक ने विहार में प्रवेश किया। दूसरे माणवकों ने भी प्रवेश कर भगवान् का सम्मोदन (कुशल-मङ्गल पूछना) किया। सम्मोदन कर वे सब एक ओर बैठ गये। परन्तु अम्बष्ठ माणवक स्वयं घूमता हुआ बैठे हुए भगवान् से बात करने लगा और कभी स्वयं बैठा हुआ टहलते हुए भगवान् से कुछ न कुछ बात करता रहा।

९. तब भगवान् ने माणवक से यों पूछा— ''अम्बष्ठ! क्या तुम्हारे यहाँ बड़े-बूढ़े आचार्य-प्राचार्यों के साथ इसी तरह संवाद (कथासंलाप) होता है जैसा कि तुम मेरे साथ खड़े हुए भी, बैठे हुए भी कुछ न कुछ बातचीत कर रहे हो।''

३. अम्बष्ठ का शाक्यों पर आक्षेप

१०. ''नहीं, श्रीमन् गौतम! ब्राह्मण लोग तो दूसरे चलते हुए ब्राह्मण के साथ चलते-चलते बात करते हैं और ठहरे हुए के साथ ठहर कर बातचीत करते हैं। बैठे हुए के साथ बैठ कर, लेटे हुए के साथ लेट कर बातचीत की जाती है। किन्तु, भो गौतम! जो मुण्डक श्रमण नीच (इभ्य), काले, ब्रह्मा (बन्धु) के पैर की सन्तान हैं उनके साथ हमारा संवाद इसी तरह की उपेक्षा के साथ होता है, जैसा कि मेरा आप गौतम के साथ।''

"अत्थिकवतो खो पन ते, अम्बट्ठ, इधागमनं अहोसि। यायेव खो पनत्थाय आगच्छेय्याथ तमेव अत्थं साधुकं मनसि करेय्याथ। अवुसितवा येव खो पन, भो, अयं अम्बट्ठो माणवो वुसितमानी। किमञ्ञत्र अवुसितत्ता" ति!

११. अथ खो अम्बट्ठो माणवो भगवता अवुसितवादेन वुच्चमानो कुपितो अनत्तमनो, भगवन्तंयेव खुंसेन्तो, भगवन्तंयेव वम्भेन्तो, भगवन्तंयेव उपवदमानो— "समणो च मे, भो, गोतमो पापितो भविस्सती" ति भगवन्तं एतदवोच— "चण्डा, भो गोतम, सक्यजाति; [R.91] फरुसा, भो गोतम, सक्यजाति; लहुसा, भो गोतम, सक्यजाति; भस्सा, भो गोतम, [B.86] सक्यजाति; इब्भा सन्ता इब्भा समाना न ब्राह्मणे सक्करोन्ति न ब्राह्मणे गरुं करोन्ति न ब्राह्मणे मानेन्ति न ब्राह्मणे पूजेन्ति न ब्राह्मणे अपचायन्ति। तयिदं, भो गोतम, नच्छन्नं, तयिदं नप्पतिरूपं यदिमे सक्या इब्भा सन्ता इब्भा समाना न ब्राह्मणे सक्करोन्ति न ब्राह्मणे गरुं करोन्ति न ब्राह्मणे मानेन्ति न ब्राह्मणे पूजेन्ति न ब्राह्मणे अपचायन्ती" ति। इति ह अम्बट्ठो माणवो इदं पठमं सक्येसु इब्भवादं निपातेसि।

"किं पन ते, अम्बट्ठ, सक्या अपरद्धं" ति?

१२. "एकमिदाहं, भो गोतम, समयं आचरियस्स ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स केनचिदेव करणीयेन कपिलवत्थुं अगमासिं; येन सक्यानं सन्धागारं तेनुपसङ्कमिं। तेन खो पन समयेन सम्बहुला सक्या चेव सक्यकुमारा च सन्धागारे उच्चेसु आसनेसु निसिन्ना होन्ति, अञ्ञमञ्ञं अङ्गुलिपतोदकेहि सञ्जग्घन्ता सङ्कीळन्ता, अञ्ञदत्थु ममञ्ञेव मञ्ञे अनुजग्घन्ता। न मं कोचि आसनेन पि निमन्तेसि। तयिदं, भो गोतम, नच्छन्नं, तयिदं नप्पतिरूपं यदिमे सक्या

"अम्बष्ठ! तुम्हारा यहाँ आना याचक (=अत्थिकवा) की तरह हुआ है। मनुष्य जिस प्रयोजन (= अर्थ) से आये उसी प्रयोजन को ध्यान में रखना चाहिये। ज्ञात होता है, अम्बष्ठ! तुमने किसी साधु पुरुष के नीचे (अनुशासन में) रह कर धर्म–साधना नहीं की है। विना ऐसा किये ही तूँ उसका अभिमान कर रहा है?"

११. तब अम्बष्ठ माणवक ने, भगवान् द्वारा उस को ऐसी फटकार लगाये जाने पर कुपित हो, असन्तुष्ट हो, भगवान् पर ही झुंझलाते, भगवान् की ही निन्दा करते, भगवान् पर ही व्यङ्ग्य कसते कि 'श्रमण गौतम दुष्ट है'– यह सोच कर कहा– "भो गौतम! शाक्य जाति चण्ड (भयानक) हैं, कठोर है, क्षुद्र (नीच, हीन) है, बकवादी (भस्स) है, नीच (=इभ्य) समान होने से तुम्हारी शाक्य जाति ब्राह्मणों का न सत्कार करती है, न उनको मान देती है, न उन का गौरव समझती है, न उन की पूजा करती है, न उनकी आवभगत (अपचायन) ही करती है। अतः भो गौतम! यह उचित नहीं है कि शाक्य जाति स्वयं नीच होते हुए भी ब्राह्मणों का सत्कार न करे, सम्मान न करे....आवभगत न करे।" इस तरह अम्बष्ठ माणवक ने शाक्यों पर यह पहल आक्षेप लगाया। (१)

"अम्बष्ठ! शाक्यों ने तुम्हारा क्या अपराध किया है?"

१२. "भो गौतम! एक समय मैं अपने आचार्य पौष्करसाति के किसी कार्य से कपिलवस्तु पहुँचा और वहाँ शाक्यों के संस्थागार (सन्ध्यागार = पञ्चायत भवन) गया। उस समय वहाँ बहुत से शाक्य तथा शाक्य कुमार उस संस्थागार में ऊँचे आसन पर बैठे एक–दूसरे को अंगुली गड़ा–गड़ा कर कोंचते हुए खेलते (हँसी–मजाक करते) हुए बैठे थे मानों वे मेरा ही उपहास कर रहे हों! वहाँ मुझे किसी ने बैठने को

इब्भा सन्ता इब्भा समाना न ब्राह्मणे सक्करोन्ति न ब्राह्मणे गरुं करोन्ति न ब्राह्मणे मानेन्ति न ब्राह्मणे पूजेन्ति न ब्राह्मणे अपचायन्ती'' ति। इति ह अम्बट्ठो माणवो इदं दुतियं सक्येसु इब्भवादं निपातेसि।

[N.80] १३. ''लटुकिका पि खो, अम्बट्ठ, सकुणिका सके कुलावके कामलापिनी होति। सकं खो पनेतं, अम्बट्ठ, सक्यानं यदिदं कपिलवत्थुं। नारहतायस्मा अम्बट्ठो इमाय अप्पमत्ताय अभिसज्जितुं'' ति।

''चत्तारोमे, भो गोतम, वण्णा—खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा। इमेसं हि, भो गोतम, [R.92] चतुन्नं वण्णानं तयो वण्णा—खत्तिया च वेस्सा च सुद्दा च—अञ्ञदत्थु ब्राह्मणस्सेव परिचारिका सम्पज्जन्ति। तयिदं, भो गोतम, नच्छन्नं, तयिदं नप्पतिरूपं यदिमे सक्या इब्भा सन्ता इब्भा समाना न ब्राह्मणे सक्करोन्ति न ब्राह्मणे गरुं करोन्ति न ब्राह्मणे मानेन्ति न ब्राह्मणे पूजेन्ति न ब्राह्मणे अपचायन्ती'' ति। इति ह अम्बट्ठो माणवो इदं ततियं सक्येसु इब्भवादं निपातेसि।

४. कण्हायनगोत्तुप्पत्ति

[B.87] १४. अथ खो भगवतो एतदहोसि—''अतिबाळ्हं खो अयं अम्बट्ठो माणवो सक्येसु इब्भवादेन निम्मादेति। यन्नूनाहं गोत्तं पुच्छेय्यं'' ति! अथ खो भगवा अम्बट्ठं माणवं एतदवोच—''कथं गोत्तोसि, अम्बट्ठा'' ति?

''कण्हायनोहमस्मि, भो गोतमा'' ति।

''पोराणं खो पन ते, अम्बट्ठ, मातापेत्तिकं नामगोत्तं अनुस्सरतो अय्यपुत्ता सक्या भवन्ति; दासीपुत्तो त्वमसि सक्यानं। सक्या खो पन, अम्बट्ठ, राजानं ओक्काकं पितामहं दहन्ति।

आसन भी नहीं दिया। भो गौतम! यह उचित नहीं है कि शाक्य जाति नीच होते हुए भी ब्राह्मणों का सत्कार न करे.....आवभगत न करे।'' यों अम्बष्ठ ने शाक्यों को दूसरी बार नीच कहकर आक्षेप लगाया।

१३. ''अम्बष्ठ! लटुकिका (छोटी चिड़िया) भी अपने घोंसले पर स्वच्छन्द आलाप करती है। कपिलवस्तु शाक्यों का अपना घर है। अम्बष्ठ! इतनी छोटी बात पर तुम्हें अप्रसन्न नहीं होना चाहिये।''

''भो गौतम! समाज में ये चार वर्ण हैं— क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र। भो गौतम! इन में से तीन वर्ण क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र तीनों ब्राह्मण के ही परिवार (सेवक) हैं। तो, भो गौतम! क्या यह उचित नहीं कि शाक्य जाति नीच कुल में उत्पन्न होने पर भी ब्राह्मणों का सत्कार करे....उनकी आवभगत करे।'' इस तरह अम्बष्ठ ने तीसरी बार शाक्यों पर नीच होने का आक्षेप किया।

४. कार्ष्णायनगोत्रोत्पत्ति

१४. तब भगवान् के मन में यह विचार आया– ''यह अम्बष्ठ माणवक बहुत बढ़-चढ़ कर शाक्यों पर 'हीन जाति' का आक्षेप लगा रहा है। तो क्यों न मैं इससे इसका गोत्र पूछूँ।'' तब भगवान् ने अम्बष्ठ माणवक से पूछा– ''अम्बष्ठ! तुम किस गोत्र के हो?''

''भो गौतम! मैं तो कार्ष्णायन हूँ।''

''अम्बष्ठ! तुम्हारे माता-पिता से आये इसे पुराने नाम-गोत्र के अनुसार शाक्य तो तुम्हारे आर्यपुत्र (स्वामिपुत्र) हुए। तूँ तो शाक्यों का दासीपुत्र है। अम्बष्ठ! शाक्य लोग राजा इक्ष्वाकु को अपना पितामह (पूर्व पुरुष) मानते हैं।

"भूतपुब्बं, अम्बट्ठ, राजा ओक्काको, या सा महेसी पिया मनापा तस्सा पुत्तस्स रज्जं परिणामेतुकामो, जेट्ठकुमारे रट्ठस्मा पब्बाजेसि— ओक्कामुखं, करकण्डं, हत्थिनिकं, सिनिसूरं। ते रट्ठस्मा पब्बजिता हिमवन्तपस्से पोक्खरणिया तीरे महासाकसण्डो तत्थ वासं कप्पेसुं। ते जातिसम्भेदभया सकाहि भगिनीहि सद्धिं संवासं कप्पेसुं। अथ खो, अम्बट्ठ, राजा ओक्काको अमच्चे पारिसज्जे आमन्तेसि—'कहं नु खो, भो, एतरहि कुमारा सम्मन्ती' ति ?

'अत्थि, देव, हिमवन्तपस्से पोक्खरणिया तीरे महासाकसण्डो, तत्थेतरहि कुमारा सम्मन्ति। ते जातिसम्भेदभया सकाहि भगिनीहि सद्धिं संवासं कप्पेन्ती' ति।

"अथ खो, अम्बट्ठ, राजा ओक्काको उदानं उदानेसि—'सक्या वत, [N.81, R.93] भो, कुमारा! परमसक्या वत, भो, कुमारा' ति! तदग्गे खो पन, अम्बट्ठ, सक्या पञ्ञायन्ति; सो च नेसं पुब्बपुरिसो।

"रञ्ञो खो पन, अम्बट्ठ, ओक्काकस्स दिसा नाम दासी अहोसि। सा कण्हं नाम जनेसि। जातो कण्हो पब्याहासि— 'धोवथ मं, अम्म। नहापेथ मं, अम्म। इमस्सा मं असुचिस्मा परिमोचेथ। अत्थाय वो भविस्सामी' ति। यथा खो पन, अम्बट्ठ, एतरहि मनुस्सा पिसाचे दिस्वा 'पिसाचा' ति सञ्जानन्ति; एवमेव खो, अम्बट्ठ, तेन खो पन समयेन मनुस्सा पिसाचे 'कण्हा' ति सञ्जानन्ति। ते एवमाहंसु— 'अयं जातो पब्याहासि। कण्हो जातो, पिसाचो जातो' ति। तदग्गे खो पन, अम्बट्ठ, कण्हायना पञ्ञायन्ति। सो च कण्हायनानं पुब्बपुरिसो। [B.88] इति खो ते, अम्बट्ठ, पोराणं मातापेत्तिकं नामगोत्तं अनुस्सरतो अय्यपुत्ता सक्या भवन्ति, दासिपुत्तो त्वमसि सक्यानं" ति।

पूर्वकाल में अम्बष्ठ ! राजा इक्ष्वाकु ने अपनी प्रिय चहेती (प्रेमपात्र) रानी के पुत्र को राज्य देने की इच्छा से १. उल्कामुख २. करकण्डु, ३. हस्त्यनीक एवं ४. श्रेणिशूर नामक चार बड़े पुत्रों को राज्य से निर्वासित कर दिया। वे निर्वासित हो, हिमालय के पास किसी सरोवर के तट पर एक शाक (=सागौन) वृक्षों के वन में (महासाकषण्ड) रहने लगे। वे किसी अन्य से विवाह पर अपनी जाति के अधःपात के भय से अपनी भाग्यवती भगिनियों के साथ ही रहने लगे।

"अम्बष्ठ ! तब राजा इक्ष्वाकु ने अपने सभासदों से पूछा— 'अरे भाई! आज कल (मेरे चारों) राजकुमार कहाँ और कैसे गुजारा कर रहे हैं?' 'देव! हिमालय के पास किसी पुष्करिणी के किनारे एक विशाल शाकवन प्रदेश है, वहीं निवास कर रहे हैं। वे अपनी जाति के अधःपतन के भय से अपनी भाग्यवती भगिनियों के साथ ही रहते हैं।'

"अम्बष्ठ ! तब राजा इक्ष्वाकु के मुख से यह स्वाभाविक हृदयोद्गार निकल पड़ा—'अरे राजकुमार शाक्य (समर्थ) हैं, (परम शाक्य) अत्यन्त समर्थ हैं। उसके बाद से, अम्बष्ठ ! वे शाक्य ही कहलाने लगे। इक्ष्वाकु हमारे कुल के पूर्वपुरुष थे।

"अम्बष्ठ ! उस इक्ष्वाकु राजा की कोई दिशा नाम की दासी थी। उसे कृष्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते हुए उस कृष्ण ने कहा— 'माँ मुझे धोवो, मुझे नहलावो, इस अशुचि (मल) से मुझको मुक्त करो। मैं तुम्हारे बहुत काम आऊँगा!' अम्बष्ठ! जैसे आजकल लोग पिशाचों को देखकर 'पिशाच' कहते हैं, वैसे ही उस समय की जनता पिशाचों को देख 'कृष्ण' कहा करती थी। जनता ने कहा— 'इसने जन्म लेते ही बोलना प्रारम्भ कर दिया, कि यह 'कृष्ण पैदा हुआ है, पिशाच पैदा हुआ है'। अम्बष्ठ

१५. एवं वुत्ते, ते माणवका भगवन्तं एतदवोचुं– ''मा भवं गोतमो अम्बट्ठं अतिबाळ्हं दासिपुत्तवादेन निम्मादेसि। सुजातो च, भो गोतम, अम्बट्ठो माणवो, कुलपुत्तो च अम्बट्ठो माणवो, बहुस्सुतो च अम्बट्ठो माणवो, कल्याणवाक्करणो च अम्बट्ठो माणवो, पण्डितो च अम्बट्ठो माणवो, पहोति च अम्बट्ठो माणवो भोता गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतुं'' ति।

१६. अथ खो भगवा ते माणवके एतदवोच– ''सचे खो तुम्हाकं माणवकानं एवं [R.94] होति–'दुज्जातो च अम्बट्ठो माणवो, अकुलपुत्तो च अम्बट्ठो माणवो, अप्पस्सुतो च अम्बट्ठो माणवो, अकल्याणवाक्करणो च अम्बट्ठो माणवो, दुप्पञ्ञो च अम्बट्ठो माणवो, न च पहोति अम्बट्ठो माणवो समणेन गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतुं' ति, तिट्ठतु अम्बट्ठो माणवो, तुम्हे मया सद्धिं मन्तव्हो अस्मिं वचने। सचे पन तुम्हाकं माणवकानं एवं होति– 'सुजातो च अम्बट्ठो माणवो, कुलपुत्तो च अम्बट्ठो माणवो, बहुस्सुतो च अम्बट्ठो माणवो, कल्याणवाक्करणो च अम्बट्ठो माणवो, पण्डितो च अम्बट्ठो माणवो, पहोति च अम्बट्ठो माणवो समणेन गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतुं' ति, तिट्ठथ तुम्हे; अम्बट्ठो माणवो मया सद्धिं पटिमन्तेतू'' ति।

[N.82] ''सुजातो च, भो गोतम, अम्बट्ठो माणवो, कुलपुत्तो च अम्बट्ठो माणवो, बहुस्सुतो च अम्बट्ठो माणवो, कल्याणवाक्करणो च अम्बट्ठो माणवो, पण्डितो च अम्बट्ठो माणवो, पहोति च अम्बट्ठो माणवो भोता गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतुं। तुण्ही मयं भविस्साम। अम्बट्ठो माणवो भोता गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतू'' ति।

१७. अथ खो भगवा अम्बट्ठं माणवं एतदवोच– ''अयं खो पन ते, अम्बट्ठ, सहधम्मिको

तभी से उस कृष्ण की सन्तानें 'कार्ष्णायन' कहलाने लगीं। वही कार्ष्णायनों का पूर्वपुरुष था। इस तरह, अम्बष्ठ ! तुम्हारे पूर्व माता-पिताओं के गोत्र के अनुसार (यह सिद्ध हुआ कि) शाक्य स्वामिपुत्र हुए और तुम शाक्यों के दासिपुत्र।

१५. भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर अम्बष्ठ के साथी माणवक बीच में ही भगवान् से यों बोल उठे– ''मान्य गौतम! 'दासीपुत्र' जैसे कठोर (कर्कश) शब्दों माणवक को इतना लज्जित न करो। भो गौतम! अम्बष्ठ माणवक तो सुजात है, कुलीन है, बहुश्रुत है, सुवक्ता (कल्याणवाक्करणो) है, पण्डित है, अम्बष्ठ माणवक आप गौतम के साथ इस विषय में वाद करने में समर्थ हैं।''

१६. तब भगवान् ने उन माणवकों से कहा–''यदि तुम माणवकों को यह समझ मे आ रहा हो कि 'अम्बष्ठ माणवक दुर्जात है, अकुलपुत्र है, आल्पश्रुत है, दुर्वक्ता है (अकल्याणवाक्करणो), दुष्प्रज्ञ है, अतः वह मेरे साथ वाद करने में समर्थ नहीं है तो अम्बष्ठ माणवक को छोड़ो, पहले तुम ही मुझ से वाद (शास्त्रार्थ) कर लो'। और यदि तुम यह समझ रहे हो कि अम्बष्ठ माणवक सुजात है, कुलपुत्र है, बहुश्रुत, ... सुवक्ता....पण्डित .... मुझ से इस विषय में इसी को वाद करने दो, तुम लोग क्यों बीच में बोल रहे हो।''

''भो गोतम! अम्बष्ठ माणवक सुजात कुलपुत्र है.... अम्बष्ठ ही आप के साथ इस विषय में वाद करेगा। हम लोग चुप रहेंगे। अम्बष्ठ माणवक ही आपके साथ वाद करे।''

१७. तब भगवान् ने कहा–''अम्बष्ठ! जब तुम ने बात उठा ही दी तो प्रसङ्गतः (सहधम्मिको) यह

पञ्हो आगच्छति अकामा ब्याकातब्बो। सचे त्वं न ब्याकरिस्ससि, अञ्ञेन वा अञ्ञं [B.89] पटिचरिस्ससि, तुण्ही वा भविस्ससि, पक्कमिस्ससि वा, एत्थेव ते सत्तधा मुद्धा फलिस्सति। तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, किन्ति ते सुतं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं कुतोपभुतिका कण्हायना, को च कण्हायनानं पुब्बपुरिसो'' ति?

एवं वुत्ते, अम्बट्ठो माणवो तुण्ही अहोसि। दुतियं पि खो भगवा अम्बट्ठं माणवं एतदवोच– ''तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, किन्ति ते सुतं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं [R.95] आचरियपाचरियानं भासमानानं कुतोपभुतिका कण्हायना, को च कण्हायनानं पुब्बपुरिसो'' ति? दुतियं पि खो अम्बट्ठो माणवो तुण्ही अहोसि।

अथ खो भगवा अम्बट्ठं माणवं एतदवोच– ''ब्याकरोहि दानि, अम्बट्ठ। न दानि ते तुण्हीभावस्स कालो। यो खो, अम्बट्ठ, तथागतेन यावततियकं सहधम्मिकं पञ्हं पुट्ठो न ब्याकरोति एत्थेवस्स सत्तधा मुद्धा फलिस्सती'' ति।

१८. तेन खो पन समयेन वजिरपाणि यक्खो महन्तं अयोकूटं आदाय आदित्तं सम्पज्जलितं सजोतिभूतं अम्बट्ठस्स माणवस्स उपरि वेहासं ठितो होति–''सचायं अम्बट्ठो माणवो भगवता यावततियकं सहधम्मिकं पञ्हं पुट्ठो न ब्याकरिस्सति एत्थेवस्स सत्तधा मुद्धं फालेस्सामी'' ति। तं खो पन वजिरपाणिं यक्खं भगवा चेव पस्सति अम्बट्ठो च माणवो।

१९. अथ खो अम्बट्ठो माणवो भीतो संविग्गो लोमहट्ठजातो भगवन्तंयेव ताणं गवेसी, भगवन्तंयेव लेणं गवेसी, भगवन्तंयेव सरणं गवेसी—उपनिसीदित्वा भगवन्तं एतदवोच– ''किमेतं भवं गोतमो आह? पुनभवं गोतमो ब्रवीतू'' ति।

प्रश्न भी तुम पर आ पड़ा, जिसका तुम्हें न चाहते हुए (अकामा) भी उत्तर देना पड़ेगा। यदि तुम उत्तर नहीं दोगे या इधर-उधर बात को घुमाओगे, या फिर चुप रह जाओगे, बिना उत्तर दिये ही यहाँ से भागने का प्रयास करोगे तो तुम्हारा सिर सात टुकड़ों में बिखर जायगा। तो तुम क्या मानते हो अम्बष्ठ! तुमने अपने पूर्वजों, वृद्धों आचार्य-प्राचार्यों से सुना है कि ये कार्ष्णायन कब से हैं, उनका पूर्वपुरुष कौन था?''

भगवान् द्वारा ऐसा पूछे जाने पर अम्बष्ठ माणवक चुप ही रहा। दूसरी बार भी भगवान् ने अम्बष्ठ माणवक से वही पूछा कि ''तुमने अपने पूर्व पुरुषों से....पूर्ववत्....कौन था?'' दूसरी बार भी अम्बष्ठ माणवक चुप ही रहा।

तब भगवान् उस अम्बष्ठ माणवक से यों बोले-''अम्बष्ठ! मेरे प्रश्न का उत्तर दो। यह तुम्हारे चुप रहने का समय नहीं है। अम्बष्ठ! धर्मचर्चा में तथागत द्वारा तीन बार पूछे जाने पर भी जो उसका उत्तर नहीं देता उसका सिर सात भागों में बिखर जायगा।''

१८. उस समय वज्रपाणि यक्ष बड़ा सा लौहदण्ड (अयःकूट) जो कि प्रदीप्त सम्प्रज्वलित एवं चमक रहा था लेकर अम्बष्ठ माणवक पर आकाश में यह सोचते हुए खड़ा था-''यदि यह अम्बष्ठ माणवक इस प्रसङ्गतः उठे प्रश्न का तथागत को तीसरी बार भी उत्तर न देगा तो मैं इसके सिर के सात टुकड़े यहीं कर दूँगा।'' उस समय उस वज्रपाणि यक्ष को भगवान् देख रहे थे या फिर वह अम्बष्ठ को भी दिखायी पड़ रहा था।

१९. तब उस दण्डपाणि को देखता हुआ अम्बष्ठ माणवक भयभीत, उद्विग्न, रोमाञ्चित हो, भगवान् से अपना त्राण, शरणस्थल (लेण), चाहता हुआ (उकड़ू) बैठ कर उनसे यों बोला-''आप गौतम ने मुझसे क्या पूछा? कृपया आप अपना प्रश्न फिर से दोहरायें।

"तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, किन्ति ते सुतं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं कुतोपभुतिका कण्हायना, को च कण्हायनानं पुब्बपुरिसो" ति ?

[N.83] "एवमेव मे, भो गोतम, सुतं यथेव भवं गोतमो आह। ततोपभुतिका कण्हायना; सो च कण्हायनानं पुब्बपुरिसो" ति।

[B.90] २०. एवं वुत्ते, ते माणवका उन्नादिनो उच्चासद्दमहासद्दा अहेसुं—"दुज्जातो किर, भो, अम्बट्ठो माणवो; अकुलपुत्तो किर, भो, अम्बट्ठो माणवो; दासिपुत्तो किर, भो, अम्बट्ठो माणवो सक्यानं। अय्यपुत्ता किर, भो, अम्बट्ठस्स माणवस्स सक्या भवन्ति। धम्मवादिं येव किर मयं समणं गोतमं अपसादेतब्बं अमञ्ञिम्हा" ति।

५. उळारो सो कण्हो इसि

[R.96] २१. अथ खो भगवतो एतदहोसि—"अतिबाळ्हं खो इमे माणवका अम्बट्ठं माणवं दासिपुत्तवादेन निम्मादेन्ति। यन्नूनाहं परिमोचेय्यं" ति। अथ खो भगवा ते माणवके एतदवोच—"मा खो तुम्हे, माणवका, अम्बट्ठं माणवं अतिबाळ्हं दासिपुत्तवादेन निम्मादेथ। उळारो सो कण्हो इसि अहोसि। सो दक्खिणजनपदं गन्त्वा ब्रह्ममन्ते अधीयित्वा राजानं ओक्काकं उपसङ्कमित्वा मद्दरूपिं धीतरं याचि। तस्स राजा ओक्काको—'को नेवं रे अयं मय्हं दासिपुत्तो समानो मद्दरूपिं धीतरं याचती' ति, कुपितो अनत्तमनो खुरप्पं सन्नय्हि। सो तं खुरप्पं नेव असक्खि मुञ्चितुं नो पटिसंहरितुं।

"अथ खो, माणवका, अमच्चा पारिसज्जा कण्हं इसिं उपसङ्कमित्वा एतदवोचुं—'सोत्थि, भद्दन्ते, होतु रञ्ञो; सोत्थि, भद्दन्ते, होतु रञ्ञो' ति।

"तो क्या मानते हो अम्बष्ठ .... तुम कार्ष्णायनों का पूर्वपुरुष कौन था?"

"भो गौतम! आप जैसा कह रहे हैं वही सत्य है। तभी से हम लोग 'कर्ष्णायन' कहलाने लगे। वह कृष्ण ही हम कार्ष्णायनों का पूर्वपुरुष है।"

२०. (अम्बष्ठ द्वारा) ऐसा उत्तर दिये जाने पर, वे (अम्बष्ठ के साथी) माणवक उन्नाद, उच्चशब्द महाशब्द (जोर जोर से कोलाहल) करने लगे; और बोले—"यह अम्बष्ठ माणवक तो दुर्जात है, अकुलीन है, शाक्यों का दासिपुत्र है। शाक्य ही इस माणवक के आर्य (स्वामि) पुत्र है। हम तो अनजाने ही इन श्रमण गौतम को अधर्मवादी समझ बैठे थे।"

५. कृष्ण महान् ऋषि थे

२१. तब भगवान् का यह विचार हुआ—"ये इस अम्बष्ठ के साथी तो इसको 'दासिपुत्र' कह कर अधिक अपमानित कर रहे हैं। तो क्यों न मैं इनसे इसको छुड़ा दूँ।" (यह सोचकर) तब भगवान् ने उन माणवकों से कहा—"अरे माणवको! तुम इस अम्बष्ठ को दासिपुत्र कह कर अधिक अपमानित न करो। वे कृष्ण तो महान् ऋषि थे। उसने दक्षिण के किसी जनपद (दक्षिणपथ) में जा ब्रह्ममन्त्र (वेदत्रयी) पढ़ कर राजा इक्ष्वाकु के पास आकर उससे उसकी मद्ररूपी कन्या की याचना की। तब उस राजा इक्ष्वाकु ने (क्रुद्ध होते हुए) सोचा—'अरे! यह मेरा दासीपुत्र हो कर भी मेरी कन्या विवाह के लिये मांग रहा है।' उसने कुपित और असन्तुष्ट होते हुए धनुष् पर वाण चढ़ाया। परन्तु वह उस वाण को न तो कृष्ण पर फैंक ही सका न धनुष् से उतार ही सका।

"इसके बाद माणवको! उस राजा इक्ष्वाकु के मन्त्री और पार्षद गण उस ऋषि के पास जा कर यों निवेदन करने लगे—"भन्ते! राजा को स्वस्ति (कल्याण) हो, राजा का शुभ हो।"

'सोत्थि भविस्सति रञ्ञो, अपि च राजा यदि अधो खुरप्पं मुञ्चिस्सति यावता रञ्ञो विजितं एत्तावता पठवी उन्द्रियिस्सती' ति।

'सोत्थि, भद्दन्ते, होतु रञ्ञो, सोत्थि जनपदस्सा' ति।

'सोत्थि भविस्सति रञ्ञो, सोत्थि जनपदस्स, अपि च राजा यदि उद्धं खुरप्पं मुञ्चिस्सति यावता रञ्ञो विजितं एत्तावता सत्त वस्सानि देवो न वस्सिस्सती' ति।

'सोत्थि, भद्दन्ते, होतु रञ्ञो, सोत्थि जनपदस्स, देवो च वस्सतू' ति।

'सोत्थि भविस्सति रञ्ञो, सोत्थि जनपदस्स, देवो च वस्सिस्सति, अपि च [N.84] राजा जेट्ठकुमारे खुरप्पं पतिट्ठापेतु, सोत्थि कुमारो पल्लोमो भविस्सती' ति।

"अथ खो, माणवका, अमच्चा ओक्काकस्स आरोचेसुं—'ओक्काको जेट्ठकुमारे खुरप्पं पतिट्ठापेतु, सोत्थि कुमारो पल्लोमो भविस्सती' ति। अथ खो राजा ओक्काको जेट्ठ-[B.91] कुमारे खुरप्पं पतिट्ठपेसि। सोत्थि कुमारो पल्लोमो समभवि। अथ खो तस्स राजा [R.97] ओक्काको भीतो संविग्गो लोमहट्ठजातो ब्रह्मदण्डेन तज्जितो मद्दरूपिं धीतरं अदासि। मा खो तुम्हे, माणवका, अम्बट्ठं माणवं अतिबाळ्हं दासिपुत्तवादेन निम्मादेथ। उळारो सो कण्हो इसि अहोसी" ति।

६. खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मिं

२२. अथ खो भगवा अम्बट्ठं माणवं आमन्तेसि—" तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, इध खत्तियकुमारो ब्राह्मणकञ्ञाय सद्धिं संवासं कप्पेय्य। तेसं संवासमन्वाय पुत्तो जायेथ। यो सो खत्तियकुमारेन ब्राह्मणकञ्ञाय पुत्तो उप्पन्नो, अपि नु सो लभेथ ब्राह्मणेसु आसनं वा उदकं वा" ति? "लभेथ, भो गोतमो"!

"अपिनु नं ब्राह्मणा भोजेय्युं सद्धे वा थालिपाके वा यञ्ञे वा पाहुने वा" ति?

"कृष्ण ऋषि ने कहा—'राजा का कल्याण ही होगा। परन्तु यदि राजा इस बाण को नीचे की ओर छोड़ेगा तो उतनी पृथ्वी कट जायगी।'

"दूसरी बार भी उन अमात्यों और पार्षदों ने ऋषि से राजा के लिये कल्याण-याचना की।

"ऋषि ने फिर कहा—'राजा का कल्याण ही होगा। परन्तु आकाश की तरफ बाण छोड़ेगा तो यह बाण जहाँ तक जायगा, वहाँ तक इसके राज्य में सात वर्ष तक वर्षा नहीं होगी।'

"तब उन अमात्यों और पार्षदों ने ऋषि से फिर राजा की कल्याणकामना की।

"तब ऋषि ने कहा—'राजा का तो कल्याण ही होगा। परन्तु यदि राजा अपने ज्येष्ठ पुत्र पर यह बाण छोड़ दे, तब कुमार का कुछ नहीं बिगड़ेगा, केवल उसके शिर के बाल उड़ जाँयगें।'

"तब राजा ने अपने ज्येष्ठ कुमार (पुत्र) पर बाण छोड़ दिया। कुमार का कुछ नहीं बिगड़ा केवल वह गंजा हो गया। (उसके ब्रह्मदण्ड) से भयभीत एवं उद्विग्न राजा इक्ष्वाकु ने अपनी मद्दरूपी कन्या का विवाह उस ऋषि से कर दिया। अतः माणवको! तुम अम्बष्ठ माणवक को दासिपुत्र कह कर अधिक लज्जित न करो।"

६. समाज में क्षत्रिय की श्रेष्ठता

२२. फिर भगवान् ने अम्बष्ठ माणवक से यह प्रश्न किया—"तो क्या मानते हो, अम्बष्ठ ! यहाँ कोई क्षत्रियकुमार ब्राह्मण-कन्या से विवाह कर ले। उस विवाह से उन्हें कोई पुत्र उत्पन्न हो जाय। तो यह

"भोजेय्युं, भो गोतमो"!

"अपिनु नं ब्राह्मणा मन्ते वाचेय्युं वा नो वा" ति? "वाचेय्युं, भो गोतम"!

"अपिनुस्स इत्थीसु आवटं वा अस्स अनावटं वा" ति? "अनावटं हिस्स, भो गोतम"!

"अपिनु नं खत्तिया खत्तियाभिसेकेन अभिसिञ्चेय्युं" ति? "नोहिदं, भो गोतम"!

[N.85] "तं किस्स हेतु"? "मातितो हि, भो गोतम, अनुपपन्नो" ति। (१)

"तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, इध ब्राह्मणकुमारो खत्तियकञ्ञाय सद्धिं संवासं कप्पेय्य। तेसं संवासमन्वाय पुत्तो जायेथ। यो सो ब्राह्मणकुमारेन खत्तियकञ्ञाय पुत्तो उप्पन्नो अपिनु सो लभेथ ब्राह्मणेसु आसनं वा उदकं वा" ति? "लभेथ, भो गोतम"!

"अपिनु नं ब्राह्मणा भोजेय्युं सद्धे वा थालिपाके वा यञ्ञे वा पाहुने वा" ति? "भोजेय्युं, भो गोतम"!

"अपिनु नं ब्राह्मणा मन्ते वाचेय्युं वा नो वा" ति? "वाचेय्युं, भो गोतम"!

[R.98] "अपिनुस्स इत्थीसु आवटं वा अस्स अनावटं वा" ति? "अनावटं हिस्स, भो गोतम"!

"अपिनु नं खत्तिया खत्तियाभिसेकेन अभिसिञ्चेय्युं" ति? "नोहिदं, भो गोतम"!

"तं किस्स हेतु"? "पितितो हि, भो गोतम, अनुपपन्नो" ति!

२३. "इति खो, अम्बट्ठ, इत्थिया वा इत्थिं करित्वा पुरिसेन वा पुरिसं करित्वा खत्तिया व सेट्ठा, हीना ब्राह्मणा। तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, इध ब्राह्मणा ब्राह्मणं किस्मिञ्चिदेव पकरणे खुरमुण्डं करित्वा भस्सपुटेन वधित्वा रट्ठा वा नगरा वा पब्बाजेय्युं। अपिनु सो लभेथ [B.92] ब्राह्मणेसु आसनं वा उदकं वा" ति? "नोहिदं, भो गोतम"!

जो क्षत्रियकुमार से ब्राह्मण–कन्या में पुत्र उत्पन्न हुआ वह ब्राह्मणों में समान आसन तथा समान पात्र में जल पीने का अधिकारी होगा?" "अधिकारी होगा, भो गौतम!"

'क्या ब्राह्मण उसे अपने साथ बैठा कर श्राद्ध, समष्टि भोजन या घर आये मान्य अतिथि के साथ बैठा कर भोजन करायेंगे।" "अवश्य करायेंगे, भो गौतम।"

"क्या ब्राह्मण उसे तीनों वेद पढ़ायेंगे?" "अवश्य पढ़ायेंगे, भो गौतम।"

"क्या उसे ब्राह्मणस्त्री पाने में कोई कठिनाई होगी?" "ऐसा भी नहीं होगा, भो गौतम!"

"क्या उसे क्षत्रिय क्षत्रियाभिषेक से अभिषिक्त करेंगे?" "नहीं, भो गौतम!"

"वह किस लिये?" "क्योंकि, भो गौतम! वह माता के पक्ष से ठीक नहीं है। (१)

"तो तुम क्या मानते हो, अम्बष्ठ ! यहाँ कोई ब्राह्मणकुमार क्षत्रिय कन्या से विवाह कर ले। उनके सहवास से कोई पुत्र उत्पन्न हो। यह जो ब्राह्मणकुमार से क्षत्रिय–कन्या में पुत्र उत्पन्न हुआ वह ब्राह्मणों में .... पूर्ववत् ....।

"क्या उसे क्षत्रिय क्षत्रियाभिषेक से अभिषिक्त करेंगे?" "नहीं भो गौतम!"

"वह किस कारण?" "क्यों कि पितृ–पक्ष (पिता की तरफ से) ठीक नहीं है।" (२)

२३. "अम्बष्ठ ! इस तरह सिद्ध हुआ कि भले ही स्त्री–पक्ष से बात की जाय या पितृ–पक्ष से; दोनों ही तरह से क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है, ब्राह्मणहीन है। तो तुम क्या मानते हो, अम्बष्ठ ! यहाँ ब्राह्मणसमाज

"अपिनु नं ब्राह्मणा भोजेय्युं सद्धे वा थालिपाके वा यञ्ञे वा पाहुने वा" ति?

"नोहिदं, भो गोतम"!

"अपिनु नं ब्राह्मणा मन्ते वाचेय्युं वा नो वा" ति? "नोहिदं, भो गोतम"!

"अपिनुस्स इत्थीसु आवटं वा अस्स अनावटं वा" ति? "आवटं हिस्स, भो गोतम"!

"तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, इध खत्तिया खत्तियं किस्मिञ्चिदेव पकरणे [N.86] खुरमुण्डं करित्वा भस्सपुटेन वधित्वा रट्ठा वा नगरा वा पब्बाजेय्युं। अपिनु सो लभेथ ब्राह्मणेसु आसनं वा उदकं वा" ति? "लभेथ, भो गोतम"!

"अपिनु नं ब्राह्मणा भोजेय्युं सद्धे वा थालिपाके वा यञ्ञे वा पाहुने वा" ति?

"भोजेय्युं, भो गोतम"!

"अपिनु नं ब्राह्मणा मन्ते वाचेय्युं वा नो वा" ति? "वाचेय्युं, भो गोतम"!

"अपिनुस्स इत्थीसु आवटं वा अस्स अनावटं वा" ति? "अनावटं हिस्स, भो गोतम"!

२४. "एत्तावता खो, अम्बट्ठ, खत्तियो परमनिहीनतं पत्तो होति, यदेव नं [R.99] खत्तिया खुरमुण्डं करित्वा भस्सपुटेन वधित्वा रट्ठा वा नगरा वा पब्बाजेन्ति। इति खो, अम्बट्ठ, यदा खत्तियो परमनिहीनतं पत्तो होति तदा पि खत्तिया व सेट्ठा, हीना ब्राह्मणा। ब्रह्मुना चेसा, अम्बट्ठ, सनङ्कुमारेन गाथा भासिता—

'खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मिं ये गोत्तपटिसारिनो।
विज्जाचरणसम्पन्नो सो सेट्ठो देवमानुसे' ति॥

"सा खो पनेसा, अम्बट्ठ, ब्रह्मुना सनङ्कुमारेन गाथा सुगीता नो दुग्गीता, सुभासिता नो

किसी ब्राह्मण को, किसी अभियोग के कारण, शिर मुँडवा कर, उस पर काली राख लगाकर (काला मुँह कर) राष्ट्र या नगर से बाहर निकाल दें। तब भी क्या वह ब्राह्मणों में समान आसन तथा समान जलपात्र पाने का अधिकारी होगा? "नहीं, भो गौतम!"

"ब्राह्मण! उसे वेदमन्त्र पढ़ायेंगे कि नहीं?" "नहीं, भो, गौतम"!

"क्या उसे कोई ब्राह्मणस्त्री पाने का अधिकार होगा?" "नहीं होगा, भो गौतम!" (३)

"तो तुम क्या मानते हो, अम्बष्ठ! इसी तरह क्षत्रिय समाज किसी क्षत्रिय को किसी अभियोग के कारण .... पूर्ववत् .... वह ब्राह्मणों में ....?" "पा सकेगा, भो गौतम!"

"उसे ब्राह्मण अपने साथ बैठाकर श्राद्ध-यज्ञ आदि में भोजन करायेंगे?" "भोजन करायेंगे, भो, गौतम!"

".... वेद पढ़ायेंगे?" ".... पढ़ायेगें, भो, गौतम!"

"उसे कोई ब्राह्मणस्त्री पाने का अधिकार होगा कि नहीं?" "होगा, भो, गौतम!" (४)

२४. "इससे भी अम्बष्ठ! (सिद्ध होता है कि) क्षत्रिय बहुत अधोगति को प्राप्त हुआ रहता है कि उसे क्षत्रियसमाज सिर मुँडाकर....नगर से बाहर कर देता है। इसी अधोगति को प्राप्त हुआ क्षत्रिय भी ब्राह्मण से तो फिर भी श्रेष्ठ ही है। ब्राह्मण हीन है। (इस प्रकरण में) ब्रह्मा ने यह गाथा कही है—

"गोत्र को आधार मान कर चलने वाले समाज में क्षत्रिय ही श्रेष्ठ हैं। परन्तु देवता और मनुष्यों में वही श्रेष्ठ है जो विद्या और आचरण से श्रेष्ठ है (फिर भले ही वह किसी भी जाति का हो।)

दुब्भासिता, अत्थसञ्हिता नो अनत्थसञ्हिता, अनुमता मया। अहं पि हि, अम्बट्ठ, एवं वदामि—

[B.93] 'खत्तियो सेट्ठो जनेतस्मिं ये गोत्तपटिसारिनो।
विज्जाचरणसम्पन्नो सो सेट्ठो देवमानुसे' '' ति॥

भाणवारो पठमो॥

७. विज्जाचरणं

''कतमं पन तं, भो गोतम, चरणं? कतमा च पन सा विज्जा'' ति?

२५. ''न खो, अम्बट्ठ, अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय जातिवादो वा वुच्चति, गोत्तवादो वा वुच्चति, मानवादो वा वुच्चति—'अरहसि वा मं त्वं, न वा मं त्वं अरहसी' ति। यत्थ खो, अम्बट्ठ, आवाहो वा होति विवाहो वा होति, आवाहविवाहो वा होति, एत्थेतं वुच्चति जातिवादो [N.87] वा इति पि गोत्तवादो वा इति पि मानवादो वा इति पि—अरहसि वा मं त्वं, न वा मं त्वं अरहसी ति। ये हि केचि, अम्बट्ठ, जातिवादविनिबद्धा वा गोत्तवादविनिबद्धा वा मानवादविनिबद्धा वा आवाहविवाहविनिबद्धा वा, आरका ते अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय। [R.100] पहाय खो, अम्बट्ठ, जातिवादविनिबद्धं च गोत्तवादविनिबद्धं च मानवादविनिबद्धं च आवाहविवाहविनिबद्धं च अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय सच्छिकिरिया होती'' ति।

''कतमं पन तं, भो गोतम, चरणं, कतमा च सा विज्जा'' ति?

२६. ''इध, अम्बट्ठ, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। तं धम्मं सुणाति गहपति वा गहपतिपुत्तो वा

''सो अम्बष्ठ! यह गाथा सनत्कुमार ब्रह्मा ने उचित ही कही है अनुचित नहीं। यह सुभाषित है, दुर्भाषित नहीं, सार्थक है, निरर्थक नही। मैं भी, अम्बष्ठ! इस मत से सहमत हूँ कि क्षत्रिय ही श्रेष्ठ है ....।

प्रथम भाणवार समाप्त॥

७. विद्या–आचरण

''भो, गौतम! यहाँ चरण क्या है? और विद्या क्या है?''

२५. अम्बष्ठ! अनुपम विद्या–आचरण सम्पदा को जातिवाद में नहीं बाँध सकते। न गोत्रवाद में न उस मानवाद में कि–'मेरे तूँ योग्य हैं', 'मेरे तूँ योग्य नहीं'। जहाँ अम्बष्ठ! आवाह होता है या विवाह, आवाह–विवाह होता है, वहीं यह जातिवाद–गोत्रवाद मानवाद .... कहा जाता है। अम्बष्ठ! जो कोई जातिवाद में बन्धे है; गोत्रवाद या अभिमानवाद में बंधे हैं वे इस अनुपम विद्या चरण सम्पदा से बहुत दूर है। अम्बष्ठ! जातिवाद के बन्धन, गोत्रवाद–बन्धन, मानवाद–बन्धन एवं आवाह–विवाह–बन्धन को छोड़ कर इस अनुपम विद्या आचरण सम्पदा का साक्षात्कार किया जाता है।

''भो गौतम! (अन्य प्रकार से भी बताइये कि) चरण क्या है? विद्या क्या है?''

२६. ''अम्बष्ठ! यहाँ लोक में तथागत उत्पन्न होते हैं अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध अवतरित होते हैं, जो कि विद्या और आचरण से युक्त सुगत, लोकविद् अनुपम .... पूर्ववत् ....। *[श्रामण्यफल सुत्त में आगत (पृ०६७ से ८१ तक) पालिपाठ के अनुसार यहाँ भी विस्तार कर लेना चाहिये।]*

अञ्ञतरस्मिं वा कुले पच्चाजातो। सो तं धम्मं सुत्वा तथागतो सद्धं पटिलभति। सो [B.94] तेन सद्धापटिलाभेन समन्नागतो इति पटिसञ्चिक्खति ....पे०.... । *(यथा सामञ्ञफले एवं वित्थारेतब्बं।)*

''सो विविच्चेव कामेहि, विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि, सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति....पे०.... इदं पिस्स होति चरणस्मिं।

''पुन च परं, अम्बट्ठ, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति....पे० ....इदं पिस्स होति चरणस्मिं।

''पुन च परं, अम्बट्ठ भिक्खु पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो, सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति, ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति....पे०....इदं पिस्स होति चरणस्मिं।

''पुन च परं, अम्बट्ठ, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना, पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा, अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति....पे०....इदं पिस्स होति चरणस्मिं। इदं खो तं, अम्बट्ठ, चरणं॥

'' सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते ञाणदस्सनाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति....पे०....इदं पिस्स [N.88] होति विज्जाय....पे०....नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति। इदं पिस्स होति विज्जाय। अयं खो सा, अम्बट्ठ, विज्जा॥

''अयं वुच्चति, अम्बट्ठ, भिक्खु विज्जासम्पन्नो इति पि, चरणसम्पन्नो इति पि,

---

''वह साधक भिक्षु पापमय अकुशल कर्मों का त्याग कर, कामभोगों में आसक्ति को छोड़कर वितर्क–विचार सहित विवेकजन्य प्रीतिसुख वाले प्रथम ध्यान को उपसम्पन्न कर साधना करता है .... पूर्ववत् .... यह भी आचरण में माना जा सकता है।

''फिर अम्बष्ठ! वितर्क–विचारों के शान्त हो जाने से आध्यत्मिक प्रसाद एवं चित्त की एकाग्रता से युक्त किन्तु वितर्क–विचार रहित समाधि से उत्पन्न प्रीतिसुख वाला द्वितीय ध्यान प्राप्त कर वह साधना करता है। .... यह भी चरण के अन्तर्गत है।

''फिर, अम्बष्ठ! वह भिक्षु प्रीति और वैराग्य से भी उपेक्षा करता हुआ स्मृति सम्यजन्म से युक्त हो कर साधना करता है, तथा अपने शरीर से आर्योपदिष्ट सभी सुखों का अनुभव करता है और उपेक्षा के साथ स्मृतिमान् सुखविहार वाले तृतीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है.... यह भी चरण के अन्तर्गत है।

''फिर, अम्बष्ठ! वह भिक्षु सुख–दुःख का प्रहाण होने के बाद उससे भी पहले सौमनस्य–दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से न सुख न दुःख वाले तथा स्मृति एवं उपेक्षा से परिशुद्धियुक्त चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर साधना करता है.... यह भी चरण के अन्तर्गत है।।

''फिर, अम्बष्ठ! वह (साधक भिक्षु) एकाग्र चित्त के परिशुद्ध, पर्यवदात, निर्मल, क्लेशरहित, मृदु, कर्मण्य, स्थित अतएव निश्चल होने पर ज्ञान–दर्शन के लिये स्वचित्त का अभिनीहार करता है, झुकाता है। यह चित्त का झुकाना विद्या के अन्तर्गत है। .... पूर्ववत् .... इसके आगे मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है। यह भी विद्या के अन्तर्गत आता है। अम्बष्ठ यह होती है विद्या।।

''अम्बष्ठ! ऐसा साधक भिक्षु विद्यासम्पन्न एवं चरणसम्पन्न तथा विद्याचरणसम्पन्न कहलाता है।

विज्जाचरणसम्पन्नो इति पि। इमाय च, अम्बट्ठ, विज्जासम्पदाय चरणसम्पदाय च अञ्ञा विज्जासम्पदा च चरणसम्पदा च उत्तरितरा वा पणीततरा वा नत्थि।

[R.101] २७. "इमाय खो, अम्बट्ठ, अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय चत्तारि अपायमुखानि भवन्ति। कतमानि चत्तारि?

[B.95] "इध, अम्बट्ठ, एकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा इमञ्ञेव अनुत्तरं विज्जाचरणसम्पदं अनभिसम्भुणमानो खारिविधमादाय अरञ्ञायतनं अज्झोगाहति—'पवत्तफलभोजनो भविस्सामी' ति। सो अञ्ञदत्थु विज्जाचरणसम्पन्नस्सेव परिचारको सम्पज्जति। इमाय खो, अम्बट्ठ, अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय इदं पठमं अपायमुखं भवति। (१)

"पुन चपरं, अम्बट्ठ, इधेकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा इमं चेव अनुत्तरं विज्जाचरणसम्पदं अनभिसम्भुणमानो पवत्तफलभोजनतं च अनभिसम्भुणमानो कुदालपिटकं आदाय अरञ्ञवनं अज्झोगाहति—'कन्दमूलफलभोजनो भविस्सामी' ति। सो अञ्ञदत्थु विज्जाचरणसम्पन्नस्सेव परिचारको सम्पज्जति। इमाय खो, अम्बट्ठ, अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय इदं दुतियं अपायमुखं भवति। (२)

"पुन चपरं, अम्बट्ठ, इधेकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा इमं चेव अनुत्तरं विज्जाचरणसम्पदं अनभिसम्भुणमानो पवत्तफलभोजनतं च अनभिसम्भुणमानो कन्दमूलफलभोजनतं च अनभिसम्भुणमानो गामसामन्तं वा निगमसामन्तं वा अग्यागारं करित्वा अग्गिं परिचरन्तो अच्छति। सो अञ्ञदत्थु विज्जाचरणसम्पन्नस्सेव परिचारको सम्पज्जति। इमाय खो, अम्बट्ठ, अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय इदं ततियं अपायमुखं भवति। (३)

अम्बष्ठ! इस विद्यासम्पदा एवं चरणसम्पदा से बढ़ कर कोई अन्य उच्चत्तर तथा प्रणीततर विद्यासम्पदा या चरणसम्पदा नहीं है।

विद्याचरणस्पदा के चार प्रमुख अपाय—२७. "अम्बष्ठ! इस अद्वितीय विद्याचरणसम्पदा के चार विघ्न (=अपाय) होते हैं। कौन से चार? अम्बष्ठ कोई श्रमण या ब्राह्मण इस अनुपम विद्या चरण सम्पदा को पूर्ण न कर, झोले में बहुत सा मन्त्र–तन्त्रसाधना का सामान ले कर वनवास के लिये यह सोच कर जाता है कि 'मैं वहाँ प्राप्त कन्द–मूल–फल खा कर ही तपस्या करते हुए रहूँगा, वहाँ वह विद्याचरणसम्पदा से भिन्न वस्तु (तापसप्रव्रज्या) से मन लगा लेता है। अम्बष्ठ! इस लोकोत्तर विद्याचरणसम्पदा के लिये यह (तापसप्रव्रज्या) पहला विघ्न (अपायमुख) है। (१)

"फिर, अम्बष्ठ! यहाँ कोई श्रमण–ब्राह्मण इस अनुत्तर विद्याचरणसम्पदा को पूर्ण न कर प्राप्त कन्दमूल फलों की भी उपेक्षा करता हुआ नये नये कन्द–मूल–फलों की प्राप्ति के लिये कुदाल और छावड़ी ले कर जंगल–जंगल घूमता है कि नये–नये कन्दमूल फल खा कर ही साधना करूँगा। इस तरह उस विद्याचरणसम्पदा से भिन्न वस्तु की प्राप्ति रूप परिचर्या में अपना समय बिताने लगता है। अम्बष्ठ! यह (दूसरी तापसप्रव्रज्या) विद्याचरणसम्पदा का द्वितीय विघ्न है। (२)

"फिर, अम्बष्ठ! कोई श्रमण–ब्राह्मण उस अनुत्तर विद्याचरणसम्पदा को तथा प्रवृत्तफल भोजन वाली एवं कुदाल–पिटक से संग्रहित फल भोजन वाली तापसप्रव्रज्या को पूर्ण न कर, ग्राम या निगम की सीमा (किनारे) पर अग्निशाला बना कर वहाँ अग्नि जला कर वहाँ हवन आदि द्वारा तपस्या का अभिनय करते हैं। इस तरह वे दूसरे ही प्रकार की विद्याचरणसम्पदा का सेवा (साधना) करने में लग जाते हैं। इस तरह, अम्बष्ठ! इस लोकोत्तर विद्याचरणसम्पदा का यह तृतीय (प्रकार की तापसप्रव्रज्या) विघ्न भूत है। (३)

"पुन चपरं, अम्बट्ठ, इधेकच्चो समणो वा ब्राह्मणो वा इमं चेव अनुत्तरं विज्जाचरणसम्पदं अनभिसम्भुणमानो पवत्तफलभोजनतं च अनभिसम्भुणमानो कन्दमूलफलभोजनतं च अनभिसम्भुणमानो अग्गिपारिचरियं च अनभिसम्भुणमानो चातुमहापथे चतुद्वारं [N.89, R.102] अगारं करित्वा अच्छति—'यो इमाहि चतूहि दिसाहि आगमिस्सति समणो वा ब्राह्मणो वा तमहं यथासत्ति यथाबलं पटिपूजेस्सामी' ति। सो अञ्ञदत्थु विज्जाचरणसम्पन्नस्सेव परिचारको सम्पज्जति। इमाय खो, अम्बट्ठ, अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय इदं चतुत्थं अपायमुखं भवति। (४)

"इमाय खो, अम्बट्ठ, अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय इमानि चत्तारि अपायमुखानि भवन्ति।

२८. "तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, अपिनु त्वं इमाय अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय सन्दिस्ससि साचरियको" ति? "नोहिदं भो गोतम"!

"को चाहं, भो गोतम, साचरियको, का च अनुत्तरा विज्जाचरणसम्पदा! [B.96] आरकाहं, भो गोतम, अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय साचरियको" ति।

"तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, अपिनु त्वं इमं चेव अनुत्तरं विज्जाचरणसम्पदं अनभिसम्भुणमानो खारिविधमादाय अरञ्ञवनमज्झोगाहसि साचरियको—पवत्तफलभोजनो भविस्सामी" ति? "नोहिदं, भो गोतम"!

"तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, अपिनु त्वं इमं चेव अनुत्तरं विज्जाचरणसम्पदं अनभिसम्भुणमानो पवत्तफलभोजनतं च अनभिसम्भुणमानो कुदालपिटकं आदाय अरञ्ञवन-मज्झोगाहसि साचरियको—कन्दमूलफलभोजनो भविस्सामी" ति? "नोहिदं, भो गोतम"!

"फिर, अम्बष्ठ! कोई श्रमण-ब्राह्मण, इस लोकोत्तर विद्याचरणसम्पदा को, प्रवृत्तफल-भोजन, कुदाल पिटक के सहारे प्राप्त फल-भोजन को एवं अग्निशाला मे प्राप्त भोजन की भी उपेक्षा (पूर्ण न) करता हुआ किसी चौराहे पर चार दरवाजों वाला आगार बना कर रहता है कि 'यहाँ चारों दिशाओं से जो श्रमण-ब्राह्मण आयेंगे उनका यथाशक्ति यथाबल (अन्न-पान आदि देकर) सत्कार करूँगा। इस तरह वह साधक भी उस अद्वितीय विद्याचरणसम्पदा को पूर्ण करना छोड़ कर इस चौथे प्रकार की तापसप्रव्रज्या के चक्र में फंस जाता है। (४)

" अम्बष्ठ! इस अनुपम विद्याचरणसम्पदा के ये उपर्युक्त चर विघ्न होते है। (जिनके कारण साधक की यह विद्या चरण स्मपतदा पूर्ण नहीं हो पाता।)

२८. "तुम क्या मानते हो, अमबष्ठ! क्या तुम अपने आचार्य-सहित इस मेरी कही अनुपम विद्याचरणसम्पदा का उपदेश करते हो?

"नहीं, भो गौतम! कहाँ आचार्यसहित मैं और कहाँ यह अनुपम विद्याचरणसम्पद्। भो गौतम! मैं और मेरे आचार्य-दोनों ही इस विद्याचरणसम्पदा (के ज्ञान) से बहुत दूर हैं।

"तो तुम क्या मानते हो, अम्बष्ठ! तुम अपने आचार्य सहित अनुपम विद्याचरणसम्पदा को पूर्ण न कर झोले में साधना के काम आने वाला सामान भर कर वन में चले जाते हो कि वहाँ वृक्षों से गिरे फल खा कर ही तपस्या करेंगे।" "यह भी नहीं, भो गौतम!"

"तो तुम क्या मानते हो, अम्बष्ठ! तुम अपने आचार्यसहित, उपर्युक्त दोनों प्रकारों को छोड़ कर

"तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, अपिनु त्वं इमं चेव अनुत्तरं विज्जाचरणसम्पदं अनभिसम्भुणमानो पवत्तफलभोजनतं च अनभिसम्भुणमानो कन्दमूलफलभोजनतं च अनभिसम्भुणमानो गामसामन्तं वा निगमसामन्तं वा अग्यागारं करित्वा अग्गिं परिचरन्तो अच्छसि [R.103] साचरियको" ति? "नोहिदं, भो गोतम"!

"तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, अपिनु त्वं इमं चेव अनुत्तरं विज्जाचरणसम्पदं अनभिसम्भुणमानो पवत्तफलभोजनतं च अनभिसम्भुणमानो कन्दमूलफलभोजनतं च अनभि- [N.90] सम्भुणमानो अग्गिपारिचरियं च अनभिसम्भुणमानो चातुमहापथे चतुद्वारे अगारं करित्वा अच्छसि साचरियको—यो इमाहि चतूहि दिसाहि आगमिस्सति समणो वा ब्राह्मणो वा तं मयं यथासत्ति यथाबलं पटिपूजेस्सामा" ति? "नोहिदं, भो गोतम"!

२९. "इति खो, अम्बट्ठ, इमाय चेव त्वं अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय परिहीनो साचरियको। ये चिमे अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय चत्तारि अपायमुखानि भवन्ति ततो च त्वं परिहीनो साचरियको। भासिता खो पन ते एसा, अम्बट्ठ, आचरियेन ब्राह्मणेन पोक्खरसातिना वाचा—'के च मुण्डका समणका इब्भा कण्हा बन्धुपादापच्चा, का च तेविज्जानं ब्राह्मणानं साकच्छा' ति अत्तना आपायिको पि अपरिपूरमानो। पस्स, अम्बट्ठ, याव अपरद्धं च ते इदं आचरियस्स ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स।

८. पुब्बकानं इसीनं पटिपदा

[B.97] ३०. "ब्राह्मणो खो पन, अम्बट्ठ, पोक्खरसाति रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स दत्तिकं भुञ्जति। तस्स राजा पसेनदि कोसलो सम्मुखीभावं पि न ददाति। यदा पि तेन मन्तेति तिरोदुस्सन्तेन मन्तेति। यस्स खो पन, अम्बट्ठ, धम्मिकं पयातं भिक्खं पटिग्गण्हेय्य कथं तस्स राजा पसेनदि कोसलो सम्मुखीभावं पि न ददेय्य। पस्स, अम्बट्ठ, याव अपरद्धं च ते इदं आचरियस्स ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स।

कुदाल और पिटारी ले कर वन में चले जाते हो कि वृक्षों से नये नये फल खा कर ही तपस्या करेंगे?" "यह भी नहीं, भो गौतम!"

".... तो क्या ग्राम सीमा पर अग्निशाला बनाकर ....?" "यह भी नहीं, भो गौतम!"

".... तो क्या चौराहे पर चार दरवाजों वाला आगार बनाकर ....?" "यह भी नहीं, भो गौतम!"

२९. "अम्बष्ठ! तब तो तुम अपने आचार्यसहित इस अनुपम विद्याचरणसम्पदा से हीन (रहित) हो ही, अपितु इस अनुपम विद्याचरणसम्पदा की विघ्नभूत चार प्रकार की तापसप्रव्रज्या से भी हीन ही हो। तब तुमने अपने आचार्य के सिखाने पर मुझ को यह व्यङ्ग्यवचन क्यों कहा था—'कहाँ ये नीच, इब्भ (काले) ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न श्रमण शूद्र और कहाँ त्रैविद्य ब्राह्मणों का वह मन्त्र साक्षात्कार!' जब कि तुम स्वयं आपायिक (दुर्गतिगामी) हो एवं विद्याचरणसम्पदा के पूर्ण जानकार नहीं हो। अम्बष्ठ! तुम अपना और अपने आचार्य पौष्करसाति ब्राह्मण का यह दोष देखो!

८. पूर्व ऋषियों द्वारा बोधित मार्ग

३०. "अम्बष्ठ! पौष्करसाति ब्राह्मण तो राजा प्रसेनजित् कोसल का दिया खाता है। (फिर भी) राजा प्रसेनजित् कोसल उसको अपने सामने आने भी नहीं देता। जब वह उससे बात करता है तो (दोनों के बीच में) वस्त्र का आवरण लगा कर ही बात होती है। अम्बष्ठ! यह विडम्बना तो देख कि जिस

३१. "तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, इध राजा पसेनदि कोसलो हत्थिगीवाय वा निसिन्नो अस्सपिट्ठे वा निसिन्नो रथूपत्थरे वा ठितो उग्गेहि वा राजञ्ञेहि वा किञ्चिदेव मन्तनं [R.104] मन्तेय्य। सो तम्हा पदेसा अपक्कम्म एकमन्तं तिट्ठेय्य। अथ आगच्छेय्य सुद्दो वा सुद्ददासो वा तस्मिं पदेसे ठितो तदेव मन्तनं मन्तेय्य—'एवं पि राजा पसेनदि कोसलो आह, एवं पि राजा पसेनदि कोसलो आहा' ति। अपिनु सो राजभणितं वा भणति राजमन्तनं वा मन्तेति? एत्तावता सो अस्स राजा वा राजमत्तो वा" ति? "नोहिदं, भो गोतम"!

३२. "एवमेव खो त्वं, अम्बट्ठ, ये ते अहेसुं ब्राह्मणानं पुब्बका इसयो मन्तानं कत्तारो मन्तानं पवत्तारो येसमिदं एतरहि ब्राह्मणा पोराणं मन्तपदं गीतं पवुत्तं समिहितं तदनु-[N.91] गायन्ति तदनुभासन्ति भासितमनुभासन्ति वाचितमनुवाचेन्ति, सेय्यथिदं—अट्ठको वामको वामदेवो वेस्सामित्तो यमतग्गि अङ्गीरसो भारद्वाजो वासेट्ठो कस्सपो भगु—'त्याहं मन्ते अधियामि साचरियको' ति तावता त्वं भविस्ससि इसि वा इसित्थाय वा पटिपन्नो ति नेतं ठानं विज्जति।

३३. "तं किं मञ्ञसि, अम्बट्ठ, किन्ति ते सुतं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं—'ये ते अहेसुं ब्राह्मणानं पुब्बका इसयो मन्तानं कत्तारो [B.98] मन्तानं पवत्तारो येसमिदं एतरहि ब्राह्मणा पोराणं मन्तपदं गीतं पवुत्तं समिहितं तदनुगायन्ति तदनुभासन्ति भासितमनुभासन्ति वाचितमनुवाचेन्ति, सेय्यथिदं—अट्ठको वामको वामदेवो वेस्सामित्तो यमतग्गि अङ्गीरसो भारद्वाजो वासेट्ठो कस्सपो भगु, एवं सु ते सुन्हाता सुविलित्ता कप्पितकेसमस्सू आमुक्कमणिकुण्डलाभरणा ओदातवत्थवसना पञ्चहि कामगुणेहि समप्पिता समङ्गीभूता परिचारेन्ति सेय्यथापि त्वं एतरहि साचरियको" ति? "नोहिदं, भो गोतम"....पे०....
"एवं सु ते सालीनं ओदनं सुचिमंसूपसेचनं विचितकाळकं अनेकसूपं अनेकब्यञ्जनं परिभुञ्जन्ति

पौष्करसाति को राजा माँगी हुई धार्मिक भिक्षा देता है उसे राजा अपने सामने भी नहीं आने देना चाहता। अम्बष्ठ! अपने आचार्य का यह दोष भी देख।"

३१. "तो तुम क्या मानते हो, अम्बष्ठ! राजा प्रसेनजित् कोसल हाथी–घोड़े या रथ पर बैठ बड़े बड़े मन्त्रियों से मन्त्रणा करे । फिर वह वहाँ से उठकर एक ओर खड़ा हो जाय। तब कोई शूद्र या शूद्रदास आवे और उस प्रदेश (हाथी–घोड़े आदि) पर बैठ कर उसी तरह मन्त्रणा का अभिनय करे तो क्या इतने से वह राजा हो जायगा, या उसकी वह बातचीत राजा द्वारा की हुई मानी जायगी?" "ऐसा तो नहीं, भो गौतम!"

३२. "इसी प्रकार, अम्बष्ठ! 'जो वे ब्राह्मणों के पूर्वज ऋषि मन्त्रकर्ता तथा प्रवक्ता ऋषि थे, आज कल के ब्राह्मण जिनके पुराने गाये हुए कहे हुए मन्त्रों का अनुगायन, अनुभाषण करते हैं, भाषित को या वाचित (पढ़े हुए) को पुनः पुनःभाषित या वाचित करते है; जैसे कि अष्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अङ्गिरा, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप या भृगु। उनके मन्त्रों को मैं आचार्यसहित, अध्ययन करता हूँ'–ऐसा कह देने मात्र से क्या तुम उन ऋषियों या ऋषित्व के मार्ग पर चलने वाले मान लिये जाओगे? यह तो सम्भव नहीं।

३३. "तो तुम क्या मानते हो, अम्बष्ठ! तुमने अपने बड़े–बूढ़े ब्राह्मणों आचार्य–प्राचार्य को कहते सुना है कि जो वे ब्राह्मणों के पूर्वज ऋषि थे....पूर्ववत्.... वे क्या ऐसे ही तुम लोगों की तरह सुस्नात, सुविलिप्त (शरीर पर अङ्गराग लगाये) केश, दाढ़ी, मूँछ संवारे मणिकुण्डल अदि आभूषण धारण किये,

[R.105] सेय्यथापि त्वं एतरहि साचरियको'' ति? ''नोहिदं, भो गोतम'' .... पे० .... ''एवं सु ते वेठकनतपस्साहि नारीहि परिचारेन्ति सेय्यथापि त्वं एतरहि साचरियको'' ति? ''नोहिदं, भो गोतम''.... पे० .... ''एवं सु ते कुत्तवालेहि वळवारथेहि दीघाहि पतोदलट्ठीहि वाहने वितुदेन्ता विपरियायन्ति सेय्यथापि त्वं एतरहि साचरियको'' ति? ''नोहिदं, भो गोतम'' .... पे० .... ''एवं सु ते उक्किण्णपरिखासु ओक्खित्तपलिघासु नगरूपकारिकासु दीघासिवुधेहि पुरिसेहि रक्खापेन्ति सेय्यथापि त्वं एतरहि साचरियको'' ति? ''नोहिदं, भो गोतम''!

''इति खो, अम्बट्ठ, नेव त्वं इसि, न इसित्थाय पटिपन्नो साचरियको। यस्स खो पन, अम्बट्ठ, मयि कङ्खा वा विमति वा सो मं पञ्हेन। अहं वेय्याकरणेन सोधिस्सामी'' ति।

३४. अथ खो भगवा विहारा निक्खम्म चङ्कमं अब्भुट्ठासि। अम्बट्ठो पि माणवो [N.92] विहारा निक्खम्म चङ्कमं अब्भुट्ठासि। अथ खो अम्बट्ठो माणवो भगवन्तं चङ्कमन्तं अनुचङ्कममानो भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि समन्नेसि। अद्दसा खो अम्बट्ठो माणवो [B. 99] भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि, येभुय्येन ठपेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिस-[R.106] लक्खणेसु कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति—कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहूतजिव्हताय च।

३५. अथ खो भगवतो एतदहोसि—''पस्सति खो मे अयं अम्बट्ठो माणवो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि, येभुय्येन ठपेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिसलक्खणेसु कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति—कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहूतजिव्हताय चा'' ति। अथ खो भगवा तथारूपं इद्धाभिसङ्खारं अभिसङ्खारेसि यथा अद्दस अम्बट्ठो माणवो भगवतो कोसोहितं

श्वेत वस्त्र धारण किये, पाँचों कामभोगों में लिप्त, उन्हीं में डूबते–उतराते घिरे रहते थे, जैसे आजकल अपने आचार्य सहित तुम घिरे रहते हो?'' ''ऐसा तो नहीं है, भो गौतम! .... पूर्ववत् ....। ''तो क्या मानते हो, अम्बष्ठ! क्या तुम्हारे वे पूर्वज ऋषि भी ऐसे ही स्त्रियों को मसनद की तरह बगल (पार्श्व) में दबाये .... चारों और खाई (परिवार) खोदे, परिघ (काठ की ऊँची–ऊँची दिवारे) उठाये नगररक्षिकाओं (नगरूपकारिका) में बलिष्ठ आयु–पुरुषों से अपनी रक्षा करवाते थे, जैसे कि आज कल आचार्यसहित तुम!'' ''नहीं, भो गौतम!''

''यों, अम्बष्ठ! आचार्यसहित न तुम ऋषि हो, न ऋष्युक्त मार्ग पर आरूढ। अम्बष्ठ! मेरे विषय में जो तुम्हें संशय या विमति (मतभेद) हो उसे तुम मुझे पूछ सकते हो, मैं उसका उत्तर दे कर दूर करूँगा।''

३४. (यह कर कर) भगवान् अपने साधना स्थल (विहार) से निकल कर चंक्रमणस्थल पर आ कर खड़े हो गये। अम्बष्ठ माणवक भी (भगवान् के पीछे–पीछे) उस विहार से निकल कर उसी चंक्रमणस्थल आकर खड़ा हो गया। तब अम्बष्ठ माणवक भगवान् के पीछे–पीछे टहलता हुआ भगवान् के शरीर में बत्तीस महापुरुषों के लक्षण खोजने लगा। खोजते–खोजते उसने भगवान् के शरीर में महापुरुषों के सभी लक्षण देख लिये केवल दो बाकी रह गये। जैसे पहला वस्तिकोष एवं वस्त्र से ढकी हुई मूत्रेन्द्रिय (शिश्न), दूसरा उनकी लम्बी जिह्वा। इन दो के विषय में न दिखायी पड़ने के कारण उसे आकाङ्क्षा वैमत्य या सन्देह रह ही गया।

३५. तब भगवान् के मन में यह विचार आया—''यह अम्बष्ठ माणव मेरे शरीर में दो को छोड़ कर सभी ३२ महापुरुषलक्षण देख पा रहा है। दो (मूत्रेन्द्रिय एवं जिह्वा) के विषय में इसको सन्देह रह गया

वत्थगुय्हं। अथ खो भगवा जिव्हं निन्नामेत्वा उभो पि कण्णसोतानि अनुमसि पटिमसि, उभो पि नासिकसोतानि अनुमसि पटिमसि, केवलं पि नलाटमण्डलं जिव्हाय छादेसि। अथ खो अम्बट्ठस्स माणवस्स एतदहोसि—"समन्नागतो खो समणो गोतमो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि परिपुण्णेहि, नो अपरिपुण्णेही" ति। भगवन्तं एतदवोच—"हन्द च दानि मयं, भो गोतम, गच्छाम। बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया" ति।

"यस्सदानि त्वं, अम्बट्ठ, कालं मञ्ञसी ति"।

९. अम्बट्ठो पोक्खरसातिं उपसङ्कमि

३६. अथ खो अम्बट्ठो माणवो वळवारथमारुय्ह पक्कामि। तेन खो पन समयेन ब्राह्मणो पोक्खरसाति उक्कट्ठाय निक्खमित्वा महता ब्राह्मणगणेन सद्धिं सके आरामे निसिन्नो होति अम्बट्ठंयेव माणवं पटिमानेन्तो। अथ खो अम्बट्ठो माणवो येन सको आरामो तेन पायासि। यावतिका यानस्स भूमि, यानेन गन्त्वा, याना पच्चोरोहित्वा पत्तिको व येन ब्राह्मणो पोक्खरसाति तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ब्राह्मणं पोक्खरसातिं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।

३७. एकमन्तं निसिन्नं खो अम्बट्ठं माणवं ब्राह्मणो पोक्खरसाति एतदवोच—"कच्चि, तात अम्बट्ठ, अद्दसं तं भवन्तं गोतमं" ति? "अद्दसाम खो मयं, भो, तं भवन्तं गोतमं" ति।

"कच्चि, तात अम्बट्ठ, तं भवन्तं गोतमं तथा सन्तंयेव सद्दो अब्भुग्गतो नो [R.107] अञ्ञथा; कच्चि पन, भो, भवं गोतमो तादिसो नो अञ्ञादिसो" ति? [B.100]

"तथा सन्तंयेव, भो, तं भवन्तं गोतमं सद्दो अब्भुग्गतो नो अञ्ञथा, तादिसो [N. 93]

है।" तब भगवान् ने ऐसा चमत्कार किया कि अम्बष्ठ माणवक को भगवान् के शरीर की वस्तिगुप्त मूत्रेन्द्रिय भी दिखायी दे गयी। तब भगवान् जीभ निकाल कर उससे अपने दोनों कर्णद्वारों को, नासिकास्रोतों को छूआ, स्पर्श किया। अपने ललाट मण्डल को भी अपनी जिह्वा से ढका। तब अम्बष्ठ माणवक को भगवान् के शरीर में बत्तीस महापुरुषों के लक्षण सब के सब, कोई एक भी कम नहीं स्पष्ट दिखायी पड़ गये। तब अम्बष्ठ माणवक को यह निश्चय हो गया कि भगवान् के शरीर में सभी बत्तीस महापुरुषलक्षण हैं। तब अम्बष्ठ माणवक ने अपने वापस जाने की आज्ञा माँगी और कहा—"भो गौतम! अब मेरा अपने आश्रम लौटने का समय हो रहा है। मुझे और भी बहुत से कार्य हैं।"

भगवान् ने कहा—"ठीक है, अम्बष्ठ! जैसा तुम उचित समझो।"

९. अम्बष्ठ का पौष्करसाति के पास पुनरागमन

३६. तब अम्बष्ठ माणवक अपने उसी घोड़ियों के रथ पर सवार हो कर चल दिया। उस समय पौष्करसाति ब्राह्मण उक्कट्ठा ग्राम से निकल कर विशाल ब्राह्मणसमूह के साथ अपने आराम (उद्यान) में बैठा अम्बष्ठ माणवक की प्रतीक्षा कर रहा था। तब अम्बष्ठ माणवक उस उद्यान की तरफ जाता हुआ जितना मार्ग रथ से जाने योग्य था, उसे रथ से पार कर अवशिष्ट को यान से उतर कर पैदल ही पार कर ब्राह्मण पौष्करसाति के पास पहुँचा। पहुँच कर, प्रणाम कर एक ओर बैठ गया।

३७. एक ओर बैठे अम्बष्ठ माणवक को उस ब्राह्मण पौष्करसाति ने यों पूछा—"तात अम्बष्ठ! क्या तुमने उन गौतम को देखा?" "हाँ, भगवन्! हमने उन गौतम के दर्शन किये।"

"क्या, अम्बष्ठ ! तुमने श्रमण गौतम को वैसा ही देखा जैसा कि उनके विषय में समाज में कीर्ति–शब्द फैला हुआ है, या अन्यथा (उस कीर्तिशब्द के विपरीत)।"

व सो भवं गोतमो नो अञ्ञादिसो। समन्नागतो च सो भवं गोतमो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि परिपुण्णेहि नो अपरिपुण्णेही'' ति।?

''अहु पन ते, तात अम्बट्ठ, समणेन गोतमेन सद्धिं कोचिदेव कथासल्लापो'' ति? ''अहु खो मे, भो, समणेन गोतमेन सद्धिं कोचिदेव कथासल्लापो'' ति। ''यथा कथं पन ते, तात अम्बट्ठ, अहु समणेन गोतमेन सद्धिं कोचिदेव कथासल्लापो'' ति?

अथ खो अम्बट्ठो माणवो यावतको अहोसि भगवता सद्धिं कथासल्लापो तं सब्बं ब्राह्मणस्स पोक्करसातिस्स आरोचेसि।

३८. एवं वुत्ते, ब्राह्मणो पोक्करसाति अम्बट्ठं माणवं एतदवोच—''अहो वत रे अम्हाकं पण्डितक, अहो वत रे अम्हाकं बहुस्सुतक, अहो वत रे अम्हाकं तेविज्जक! एवरूपेन किर, भो, पुरिसो अत्थचरकेन कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय, यदेव खो त्वं, अम्बट्ठ, तं भवन्तं गोतमं एवं आसज्ज आसज्ज अवचासि। अथ खो सो भवं गोतमो अम्हे पि एवं उपनेय्य उपनेय्य अवच। अहो वत रे अम्हाकं पण्डितक, अहो वत रे अम्हाकं बहुस्सुतक, अहो वत रे अम्हाकं तेविज्जक! एवरूपेन किर, भो, पुरिसो अत्थचरकेन कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्या'' ति, कुपितो अनत्तमनो अम्बट्ठं माणवं पदसा येव पवत्तेसि, इच्छति च तावदेव भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुं।

१०. पोक्खरसाति बुद्धं उपसङ्कमि

[R.108] ३९. अथ खो ते ब्राह्मणा ब्राह्मणं पोक्खरसातिं एतदवोचुं—''अतिविकालो खो, भो, अज्ज समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। स्वेदानि भवं पोक्खरसाति समणं गोतमं

''हाँ, श्रीमन्! मैंने उन श्रमण गौतम को वैसा ही देखा–पाया, अन्यथा नहीं, जैसा कि उनका आज समाज में कीर्ति–शब्द फैला हुआ है। वे श्रमण गौतम वस्तुतः ही बत्तीस महापुरुष लक्षणों से युक्त हैं।

''तात अम्बष्ठ! उस श्रमण गौतम से तुम्हारी कुछ बात–चीत भी हुई।'' ''हाँ, श्रीमन्! उनसे बातचीत भी हुई।'' ''तो उनसे क्या बातचीत हुई, तात अम्बष्ठ?''

तब अम्बष्ठ माणवक ने पौष्करसाति ब्राह्मण से वह समग्र कथासंल्लाप अक्षरशः उसी तरह सुना दिया जैसा कि उसका श्रमण गौतम से हुआ था।

३८. (अम्बष्ठ द्वारा) ऐसा बताये जाने पर, ब्राह्मण पौष्करसाति अम्बष्ठ माणवक से यों बोला– ''धन्य है हमारे पण्डित का पण्डितत्व और धन्य है, बहुश्रुत का बहुश्रुतत्व! धन्य है हमारे त्रैविद्यिक का त्रैविद्यकत्व। इस प्रकार तुम्हारी तरह महापुरुषों के साथ व्यङ्ग्यभरी बातें बोलने से परिणामस्वरूप इस देहत्याग के बाद, अपाय, दुर्गति या नरक ही मिलेगा! अरे धन्य है हमारे पण्डित .... नरक ही मिलेगा!! और उस श्रमण गौतम को हम ब्राह्मणों के विषय में अकथनीय बातें कहनी पड़ी।'' यों, पौष्करसाति ब्राह्मण ने अम्बष्ठ माणवक पर कुपित एवं अप्रसन्न हो कर उसे पैदल ही वहाँ से हटाया। और वह उसी समय भगवान् के दर्शनार्थ जाने को उद्यत हुआ।

१०. पौष्करसाति का बुद्ध के पास जाना

३९. तब (उस के अनुचर) ब्राह्मणों ने उस ब्राह्मण पौष्करसाति से कहा–''श्रीमन्! उन श्रमण–गौतम के दर्शनार्थ जाने का तो यह बहुत असमय है। दूसरे दिन (कल)आप उन के दर्शन करने जाँय

दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती'' ति। अथ खो ब्राह्मणो पोक्खरसाति सके निवेसने पणीतं [B.101] खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा याने आरोपेत्वा, उक्कासु धारियमानासु, उक्कट्ठाय निय्यासि; येन इच्छानङ्गलवनसण्डो तेन पायासि। यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा, याना पच्चोरोहित्वा, पत्तिको व येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं [N.94] कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि।

४०. एकमन्तं निसिन्नो खो ब्राह्मणो पोक्खरसाति भगवन्तं एतदवोच—''आगमा नु ख्विध, भो गोतम, अम्हाकं अन्तेवासी अम्बट्ठो माणवो'' ति? ''आगमा खो ते, ब्राह्मण, अन्तेवासी अम्बट्ठो माणवो'' ति।?

''अहु पन ते, भो गोतम, अम्बट्ठेन माणवेन सद्धिं कोचिदेव कथासल्लापो'' ति?

''अहु खो मे, ब्राह्मण, अम्बट्ठेन माणवेन सद्धिं कोचिदेव कथासल्लापो'' ति।

''यथाकथं पन ते, भो गोतम, अहु अम्बट्ठेन माणवेन सद्धिं कोचिदेव कथासल्लापो'' ति? अथ खो भगवा यावतको अहोसि अम्बट्ठेन माणवेन सद्धिं कथासल्लापो तं सब्बं ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स आरोचेसि। एवं वुत्ते, ब्राह्मणो पोक्खरसाति भगवन्तं एतदवोच—''बालो, भो गोतम, अम्बट्ठो माणवो। खमतु भवं गोतमो अम्बट्ठस्स माणवस्सा'' ति।

''सुखी होतु, ब्राह्मण, अम्बट्ठो माणवो'' ति।

४१. अथ खो ब्राह्मणो पोक्खरसाति भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि [R.109] समन्नेसि। अद्दसा खो ब्राह्मणो पोक्खरसाति भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि, येभुय्येन ठपेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिसलक्खणेसु कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति—कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहूतजिव्हताय च।

४२. अथ खो भगवतो एतदहोसि—''पस्सति खो मे अयं ब्राह्मणो पोक्खरसाति

तो उचित होगा। तब ब्राह्मण पौष्करसाति अपने वासस्थान पर अच्छे-अच्छे और रुचिकर भोज्य पदार्थ बनवाकर उन्हें गाड़ी में रखवा कर उल्का (मशाल) के प्रकाश में उक्कट्ठा से निकला और इच्छानङ्गल वनप्रदेश की तरफ चल दिया। जहाँ तक यान से जाने योग्य....पूर्ववत्....पैदल ही भगवान् के पास पहुँच गया। पहुँच कर भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछा। कुशलक्षेम की बातें करने का बाद एक तरफ बैठ गया।

४०. एक तरफ बैठे पौष्करसाति ब्राह्मण ने भगवान् से यों पूछा—''भो गौतम! हमारा शिष्य अम्बष्ठ माणवक यहाँ आया था?'' ''हाँ, ब्राह्मण! तुम्हारा अन्तेवासी अम्बष्ठ माणवक यहाँ आया तो था।''

''भो गौतम! आपकी उस के साथ कुछ बातचीत हुई थी?''

''हाँ, ब्राह्मण! उसके साथ हमारी कुछ बातचीत भी हुई थी।''

''भो गौतम! उस अम्बष्ठ माणवक के साथ आप की क्या बातचीत हुई थी?'' तब भगवान् ने वह सब बातचीत (कथासंल्लाप), जो अम्बष्ठ माणवक के साथ हुई थी, अक्षरशः पौष्करसाति ब्राह्मण को सुना दी। भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर, पौष्करसाति ब्राह्मण ने भगवान् से यों निवेदन किया—''भो गौतम! अम्बष्ठ माणवक अभी बच्चा है, उस अम्बष्ठ माणवक को आप क्षमा करें।''

''ब्राह्मण! अम्बष्ठ माणवक सुखी हो।''

४१. तब पौष्करसाति ब्राह्मण ने भगवान् के शरीर में महापुरुष लक्षणों को खोजा। उसने दो को छोड़ कर अवशिष्ट सभी लक्षण देख लिये।

द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणानि, येभुय्येन ठपेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिसलक्खणेसु कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न सम्पसीदति—कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहूतजिव्हताय चा'' ति। अथ खो [B.103] भगवा तथारूपं इद्धाभिसङ्खारं अभिसङ्खारेसि यथा अद्दस ब्राह्मणो पोक्खरसाति भगवतो कोसोहितं वत्थगुय्हं। अथ खो भगवा जिव्हं निन्नामेत्वा उभो पि कण्णसोतानि अनुमसि पटिमसि, उभो पि नासिकसोतानि अनुमसि पटिमसि, केवलं पि नलाटमण्डलं जिव्हाय छादेसि।

[N.95] ४३. अथ खो ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स एतदहोसि—''समन्नागतो खो समणो गोतमो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि परिपुण्णेहि नो अपरिपुण्णेही'' ति। भगवन्तं एतदवोच—''अधिवासेतु मे भवं गोतमो अज्जतनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना'' ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

४४. अथ खो ब्राह्मणो पोक्खरसाति भगवतो अधिवासनं विदित्वा.... भगवतो कालं आरोचेसि—''कालो, भो गोतम; निट्ठितं भत्तं'' ति। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेन येन ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो ब्राह्मणो पोक्खरसाति भगवन्तं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि, माणवका पि भिक्खुसङ्घं। अथ खो ब्राह्मणो पोक्खरसाति भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि।

४५. एकमन्तं निसिन्नस्स खो ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स भगवा अनुपुब्बिं कथं [R.110] कथेसि, सेय्यथिदं—दानकथं सीलकथं सग्गकथं; कामानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं, नेक्खम्मे आनिसंसं पकासेसि। यदा भगवा अञ्ञासि ब्राह्मणं पोक्खरसातिं कल्लचित्तं मुदुचित्तं विनीवरण-चित्तं उदग्गचित्तं पसन्नचित्तं, अथ या बुद्धानं सामुक्कंसिका धम्मदेसना तं

---

४२. इन दो लक्षणों के विषय में ....पूर्ववत्.... सम्पूर्ण ललाटमण्डल को ढक लिया।

४३. तदनन्तर इस ब्राह्मण पौष्करसाति को यों विचार आया—''ये श्रमण गौतम तो महापुरुषों के सभी (३२) लक्षणों से समन्वित है, कोई एक भी लक्षण अवशिष्ट नहीं है।'' ऐसा विचार कर उसने भगवान् से यों निवेदन किया—''आप गौतम, अपने समग्र भिक्षुसङ्घ के साथ आज मेरे आवास पर भोजन करें!'' भगवान् ने मौन भाव से इस निमन्त्रण को स्वीकर किया।

४४. तब पौष्करसाति ब्राह्मण ने भगवान् की स्वीकृति जान कर ... पूर्ववत् .... निवेदन किया—''भो गौतम! भोजन तय्यार है, अब आप जैसा उचित समझें।'' तब भगवान् पूर्वाह्न में तैयार हो, पात्र चीवर ले, भिक्षुसङ्घ के साथ पौष्करसाति ब्राह्मण के आवास पर पहुँच कर प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान हुए। तब ब्राह्मण पौष्करसाति ने भगवान् को रुचिकर भोजन अपने हाथ से परोसा और उसके अन्य माणवकों ने भिक्षुसङ्घ को। (कुछ समय बाद) भगवान् को पात्र से हाथ हटाया देख कर पौष्करसाति ब्राह्मण एक नीचा आसन ले कर एक तरफ बैठ गया।

४५. एक ओर बैठे पौष्करसाति ब्राह्मण को भगवान् ने (धर्मानुकूल) आनुपूर्वी कथा कही; जैसे दानकथा, शीलकथा, स्वर्गकथा, साथ ही काम भोगों के दोष उन की बुराईयाँ, उनसे होने वाले कष्ट। इसके विपरीत नैष्कर्म्य का माहात्म्य बतलाया। जब भगवान् ने पौष्करसाति ब्राह्मण के विषय में समझ

पकासेसि—दुक्खं समुदयं निरोधं मग्गं। सेय्यथापि नाम सुद्धं वत्थं अपगतकाळकं सम्मदेव रजनं पटिग्गण्हेय्य, एवमेव ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स तस्मिं येव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि—"यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं" ति।

पोक्खरसातिस्स उपासकत्तपरिवेदना

४६. अथ खो ब्राह्मणो पोक्खरसाति दिट्ठधम्मो पत्तधम्मो विदितधम्मो परियोगाळ्हधम्मो तिण्णविचिकिच्छो विगतकथङ्कथो वेसारज्जप्पत्तो अपरप्पच्चयो सत्थुसासने भगवन्तं [B.103] एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम! अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति, एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भो गोतम, सपुत्तो सभरियो सपरिसो सामच्चो भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं। यथा च भवं गोतमो उक्कट्ठाय अञ्ञानि उपासककुलानि उपसङ्कमति, एवमेव भवं गोतमो [N. 96] पोक्खरसातिकुलं उपसङ्कमतु। तत्थ ये ते माणवका वा माणविका वा भवन्तं गोतमं अभिवादेस्सन्ति वा, पच्चुट्ठिस्सन्ति वा, आसनं वा उदकं वा दस्सन्ति, चित्तं वा पसादेस्सन्ति, तेसं तं भविस्सति दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

"कल्याणं वुच्चति, ब्राह्मणा" ति॥

अम्बट्ठसुत्तं निट्ठितं ततियं॥

लिया कि इन कथाओं के प्रभाव से इसका चित्त उपयुक्त, मृत्यु, आवरणरहित उन्नत, प्रसन्न हो गया है तब उन्होंने उसको बुद्धों को अपनी ओर खींचने वाले धर्म (साधनाओं) की दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध एवं दुःख निरोधगामी मार्ग की देशना की। जैसे शुद्ध निर्मल वस्त्र पर कोई भी रंग अच्छी तरह चढ़ जाता है उसी तरह उस पौष्करसाति ब्राह्मण को यह निर्दोष एवं निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हो गया कि "जो कुछ भी उत्पत्तिधर्मा है उसका निरोध किया जा सकता है।"

पौष्करसाति की उपासकत्वयाच्ञा

४६. इस तरह उस पौष्करसाति ब्राह्मण ने जब धर्म के विषय में सब कुछ देख लिया, जान लिया, पा लिया, समझ लिया, अवगाहन कर लिया, धर्मविषयक इसकी सभी शङ्काएँ दूर हो गयीं, सभी प्रश्नों का समाधान हो गया (विगतकथङ्कथी), इस विषय में वैशारद्य (गहराई तक जानना) प्राप्त कर चुका, उसकी दूसरे धर्मों के प्रति श्रद्धा नष्ट हो चुकी, तब उसने भगवान् से यों निवेदन किया—"आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है, भो गौतम! जैसे....पूर्ववत्....। भो गौतम! यह मैं अपने पुत्र, भार्या, अमात्यों के सहित आप गौतम की शरण में जाता हूँ, धर्म की भी सङ्घ की भी शरण में जाता हूँ। आज से आप मुझे, मेरे प्राण रहने तक, अपना शरणागत समझें। अब से, जैसे आप उक्कट्ठा के अन्य कुल–घरों में पधारते है वैसे ही (उक्कट्ठा आने पर)पौष्करसाति कुल में भी पधारें। वहाँ जो तरुण माणवक–माणविका आप गौतम का अभिवादन करेंगे, प्रत्युत्थान करेंगे आने पर आसन तथा अर्घ्य प्रदान करेंगे, आप में प्रसन्नचित्त होकर श्रद्धा करेंगे वह उन के लिये चिरकाल तक मङ्गलमय होगा।"

"ब्राह्मण! आपका कथन मङ्गलमय है।।"

तृतीय अम्बष्ठसुत्त समाप्त॥

४. सोणदण्डसुत्तं

१. चम्पेय्यकब्राह्मणेहि सोणदण्डस्स सल्लापो

[N.97, B.104, R.111] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा अङ्गेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि येन चम्पा तदवसरि। तत्र सुदं भगवा चम्पायं विहरति गग्गराय पोक्खरणिया तीरे। तेन खो पन समयेन सोणदण्डो ब्राह्मणो चम्पं अज्झावसति सत्तुस्सदं सतिणकट्ठोदकं सधञ्ञं राजभोग्गं, रञ्ञा मागधेन सेनियेन बिम्बिसारेन दिन्नं, राजदायं ब्रह्मदेय्यं।

२. अस्सोसुं खो चम्पेय्यका ब्राह्मणगहपतिका— "समणो खलु भो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो अङ्गेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि चम्पं अनुप्पत्तो चम्पायं विहरति गग्गराय पोक्खरणिया तीरे। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो— 'इति पि सो भगवा अरहं, सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो, लोकविदू, अनुत्तरो, पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो, भगवा' ति। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, [R.112]केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती" ति। अथ खो चम्पेय्यका ब्राह्मणगहपतिका चम्पाय निक्खमित्वा सङ्घसङ्घी गणीभूता येन गग्गरा पोक्खरणी तेनुपसङ्कमन्ति।

३. तेन खो पन समयेन सोणदण्डो ब्राह्मणो उपरिपासादे दिवासेय्यं उपगतो होति। अद्दसा खो सोणदण्डो ब्राह्मणो चम्पेय्यके ब्राह्मणगहपतिके चम्पाय निक्खमित्वा सङ्घसङ्घी

---

४. सोणदण्डसूत्र

१. चाम्पेयक ब्राह्मणों से सोणदण्ड का संवाद

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) पाँच सौ भिक्षुओं के वृहत् सङ्घ के साथ चारिका करते हुए अङ्गप्रदेश की चम्पानगरी में पहुँचे। वहाँ वे चम्पा नगरी की गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर साधनाहेतु विराजमान हुए। उस समय शोणदण्ड नामक एक ब्राह्मण उस जनाकीर्ण, तृण–काष्ठ–उदक से भरपूर, धन–धान्यसम्पन्न, राजभोग्य परन्तु मगध श्रैणिक राजा बिम्बिसार द्वारा ब्राह्मण–दान में दी गयी चम्पा नगरी का स्वामी (अधिपति) था।

२. चम्पावासी ब्राह्मण–गृहस्थों ने (जब) सुना— "शाक्य कुल से प्रव्रजित ये शाक्यपुत्र श्रमण गौतम अङ्गदेश में चारिका करते हुए पाँच सौ की सङ्ख्या में बृहत् भिक्षुसङ्घ के साथ चम्पानगरी के पास गग्गरा पुष्करिणी के तट पर पधारे हैं। उसी श्रमण गौतम के विषय में आज चम्पानगरी में यह मङ्गल शब्द फैला हुआ है—"वह भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध.....पूर्ववत्.....दर्शन मङ्गलमय होता है।" तब उन चम्पावासी ब्राह्मणगृहस्थों ने चम्पा नगरी से प्रस्थान कर समूह रूप में एकत्र हो कर गग्गरा पुष्करिणी के तट पर जाना प्रारम्भ किया।

३. उस समय सोणदण्ड ब्राह्मण अपने महल के ऊपरी भाग में दिन के समय आराम कर रहा था। उस समय उस ब्राह्मण ने अपने महल में लेटे ही लेटे बाहर सड़क पर चम्पा नगरी के ब्राह्मण

गणीभूते येन गग्गरा पोक्खरणी तेनुपसङ्कमन्ते; दिस्वा खत्तं आमन्तेसि— "किं नु [B.105] खो, भो खत्ते, चम्पेय्यका ब्राह्मणगहपतिका चम्पाय निक्खमित्वा सङ्घसङ्घी गणीभूता येन गग्गरा पोक्खरणी तेनुपसङ्कमन्ती" ति?

"अत्थि खो, भो, समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो अङ्गेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि चम्पं अनुप्पत्तो चम्पायं [N.98] विहरति गग्गराय पोक्खरणिया तीरे। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो— 'इति पि सो भगवा, अरहं, सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो, लोकविदू, अनुत्तरो, पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो, भगवा' ति। तमेते भवन्तं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमन्ती" ति।

"तेन हि, भो खत्ते, येन चम्पेय्यका ब्राह्मणगहपतिका तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा चम्पेय्यके ब्राह्मणगहपतिके एवं वदेहि— 'सोणदण्डो, भो, ब्राह्मणो एवमाह—आगमेन्तु किर भवन्तो, सोणदण्डो पि ब्राह्मणो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती' " ति। "एवं, भो" ति खो सो खत्ता सोणदण्डस्स ब्राह्मणस्स पटिस्सुत्वा येन चम्पेय्यका ब्राह्मण-[R.113] गहपतिका तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा चम्पेय्यके ब्राह्मणगहपतिके एतदवोच—"सोणदण्डो, भो, ब्राह्मणो एवमाह—'आगमेन्तु किर भवन्तो, सोणदण्डो पि ब्राह्मणो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती" ति।

४. तेन खो पन समयेन नानावेरज्जकानं ब्राह्मणानं पञ्चमत्तानि ब्राह्मणसतानि चम्पायं पटिवसन्ति केनचिदेव करणीये। अस्सोसुं खो ते ब्राह्मणा— "सोणदण्डो किर ब्राह्मणो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती" ति। अथ खो ते ब्राह्मणा येन सोणदण्डो ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा सोणदण्डं ब्राह्मणं एतदवोचुं—"सच्चं किर भवं सोणदण्डो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती" ति?

गृहपतियों को इकट्ठे हो कर समूह (सङ्घ) रूप में गग्गरा पुष्करिणी की तरफ जाते देखा। देखकर उसने अपने अङ्गरक्षक (या सचिव) को बुलाया और पूछा– "रक्षक! आज ये चम्पावासी ब्राह्मण गृहपति चम्पा से निकल कर एकत्र हो होकर समूह (सङ्घ) रूप में गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर क्यों जा रहे हैं?"

"श्रीमन्! शाक्यकुल से प्रव्रजित शाक्यपुत्र गौतम.... पूर्ववत्....उन भगवान् गौतम का दर्शन करने जा रहे हैं।"

"तो रक्षक! इन चम्पावासी गृहपतियों से जा कर कहो– 'सोणदण्ड ब्राह्मण कहता है कि आप लोग कुछ देर प्रतीक्षा करें, मैं भी आप लोगों के साथ श्रमण गौतम के दर्शनहेतु चलूँगा।' " उस रक्षक ने सोणदण्ड को "अच्छा श्रीमन्!" कहा और वह चम्पावासी ब्राह्मण गृहपतियों के पास गया। जाकर उनको सोणदण्ड ब्राह्मण का सन्देश सुनाया कि "आप कुछ देर ठहरें। सोणदण्ड ब्राह्मण भी आप लोगों के साथ श्रमण गौतम के दर्शनों हेतु चलेंगे।"

४. उस समय काशी कोसल आदि नाना राज्यों के मूल निवासी पाँच सौ ब्राह्मण भी अपने-अपने कार्यों से उस चम्पा नगरी में रहते थे। उनने भी सुना कि सोणदण्ड ब्राह्मण भी भगवान् गौतम के दर्शन हेतु जायँगें। वे पाँच सौ ब्राह्मण भी उसके पास आये और आकर पूछने लगे– "क्या आप सोणदण्ड ब्राह्मण वस्तुतः श्रमण गौतम के दर्शनार्थ जायँगे?"

"एवं खो मे, भो, होति— 'अहं पि समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सामी' " ति।

"मा भवं सोणदण्डो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमि। न अरहति भवं सोणदण्डो [B.106] समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। सचे भवं सोणदण्डो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सति, भोतो सोणदण्डस्स यसो हायिस्सति, समणस्स गोतमस्स यसो अभिवड्ढिस्सति। यं पि भोतो सोणदण्डस्स यसो हायिस्सति समणस्स गोतमस्स यसो अभिवड्ढिस्सति, इमिनापङ्गेन न अरहति भवं सोणदण्डो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; समणो त्वेव गोतमो अरहति भवन्तं सोणदण्डं दस्सनाय उपसङ्कमितुं।

"भवं हि सोणदण्डो उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव [N.99] सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन। यं पि भवं सोणदण्डो उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन, इमिनापङ्गेन न अरहति भवं सोणदण्डो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; समणो त्वेव गोतमो अरहति भवन्तं सोणदण्डं दस्सनाय उपसङ्कमितुं।

"भवं हि सोणदण्डो अड्ढो महद्धनो महाभोगो....पे०....।

[R.114] "भवं हि सोणदण्डो अज्झायको, मन्तधरो, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको, वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो....पे०....।

"भवं हि सोणदण्डो अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो ब्रह्मवण्णी ब्रह्मवच्छसी अखुद्दावकासो दस्सनाय....पे०....।

"भवं हि सोणदण्डो सीलवा वुद्धसीली, वुद्धसीलेन समन्नागतो....पे०...।

"भवं हि सोणदण्डो कल्याणवाचो कल्याणवाक्करणो पोरिया वाचाय समन्नागतो विस्सट्ठाय अनेळगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया....पे०....।

"हाँ, मेरी भी इच्छा हो रही है कि मैं श्रमण गौतम के दर्शनहेतु पहुँचूगा"।

ब्राह्मणों ने कहा— "आप सोणदण्ड श्रमणगौतम के दर्शन हेतु न जाँय। आप का श्रमण गौतम के दर्शन करने जाना उचित नहीं है। यदि आप वहाँ जायँगे तो आपका यश कम होगा। और उन श्रमण गौतम का यश आप द्वारा उस को महत्त्व देने से बढ़ेगा। क्योंकि ऐसा करने से आप का यश घटेगा और श्रमण गौतम का यश बढ़ेगा— इसलिये भी आप का वहाँ जाना उचित नहीं है। अच्छा तो यह हो कि श्रमण गौतम ही आप के दर्शन हेतु आप के पास आवें।....

"आप सोणदण्ड माता और पिता— दोनों ही पक्षों (कुलों) से सुजात है। आप पर जातिहीनता का कोई कलङ्क नहीं है। क्योंकि आप उक्त सुजात हैं— मातृपक्ष से भी, पितृपक्ष से भी, आप की सात पीढ़ी तक निष्कलङ्क है। आप पर आज तक जातिहीनता का कोई आरोप नहीं लग पाया। इसलिये भी आप का वहाँ जाना उचित नहीं है। श्रमण गौतम का ही यहाँ आना उचित होगा।

"आप सोणदण्ड आढ्य हैं, अत्यधिक धनवान् तथा ऐश्वर्यशाली है। इसलिये भी....।

"आप सोणदण्ड परम विद्वान्, मन्त्रधर, त्रिवेदी,....पूर्ववत्.... महापुरुष लक्षणों के ज्ञाता हैं..।

"आप सोणदण्ड, सुन्दर, दर्शनीय, प्रसन्न छविवाले, परमरूपसम्पन्न, ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मज्ञान से भास्वर, बड़ी इन्द्रियों वाले हैं......।

"भवं हि सोणदण्डो बहूनं आचरियपाचरियो, तीणि माणवकसतानि मन्ते [B.107] वाचेति, बहू खो पन नानादिसा नानाजनपदा माणवका आगच्छन्ति भोतो सोणदण्डस्स सन्तिके मन्तत्थिका मन्ते अधियितुकामा....पे०....।

"भवं हि सोणदण्डो जिण्णो वुड्ढो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो; समणो गोतमो तरुणो चेव तरुणपब्बजितो च....पे०...।

"भवं हि सोणदण्डो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो....पे०...।

"भवं हि सोणदण्डो ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो....पे०....।

"भवं हि सोणदण्डो चम्पं अज्झावसति सत्तुस्सदं सतिणकट्ठोदकं सधञ्ञं राजभोग्गं, रञ्ञा मागधेन सेनियेन बिम्बिसारेन दिन्नं, राजदायं ब्रह्मदेय्यं। यं पि भवं सोणदण्डो चम्पं अज्झावसति सत्तुस्सदं सतिणकट्ठोदकं सधञ्ञं राजभोग्गं, रञ्ञा मागधेन सेनियेन बिम्बिसारेन दिन्नं, राजदायं ब्रह्मदेय्यं, इमिनापङ्गेन न अरहति भवं सोणदण्डो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; समणो त्वेव गोतमो अरहति भवन्तं सोणदण्डं दस्सनाय उपसङ्कमितुं" ति।

५. एवं वुत्ते, सोणदण्डो ब्राह्मणो ते ब्राह्मणे एतदवोच—"तेन हि, भो, मम [R.115] पि सुणाथ यथा मयमेव अरहाम तं भवन्तं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; न त्वेव अरहति सो भवं गोतमो अम्हाकं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। समणो खलु, भो, गोतमो उभतो सुजातो [N.100] मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन। यं पि, भो, समणो गोतमो उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन, इमिनापङ्गेन न अरहति [B.108]

"आप सोणदण्ड शीलवान्, वृद्धशील, वृद्ध शीलों से युक्त हैं.....।

"आप सोणदण्ड हितभाषी, हितभाषण को महत्त्व देने वाले, समय पर प्रिय एवं हित बोलने वाले है....।

"आप बहुत से विद्वानों के आचार्य–प्राचार्य तीन सौ विद्यार्थियों के सतत अध्यापक हैं; इसके अतिरिक्त और बहुत से विद्यार्थी नाना जनपदों से नाना दिशाओं से पढ़ने के लिये आप के पास वेद पढ़ने के लिये रहते हैं....।

"आप वयोवृद्ध समाज में बड़े, अनुभवी एवं अवस्थाप्राप्त हैं जब कि श्रमण गौतम आप की अपेक्षा युवक और अभी ही प्रव्रजित हुए हैं....।

"आप बहुत बड़ी सेना वाले मगधराज बिम्बिसार द्वारा सत्कृत, मानित पूजित अपचायित हैं ....।

"आप विख्यात पौष्करसाति द्वारा भी मानित पूजित हैं....।

"आप इस जनाकीर्ण चम्पा में रह कर तृणधान्य काष्ठ उदक सहित एवं धन–धान्य सम्पन्न, राजभोग्य, राजा मागध बिम्बिसार द्वारा प्रदत्त बहुत बड़े भूप्रदेश के स्वामी हैं। इस कारण भी आप का श्रमण गौतम के दर्शनहेतु जाना उचित नहीं है। अपितु श्रमण गौतम का ही आप के पास आना उचित है।

५. ऐसा कहे जाने पर सोणदण्ड उन ब्राह्मणों से यों बोला–"अरे भाई! आप मेरी बात भी सुन लें कि क्यों हमें ही उन श्रमण गौतम का दर्शन करने जाना उचित है, न कि उन श्रमण गौतम का हमारे पास आना। (१) वह श्रमण गौतम परिव्राजक मातृपक्ष एवं पितृपक्ष दोनों ही कुलों से यहाँ तक कि सातवीं

सो भवं गोतमो अम्हाकं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; अथ खो मयमेव अरहाम तं भवन्तं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। (१)

"समणो खलु, भो गोतमो महन्तं ञातिसङ्घं ओहाय पब्बजितो....पे०....। (२)

"समणो खलु, भो, गोतमो पहूतं हिरञ्ञसुवण्णं ओहाय पब्बजितो भूमिगतं च वेहासट्ठं च.... पे०....। (३)

"समणो खलु, भो, गोतमो दहरो व समानो युवा सुसुकाळकेसो भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो पठमेन वयसा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो....पे०....। (४)

"समणो खलु, भो, गोतमो अकामकानं माता-पितूनं अस्सुमुखानं रुदन्तानं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो....पे०....। (५)

"समणो खलु, भो, गोतमो अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो ब्रह्मवण्णी ब्रह्मवच्छसी अखुद्दावकासो दस्सनाय....पे०....। (६)

"समणो खलु, भो, गोतमो सीलवा अरियसीली कुसलसीली कुसलसीलेन समन्नागतो ....पे०....। (७)

"समणो खलु, भो, गोतमो कल्याणवाचो कल्याणवाक्करणो पोरिया वाचाय समन्नागतो विस्सट्ठाय अनेळगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया....पे०....। (८)

"समणो खलु, भो, गोतमो बहूनं आचरियपाचरियो....पे०....। (९)

"समणो खलु, भो, गोतमो खीणकामरागो विगतचापल्लो....पे०...। (१०)

"समणो खलु, भो, गोतमो कम्मवादी किरियवादी अपापपुरेक्खारो ब्रह्मञ्ञाय पजाय ....पे०....। (११)

"समणो खलु, भो, गोतमो उच्चा कुला पब्बजितो असम्भिन्नखत्तियकुला ....पे०....। (१२)

पीढ़ी तक शुद्ध है। उस पर किसी तरह का हीनजाति से सम्बद्ध कोई आरोप नहीं है। क्योंकि श्रमण गौतम उभय पक्ष से सातवीं पीढ़ी तक....इस कारण भी हमारा ही ....।

(२) "श्रमण गौतम अपने बड़े-बड़े ख्यातिप्राप्त नाते-रिश्तेदारों को छोड़कर प्रव्रजित हुआ है....।

(३) ".... अपनी बहुत बड़ी चल-अचल सम्पत्ति, बहुत से सोने-चान्दी का त्याग कर ....।

(४) "....युवावस्था में ही जब उसके बाल काले थे, पूर्ण यौवन में, प्रारम्भिक अवस्था में ही....।

(५) ".... रोते हुए माता-पिताओं को छोड़कर बाल-दाढ़ी मुँडवा कर काषाय वस्त्र पहन कर घर से बेघर हो प्रव्रजित हुआ है....।

(६) ".... सुन्दर है, दर्शनीय है, परमरूपसौन्दर्ययुक्त है, ब्रह्मवक्ता, ब्रह्मतेजःसम्पन्न, प्रत्येक समय सब से मिलने वाला है ....।

(७) ".... शीलवान् है, आर्यशील से युक्त है, वंशपरम्परागत शील से सम्पन्न है ....।

(८) ".... कल्याणमय वाणी बोलने वाला, पूछने पर हित एवं मित बोलने वाला, प्रवाहित एवं सार्थक भाषा बोलने वाला है।

(९) ".... बहुतों का आचार्य-प्राचार्य है ....।

(१०) ".... क्षीणकामराग एवं इन्द्रियों की चञ्चलता से रहित है ....।

"समणो खलु, भो, गोतमो अड्ढा कुला पब्बजितो महद्धना महाभोगा....पे०....। (१३)

"समणं खलु, भो, गोतमं तिरोरट्ठा तिरोजनपदा पञ्हं पुच्छितुं [B.109, R.116] आगच्छन्ति ....पे०....। (१४)

"समणं खलु, भो, गोतमं अनेकानि देवतासहस्सानि पाणेहि सरणं गतानि .... पे०....। (१५)

"समणं, खलु, भो, गोतमं एवंकल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा, अरहं, सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो, लोकविदू, अनुत्तरो, पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो, भगवा' ति....पे०....। (१६)

"समणो खलु, भो, गोतमो द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खणेहि समन्नागतो .... पे०....(१७)

"समणो खलु, भो, गोतमो एहिस्वागतवादी सखिलो सम्मोदको अब्भा-[N.101] कुटिको उत्तानमुखो पुब्बभासी....पे०....। (१८)

"समणो खलु, भो, गोतमो चतुन्नं परिसानं सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो ....पे०....। (१९)

"समणो खलु, भो, गोतमो बहू देवा च मनुस्सा च अभिप्पसन्ना....पे०....। (२०)

"समणो खलु, भो, गोतमो यस्मिं गामे वा निगमे वा पटिवसति, न तस्मिं गामे वा निगमे वा अमनुस्सा मनुस्से विहेठेन्ति....पे०....। (२१)

"समणो खलु, भो, गोतमो सङ्घी गणी गणाचरियो पुथुतित्थकरानं अग्गमक्खायति।

---

(११) ".... कर्मवादी, क्रियावादी, ब्रह्मज्ञ, प्रजा को धर्ममय (अपाप) बातों को बताने वाला है....।

(१२) ".... उच्च कुल से और किसी भी तरह से अहीन क्षत्रियकुल से प्रव्रजित हुआ है ....।

(१३) ".... ऐसे आढ्यकुल से प्रव्रजित हुआ है जिसके पास अतुल सम्पत्ति है एवं जो ऐश्वर्य से सम्पन्न है....।

(१४) ".... के पास सभी राष्ट्रों से सभी जनपदों से नानाप्रकार के जिज्ञासु अपनी धर्मविषयक जिज्ञासाएँ शान्त करने के लिये आते है....।

(१५) ".... के पास हजारों हजार नानाविध देवता जीवनपर्यन्त शरण में आते है ....।

(१६) ".... का लोक में ऐसा कीर्तिशब्द (यश) फैला हुआ है—'वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध बुद्ध भगवान् ....।'

(१७) ".... बत्तीस महापुरुषलक्षणों से युक्त है....।

(१८) ".... अपने पास आये लोगों को पहले 'आओ, भाई!' कह कर प्रसन्नता एवं हर्ष के साथ बिना कोई नाक-भौं सिकोड़े स्वागत करने वाला है ....।

(१९) "....चारों परिषदों (वर्गों) द्वारा सत्कृत, गुरुकृत, मानित, पूजित है ....।

(२०) "....पर बहुत से देवता और मनुष्य उसके सद्व्यवहार के कारण प्रसन्न है ....।

(२१) "श्रमण गौतम धर्मोपदेश के लिये जिस ग्राम या निगम में ठहरते हैं उस ग्राम और निगम से देवतागण भी ईर्ष्या करने लगता है....।

(२२) ".... के साथ विशाल (बहुसंख्यक) शिष्यसङ्घ रहता है अतः वह मण्डलेश्वर है, गणाचार्य

यथा खो पन, भो, एतेसं समणब्राह्मणानं यथा वा तथा वा यसो समुदागच्छति, न हेवं समणस्स गोतमस्स यसो समुदागतो। अथ खो अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय समणस्स गोतमस्स यसो समुदागतो....पे०....। (२२)

"समणं खलु, भो, गोतमं राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो सपुत्तो सभरियो सपरिसो सामच्चो पाणेहि सरणं गतो....पे०....। (२३)

[B.110] "समणं खलु, भो, गोतमं राजा पसेनदि कोसलो सपुत्तो सभरियो सपरिसो सामच्चो पाणेहि सरणं गतो....पे०....। (२४)

"समणं खलु, भो, गोतमो ब्राह्मणो पोक्खरसाति सपुत्तो सभरियो सपरिसो सामच्चो पाणेहि सरणं गतो....पे०....। (२५)

"समणो खलु, भो, गोतमो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो....पे०....। (२६)

"समणो खलु, भो, गोतमो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स सक्कतो....पे०....। (२७)

"समणो खलु, भो, गोतमो ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स सक्कतो....पे०....। (२८)

[R.117] "समणो खलु, भो, गोतमो चम्पं अनुप्पत्तो, चम्पायं विहरति गग्गराय पोक्खरणिया तीरे। ये खो पन, भो केचि समणा वा ब्राह्मणा वा अम्हाकं गामखेत्तं आगच्छन्ति अतिथी नो ते होन्ति। अतिथी खो पनम्हेहि सक्कातब्बा गरुकातब्बा मानेतब्बा पूजेतब्बा अपचेतब्बा। यं पि, भो, समणो गोतमो चम्पं अनुप्पत्तो चम्पायं विहरति गग्गराय पोक्खरणिया तीरे, अतिथिम्हाकं समणो गोतमो; अतिथि खो पनम्हेहि सक्कातब्बो गरुकातब्बो मानेतब्बो पूजेतब्बो अपचेतब्बो। इमिनापङ्गेन न अरहति सो भवं गोतमो अम्हाकं दस्सनाय उपसङ्कमितुं, अथ खो मयमेव अरहाम तं भवन्तं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। (२९)

है, साधारण दार्शनिकों से बहुत ऊँची स्थिति रखता है। उस का यश साधारण लौकिक कारणों से नहीं, अपितु विद्याचरण के लोकोत्तर अभ्यास के कारण फैला है ....।

(२३) "राजा मागध सेनानायक अपने पुत्र–पुत्री परिषद् अमात्य सहित प्राण रहने तक (जीवनपर्यन्त) इस श्रमण गौतम की शरण में आया हुआ है....।

(२४) "राजा प्रसेनजित् कौसल अपने पुत्र–पुत्री .... शरण में आया हुआ है ....।

(२५) "ब्राह्मण पौष्करसाति अपने पुत्र–पत्नी .... शरण में आया हुआ है ....।

(२६) "श्रमण गौतम का राजा मागध बिम्बिसार सत्कार मान, पूजा एवं आवभगत करते हैं....।

(२७) " .... का राजा प्रसेनजित कौसल सत्कार .... करते हैं ....।

(२८) " .... का ब्राह्मण पौष्करसाति सत्कार .... करते हैं ....।

(२९) "क्योंकि श्रमण गौतम आज चम्पा में पधारे हैं, चम्पा में गग्गरा पुष्करिणी के तट पर साधना एवं धर्मोपदेश हेतु ठहरे हुए हैं। कोई भी श्रमण ब्राह्मण जब हमारे ग्रामक्षेत्र की सीमा में आ जाते हैं तो वे हमारे अतिथि हो जाते हैं। अतिथियों का तो हमें सत्कार–मान–पूजा–गौरव–अपचय करना ही चाहिये। इस कारण भी उन पूज्य गौतम का हमसे मिलने के लिये हमारे यहाँ आना अनुचित है, अपितु हमें ही दर्शनहेतु उनके पास जाना चाहिये।

"एत्तके खो अहं, भो, तस्स भोतो गोतमस्स वण्णे परियापुणामि, नो च खो सो भवं गोतमो एत्तकवण्णो। अपरिमाणवण्णो हि सो भवं गोतमो" ति।

६. एवं वुत्ते, ते ब्राह्मणा सोणदण्डं ब्राह्मणं एतदवोचुं—"यथा खो भवं सोणदण्डो समणस्स गोतमस्स वण्णे भासति, इतो चे पि सो भवं गोतमो योजनसते विहरति [N.102] अलमेव सद्धेन कुलपुत्तेन दस्सनाय उपसङ्कमितुं अपि पुटोसेना ति। तेन हि, भो, सब्बेव मयं समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सामा" ति।

२. सोणदण्डो भगवन्तं उपसङ्कमि

७. अथ खो सोणदण्डो ब्राह्मणो महता ब्राह्मणगणेन सद्धिं येन गग्गरा [B.111] पोक्खरणी तेनुपसङ्कमि। अथ खो सोणदण्डस्स ब्राह्मणस्स तिरोवनसण्डगतस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—"अहं चेव खो पन समणं गोतमं पञ्हं पुच्छेय्यं; तत्र मे मं समणो गोतमो एवं वदेय्य—'न खो एस, ब्राह्मण, पञ्हो एवं पुच्छितब्बो, एवं नामेस, [R.118] ब्राह्मण, पञ्हो पुच्छितब्बो' ति, तेन मं अयं परिसा परिभवेय्य—'बालो सोणदण्डो ब्राह्मणो अब्यत्तो, नासक्खि समणं गोतमं योनिसो पञ्हं पुच्छितुं' ति। यं खो पनायं परिसा परिभवेय्य, यसो पि तस्स हायेथ। यस्स खो पन यसो हायेथ, भोगा पि तस्स हायेय्युं। यसोलद्धा खो पन अम्हाकं भोगा।

"ममं चेव खो पन समणो गोतमो पञ्हं पुच्छेय्य, तस्स चाहं पञ्हस्स वेय्याकरणेन चित्तं न आराधेय्यं; तत्र चे मं समणो गोतमो एवं वदेय्य—'न खो एस, ब्राह्मण, पञ्हो एवं ब्याकातब्बो, एवं नामेस, ब्राह्मण, पञ्हो ब्याकातब्बो' ति, तेन म अयं परिसा परिभवेय्य—'बालो सोणदण्डो ब्राह्मणो अब्यत्तो, नासक्खि समणस्स गोतमस्स पञ्हस्स वेय्याकरणेन

"मैंने तो उन गौतम का सम्मान करने के लिये यहाँ कुछ ही बातों का निर्देश किया है, परन्तु वस्तुतः ये इतनी ही नहीं हैं, अपितु अपरिमित हैं; क्यों कि श्रमण गौतम अपरिमित गुणों वाले हैं।

६. सोणदण्ड ब्राह्मण द्वारा ऐसा कहे जाने पर वे ब्राह्मण सोणदण्ड को यों बोले—"जैसे आप सोणदण्ड श्रमण गौतम के जिन गुणों का वर्णन कर रहे हैं, इतनों से सम्पन्न भी श्रमण गौतम यदि धर्मोपदेश हेतु, चम्पा की तो बात क्या, चम्पा से सौ योजन दूर भी विहरण कर रहे हो तो वहाँ भी श्रद्धालु कुलपुत्र को कुछ पाथेय *(पुटोस)* साथ लेकर दर्शनहेतु जाना ही चाहिये। तो श्रीमन्! अब हम सब भी उन पूज्य गौतम के दर्शनहेतु आप के साथ चलेंगे।"

२. सोणदण्ड का भगवान् के पास जाना

७. तब सोणदण्ड ब्राह्मण उस विशाल ब्राह्मणसमूह के साथ जहाँ गग्गरा पुष्करिणी तट था, उस तरफ चल पड़ा। वह सोणदण्ड ब्राह्मण जब उस वनषण्ड के बीच पहुँचा तो विचार होने लगा—"यदि मैं ही श्रमण गौतम से पहले कोई प्रश्न करूँ तो श्रमण गौतम कह बैठें कि—'ब्राह्मण! यह प्रश्न ऐसे नहीं पूछना चाहिये, अपितु ऐसे पूछा जाना चाहिये।' तब सामने बैठी परिषद् मेरा तिरस्कार कर बैठेगी कि—सोणदण्ड ब्राह्मण अज्ञ (बाल) है, अव्यक्त (मूर्ख) है। यह श्रमण गौतम (जैसे विद्वान्) से समीचीनतया प्रश्न भी नहीं पूछ पाता। जिसका यह परिषद् तिरस्कार करेगी उसका यश क्षीण ही होगा। जिसका यश क्षीण होगा उससे उसके ऐश्वर्य भोग पर भी प्रभाव पड़ेगा; क्योंकि हमें यश से ही भोग उपलब्ध होते हैं।

"अथवा— फिर श्रमण गौतम ही मुझ से प्रश्न पूछें, उस प्रश्न के उत्तर से यदि श्रमण गौतम का

चित्तं आराधेतुं' ति। यं खो पनायं परिसा परिभवेय्य, यसो पि तस्स हायेथ। यस्स खो पन यसो हायेथ, भोगा पि तस्स हायेय्युं। यसोलद्धा खो पन अम्हाकं भोगा।

"अहं चेव खो पन एवं समीपगतो समानो अदिस्वा व समणं गोतमं निवत्तेय्यं, तेन मं अयं परिसा परिभवेय्य—'बालो सोणदण्डो ब्राह्मणो अब्यत्तो मानथद्धो भीतो च, नो विसहति समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं, कथं हि नाम एवं समीपगतो समानो अदिस्वा समणं गोतमं निवत्तिस्सती' ति! यं खो पनायं परिसा परिभवेय्य, यसो पि तस्स हायेथ। यस्स खो पन यसो हायेथ, भोगा पि तस्स हायेय्युं। यसोलद्धा खो पनम्हाकं भोगा" ति।

८. अथ खो सोणदण्डो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता [B.112] सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। चम्पेय्यका पि खो ब्राह्मणगहपतिका अप्पेकच्चे भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु; सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे [N.103] येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे नामगोत्तं सावेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे तुण्हीभूता एकमन्तं निसीदिंसु।

९. तत्र पि सुदं सोणदण्डो ब्राह्मणो एतदेव बहुलमनुवितक्केन्तो निसिन्नो होति—"अहं चेव खो पन समणं गोतमं पञ्हं पुच्छेय्यं; तत्र चे मं समणो गोतमो एवं वदेय्य—'न खो एस, ब्राह्मण, पञ्हो एवं पुच्छितब्बो,एवं नामेस, ब्राह्मण, पञ्हो पुच्छितब्बो' ति, तेन मं अयं परिसा परिभवेय्य—'बालो सोणदण्डो ब्राह्मणो अब्यत्तो, नासक्खि समणं गोतमं योनिसो पञ्हं पुच्छितुं' ति। यं खो पनायं परिसा परिभवेय्य, यसो पि तस्स हायेथ। यस्स खो पन यसो हायेथ, भोगा पि तस्स हायेय्युं। यसोलद्धा खो पनम्हाकं भोगा। ममं चेव खो पन समणो गोतमो पञ्हं पुच्छेय्य, तस्स चाहं पञ्हस्स वेय्याकरणेन चित्तं न आराधेय्यं; तत्र चे मं समणो

चित्त प्रसन्न न हो तो वे श्रमण गौतम मुझसे यों कहे— 'ब्राह्मण! इस प्रश्न का उत्तर यों नहीं यों देना चाहिये।' तो यह सामने बैठी जन-परिषद् मेरा तिरस्कार....यश से ही भोग उपलब्ध होते हैं।

"अथवा—मैं ही उनके पास जाकर उनके सामने न पड़ूँ और उनसे विना प्रश्नोत्तर किये लौट आऊँ तो भी सामने बैठी जनता मेरा तिरस्कार ही करेगी कि यह सोणदण्ड ब्राह्मण श्रमण गौतम से अपनी मूर्खता और अभिमान को छिपाने हेतु इतना डर गया कि वह श्रमण गौतम के सामने आ कर अपने में प्रश्नोत्तर करने का साहस न जुटा सका। अन्यथा यह पास जा कर उनसे कुछ प्रश्नोत्तर (संवाद) तो करता! इस तरह इस परिषद् के तिरस्कार से मेरा यश क्षीण होगा। यश क्षीण होने से ऐश्वर्य में बाधा पड़ेगी; क्योंकि भोग तो यश से ही उपलब्ध होते हैं।"

८. तब सोणदण्ड ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर उनसे उनका कुशल-मङ्गल पूछा। पूछकर एक और बैठ गया। चम्पावासी ब्राह्मणों में भी कुछ भगवान् को अभिवादन कर के ही एक तरफ बैठ गये। कुछ ने भगवान् से कुशल-मङ्गल भी पूछा, पूछकर एक और बैठ गये। और उनमें से कुछ दूर से ही, जिधर भगवान् विराजमान थे उधर, प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। कुछ ने वहाँ अपना नाम-गोत्र बताकर बैठने का उपक्रम किया तो कुछ बिना बोले चुपचाप एक तरफ बैठ गये।

९. वहाँ भी बैठे सोणदण्ड के मन में वही (पूर्वोक्त) विचार उठने लगे— "मैं यदि श्रमण गौतम से कोई प्रश्न....पूर्ववत्....! यश तो भोग से ही उपलब्ध होता है। क्या ही अच्छा होता कि श्रमण गौतम मेरे पढ़े

गोतमो एवं वदेय्य—'न खो एस, ब्राह्मण, पञ्हो एवं ब्याकातब्बो, एवं नामेस, ब्राह्मण, पञ्हो ब्याकातब्बो' ति, तेन मं अयं परिसा परिभवेय्य—'बालो सोणदण्डो ब्राह्मणो अब्यत्तो, नासक्खि समणस्स गोतमस्स पञ्हस्स वेय्याकरणेन चित्तं आराधेतुं' ति। यं खो पनायं परिसा परिभवेय्य, यसो पि तस्स हायेथ। यस्स खो पन यसो हायेथ, भोगा पि तस्स हायेय्युं। यसोलद्धा खो पनम्हाकं भोगा। अहो वत मं समणो गोतमो सके आचरियके तेविज्जके पञ्हं पुच्छेय्य! अद्धा वतस्साहं चित्तं आराधेय्यं पञ्हस्स वेय्याकरणेना'' ति!!

३. ब्राह्मणपञ्ञापकाङ्गानि

१०. अथ खो भगवतो सोणदण्डस्स ब्राह्मणस्स चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय एतदहोसि—''विहञ्ञति खो अयं सोणदण्डो ब्राह्मणो सकेन चित्तेन। यन्नूनाहं सोणदण्डं ब्राह्मणं सके आचरियके तेविज्जके पञ्हं पुच्छेय्यं'' ति। अथ खो भगवा सोणदण्डं [B.113] ब्राह्मणं एतदवोच—''कतिहि पन, ब्राह्मण, अङ्गेहि समन्नागतं ब्राह्मण ब्राह्मणं पञ्ञपेन्ति; ब्राह्मणोस्मी ति च वदमानो सम्मा वदेय्य, न च पन मुसावादं आपज्जेय्या'' ति?

११. अथ खो सोणदण्डस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि—''यं वत नो अहोसि [R.120] इच्छितं यं आकङ्खितं यं अधिप्पेतं यं अभिपत्थितं—'अहो वत मं समणो गोतमो सके आचरियके तेविज्जके पञ्हं पुच्छेय्य, अद्धा वतस्साहं चित्तं आराधेय्यं पञ्हस्स वेय्याकरणेना' ति, तत्र मं समणो गोतमो सके आचरियके तेविज्जके पञ्हं पुच्छति अद्धा वतस्साहं चित्तं आराधेस्सामि पञ्हस्स वेय्याकरणेना'' ति।

१२. अथ खो सोणदण्डो ब्राह्मणो अब्भुन्नामेत्वा कायं अनुविलोकेत्वा परिसं [N.104] भगवन्तं एतदवोच—''पञ्चहि, भो गोतम, अङ्गेहि समन्नागतं ब्राह्मणा ब्राह्मणं पञ्ञपेन्ति; ब्राह्मणोस्मी ति च वदमानो सम्मा वदेय्य, न च पन मुसावादं आपज्जेय्य। कतमेहि पञ्चहि? (१) इध, भो गोतम, ब्राह्मणो उभतो सुजातो होति मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको

मेरे तीनों वेदों से ही कोई प्रश्न पूछते। तब तो मैं उस का ऐसा उत्तर दूँगा कि उनका चित्त प्रसन्न हो उठेगा और वे मेरे उत्तर से सहमत हो जायँगें।''

३. ब्राह्मणत्वप्रज्ञापक अङ्ग (धर्म)

१०. तब सोणदण्ड ब्राह्मण के चित्त में उस समय हो रहे सङ्कल्प-विकल्पों को स्वचित्त से जानकर भगवान् को यह विचार हुआ– ''यह सोणदण्ड तो अपने चित्त के सङ्कल्प-विकल्पों से ही मारा जा रहा है ! तो क्यों न मैं इसके त्रैविद्यिक अध्ययन से ही कुछ प्रश्न पूछूँ।'' तब भगवान् ने सोणदण्ड ब्राह्मण से यों पूछा–''ब्राह्मण! कितने अङ्गों (धर्मों) से समन्वागत पुरुष को ब्राह्मण लोग 'ब्राह्मण' कहते हैं? कब वह अपने आप को ब्राह्मण बताता हुआ सत्य कहता है, असत्य बोलने वाला नहीं होता?''

११. तब सोणदण्ड ब्राह्मण के मन में यह हुआ– ''अरे! यह तो श्रमण गौतम ने मेरा मनोवाञ्छित प्रश्न ही पूछ लिया। यही तो मैं चाहता था कि श्रमण गौतम मेरे त्रैविद्यिक अध्ययन में से ही कोई प्रश्न पूछें। अब मैं इनको अपने उत्तर से अवश्य सन्तुष्ट करूँगा।''

१२. तब सोणदण्ड ब्राह्मण ने अपना शरीर ऊँचा उठा कर परिषद् की ओर देख कर भगवान् से यों कहा–''भो गौतम! ब्राह्मण लोग पाँच अङ्गों से समन्वागत पुरुष को 'ब्राह्मण' कहते हैं। किन पाँच अङ्गों से? (१) कोई पुरुष (माता और पिता) दोनों पक्षों से शुद्धतया उत्पन्न हो...पूर्ववत्....। (२) वेदाध्यायी

याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन; (२) अज्झायको होति मन्तधरो, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको,वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो; (३) अभिरूपो होति दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो, ब्रह्मवण्णी ब्रह्मवच्छसी अखुद्दावकासो दस्सनाय; (४) सीलवा होति वुद्धसीली वुद्धसीलेन समन्नागतो; (५) पण्डितो च होति मेधावी पठमो वा दुतियो वा सुजं पग्गण्हन्तानं। इमेहि खो, भो गोतम, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतं ब्राह्मणा ब्राह्मणं पञ्ञपेन्ति; ब्राह्मणोस्मी ति च वदमानो सम्मा वदेय्य, न च पन मुसावादं आपज्जेय्या'' ति।

''इमेसं पन, ब्राह्मण, पञ्चन्नं अङ्गानं सक्का एकं अङ्गं ठपयित्वा चतूहङ्गेहि समन्नागतं ब्राह्मणा ब्राह्मणं पञ्ञपेतुं; ब्राह्मणोस्मी ति च वदमानो सम्मा वदेय्य, न च पन मुसावादं [B.114] आपज्जेय्या'' ति? ''सक्का, भो गोतम। इमेसं हि, भो गोतम, पञ्चन्नं अङ्गानं वण्णं [R.121] ठपयाम। किं हि वण्णो करिस्सति? यतो खो, भो गोतम, ब्राह्मणो उभतो सुजातो होति मातितो च पितितो च संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन; अज्झायको च होति मन्तधरो च, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको, वेय्याकरणो, लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो; सीलवा च होति वुद्धसीली वुद्धसीलेन समन्नागतो; पण्डितो च होति मेधावी पठमो वा दुतियो वा सुजं पग्गण्हन्तानं—इमेहि खो, भो गोतम, चतूहङ्गेहि समन्ननागतं ब्राह्मणा ब्राह्मणं पञ्ञपेन्ति; ब्राह्मणोस्मी ति च वदमानो सम्मा वदेय्य, न च पन मुसावादं आपज्जेय्या'' ति।

१३.''इमेसं पन, ब्राह्मण, चतुन्नं अङ्गानं सक्का एकं अङ्गं ठपयित्वा तीहङ्गेहि समन्नागतं ब्राह्मणो ब्राह्मणं पञ्ञपेतुं; ब्राह्मणोस्मी ति च वदमानो सम्मा वदेय्य, न च पन मुसावादं

(वेदवाणी) हो, मन्त्रधर (मन्त्रज्ञ) एवं तीनों वेदों में पारङ्गत हो...पूर्ववत्। (३)अभिरूप हो, दर्शनीय हो, दूसरों को देखने में अच्छा लगे, श्रेष्ठ गौर वर्ण से युक्त हो, ब्रह्मवादी....हो। (४) शीलवान् हो, उस के सभी शील बढ़े हुए हों, (५) पण्डित हो, यज्ञादि कराने की कुशलता में सुवा पकड़े हुए आचार्यों में प्रथम या द्वितीय स्थान रखता हो। इन पाँच अङ्गों से सम्पन्न पुरुष को भी ब्राह्मण लोग 'ब्राह्मण' कहते हैं।

''ब्राह्मण! यदि ब्राह्मण इन पाँच अङ्गों में से किसी एक अङ्ग से हीन हो तो भी क्या उसे तुम 'ब्राह्मण' ही कहोगे? और वह अपने आप को 'ब्राह्मण' कहता हुआ सत्यकथन ही करेगा उसे असत्य-भाषण का दोष नहीं लगेगा?''

''कहा जा सकता है, भो गौतम! हम इन पाँच अङ्गों में से 'वर्ण' को छोड़ भी दें तो हमारा 'वर्ण' क्या बिगाड़ेगा! यदि भो गौतम! वह ब्राह्मण मातृकुल और पितृकुल—दोनों तरफ से शुद्ध है, हीन जाति का उस पर कोई आरोप नहीं है; वह स्वाध्यायी है, मन्त्रज्ञ है...., शीलवान् है; या फिर पण्डित है, यज्ञ कराने में अन्य याज्ञिकों से मेधावी है तो वह इन चार अङ्गों से युक्त होता हुआ वह स्वयं को 'ब्राह्मण' कह सकता है, यों कहता हुआ वह सत्य ही कहता है, उस पर असत्यभाषण का आरोप (दोष) नहीं लगाया जा सकता।''

१३, ''क्या ब्राह्मण! यदि कोई इन अङ्गों में से भी किसी एक अङ्ग से और हीन हो तो क्या तुम उसे 'ब्राह्मण' ही कहोगे?....'' ''उसे भी ब्राह्मण कहा जा सकता है, भो गौतम! इन चार अङ्गों में से भी हम 'मन्त्र' छोड़ सकते हैं। उसका मन्त्र (ज्ञान) क्या करेगा। यदि वह उभयतः सुजात है; शीलवान् है; यज्ञ-

आपज्जेय्या'' ति? ''सक्का, भो गोतम। इमेसं हि, भो गोतम, चतुन्नं अङ्गानं मन्ते ठपयाम। किं हि मन्ता करिस्सन्ति? यतो खो, भो गोतम, ब्राह्मणो उभतो सुजातो होति मातितो च [N.105] पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन; सीलवा च होति वुद्धसीली वुद्धसीलेन समन्नागतो; पण्डितो च होति मेधावी पठमो वा दुतियो वा सुजं पग्गण्हन्तानं—इमेहि खो, भो गोतम, तीहङ्गेहि समन्नागतं ब्राह्मणा ब्राह्मणं पञ्ञपेन्ति; ब्राह्मणोस्मी ति च वदमानो सम्मा वदेय्य, न च पन मुसावादं आपज्जेय्या'' ति।

''इमेसं पन, ब्राह्मण, तिण्णं अङ्गानं सक्का एकं अङ्गं ठपयित्वा द्वीहङ्गेहि समन्नागतं ब्राह्मणा ब्राह्मणं पञ्ञपेतुं; ब्राह्मणोस्मी ति च वदमानो सम्मा वदेय्य, न च पन मुसावादं आपज्जेय्या'' ति? ''सक्का, भो गोतम। इमेसं हि, भो गोतम, तिण्णं अङ्गानं जातिं ठपयाम। किं हि जाति करिस्सति? यतो खो, भो गोतम, ब्राह्मणो सीलवा होति वुद्धसीली [B.115] वुद्धसीलेन समन्नागतो; पण्डितो च होति मेधावी पठमो वा दुतियो वा सुजं पग्गण्हन्तानं—इमेहि खो, भो गोतम, द्वीहङ्गेहि समन्नागतं ब्राह्मणा ब्राह्मणं पञ्ञपेन्ति; ब्राह्मणोस्मी ति च वदमानो सम्मा वदेय्य, न च पन मुसावादं आपज्जेय्या'' ति।

१४. एवं वुत्ते, ते ब्राह्मणा सोणदण्डं ब्राह्मणं एतदवोचुं—''मा भवं सोणदण्डो [R.122] एवं अवच। मा भवं सोणदण्डो एवं अवच। अपवदतेव भवं सोणदण्डो वण्णं, अपवदति मन्ते, अपवदति जातिं एकंसेन। भवं सोणदण्डो समणस्सेव गोतमस्स वादं अनुपक्खन्दती''ति।

१५. अथ खो भगवा ते ब्राह्मणे एतदवोच—''सचे खो तुम्हाकं ब्राह्मणानं एवं होति—'अप्पस्सुतो च सोणदण्डो ब्राह्मणो, अकल्याणवाक्करणो च सोणदण्डो ब्राह्मणो, दुप्पञ्ञो च सोणदण्डो ब्राह्मणो, न च पहोति सोणदण्डो ब्राह्मणो समणेन गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचने पटिमन्तेतुं' ति, तिट्ठतु सोणदण्डो ब्राह्मणो, तुम्हे मया सद्धिं मन्तव्हो अस्मिं वचनं। सचे पन

कर्म में दक्ष है? इस स्थिति में भी वह अपने आप को 'ब्राह्मण' बताता है तो वह सत्य ही बोलता है, उसे असत्यभाषी कहकर दोषी नहीं ठहराया जा सकता।''

''ब्राह्मण! यदि कोई इन तीन अङ्गों से भी किसी एक अङ्ग से और हीन हो तो क्या तब भी तुम उसे 'ब्राह्मण' ही कहोगे....?'' ''हाँ, तो गौतम! वह उतने पर भी 'ब्राह्मण' कहा जा सकता है...। हम इन तीन अङ्गों में से भी जाति को छोड़ देंगे। 'जाति' उस की क्या हानि करेगी, यदि वह अन्यथा शीलवान् है; और यज्ञकर्म में दक्ष है, पण्डित है ! इन दो अङ्गों से युक्त पुरुष भी अपने आपको 'ब्राह्मण' कहलाने का अधिकारी है। वह अपने आप को 'ब्राह्मण' कहता हुआ दोषी नहीं है।''

१४. ऐसा कहते हुए वे परिषद् में बैठे अन्य ब्राह्मण उस सोणदण्ड ब्राह्मण को, उसका विरोध करते हुए यों बोले– ''अरे आप सोणदण्ड ऐसा न कहें! आप सोणदण्ड ऐसा न कहें!! यों तो आप सोणदण्ड वर्ण का....मन्त्र का एवं जाति का प्रत्याख्यान कर रहे हैं। ऐसा करते हुए तो आप श्रमण गौतम की ही बात का समर्थन कर रहे हैं और उन्हीं का मत स्वीकार कर रहे हैं।''

१५. तब भगवान् ने उन ब्राह्मणों से कहा– ''यदि ब्राह्मणों! आप लोगों को यह हो रहा हो कि सोणदण्ड अल्पश्रुत (गुरुमुख से विद्याओं का अल्पश्रवण किया हुआ) है, अपने पक्ष को सही ढंग से प्रस्तुत नहीं कर पा रहा है या यह दुष्प्रज्ञ है, या यह इस विषय पर श्रमण गौतम से वाद करने में समर्थ नहीं है तो इस सोणदण्ड की बात छोड़ो, पहले तुम (में से कोई) ही मुझसे इस विषय पर वाद कर लें। या फिर

तुम्हाकं ब्राह्मणानं एवं होति—'बहुस्सुतो च सोणदण्डो ब्राह्मणो, कल्याणवाक्करणो च सोणदण्डो ब्राह्मणो, पण्डितो च सोणदण्डो ब्राह्मणो, पहोति च सोणदण्डो ब्राह्मणो समणेन गोतमेन सद्धिं अस्मिं वचनं पटिमन्तेतुं' ति, तिट्ठथ तुम्हे, सोणदण्डो ब्राह्मणो मया सद्धिं पटिमन्तेतू" ति।

१६. एवं वुत्ते, सोणदण्डो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"तिट्ठतु भवं गोतमो, तुण्ही भवं गोतमो होतु। अहमेव तेसं सहधम्मेन पटिवचनं करिस्सामी" ति। अथ खो सोणदण्डो [N.106] ब्राह्मणो ते ब्राह्मणे एतदवोच—"मा भवन्तो एवं अवचुत्थ, मा भवन्तो एवं अवचुत्थ [R.123] —'अपवदतेव भवं सोणदण्डो वण्णं, अपवदति मन्ते, अपवदति जातिं एकंसेन। भवं सोणदण्डो समणस्सेव गोतमस्स वादं अनुपक्खन्दती' ति। नाहं, भो, अपवदामि वण्णं मन्ते वा जातिं वा" ति।

[B.116] १७. तेन खो पन समयेन सोणदण्डस्स ब्राह्मणस्स भागिनेय्यो अङ्गको नाम माणवको तस्सं परिसायं निसिन्नो होति। अथ खो सोणदण्डो ब्राह्मणो ते ब्राह्मणे एतदवोच—"पस्सन्ति नो भोन्तो इमं अङ्गकं माणवकं अम्हाकं भागिनेय्यं" ति? "एवं, भो"। "अङ्गको खो, भो, माणवको अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो ब्रह्मवण्णी ब्रह्मवच्छसी अखुद्दावकासो दस्सनाय, नास्स इमिस्सं परिसायं समसमो अत्थि वण्णेन ठपेत्वा समणं गोतमं। अङ्गको खो माणवको अज्झायको मन्तधरो तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं पदको वेय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो। अहमस्स मन्ते वाचेता। अङ्गको खो माणवको उभतो सुजातो मातितो च पितितो च संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो अजातिवादेन। अहमस्स मातापितरो जानामि। अङ्गको खो माणवको पाणं पि हनेय्य, अदिन्नं पि आदियेय्य, परदारं पि गच्छेय्य, मुसावादं पि भणेय्य, मज्जं पि पिवेय्य। एत्थ दानि, भो, किं वण्णो करिस्सति, किं

यदि तुम यह समझते हो कि 'यह सोणदण्ड बहुश्रुत है, शुभवक्ता है, पण्डित है और यह मुझ से इस विषय पर बात करने में समर्थ है तो आप लोग चुप रहें, इस सोणदण्ड ब्राह्मण को ही मुझ से संवाद करने दें।"

१६. भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर सोणदण्ड ब्राह्मण बोला— "आप श्रमण गौतम ठहरें, आप चुप रहें। मैं ही इन लोगों का, इनके धर्म (शास्त्र) के अनुसार, उत्तर दे लूँगा।" तब सोणदण्ड ब्राह्मण ने उन ब्राह्मणों से कहा—"ब्राह्मणो! आप लोग ऐसा न कहे कि 'मैं वर्ण का प्रत्याख्यान....मन्त्र (वेद) ज्ञान का.....जाति (जन्म) का प्रत्याख्यान कर रहा हूँ'; मैं वर्ण मन्त्र (वेद) या जाति (जन्म) का प्रत्याख्यान नहीं कर रहा हूँ। (मैं तो वास्तविकता बता रहा हूँ।)

१७. उस समय सोणदण्ड ब्राह्मण का (पारिवारिक सम्बन्ध से) भगिनीपुत्र (भान्जा) अङ्गक नाम का माणवक भी उस परिषद् में बैठा था। तब सोणदण्ड ब्राह्मण ने (अपने भानजे) अङ्गक को इङ्गित कर कहा—"आप ब्राह्मण लोग हमारे इस भागिनेय को देख रहे हैं ना!" 'हाँ, श्रीमन्"। "तो यह अङ्गक माणवक रूपवान् है, दर्शनीय है, लुभावना (प्रासादिक) है, वर्ण की पुष्कलता (आधिक्य) से युक्त है, ब्रह्मा की तरह सुन्दर वर्ण वाला है। इस की सुन्दरता में कहीं से भी कोई कमी नहीं है। *(अखुद्दावकासो)*। और इस परिषद् में बैठे हुओं में से, श्रमण गौतम को छोड़ कर, कोई भी इससे बढ़ कर सुन्दर नहीं है। यह अङ्गक माणवक वेदों का सतत अध्येता, मन्त्रों का जाननेवाला,....महापुरुष-लक्षण शास्त्र का ज्ञाता है। मैंने ही इसको वेद (मन्त्र) पढ़ाये हैं। यह अङ्गक माणवक दोनों (मातृ–पितृ कुलों) से सुजात है.... इस पर

मन्ता, किं जाति? यतो खो ब्राह्मणो सीलवा च होति वुद्धसीली वुद्धसीलेन समन्नागतो, पण्डितो च होति मेधावी पठमो वा दुतियो वा सुजं पग्गण्हन्तानं—इमेहि खो, भो, द्वीहङ्गेहि समन्नागतं ब्राह्मणा ब्राह्मणं पञ्ञपेन्ति; 'ब्राह्मणोस्मी' ति च वदमानो सम्मा वदेय्य, न च पन मुसावादं आपज्जेय्या'' ति।

४. सीलपञ्ञाकथा

१८. ''इमेसं पन, ब्राह्मण, द्विन्नं अङ्गानं सक्का एकं अङ्गं ठपयित्वा एकेन अङ्गेन समन्नागतं ब्राह्मणा ब्राह्मणं पञ्ञपेतुं; ब्राह्मणोस्मी ति च वदमानो सम्मा वदेय्य, न [R.124] च पन मुसावादं आपज्जेय्या'' ति? ''नो हिदं, भो गोतम। सीलपरिधोता हि, भो गोतम, पञ्ञा; पञ्ञापरिधोतं सीलं। यत्थ सीलं तत्थ पञ्ञा, यत्थ पञ्ञा तत्थ सीलं। सीलवतो पञ्ञा, पञ्ञवतो सीलं। सीलपञ्ञाणं च पन लोकस्मिं अग्गमक्खायति। सेय्यथापि, भो गोतम, हत्थेन वा हत्थं धोवेय्य, पादेन वा पादं धोवेय्य; एवमेव खो, भो [B.117, N.107] गोतम, सीलपरिधोता पञ्ञा, पञ्ञापरिधोतं सीलं। यत्थ सीलं तत्थ पञ्ञा, यत्थ पञ्ञा तत्थ सीलं। सीलवतो पञ्ञो, पञ्ञवतो सीलं। सीलपञ्ञाणं च पन लोकस्मिं अग्गमक्खायती'' ति। ''एवमेतं, ब्राह्मण, एवमेतं, ब्राह्मण! सीलपरिधोता हि, ब्राह्मण, पञ्ञा, पञ्ञापरिधोतं सीलं। यत्थ सीलं तत्थ पञ्ञा, यत्थ पञ्ञा तत्थ सीलं। सीलवतो पञ्ञा, पञ्ञवतो सीलं। सीलपञ्ञाणं च पन लोकस्मिं अग्गमक्खायति। सेय्यथापि, ब्राह्मण, हत्थेन वा हत्थं धोवेय्य, पादेन वा पादं धोवेय्य; एवमेव खो, ब्राह्मण, सीलपरिधोता पञ्ञा, पञ्ञापरिधोतं सीलं। यत्थ सीलं तत्थ पञ्ञा, यत्थ पञ्ञा तत्थ सीलं। सीलवतो पञ्ञा, पञ्ञवतो सीलं। सीलपञ्ञाणं च पन लोकस्मिं अग्गमक्खायति।

१९. ''कतमं पन तं, ब्राह्मण, सीलं? कतमा सा पञ्ञा'' ति?

जाति से हीन होने का भी कोई आरोप नहीं है; क्योंकि मैं इसके माता-पिता को जानता हूँ। अब यदि यह अङ्गक माणवक प्राणिहिंसा भी करे, चोरी भी करे, व्यभिचार भी करे, असत्यभाषण भी करे, मद्य भी पीये तो यह सब ही करता रहे! यहाँ (ये सब दोष रहते हुए इसका) सुन्दर रूप, अत्यधिक वेदज्ञान या (इसकी) उच्च ब्राह्मण जाति में जन्म इसका क्या भला करेगें! (इसलिए मैं कहता हूँ कि) जो ब्राह्मण शीलवान् है या यज्ञ कराने में दक्ष है—इन दो अङ्गों से युक्त ब्राह्मण को ब्राह्मण लोग 'ब्राह्मण' कहते हैं। और इतने पर ही यदि वह अपने को 'ब्राह्मण' कहता है तो सत्य ही कहता है, उस पर असत्यभाषण का आरोप नहीं लगाया जा सकता।

४. शीलप्रज्ञा

१८. ''और फिर, ब्राह्मण! इन दो अङ्गों में से भी, एक अङ्ग छोड़ देने पर, एक अङ्ग से भी ब्राह्मण लोग उसे 'ब्राह्मण' कह सकेंगे, और तब भी वह 'मैं ब्राह्मण हूँ'— ऐसा अपने विषय में कहता हुआ सत्यभाषी ही होगा, असत्यभाषी नहीं?'' ''नहीं, भो गौतम! (क्योंकि) प्रज्ञा (ज्ञान) तो शील से ही प्रक्षालित (शुद्ध) होती है और प्रज्ञा से शील प्रक्षालित होता है। जहाँ शील है, वहाँ प्रज्ञा है; और जहाँ प्रज्ञा है वहीं शील। शीलवान् को प्रज्ञा उपलब्ध होती है और प्रज्ञावान् को शील। इतने पर भी लोक में शील प्रज्ञा ही नहीं, अन्य गुणों का भी अग्रज कहलाता है। भो गौतम! लोक में जैसे हाथ से हाथ धोया जाता है, पैर स पैर। इसी तरह, भो गौतम! शील से प्रज्ञा को और प्रज्ञा को शील से प्रक्षालित किया जाता है। जहाँ शील

"एत्तकपरमा व मयं, भो गोतम, एतस्मिं अत्थे। साधु वत भवन्तंयेव गोतमं पटिभातु एतस्स भासितस्स अत्थो" ति।

"तेन हि ब्राह्मण, सुणोहि, साधुकं मनसि करोहि, भासिस्सामी" ति।

"एवं,भो" ति खो सोणदण्डो ब्राह्मणो भगवतो पच्चस्सोसि ।

भगवा एतदवोच—"इध, ब्राह्मण, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो ....पे०....*(यथा सामञ्ञफले, एवं वित्थारेतब्बं)*। एवं खो, ब्राह्मण, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति....इदं खो तं, ब्राह्मण, सीलं....पे....पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति....दुतियं झानं ....ततियं झानं....चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति....पे०....ञाणदस्सनाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति ....पे०....इदं पिस्स होति पञ्ञाय....पे०....नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति, इदं पिस्स होति पञ्ञाय....अयं खो सा, ब्राह्मण, पञ्ञा" ति।

५. सोणदण्डो उपासकत्तं पटिवेदेसि

२०. एवं वुत्ते, सोणदण्डो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भो गोतम, [R.125] अभिक्कन्तं, भो गोतम। सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वाविवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेव भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे [B.118] पाणुपेतं सरणं गतं। अधिवासेतु च मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

है, वहाँ प्रज्ञा....पूर्ववत्....अगुआ कहलाता है।" "यही बात है ब्राह्मण! यही बात है! प्रज्ञा शील से प्रक्षालित है....पूर्ववत्....अगुआ कहलाता है।

१९. "ब्राह्मण! वह शील क्या है? प्रज्ञा क्या है?"

"भो गौतम! इस विषय में हम इतना ही जानते हैं। अच्छा हो, यदि आप गौतम ही हमें इस पर कुछ विस्तार से बतावें।"

"तो ब्राह्मण! सुनो! ठीक से मन में बैठा लो, मैं तुम्हें बताऊँगा।"

"ठीक है, भो गौतम!" —सोणदण्ड ब्राह्मण ने भगवान् को उत्तर दिया।

भगवान् यों बोले— "यहाँ ब्राह्मण! तथागत लोक में उत्पन्न होते हैं अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध होते हुए.... पूर्ववत्.... इस तरह भिक्षु शीलसम्पन्न होता है....ब्राह्मण यह शील (का विस्तृत वर्णन) है।

" ....प्रथम ध्यान....द्वितीय ध्यान....तृतीय ध्यान.... चतुर्थ ध्यान....ज्ञानदर्शन के लिये चित्त का अभिनीहार....यह भी प्रज्ञा में....इस से आगे मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है— यह भी प्रज्ञा में....। ब्राह्मण! यह प्रज्ञा है। *(श्रामण्यफलसुत्त में पृ० ६७ से पृ०८१ तक विस्तार कर लें)*।

५. सोणदण्ड द्वारा भगवान् का उपासक बनना

२०. ऐसा कहे जाने पर सोणदण्ड ब्राह्मण ने भगवान् से यों निवेदन किया—आश्चर्य एवं अद्भुत है, ...पूर्ववत्....यावज्जीवन मेरा आपके चरणों में उपासकत्व स्वीकार करें। और आप गौतम समग्र भिक्षुसङ्घ के साथ कल का भोजन मेरे घर पर ग्रहण करने की स्वीकृति दें। भगवान् ने मौनभाव से स्वीकार किया।

२१. अथ खो सोणदण्डो ब्राह्मणो भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना [N.108] भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो, सोणदण्डो ब्राह्मणो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके निवेसने पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि— "कालो, भो गोतम, निट्ठितं भत्तं" ति। अथ खो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेन येन सोणदण्डस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो सोणदण्डो ब्राह्मणो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि।

२२. अथ खो सोणदण्डो ब्राह्मणो भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सोणदण्डो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच— "अहं चेव खो पन, भो गोतम, परिसगतो समानो आसना वुट्ठहित्वा भवन्तं गोतमं अभिवादेय्यं, तेन मं सा परिसा परिभवेय्य। यं खो पन सा परिसा परिभवेय्य, यसो पि तस्स हायेथ। यस्स खो पन यसो हायेथ, भोगा पि तस्स हायेय्युं। यसोलद्धा खो पनम्हाकं भोगा। अहं चेव खो पन, भो गोतम, परिसगतो समानो अञ्जलिं पग्गण्हेय्यं, आसना मे तं भवं गोतमो [R.126] पच्चुट्ठानं धारेतु। अहं चेव खो पन, भो गोतम, परिसगतो समानो वेठनं ओमुञ्चेय्यं, सिरसा मे तं भवं गोतमो अभिवादनं धारेतु। अहं चेव खो पन, भो गोतम, यानगतो समानो याना पच्चोरोहित्वा भवन्तं गोतमं अभिवादेय्यं, तेन मं सा परिसा परिभवेय्य; यं खो पन सा परिसा परिभवेय्य, यसो पि तस्स हायेथ, यस्स खो पन यसो हायेथ, भोगा पि तस्स हायेय्युं। यसोलद्धा खो पनम्हाकं भोगा। अहं चेव खो पन, भो गोतम, यानगतो समानो [B.119] पतोदलट्ठिं अब्भुन्नामेय्यं, याना मे तं भवं गोतमो पच्चोरोहनं धारेतु। अहं चेव खो पन, भो गोतम, यानगतो समानो छत्तं अपनामेय्यं सिरसा मे तं भवं गोतमो अभिवादनं धारेतू" ति।

---

२१. तब सोणदण्ड भगवान् की स्वीकृति जान कर आसन से उठ कर प्रणाम–प्रदक्षिणा कर (अपने घर) चला गया। तब सोणदण्ड ब्राह्मण ने उस रात्रि के बीत जाने पर अपने घर पर भोजन में प्रिय खाद्य भोज्य पदार्थ बनवाकर भगवान् को समय की सूचना दिलवायी कि "भो गोतम! भोजन तैयार है।" तब भगवान् पूर्वाह्न समय...पूर्ववत्...अपने हाथ से परोसा और उन्हें सन्तृप्त किया।

२२. तब सोणदण्ड ब्राह्मण ने भगवान् के भोजन करके पात्र से हटा लेने के बाद (भगवान् का भोजन पूर्ण हुआ समझकर) एक छोटा आसन लेकर उस पर एक तरफ बैठ गया। एक ओर बैठे सोणदण्ड ब्रांह्मण ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भो गौतम! यदि परिषद् में बैठा हुआ मैं आसन से उठकर आप गौतम को अभिवादन करूँगा तो वह परिषद् मुझे तिरस्कृत करेगी। वह परिषद् जिसका तिरस्कार करेगी उसका यश भी क्षीण होगा और जिसका यश क्षीण होगा उसके ऐश्वर्य–भोग में भी कमी आयगी; क्योंकि यश से ही तो हमें भोगों की उपलब्धि होती है। अतः भो गौतम! यदि मैं परिषद् में बैठा हुआ हाथ जोड़ूँ तो उसे आप मेरा प्रत्युपस्थान (आप के सम्मान में खड़े होना) समझें। यदि मैं वहाँ बैठे बैठे शिर से पगड़ी हटाऊँ तो से आप मेरा शिर से अभिवादन समझें। इसी तरह, भो गौतम! यान में बैठा हुआ (आप के आने पर) यान से उतर कर आप गौतम का अभिवादन करूँ तो मेरे साथ के लोग मेरा तिरस्कार करेंगे,....पूर्ववत्....। अतः यदि मैं यान में बैठा हुआ चाबुक ऊपर उठाऊँ तो आप मेरा (आप के

२३. अथ खो भगवा सोणदण्डं ब्राह्मणं धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामी ति॥

सोणदण्डसुत्तं निट्ठितं चतुत्थं॥

सम्मान में) यान से उतरना समझें। और यदि उस समय मैं अपना छत्र नीचे की तरफ झुकाऊँ तो मेरा शिर से किया हुआ अभिवादन समझें।''

२३. तब भगवान् सोणदण्ड ब्राह्मण को आनुपूर्वी धार्मिक कथाएँ सुनाते हुए उसका सन्देह नष्ट कर उसे सम्प्रहृष्ट करते हुए कुछ समय बाद आसन से उठकर (अपने साधनास्थल की तरफ) चल पडे।।

चतुर्थ सोणदण्डसूत्र समाप्त॥

५. कूटदन्तसुत्तं

१. खाणुमतकब्राह्मणेहि कूटदन्तस्स सल्लापो

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा मगधेसु चारिकं [N.109, B.120, R.127] चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि येन खाणुमतं नाम मगधानं ब्राह्मणगामो तदवसरि। तत्र सुदं भगवा खाणुमते विहरति अम्बलट्ठिकायं। तेन खो पन समयेन कूटदन्तो ब्राह्मणो खाणुमतं अज्झावसति सत्तुस्सदं सतिणकट्ठोदकं सधञ्ञं राजभोग्गं, रञ्ञा मागधेन सेनियेन बिम्बिसारेन दिन्नं, राजदायं ब्रह्मदेय्यं। तेन खो पन समयेन कूटन्तस्स ब्राह्मणस्स महायञ्ञो उपक्खटो होति। सत्त च उसभसतानि, सत्त च वच्छतरसतानि, सत्त च वच्छतरीसतानि, सत्त च अजसतानि, सत्त च उरब्भसतानि थूणूपनीतानि होन्ति यञ्ञत्थाय।

२. अस्सोसुं खो खाणुमतका ब्राह्मणगहपतिका— "समणो खलु, भो, गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो मगधेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि खाणुमतं अनुप्पत्तो खाणुमते विहरति अम्बलट्ठिकायं। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो— 'इति पि सो भगवा, अरहं, सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो, लोकविदू, अनुत्तरो, पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो, भगवा' ति। सो इमं [R.128] लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती"ति।

३. अथ खो खाणुमतका ब्राह्मणगहपतिका खाणुमता निक्खमित्वा सङ्घसङ्घी गणीभूता येन अम्बलट्ठिका तेनुपसङ्कमन्ति।

---

५. कूटदन्तसूत्र

१. खाणुमत के ब्राह्मणों से कूटदन्त का संवाद

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) पाँच सौ संख्यावाले विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ मगध देश में चारिका करते हुए खाणुमत नामक ब्राह्मणग्राम में पधारे। उस समय भगवान् खाणुमत में अम्बलट्ठिका (आम्रयष्टिका) में साधना कर रहे थे। उसी समय कूटदन्त ब्राह्मण, जनसंकुल, तृण–काष्ठ–उदक–धन–धान्य सम्पन्न, राजभोग्य, राजदाय, ब्रह्मदेय उस खाणुमत का अधिपति होकर रहता था। उस समय कूटदन्त को बहुत शीघ्र ही कोई महायज्ञ सम्पन्न कराना था। इस महायज्ञ-हेतु सात सौ बैल, सात सौ बछड़े, सात सौ बछड़ियाँ, सात सौ बकरियाँ और सात सौ भेड़ खूंटे (यज्ञस्तम्भ) पर (बलि हेतु) लायी गयी थीं।

२. उसी समय खाणुमतवासी ब्राह्मणों ने सुना कि "अरे! शाक्यकुल से प्रव्रजित हो कर शाक्यपुत्र श्रमण गौतम पाँच सौ भिक्षुओं के विशाल सङ्घ के साथ चारिका करते हुए खाणुमत की अम्बलट्ठिका में साधना हेतु विराजमान हैं। उस गौतम का, जनता में, ऐसा मङ्गलमय कीर्तिशब्द फैला हुआ है– "ऐसे वे भगवान्, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध....पूर्ववत्....ऐसे ज्ञानियों के दर्शन मङ्गलमय होते हैं।"

३. तब वे खाणुमतवासी ब्राह्मण समूहों में एकत्र हो–हो कर अम्बलट्ठिका की तरफ (जहाँ भगवान् विराजमान थे, उनके दर्शन हेतु) जाने लगे।

[B.121] ४. तेन खो पन समयेन कूटदन्तो ब्राह्मणो उपरिपासादे दिवासेय्यं उपगतो होति। अद्दसा खो कूटदन्तो ब्राह्मणो खाणुमतके ब्राह्मणगहपतिके खाणुमता निक्खमित्वा सङ्घसङ्घी गणीभूते येन अम्बलट्ठिका तेनुपसङ्कमन्ते। दिस्वा खत्तं आमन्तेसि— "किं नु खो, भो खत्ते, [N.110] खाणुमतका ब्राह्मणगहपतिका खाणुमता निक्खमित्वा सङ्घसङ्घी गणीभूता येन अम्बलट्ठिका तेनुपसङ्कमन्ती" ति?

५. "अत्थि खो, भो, समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो मगधेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि खाणुमतं अनुप्पत्तो, खाणुमते विहरति अम्बलट्ठिकायं। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो— 'इति पि सो भगवा, अरहं, सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो, लोकविदू, अनुत्तरो, पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो, भगवा' ति। तमेते भवन्तं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमन्ती" ति।

६. अथ खो कूटदन्तस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि— "सुतं खो पन मेतं— 'समणो गोतमो तिविधं यञ्ञसम्पदं सोळसपरिक्खारं जानाती' ति। न खो पनाहं जानामि तिविधं [R.129] यञ्ञसम्पदं सोळसपरिक्खारं। इच्छामि चाहं महायञ्ञं यजितुं। यन्नूनाहं समणं गोतमं उपसङ्कमित्वा तिविधं यञ्ञसम्पदं सोळसपरिक्खारं पुच्छेय्यं" ति।

७. अथ खो कूटदन्तो ब्राह्मणो खत्तं आमन्तेसि— "तेन हि, भो खत्ते, येन खाणुमतका ब्राह्मणगहपतिका तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा खाणुमतके ब्राह्मणगहपतिके एवं वदेहि— 'कूटदन्तो, भो, ब्राह्मणो एवमाह— आगमेन्तु किर भवन्तो, कूटदन्तो पि ब्राह्मणो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती' " ति। "एवं, भो" ति खो सो खत्ता कूटदन्तस्स ब्राह्मणस्स पटिस्सुत्वा येन खाणुमतका ब्राह्मणगहपतिका तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा खाणुमतके

---

४. उस समय कूटदन्त ब्राह्मण अपने प्रासाद ऊपरी तल पर दिन में आराम कर रहा था। उसने भी देखा कि खाणुमतवासी ब्राह्मण खाणुमत से निकल कर समूहों में एकत्र हो हो कर अम्बलट्ठिका की तरफ जा रहे हैं। उसने उन को देखकर अपने किसी अधिकारी (या रक्षक) को बुलाकर पूछा— "ये खाणुमतवासी ब्राह्मण खाणुमत से निकल कर समूहों में एकत्र होकर अम्बलट्ठिका की तरफ क्यों जा रहे हैं?"

५. "श्रीमन्! शाक्यकुल से प्रव्रजित....पूर्ववत्.... बुद्ध भगवान् हैं। ये सब उन माननीय गौतम के दर्शन हेतु जा रहे हैं।

६. तब कूटदन्त ब्राह्मण के मन में यह विचार आया— "मैंने भी सुना है— श्रमण गौतम सोलह परिष्कारों (प्रयोजनों) वाली त्रिविध यज्ञ-सम्पदा का ज्ञाता है। परन्तु मैं इसे जानता नहीं हूँ। इधर मैं भी अपने यहाँ महायज्ञ सम्पन्न कराना चाहता हूँ। तो क्यों न मैं भी इन श्रमण गौतम के पास जा कर इन के सोलह परिष्कारों वाली त्रिविध यज्ञ-विधि-विधान को पूछ लूँ, जान लूँ।"

७. तब कूटदन्त ब्राह्मण ने अपने अधिकारी को बुलाकर कहा— "तो तुम इन खाणुमतवासी ब्राह्मणों के पास जाओ और उन से निवेदन करो— 'कूटदन्त ब्राह्मण ने यह कहा है कि— आप लोग कुछ देर ठहरें, क्योंकि कूटदन्त ब्राह्मण भी आपलोगों के साथ उन श्रमण गौतम के दर्शनहेतु चलना चाहता है'।" "अच्छा, श्रीमन्" कह कर वह अधिकारी कूटदन्त ब्राह्मण के पास से इन खाणुमतवासी ब्राह्मणों

ब्राह्मणगहपतिके एतदवोच— "कूटदन्तो, भो, ब्राह्मणो एवमाह— 'आगमेन्तु किर भोन्तो, कूटदन्तो पि ब्राह्मणो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती' " ति।

(क) गोतमो अरहति कूटदन्तं उपसङ्कमितुं?

८. तेन खो पन समयेन अनेकानि ब्राह्मणसतानि खाणुमते पटिवसन्ति— [B.122] कूटदन्तस्स ब्राह्मणस्स महायञ्ञं अनुभविस्सामा ति। अस्सोसुं खो ते ब्राह्मणा— "कूटदन्तो किर ब्राह्मणो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती" ति। अथ खो ते ब्राह्मणा येन कूटदन्तो ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा कूटदन्तं ब्राह्मणं एतदवोचुं— "सच्चं किर भवं कूटदन्तो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सती" ति?

"एवं खो मे, भो, होति— 'अहं पि समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्क-[N.111] मिस्सामी' " ति।

"मा भवं कूटदन्तो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमि। न अरहति भवं कूटदन्तो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। सचे भवं कूटदन्तो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सति, भोतो कूटदन्तस्स यसो हायिस्सति समणस्स गोतमस्स यसो अभिवड्ढिस्सति। यं पि भोतो कूटदन्तस्स यसो हायिस्सति, समणस्स गोतमस्स यसो अभिवड्ढिस्सति, इमिनापङ्गेन न अरहति भवं कूटदन्तो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; समणो त्वेव गोतमो अरहति भवन्तं [R.130] कूटदन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुं।

९. "भवं हि कूटदन्तो उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन। यं पि भवं कूटदन्तो उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन, इमिनापङ्गेन न अरहति भवं कूटदन्तो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; समणो त्वेव गोतमो अरहति भवन्तं कूटदन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुं।

के यहाँ पहुँचा, और उनको कूटदन्त ब्राह्मण का सन्देश दिया कि— "कूटदन्त ब्राह्मण भी उन श्रमणगौतम के दर्शन हेतु आप लोगों के साथ चलना चाहते हैं। अतः आप लोग कुछ देर यहीं रुक कर (कूटदन्त) की प्रतीक्षा कीजिये।"

(क) गौतम को कूटदन्त के पास आना चाहिये—८. उस समय कई सौ ब्राह्मण भी कूटदन्त के महायज्ञ में सम्मिलित होने के लिये खाणुमत में ठहरे हुए थे। उन ब्राह्मणों ने सुना कि कूटदन्त भी श्रमण गौतम के दर्शनार्थ जाना चाह रहा है। तब वे ब्राह्मण कूटदन्त ब्राह्मण के पास पहुँचे। और उससे पूछने लगे— "क्या आप कूटदन्त वस्तुतः श्रमण गौतम के दर्शन के लिये जा रहे हैं?"

(कूटदन्त ने कहा—) "हाँ, भाइयो! मुझे भी ऐसा हो रहा है कि मैं श्रमण गौतम के दर्शन करने के लिये (आप लोगों के साथ) चलूँ।"

(तब उन ब्राह्मणों ने कूटदन्त से कहा—) "अच्छा हो कि आप कूटदन्त श्रमण गौतम के दर्शन हेतु न जाँय। यदि आप श्रमण गौतम के दर्शन हेतु जायँगें तो इससे आप का यश घटेगा तथा श्रमण गौतम का यश बढ़ेगा। यदि आपका यश घटे और श्रमण गौतम का बढ़े, इस कारण आपको श्रमण गौतम के दर्शन हेतु नहीं जाना चाहिये; अपितु श्रमण गौतम को ही आप के पास आना चाहिये। (१)

"भवं हि कूटदन्तो अड्ढो महद्धनो महाभोगो पहूतवित्तूपकरणो पहूतजातरूपरजतो ....पे०.... ।

"भवं हि कूटदन्तो अज्झायको मन्तधरो तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं पदको वेय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो....पे०.... ।

[B.123] "भवं हि कूटदन्तो अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो ब्रह्मवण्णी ब्रह्मवच्छसी अखुद्दावकासो दस्सनाय....पे०... ।

"भवं हि कूटदन्तो सीलवा वुद्धसीली वुद्धसीलेन समन्नागतो....पे०.... ।

"भवं हि कूटदन्तो कल्याणवाचो कल्याणवाक्करणो, पोरिया वाचाय समन्नागतो, विस्सट्ठाय अनेळगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया...पे०.... ।

"भवं हि कूटदन्तो बहूनं आचरियपाचरियो, तीणि माणवकसतानि मन्ते वाचेति, बहू खो पन नानादिसा नानाजनपदा माणवका आगच्छन्ति भोतो कूटदन्तस्स सन्तिके मन्तत्थिका मन्ते अधियितुकामा....पे०.... ।

"भवं हि कूटदन्तो जिण्णो वुद्धो महल्लको अद्धगतो वयोअनुप्पत्तो, समणो गोतमो तरुणो चेव तरुणपब्बजितो च....पे०.... ।

"भवं हि कूटदन्तो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो....पे०.... ।

[N.112] "भवं हि कूटदन्तो ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो [R.131] अपचितो....पे०.... ।

"भवं हि कूटदन्तो खाणुमतं अज्झावसति सत्तुस्सदं सतिणकट्ठोदकं सधञ्ञं राजभोग्गं, रञ्ञा मागधेन सेनियेन बिम्बिसारेन दिन्नं, राजदायं ब्रह्मदेय्यं। यं पि भवं कूटदन्तो खाणुमतं अज्झावसति सत्तुस्सदं सतिणकट्ठोदकं सधञ्ञं राजभोग्गं, रञ्ञा मागधेन सेनियेन बिम्बिसारेन

---

१. "क्योंकि आप कूटदन्त उभय पक्ष मातृपक्ष एवं ....पूर्ववत्.... *(सोणदण्ड सूत्र की तरह विस्तार कर लें)* श्रमण गौतम को आप के पास आना चाहिये। (२)

"आप कूटदन्त आढ्य हैं, महाधन वाले हैं, महान् ऐश्वर्यसम्पन्न हैं, आपके पास अत्यधिक सोना चान्दी है....। (३)

"आप कूटदन्त वेदाध्यायी है, मन्त्रज्ञ हैं....। (४)

"आप कूटदन्त सुन्दर हैं, दर्शनीय हैं, लुभावने हैं....।" (५)

"आप कूटदन्त शीलवान् हैं....।" (६)

"आप कूटदन्त बहुत से शिष्यों के आचार्य-प्रचार्य हैं.....।" (७)

"आप कूटदन्त सब के हितवक्ता, मितवक्ता, शुभवक्ता हैं....।" (८)

"आप कूटदन्त (श्रमण गौतम की अपेक्षा) पुराने हैं, वृद्ध हैं, वयःप्राप्त हैं....।" (९)

"आप कूटदन्त श्रैणिक राजा मागध बिम्बिसार के द्वारा सत्कृत, मानित, पूजित ..हैं।" (१०)

"आप कूटदन्त ब्राह्मण पौष्करसाति द्वारा सत्कृत हैं....।" (११)

"आप कूटदन्त उस खाणुमत के अधिपति हैं, जो जनाकीर्ण हैं, तृण-काष्ठ-उदक एवं धन-धान्य से पूर्ण हैं....।" (१२)

दिन्नं, राजदायं ब्रह्मदेय्यं, इमिनापङ्गेन न अरहति भवं कूटदन्तो समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; समणो त्वेव गोतमो अरहति भवन्तं कूटदन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुं'' ति।

(ख) न गोतमो अरहति कूटदन्तं उपसङ्कमितुं?

१०. एवं वुत्ते, कूटदन्तो ब्राह्मणो ते ब्राह्मणे एतदवोच– ''तेन हि, भो, मम [B.124] पि सुणाथ यथा मयमेव अरहाम तं भवन्तं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं, न त्वेव अरहति सो भवं गोतमो अम्हाकं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। समणो खलु, भो, गोतमो उभतो सुजातो, मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन। यं पि, भो, समणो गोतमो उभतो सुजातो, मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन, इमिनापङ्गेन न अरहति सो भवं गोतमो अम्हाकं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; अथ खो मयमेव अरहाम तं भवन्तं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं।

''समणो खलु, भो, गोतमो महन्तं ञातिसङ्घं ओहाय पब्बजितो....पे०....।

''समणो खलु, भो, गोतमो पहूतं हिरञ्ञसुवण्णं ओहाय पब्बजितो भूमिगतं च वेहासट्ठं च....पे०....।

''समणो खलु, भो, गोतमो दहरो व समानो युवा सुसुकाळकेसो भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो पठमेन वयसा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो....पे०....।

''समणो खलु, भो, गोतमो अकामकानं मातापितूनं अस्सुमुखानं रुदन्तानं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो....पे०....।

''समणो खलु, भो, गोतमो अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्ण- [R.132] पोक्खरताय समन्नागतो ब्रह्मवण्णी ब्रह्मवच्छसी अखुद्दावकासो दस्सनाय....पे०....।

''समणो खलु, भो, गोतमो सीलवा अरियसीली कुसलसीली कुसलसीलेन समन्नागतो ....पे०....।

''इसलिए भी आप का श्रमण गौतम के दर्शन हेतु जाना उचित नहीं, अपितु श्रमण गौतम का ही आप के पास दर्शन हेतु आना उचित है।''

(ख) श्रमण गौतम का कूटदन्त के पास आना उचित नहीं–१०. (ब्राह्मणों द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, कूटदन्त ब्राह्मण ने उन ब्राह्मणों को यह उत्तर दिया–''अरे भाई! आप लोग मेरी भी सुनें कि किस कारण मुझको ही श्रमण गौतम के पास जाना उचित है; श्रमण गौतम का मेरे यहाँ आना उचित नहीं। क्योंकि श्रमण गौतम उभयपक्ष से शुद्ध हैं मातृपक्ष...पूर्ववत्....। (१)

''श्रमण गौतम अपने बहुत बड़े सम्बन्धि–परिवारजनों को छोड़कर प्रव्रजित हुए हैं ....। (२)

''श्रमण गौतम बहुत सा सोना चान्दी एवं चल–अचल सम्पत्ति छोड़कर प्रव्रजित हुए हैं ....। (३)

''श्रमण गौतम युवावस्था में जबकि उसके सिर के बाल काले ही थे....प्रव्रजित्त हुए हैं ....। (४)

''श्रमण गौतम अपने माता–पिता को रोता हुआ छोड़कर....। (५)

''श्रमण गौतम सुन्दर, दर्शनीय, मनोमोहक....। (६)

''श्रमण गौतम शीलवान्.... कुसल धर्मों से युक्त....। (७)

''श्रमण गौतम कल्याणवाक् पूछे जाने पर ही सार्थक....। (८)

''श्रमण गौतम बहुतों के आचार्य–प्राचार्य हैं. ...। (९)

''श्रमण गौतम की कामों के प्रति आसक्ति क्षीण हो चुकी है....। (१०)

[N.113] ''समणो खलु, भो, गोतमो कल्याणवाचो कल्याणवाक्करणो पोरिया वाचाय समन्नागतो विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया....पे०.... ।

[B.125] ''समणो खलु, भो गोतमो बहूनं आचरियपाचरियो....पे०.... ।

''समणो खलु, भो, गोतमो खीणकामरागो विगतचापल्लो....पे०.... ।

''समणो खलु, भो, गोतमो कम्मवादी किरियवादी अपापपुरेक्खारो ब्रह्मञ्ञाय पजाय...पे०.... ।

''समणो खलु, भो गोतमो उच्चा कुला पब्बजितो असम्भिन्नखत्तियकुला....पे०.... ।

''समणो खलु, भो, गोतमो अड्ढा कुला पब्बजितो महद्धना महाभोगा....पे०.... ।

''समणं खलु, भो, गोतमं तिरोरट्ठा तिरोजनपदा पञ्हं पुच्छितुं आगच्छन्ति....पे०.... ।

''समणं खलु, भो, गोतमं अनेकानि देवतासहस्सानि पाणेहि सरणं गतानि....पे०.... ।

''समणं खलु भो, गोतमं एवंकल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो— 'इति पि सो भगवा, अरहं, सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो, लोकविदू, अनुत्तरो, पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो, भगवा' ति....पे०.... ।

''समणो खलु, भो, गोतमो द्वतिंसमहापुरिसलक्खणेहि समन्नागतो....पे०.... ।

''समणो खलु, भो, गोतमो एहिस्वागतवादी सखिलो सम्मोदको अब्भाकुटिको उत्तानमुखो पुब्बभासी....पे०.... ।

''समणो खलु, भो, गोतमो चतुन्नं परिसानं सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो...पे०.... ।

''समणे खलु, भो, गोतमे बहू देवा च मनुस्सा च अभिप्पसन्ना....पे०.... ।

''समणो खलु, भो, भोतमो यस्मिं गामे वा निगमे वा पटिवसति न तस्मिं गामे वा निगमे वा अमनुस्सा मनुस्से विहेठेन्ति....पे०.... ।

''समणो खलु, भो, गोतमो सङ्घी गणी गणाचरियो पुथुतित्थकरानं अग्गमक्खायति।

''श्रमण गौतम कर्मवादी, क्रियावादी है, उनके कर्म निष्पाप हैं....। (११)

''श्रमण गौतम उच्च कुल से प्रव्रजित हुए हैं....। (१२)

''श्रमण गौतम आढ्य धनवान् कुल से प्रव्रजित हुए हैं....। (१३)

''श्रमण गौतम के पास बहुत से जिज्ञासु दूर-दूर के देशों से....। (१४)

''श्रमण गौतम के अनेक देवता शरणागत हैं....। (१५)

''श्रमण गौतम के लिये जनता में ऐसा कीर्तिशब्द फैला हुआ है....। (१६)

''श्रमण गौतम बत्तीस महापुरुषलक्षणों से युक्त हैं ....। (१७)

''श्रमण गौतम पास आये हुए का प्रसन्न मन से स्वागत करने वाले हैं ....। (१८)

''श्रमण गौतम चारों परिषदों द्वारा सत्कृत, मानित ....। (१९)

''श्रमण गौतम जिस ग्राम या जनपद में जाते हैं वहाँ अमनुष्य (भूत-प्रेत) मनुष्यों को विघ्न-बाधा नहीं पहुँचाता....। (२०)

''श्रमण गौतम बृहत् भिक्षु-सङ्घ के साथ चारिका....सभी श्रमणों में प्रमुख कहलाता है। (२१)

यथा खो पन, भो, एतेसं समणब्राह्मणानं यथा वा तथा वा यसो समुदागच्छति, [B.126] न हेवं समणस्स गोतमस्स यसो समुदागतो। अथ खो, अनुत्तराय विज्जाचरणसम्पदाय समणस्स गोतमस्स यसो समुदागतो....पे०....।

"समणं खलु, भो, गोतमं राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो सपुत्तो [R.133] सभरियो सपरिसो सामच्चो पाणेहि सरणं गतो....पे०,...।

"समणं खलु, भो, गोतमं राजा पसेनदि कोसलो सपुत्तो सभरियो सपरिसो सामच्चो पाणेहि सरणं गतो...पे०....।

"समणं खलु, भो, गोतमं ब्राह्मणो पोक्खरसाति सपुत्तो सभरियो सपरिसो सामच्चो पाणेहि सरणं गतो....पे०....।

"समणो खलु, भो गोतमो रञ्ञो मागधस्स सेनियस्स बिम्बिसारस्स सक्कतो [N.114] गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो....पे०....।

"समणो खलु, भो, गोतमो रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो....पे०....।

"समणो खलु, भो, गोतमो ब्राह्मणस्स पोक्खरसातिस्स सक्कतो गरुकतो मानितो पूजितो अपचितो....पे०....।

"समणो खलु, भो, गोतमो खाणुमतं अनुप्पत्तो खाणुमते विहरति अम्बलट्ठिकायं। ये खो पन, भो, केचि समणा वा ब्राह्मणा वा अम्हाकं गामखेत्तं आगच्छन्ति, अतिथि नो ते होन्ति। अतिथी खो पनम्हेहि सक्कातब्बा गरुकातब्बा मानेतब्बा पूजेतब्बा अपचेतब्बा। यं पि खो, भो, समणो गोतमो खाणुमतं अनुप्पत्तो खाणुमते विहरति अम्बलट्ठिकायं, अतिथिम्हाकं समणो गोतमो। अतिथि खो पनम्हेहि सक्कातब्बो गरुकातब्बो मानेतब्बो पूजेतब्बो अपचेतब्बो।

"अन्य मतवादी व परिव्राजकों का जैसे अन्य विधियों से यश फैला हुआ है उस विधि से श्रमण गौतम का यश जनता में नहीं फैला हुआ है, अपितु उनका यश उनकी प्रभूत विद्याचरण सम्पदा के कारण इतना फैला हुआ है। (२२)

"श्रमण गौतम का राजा मागध श्रैणिक बिम्बिसार.... शरणागत है। (२३)

"श्रमण गौतम का कोसल के राजा प्रसेनजित् पुत्र और भार्यासहित....। (२४)

"श्रमण गौतम का पौष्करसाति ब्राह्मण पुत्र और.....। (२५)

"श्रमण गौतम का राजा मागध श्रेणिक विम्बिसार सत्कार....। (२६)

"श्रमण गौतम का राजा प्रसेनजित् कौसल सत्कार....। (२७)

"श्रमण गौतम का पौष्करसाति ब्राह्मण सत्कार (२८)

"इस समय श्रमण गौतम खाणुमत की अम्बलट्ठिका में आकर विराजमान है। जो भी श्रमण–ब्राह्मण हमारे ग्राम–क्षेत्रों की सीमा में आते हैं वे हमारे अतिथि माने जाते हैं। अतिथियों का हमें सत्कार करना चांहिये....पूर्ववत्....। इस तरह अम्बलट्ठिका में पधारने के कारण हमारे अतिथि हैं, अतिथि का हमें सत्कार करना चाहिये....। इस कारण भी हमें चाहिये कि हम श्रमण गौतम के पास जाँय। यह उचित नहीं है श्रमण गौतम हमारे पास आवें। (२९) सज्जनो! मैं उन श्रमण गौतम का इतना ही गुण–वर्णन कर रहा हूँ। इसका तात्पर्य आप लोग यह न समझें कि उनमें इतने ही गुण हैं। वस्तुतः वे अपरिमित गुणशाली हैं।

इमिनापङ्गेन नारहति सो भवं गोतमो अम्हाकं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; अथ खो मयमेव अरहाम तं भवन्तं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं। एत्तके खो अहं, भो, तस्स भोतो गोतमस्स वण्णे परि-यापुणामि। नो च खो सो भवं गोतमो एत्तकवण्णो। अपरिमाणवण्णो हि सो भवं गोतमो'' ति।

[B.127] ११. एवं वुत्ते, ते ब्राह्मणा कूटदन्तं ब्राह्मणं एतदवोचुं—''यथा खो भवं कूटदन्तो समणस्स गोतमस्स वण्णे भासति, इतो चे पि सो भवं गोतमो योजनसते विहरति अलमेव सद्धेन कुलपुत्तेन दस्सनाय उपसङ्कमितुं, अपि पुटोसेना'' ति। ''तेन हि भो सब्बेव मयं समणं गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमिस्सामा'' ति।

२. तिविधं यञ्ञसम्पदं सोळसपरिक्खारं

१२. अथ खो कूटदन्तो ब्राह्मणो महता ब्राह्मणगणेन सद्धिं येन अम्बलट्ठिका येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीति-[R.134] सारेत्वा एकमन्तं निसीदि। खाणुमतका पि खो ब्राह्मणगहपतिका अप्पेकच्चे भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु, सम्मोदनीयं कथं सारणीयं [N.115] वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे नामगोत्तं सावेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु; अप्पेकच्चे तुण्हीभूता एकमन्तं निसीदिंसु।

१३. एकमन्तं निसिन्नो खो कूटदन्तो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—''सुतं मेतं, भो गोतम—'समणो गोतमो तिविधं यञ्ञसम्पदं सोळसपरिक्खारं जानाती' ति। न खो पनाहं जानामि तिविधं यञ्ञसम्पदं सोळसपरिक्खारं; इच्छामि चाहं महायञ्ञं यजितुं। साधु मे भवं गोतमो तिविधं यञ्ञसम्पदं सोळसपरिक्खारं देसेतू'' ति।

---

११. ऐसा कहे जाने पर वे ब्राह्मण कूटदन्त ब्राह्मण को यों बोले– ''जैसा आपने श्रमण गौतम के गुणों का वर्णन किया है यदि उतने गुण भी उनमें हैं तो किसी भी श्रद्धालु कुलपुत्र को साथ में कुछ पाथेय लेकर सौ योजन दूर से आकर भी एवं दर्शन करने ही चाहिये। तो, श्रीमन्! हम सभी श्रमण गौतम के दर्शन हेतु चलेंगें।''

२. सोलह परिष्कारों वाली त्रिविध यज्ञसम्पद्

१२. तब वह कूटदन्त उस ब्राह्मण उस विशाल ब्राह्मणसमूह के साथ अम्बलट्ठिका में भगवान् के पास पहुँचा। पहुँच कर भगवान् के साथ कुशल–मङ्गल पूछ कर एक ओर बैठ गया। (उधर) खाणुमतवासी ब्राह्मणों में से भी कुछ भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। और उन में से कुछ ने भगवान् से कुशल–मङ्गल भी पूछा। और कुछ दूर से ही भगवान् की ओर प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। और उनमें से कुछ ने अपना नाम–गोत्र सुना कर एक तरफ बैठना उचित समझा और अन्त में कई लोग बिना कुछ बोले ही चुपचाप वहाँ बैठ गये।

१३. एक ओर बैठे कूटदन्त ब्राह्मण ने भगवान् से यों प्रश्न किया– ''भो गौतम! मैंने सुना है कि आप श्रमण गौतम सोलह परिष्कारों वाली तीनों प्रकार की यज्ञ-सम्पत्ति (विधि) के ज्ञाता हैं। परन्तु मैं इस तरह की यज्ञविधि को नहीं जानता। इधर निकट भविष्य में मैं एक महायज्ञ सम्पन्न करना चाहता हूँ। अच्छा हो, भो गौतम! कि आप मुझे उस सोलह परिष्कार वाली त्रिविध यज्ञसम्पत्ति की देशना कर दें।

(क) राजा महाविजितो

१४. "तेन हि, ब्राह्मण, सुणाहि, साधुकं मनसिकरोहि, भासिस्सामी" ति।

"एवं, भो" ति खो कूटदन्तो ब्राह्मणो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच— "भूतपुब्बं, ब्राह्मण, राजा महाविजितो नाम अहोसि अड्ढो महद्धनो महोभोगो पहूतजातरूपरजतो पहूतवित्तूपकरणो पहूतधनधञ्ञो परिपुण्णकोसकोट्ठागारो। अथ खो, ब्राह्मण, रञ्ञो महाविजितस्स रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'अधिगता खो मे विपुला मानुसका भोगा। महन्तं पठविमण्डलं अभिविजिय अज्झावसामि। यन्नूनाहं [B.128] महायञ्ञं यजेय्यं, यं मम अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया' ति।

१५. "अथ खो, ब्राह्मण, राजा महाविजितो पुरोहितं ब्राह्मणं आमन्तेत्वा एतदवोच— 'इध मय्हं, ब्राह्मण, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—[R.135] अधिगता खो मे विपुला मानुसका भोगा, महन्तं पठविमण्डलं अभिविजिय अज्झावसामि, यन्नूनाहं महायञ्ञं यजेय्यं यं मम अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया ति; इच्छामहं, ब्राह्मण, महायञ्ञं यजितुं। अनुसासतु मं भवं यं मम अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया' ति।

१६. "एवं वुत्ते, ब्राह्मण, पुरोहितो ब्राह्मणो राजानं महाविजितं एतदवोच—'भोतो खो रञ्ञो जनपदो सकण्टको सउप्पीळो। गामघाता पि दिस्सन्ति, निगमघाता पि दिस्सन्ति, नगरघाता पि दिस्सन्ति, पन्थदुहना पि दिस्सन्ति। भवं चे खो पन राजा एवं सकण्टके जनपदे सउप्पीळे बलिमुद्धरेय्य, अकिच्चकारी अस्स तेन भवं राजा। सिया खो पन भोतो रञ्ञो एवमस्स—अहमेतं दस्सुखीलं वधेन वा बन्धेन वा जानिया वा गरहाय वा पब्बाजनाय वा

(क) राजा महाविजित—१४. "तो ब्राह्मण! सुनो! भली भाँति मन में बैठा लो। मैं बतलाता हूँ।

"अच्छा, भो गौतम!" कहकर कूटदन्त ने भगवान् को उत्तर दिया। भगवान् यों बोले— "प्राचीन काल में, ब्राह्मण! राजा महाविजित नाम का एक आढ्य, विपुल धन-सम्पत्ति वाला, महान् ऐश्वर्यशाली, सोने-चान्दी के ढेरों खजाने वाला, नाना प्रकार के अन्य वित्त-साधनों से सम्पन्न एवं धन-धान्य से परिपूर्ण कोष्ठागार वाला था। एक बार, ब्राह्मण, एकान्त में बैठे राजा महाविजित मे मन में यह विचार आया— 'मैंने मनुष्यों के भोगने योग्य अत्यधिक ऐश्वर्य के साधन एकत्र कर लिये हैं। मैंने इस पृथ्वी का भी बहुत बड़ा भाग जीत कर अपने अधीन कर लिया है। तो क्यों न मैं एक महायज्ञ सम्पन्न करूँ जो मेरे लिये दीर्घकाल तक हितावह एवं सुखकर होगा'।

१५. "तब, ब्राह्मण! उस राजा महाविजित ने अपने ब्राह्मणपुरोहित को बुलाकर यह कहा— 'ब्राह्मण! यहाँ एकान्त में बैठे मुझ को अभी यह विचार हुआ कि मैंने मनुष्यों के उपभोगयोग्य अत्यधिक (विपुल) ऐश्वर्य साधन....हितावह तथा सुखकर होगा। आप मुझे ऐसा यज्ञ करने का शास्त्रीय विधान बतावें।'

१६. "राजा द्वारा ऐसा कहे जाने, पर उस ब्राह्मण पुरोहित ने राजा को उत्तर दिया— 'आप का यह राज्य अभी सकण्टक (नाना प्रकार के विघ्नों से युक्त) एवं बाधाओं (उत्पीड़ा) वाला है। राज्य में गाँवों की लूटपाट, निगमों या नगरों की लूटपाट, एवं वहाँ छीना-झपटी (=पन्थदुहना) भी देखी जाती है। अतः राजन्! ऐसी स्थिति में जहाँ ग्राम-जनपद एवं नगरों में स्थान-स्थान पर लूटपाट हो रही हो, छीना-झपटी हो रही हो रही हो , आपका जनता से कर लेना अकृत्य ही कहलायगा। अच्छा होता यदि आप को यह

समूहनिस्सामी ति, न खो पनेतस्स दस्सुखीलस्स एवं सम्मा समुग्घातो होति। ये ते हतावसेसका [N.116] भविस्सन्ति, ते पच्छा रञ्ञो जनपदं विहेठेस्सन्ति। अपि च खो इदं संविधानं आगम्म एवमेतस्स दस्सुखीलस्स सम्मा समुग्घातो होति। तेन हि, भवं राजा ये भोतो रञ्ञो जनपदे उस्सहन्ति कसिगोरक्खे तेसं भवं राजा बीजभत्तं अनुप्पदेतु। ये भोतो रञ्ञो जनपदे उस्सहन्ति वाणिज्जाय तेसं भवं राजा पाभतं अनुप्पदेतु। ये भोतो रञ्ञो जनपदे उस्सहन्ति राजपोरिसे तेसं भवं राजा भत्तवेतनं पकप्पेतु। ते च मनुस्सा सकम्मपसुता रञ्ञो जनपदं न विहेठेस्सन्ति; महा च रञ्ञो रासिको भविस्सति। खेमट्ठिता जनपदा अकण्टका अनुप्पीळा। मनुस्सा मुदा मोदमाना उरे पुत्ते नच्चेन्ता अपारुतघरा मञ्ञे विहरिस्सन्ती' ति।

"एवं, भो' ति खो, ब्राह्मण, राजा महाविजितो पुरोहितस्स ब्राह्मणस्स पटिस्सुत्वा ये [R.136] रञ्ञो जनपदे उस्सहिंसु कसिगोरक्खे , तेसं राजा महाविजितो बीजभत्तं अनुप्पदासि। [B.129] ये च रञ्ञो पजनपदे उस्सहिंसु वाणिज्जाय, तेसं राजा महाविजितो पाभतं अनुप्पदासि। ये च रञ्ञो जनपदे उस्सहिंसु राजपोरिसे, तेसं राजा महाविजितो भत्तवेतनं पकप्पेसि। ते च मनुस्सा सकम्मपसुता रञ्ञो जनपदं न विहेठिंसु; महा च रञ्ञो रासिको अहोसि। खेमट्ठिता जनपदा अकण्टका अनुप्पीळा। मनुस्सा मुदा मोदमाना उरे पुत्ते नच्चेन्ता अपारुतघरा मञ्ञे विहरिंसु।

विचार आता कि मैं इस समग्र दस्युसमूह (चोर लुटेरों) को मार कर, पकड़ कर, कारागार में डालकर, फाँसी देकर (जान से मार कर), इन की निन्दा कर, इन्हें देश–निकाला देकर समूल नष्ट कर दूँ। किन्तु इतने पर भी, अपने राज्य की इस दस्युकील (चोर–लुटेरों की आपत्ति) को मूलतः नष्ट नहीं कर पायेंगे। इन में जो भी किसी तरह (आप के दण्ड से) बच निकलेंगे वे आगे चलकर जनता को फिर कष्ट देंगे। इस दस्युकील का समूल नाश तो राजन्! तभी हो सकता है जब कोई आप के राज्य में निवासहेतु आवे तो उन्हें आप कृषि एवं गोरक्षा के लिये बीज दें, व्यापार के लिये पूँजी (अनुदान=प्राभृत) दें। या जो व्यापार हेतु आवें उन्हें आप.... जो आप के राज्य की सेवा हेतु नौकरी करने आवें उन्हें आप सम्मानित जीवन बिताने योग्य वेतन दें। इस तरह से वे लोग आप से उपकृत होकर अपनी ओर से ऐसा कोई कार्य नहीं करेंगे जिससे आपकी या आप की जनता की कोई हानि हो। इससे (उन के दिये हुए कर से) आप का खजाना भी अनेक प्रकार से बढ़ेगा। इस तरह सुखपूर्वक अपने–अपने व्यापार में लगे रहने के कारण आप का राज्य भी निष्कण्टक एवं निर्बाध रहेगा। मनुष्य (जनता) भी गोद में अपने बच्चों को नचाते–खिलाते हुए से खुले (विना ताला लगे) घरों में सुखपूर्वक रहेंगे।' "

"इस पर, उस राजा महाविजित ने अपने पुरोहित ब्राह्मण को "अच्छा, भो ब्राह्मण!" कहा। तथा उसी समय से उसने राज्य में बसने आने वाले साधारणजनों को, जो वहाँ कृषि या गोरक्षा का कार्य करना चाहते थे, उनको बीज या धान देकर सहायता प्रदान की। तथा जो वहाँ व्यापार करना चाहते थे उनको वित्तीय अनुदान (प्राभृत) दे कर व्यापार के लिये उत्साहित किया। नौकरी करने वालों को अच्छा वेतन देकर सम्मानित किया। इस तरह वे सब अपने–अपने कार्य में लगे रहकर राजा का उपकार मानते हुए राज्य में सुख–शान्ति से रहने लगे। इस तरह उनके द्वारा दिये कर (बलि) से राजा का कोष (खजाना) भी बढ़ने लगा। उस की प्रजा भी निष्कण्टक एवं निष्पीड़ रहती हुई सुखपूर्वक रहने लगी। सभी मनुष्य अपने–अपने घरों में गोद में लिये बच्चों को नचाते–खिलाते, खुला दरवाजा छोड़कर निर्भय हो कर रहते थे।

"अथ खो, ब्राह्मण, राजा महाविजितो पुरोहितं ब्राह्मणं आमन्तेत्वा एतदवोच— 'समूहतो खो मे भोतो दस्सुखिलो भोतो संविधानं आगम्म, महा च मे रासिको। खेमट्ठिता जनपदा अकण्टका अनुप्पीळा। मनुस्सा मुदा मोदमाना उरे पुत्ते नच्चेन्ता अपारुतघरा मञ्ञे विहरन्ति। इच्छामहं, ब्राह्मण, महायञ्ञं यजितुं। अनुसासतु मं भवं यं मम अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया' ति।

(ख) चत्तारो अनुमतिपक्खा यञ्ञपरिक्खारा

१७. (१) 'तेन हि भवं राजा ये भोतो रञ्ञो जनपदे खत्तिया आनुयन्ता नेगमा चेव जानपदा च ते भवं राजा आमन्तयतं—'इच्छामहं, भो, महायञ्ञं यजितुं, अनुजानन्तु मे भवन्तो यं मम अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया' ति। (२) ये भोतो रञ्ञो जनपदे अमच्चा पारिसज्जा नेगमा चेव जानपदा च .... पे०....। (३) ब्राह्मणमहासाला नेगमा चेव जानपदा च ....पे०....। (४) गहपतिनेचयिका नेगमा चेव जानपदा च, ते भवं राजा आमन्तयतं— इच्छामहं, भो महायञ्ञं यजितुं, अनुजानन्तु मे भवन्तो यं मम अस्स दीघरत्तं हिताय [N.117] सुखाया ति।'एवं, भो' ति खो, ब्राह्मण, राजा महाविजितो पुरोहितस्स ब्राह्मणस्स पटिस्सुत्वा ये रञ्ञो जनपदे खत्तिया आनुयन्ता नेगमा चेव जानपदा च ते राजा महाविजितो आमन्तेसि— 'इच्छामहं, भो, महायञ्ञं यजितुं, अनुजानन्तु मे भवन्तो यं मम अस्स दीघरत्तं हिताय [R.137] सुखाया' ति। 'यजतं भवं राजा यञ्ञं, यञ्ञकालो महाराजा' ति। ये रञ्ञो जनपदे अमच्चा पारिसज्जा नेगमा चेव जानपदा च ....पे....ब्राह्मणमहासाला नेगमा चेव जानपदा च....पे०....

"तब, ब्राह्मण! उस राजा महाविजित ने अपने पुरोहित ब्राह्मण को बुलाकर कहा— 'श्रीमन्! आपके बताये हुए उपाय (संविधान) से मेरे राज्य का समग्र दस्युकील (लूट-पाट) समाप्त हो गया। (जनता के सहयोग से) अब मेरे कोष (खजाने) में भी वृद्धि हो गयी है। राज्य की जनता भी....पूर्ववत्....निर्भय हो कर रह रही है। ब्राह्मण! अब हम एक महायज्ञ का अनुष्ठान करना चाह रहे हैं। आप हमें उसकी ऐसी विधि बताइये जो सम्पन्न होने के बाद मेरे लिये चिरकाल तक हितकर एवं सुखकर हो।

(ख) अनुमति लेकर किये जाने वाले चार यज्ञ परिष्कार— १७. (१) 'तो राजन्! आप अपने राज्य के निगम तथा नगरों में जितने भी आपके अनुयायी (सहयोगी) क्षत्रिय हैं उन्हें आप बुलायें और कहें— 'मैं एक महायज्ञ सम्पन्न करना चाहता हूँ, आप लोग मुझे इसकी अनुमति प्रदान करें। जो कि मेरे लिये दीर्घ काल तक हितावह एवं सुखकर होगा। (२) आप के राज्य में जो अमात्य एवं शासन-परिषद् के सदस्य हैं उन्हें बुलाकर उनसे भी कहें....। (३) जो आप के राज्य के गाँव या नगरों में रहने वाले बड़े-बड़े ब्राह्मण हैं उन्हें बुलाकर....। (४) जो आप के राज्य के गाँव या नगरों में रहने वाले बड़े-बड़े धनपति (वैश्य-व्यापारी) हैं उन्हें बुलाकर उन से भी कहें— 'मैं एक महायज्ञ सम्पन्न करना चाहता हूँ। आप लोग मुझे उसकी अनुमति प्रदान करें। यह मेरे लिये चिर काल तक हितावह एवं सुखकर होगा।' "ब्राह्मण! उस राजा महाविजित ने अपने पुरोहित ब्राह्मण को "अच्छा, श्रीमन्!" उत्तर देकर उसके राज्य में उसके अनुयोगी ग्रामवासी या नगरवासी जितने बड़े-बड़े क्षत्रिय थे उन्हें बुलाकर निवेदन किया— 'श्रीमानो! मैं एक बृहत् यज्ञ सम्पन्न करना चाहता हूँ। आप लोग मुझे उस पूर्ण करने की अनुमति प्रदान करें। यही मेरे लिये चिरकाल तक हितकर एवं सुखावह होगा। राजन्! आप यह यज्ञ अवश्य प्रारम्भ करें। ऐसे यज्ञ-सम्पादन का यह अवसर भी है। इसी तरह उसने उसके राज्य में उसके अनुयायी बड़े-बड़े अमात्यों,

गहपतिनेचयिका नेगमा चेव जानपदा च, ते राजा महाविजितो आमन्तेसि—'इच्छामहं, भो, [B.130] महायञ्ञं यजितुं, अनुजानन्तु मे भवन्तो यं मम अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया' ति। 'यजतं भवं राजा यञ्ञं, यञ्ञकालो महाराजा' ति। इतिमे चत्तारो अनुमतिपक्खा तस्सेव यञ्ञस्स परिक्खारा भवन्ति।

(ग) रञ्ञो अट्ठ अङ्गानि पि यञ्ञपरिक्खारा

१८. "राजा महाविजितो अट्ठहङ्गेहि समन्नागतो। (१) उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन; (२) अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो, ब्रह्मवण्णी, ब्रह्मवच्छसी, अखुद्दावकासो दस्सनाय; (३) सीलवा अरियसीली कुसलसीली, कुसलसीलेन समन्नागतो; (४) अड्ढो, महद्धनो महाभोगो, पहूतजातरूपरजतो, पहूतवित्तूपकरणो, पहूतधनधञ्ञो, परिपुण्णकोसकोट्ठागारो; (५) बलवा, चतुरङ्गिनिया सेनाय समन्नागतो, अस्सवाय ओवादपटिकराय सहति मञ्ञे पच्चत्थिके यससा; (६) सद्धो, दायको, दानपति, अनावटद्वारो समणब्राह्मणकपणद्धिकवणिब्बकयाचकानं ओपानभूतो, पुञ्ञानि करोति; (७) बहुस्सुतो, तस्स तस्स सुतजातस्स तस्स तस्सेव खो पन भासितस्स अत्थं जानाति—अयं इमस्स भासितस्स अत्थो, अयं इमस्स भासितस्स अत्थो ति; (८) पण्डितो, वियत्तो, मेधावी, पटिबलो, अतीतानागतपच्चुप्पन्ने अत्थे चिन्तेतुं—राजा महाविजितो इमेहि अट्ठहङ्गेहि समन्नागतो। इति इमानि पि अट्ठङ्गानि तस्सेव यञ्ञस्स परिक्खारा भवन्ति।

(घ) पुरोहितस्स चत्तारि अङ्गानि पि यञ्ञपरिक्खारा

[R.138] १९. "पुरोहितो ब्राह्मणो चतुहङ्गेहि समन्नागतो। (१) उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन;

शासनपरिषद् के सदस्यों....बड़े–बड़े ब्राह्मणों...गृहपति धनिकों को बुलाकर उस राजा महाविजित ने कहा– 'मैं एक वृहत् यज्ञ....यह यज्ञ का सुअवसर है। इस तरह अनुमति से होने वाले यज्ञ के प्रारम्भ करने की ये चार विधियाँ सहायक हैं।

(ग) राजा के आठ अंग (गुण) यज्ञ में सहायक– १८. राजा महाविजित आठ अङ्गों (=धर्मों, गुणों) से युक्त था।(१) वह उभय पक्ष (मातृपक्ष एवं पितृपक्ष) से शुद्ध था, सातवीं पीढ़ी तक उसकी जाति निष्कलङ्क थी।(२) वह दर्शनीय, सुन्दर, मनोहर....देखने में उसके शरीर में कोई कमी दृष्टिगोचर नहीं होती थी।(३) वह शीलवान् आर्यानुरूप शील (आचार) से युक्त ....है।(४) आढ्य, महान् धनवान्, परम ऐश्वर्यसम्पन्न....है। (५) बलवान् चतुरङ्गिणी सेना वाला, शत्रुओं को अपने कीर्तिप्रताप से तपाने वाला (६) धर्म में श्रद्धालु, दानदाता, श्रमण, ब्राह्मण, दरिद्र, ऋषि, भाटचारण, एवं भिक्षुओं के लिये अपने आवास के द्वार खुला रखने वाला, प्यासे को प्याऊ के समान, पुण्यकर्ता है।(७) बहुश्रुत (अनेक शास्त्रों का ज्ञाता), उन उन द्वारा पूछे गये उन–उन प्रश्नों का उचित उत्तर देने वाला तथा दूसरे के कथन को उचित रीति से समझने वाला कि इस भाषण का यह अर्थ है, इस कथन का यही अर्थ है। और (८) पण्डित, चतुर, मेधावी, भूत–भविष्य एवं वर्तमान की बातों को समझने में समर्थ था।

(घ) यज्ञ–सम्पादन के लिये पुरोहित में चार गुण– १९. उस यज्ञ के कराने वाले पुरोहित में भी चार गुण होने चाहियें– (१) वह दोनों कुलों–मातृकुल एवं पितृकुल– से सातवीं पीढ़ी तक सुजात एवं

(२) अज्झायको मन्तधरो तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं [B.131, N.118] साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं पदको वेय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो; (३) सीलवा वुद्धसीली वुद्धसीलेन समन्नागतो; (४) पण्डितो वियत्तो मेधावी पठमो वा दुतियो सुजं पग्गण्हन्तानं—पुरोहितो ब्राह्मणो इमेहि चतूहङ्गेहि समन्नागतो। इति इमानि चत्तारि अङ्गानि तस्सेव यञ्ञस्स परिक्खारा भवन्ति।

(ङ) तिस्सो विधा

२०. "अथ खो, ब्राह्मण, पुरोहितो ब्राह्मणो रञ्ञो महाविजितस्स पुब्बेव यञ्ञा तिस्सो विधा देसेसि—(१) 'सिया खो पन भोतो रञ्ञो महायञ्ञं यिट्ठुकामस्स कोचिदेव विप्पटिसारो—महा वत मे भोगक्खन्धो विगच्छिस्सती ति, सो भोता रञ्ञा विप्पटिसारो न करणीयो। (२) सिया खो पन भोतो रञ्ञो महायञ्ञं यजमानस्स कोचिदेव विप्पटिसारो—महा वत मे भोगक्खन्धो विगच्छती ति, सो भोता रञ्ञा विप्पटिसारो न करणीयो। (३) सिया खो पन भोतो रञ्ञो महायञ्ञं यिट्ठस्स कोचिदेव विप्पटिसारो— महा वत मे भोगक्खन्धो विगतो' ति, सो भोता रञ्ञा विप्पटिसारो न करणीयो' ति। इमा खो, ब्राह्मण, पुरोहितो ब्राह्मणो रञ्ञो महाविजितस्स पुब्बेव यञ्ञा तिस्सो विधा देसेसि।

(च) विप्पटिसारपटिविनोदने दस आकारा

२१. "अथ खो, ब्राह्मण, पुरोहितो ब्राह्मणो रञ्ञो महाविजितस्स पुब्बेव यञ्ञा दसहाकारेहि पटिग्गाहकेसु विप्पटिसारं पटिविनेसि—'आगमिस्सन्ति खो भोतो यञ्ञं पाणातिपातिनो पि, पाणातिपाता पटिविरता पि। ये तत्थ पाणातिपातिनो, तेसं येव तेन। ये तत्थ पाणातिपाता पटिविरता ते आरब्भ यजतं भवं, सज्जतं भवं, मोदतं भवं, चित्तमेवं भवं अन्तरं

निष्कलङ्क होना चाहिये। (२) वेदाध्यायी, मन्त्रज्ञ, त्रिवेदी...महापुरुष लक्षणों का ज्ञाता होना चाहिये। (३) वह शीलवान्....होना चाहिये एवं (४) पण्डित, चतुर मेधावी और यज्ञकर्मविधि के ज्ञान में वहाँ यज्ञ कराने वालों में जो अपना प्रथम या द्वितीय स्थान रखता हो। यों उस यज्ञ के सम्पादयिता पुरोहित में भी ये चार गुण होने चाहियें। यों १. यज्ञ करने वाला, २. अनुमतिदाता, ३. यजमान एवं ४. पुरोहित— ये चार इस यज्ञ के प्रधान अङ्ग होते हैं।

(ङ) तीन विधाएँ (चिन्ताएँ)— २०. "तब, ब्राह्मण, पुरोहित ब्राह्मण ने उस राजा महाविजित को, यज्ञ से पूर्व ही, तीन चिन्ताएँ न करने के लिये सावधान किया— (१) राजन्! यज्ञ प्रारम्भ करने से पूर्व, (यज्ञ) में होने वाले व्यय का अनुमान लगा कर) आप को यह चिन्ता (खेद) नहीं होना चाहिये कि इसमें इतना अधिक धन व्यय हो जायगा। (२) या यज्ञ होते समय (उसमें हो रहे व्यय को देखकर) यह चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि इसमें इतना अधिक व्यय हो रहा है। या फिर (३) यज्ञ समाप्त होने पर (उसमें हुए खर्च को देखकर) यह पश्चात्ताप नहीं करना चाहिये कि इस यज्ञ के कराने में मेरा इतना धन नष्ट हो गया। ब्राह्मण! उस पुरोहित ब्राह्मण ने राजा विजित को यज्ञ प्रारम्भ कराने से, पूर्व ही ये उपर्युक्त तीन चेतावनियाँ दे दी थीं।

(च) विप्रतिसार दूर हटाने के दस उपाय— २१. "तब, ब्राह्मण! उस पुरोहित ब्राह्मण ने राजा महाविजित को यज्ञ प्रारम्भ करने से पूर्व ही दान लेने वालों के प्रति पैदा होने वाले दुर्भाव (विप्रतिसार) हटाने के दस उपाय सुझाये। (उसने कहा—) (१) 'राजन्! आप के इस यज्ञ में दान लेने वाले में हिंसक (प्राणातिपाती)

पसादेतु। आगमिस्सन्ति खो भोतो यञ्ञं अदिन्नादायिनो पि, अदिन्नादाना पटिविरता पि.... पे.... कामेसु मिच्छाचारिनो पि, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता पि....मुसावादिनो पि, मुसावादा पटिविरता पि.... पिसुणवाचिनो पि, पिसुणाय वाचाय पटिविरता पि .... फरुसवाचिनो पि, फरुसाय वाचाय पटिविरता पि.... सम्फप्पलापिनो पि, सम्फप्पलापा पटिविरता पि.... [B .132, R.139] अभिज्झालुनो पि, अनभिज्झालुनो पि .... ब्यापन्नचित्ता पि, अब्यापन्नचित्ता [N.119] पि....मिच्छादिट्ठिका पि सम्मादिट्ठिका पि। ये तत्थ मिच्छादिट्ठिका, तेसं येव तेन। ये तत्थ सम्मादिट्ठिका ते आरब्भ यजतं भवं, सज्जतं भवं, मोदतं भवं, चित्तमेव भवं अन्तरं पसादेतू' ति। इमेहि खो, ब्राह्मण, पुरोहितो ब्राह्मणो रञ्ञो महाविजितस्स पुब्बेव यञ्ञा दसहाकारेहि पटिग्गाहकेसु विप्पटिसारं पटिविनेसि।

(छ) यजमानचित्तसम्पहंसने सोळस आकारा

२२. ''अथ खो, ब्राह्मण, पुरोहितो ब्राह्मणो रञ्ञो महाविजितस्स महायञ्ञं यजमानस्स सोळसहाकारेहि चित्तं सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि—'सिया खो पन भोतो रञ्ञो महायञ्ञं यजमानस्स कोचिदेव वत्ता—राजा खो महाविजितो महायञ्ञं यजति, नो च खो तस्स आमन्तिता खत्तिया आनुयन्ता नेगमा चेव जानपदा च; अथ च पन भवं राजा एवरूपं महायञ्ञं यजती ति, एवं पि भोतो रञ्ञो वत्ता धम्मतो नत्थि। भोता खो पन रञ्ञा आमन्तिता खत्तिया आनुयन्ता नेगमा चेव जानपदा च। इमिनापेतं भवं राजा जानातु। यजतं भवं, सज्जतं भवं, मोदतं भवं, चित्तमेव भवं अन्तरं पसादेतु।

भी, आयेंगे और अहिंसक (प्राणातिपात से विरत) भी। जो वहाँ हिंसक हैं, वे हिंसक होते रहें। आप को उनकी हिंसा से कोई लेना-देना नहीं। हाँ, जो वहाँ अहिंसक आयेंगे उन के सहारे आप अपना यज्ञ सम्पन्न कीजिये, मन में प्रसन्नता लाइये, अपने हृदय को प्रमुदित रखिये। (२) इसी तरह आप के यज्ञ में दान लेते समय चौर भी आयेंगे, चौरी से दूर रहने वाले भी....(३) व्यभिचारी भी, व्यभिचार से दूर रहने वाले भी... (४) असत्यभाषी भी, असत्यभाषण से दूर रहने वाले भी....(५) चुगलखोर भी, चुगलखोरी न करने वाले भी...(६) कठोरभाषी भी, मृदुभाषी भी, वक्तवादी भी, संयम से बोलने वाले भी..... (७) लोभी भी, लोभरहित भी...., (८) द्वेषयुक्तचित्त भी, अद्वेषचित्त भी.... (९) मिथ्यादृष्टिसम्पन्न भी, (१०) सम्यग्दृष्टि भी....। तो जो वहाँ मिथ्यादृष्टि दान लेने वाले होंगे वे अपने में मिथ्या दृष्टि होते रहें। आप को उन की मिथ्यादृष्टि से क्या लेना-देना! आप तो जो वहाँ सम्यकदृष्टि आवें उनके पुण्य के सहारे उस यज्ञ का प्रारम्भ कीजिये, उसे पूर्ण करिये और इस तरह अपने चित्त को प्रमुदित किये रखिये। इस तरह, ब्राह्मण! उस ब्राह्मण पुरोहित ने राजा महाविजित को यज्ञ प्रारम्भ करने से पूर्व ही यज्ञ में याचकों (प्रतिग्राहकों) को दिये दान के कारण मन में होने वाली दुर्भावनाओं को मिटाये रखने के लिये सचेत कर दिया।

(छ) यजमान के चित्त को प्रसन्न रखने के सोलह उपाय—२२. ''तब ब्राह्मण! उस पुरोहित ब्राह्मण ने राजा महाविजित को, जो कि उस महायज्ञ का यजमान होन जा रहा था, चित्त का सन्दर्शन, समादपन (उत्साह) एवं समुत्तेजन किया। (१) सम्भवतः, यज्ञ करते समय, आप (राजा) को कोई यह कहना चाहे कि 'राजा महाविजित महायज्ञ तो कर रहे हैं, किन्तु इन्होंने अपने नैगम जानपद अनुयुक्त (सहयोगी) क्षत्रियों को आमन्त्रित (उन से अनुज्ञा लेना) नहीं किया, फिर भी ये यज्ञ कर रहे हैं। सो अब ऐसा भी धर्म (सचाई) से बोलने वाला आपको कोई नहीं है, क्यों कि आप अपने इन अनुयुक्तों को पहले ही आमन्त्रित कर चुके

'सिया खो पन भोतो रञ्ञो महायञ्ञं यजमानस्स कोचिदेव वत्ता—राजा खो महाविजितो महायञ्ञं यजति, नो च खो तस्स आमन्तिता अमच्चा पारिसज्जा नेगमा चेव जानपदा च .... पे० .... ब्राह्मणमहासाला नेगमा चेव जानपदा च.... पे०.... गहपतिनेचयिका नेगमा चेव जानपदा च, अथ च पन भवं राजा एवरूपं महायञ्ञं यजती ति। एवं ति भोतो रञ्ञो वत्ता धम्मतो नत्थि। भोता खो पन रञ्ञा आमन्तिता गहपतिनेचयिका नेगमा चेव जानपदा च। इमिनापेतं भवं राजा जानातु। यजतं भवं, सज्जतं भवं, मोदतं भवं, चित्तमेव भवं अन्तरं पसादेतु।

'सिया खो पन भोतो रञ्ञो महायञ्ञं यजमानस्स कोचिदेव वत्ता—राजा खो महाविजितो महायञ्ञं यजति, नो च खो उभतो सुजातो मातितो च पितितो च [B.133] संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन, अथ च [R.140] पन भवं राजा एवरूपं महायञ्ञं यजती ति। एवं पि भोतो रञ्ञो वत्ता धम्मतो नत्थि। भवं खो पन राजा उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन। इमिनापेतं भवं राजा जानातु। यजतं भवं, सज्जतं भवं, मोदतं भवं, चित्तमेव भवं अन्तरं पसादेतु।

'सिया खो पन भोतो रञ्ञो महायञ्ञं यजमानस्स कोचिदेव वत्ता—राजा [N.120] खो महाविजितो महायञ्ञं यजति, नो च खो अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो ब्रह्मवण्णी ब्रह्मवच्छसी अखुद्दावकासो दस्सनाय .... पे०.... नो च खो अड्ढो महद्धनो महाभोगो पहूतजातरूपरजतो पहूतवित्तूपकरणो पहूतधनधञ्ञो परिपुण्णकोसकोट्ठागारो .... पे०.... नो च खो बलवा चतुरङ्गिनिया सेनाय समन्नागतो, अस्सवाय ओवादपटिकराय सहति मञ्ञे पच्चत्थिके यससा ....पे०.... नो च खो सद्धो दायको दानपति अनावटद्वारो समणब्राह्मणकपणद्धिकवणिब्बकयाचकानं ओपानभूतो पुञ्ञानि करोति .... पे०.... नो च खो बहुस्सुतो तस्स तस्स सुतजातस्स .... पे०.... नो च खो तस्स तस्सेव खो पन भासितस्स अत्थं जानाति—अयं इमस्स भासितस्स अत्थो अयं इमस्स भासितस्स अत्थो ति .... पे०.... नो च खो पण्डितो वियत्तो मेधावी पटिबलो अतीतानागतपच्चुप्पन्ने अत्थे चिन्तेतुं,

---

हैं। इस बात से भी आप हमारी बात की यथार्थता समझें। आप प्रसन्नतापूर्वक यज्ञ कीजिये, सोत्साह यज्ञ कीजिये और अपने मन को प्रहृष्ट रखिये।

(२) सम्भवतः कोई आप को यह कहने वाला हो जाय कि यह राजा महाविजित यज्ञ तो प्रारम्भ कर रहा है परन्तु अपने नैगम या जानपद अनुयोगी महामात्य एवं शासन परिषद् के सदस्यों को तो पूछा ही नहीं....।

(३) .... सम्भवतः...ब्राह्मण महासालों का तो पूछा ही नहीं....।

(४) .... धनी गृहपतियों (वैश्यों) को तो पूछा ही नहीं....।

(५) .... राजा उभयतः सुजात नहीं है.....।

(६)..... राजा रूपवान्, सुन्दर, मनोहर नहीं है....।

(७) .... राजा आढ्य, महान् वित्त-ऐश्वर्य सम्पन्न नहीं है....

अथ च पन भवं राजा एवरूपं महायञ्ञं यजती ति। एवं पि भोतो रञ्ञो वत्ता धम्मतो नत्थि। भवं खो पन राजा पण्डितो वियत्तो मेधावी पटिबलो अतीतानागतपच्चुप्पन्ने अत्थे चिन्तेतुं। इमिनापेतं भवं राजा जानातु। यजतं भवं, सज्जतं भवं, मोदतं भवं, चित्तमेव भवं अन्तरं पसादेतु।

'सिया खो पन भोतो रञ्ञो महायञ्ञं यजमानस्स कोचिदेव वत्ता—राजा खो महा- [B.134] विजितो महायञ्ञं यजति, नो च ख्वस्स पुरोहितो ब्राह्मणो उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन, [R.141] अथ च पन भवं राजा एवरूपं महायञ्ञं यजती ति। एवं पि भोतो रञ्ञो वत्ता धम्मतो नत्थि। भोतो खो पन रञ्ञो पुरोहितो ब्राह्मणो उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन। इमिनापेतं भवं राजा जानातु। यजतं भवं, सज्जतं भवं, मोदतं भवं, चित्तमेव भवं अन्तरं पसादेतु।

'सिया खो पन भोतो रञ्ञो महायञ्ञं यजमानस्स कोचिदेव वत्ता—राजा खो महाविजितो महायञ्ञं यजति, नो च ख्वस्स पुरोहितो ब्राह्मणो अज्झायको मन्तधरो तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं पदको वेय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो .... पे०.... नो च ख्वस्स पुरोहितो ब्राह्मणो सीलवा वुद्धसीली वुद्धसीलेन समन्नागतो ....पे०.... नो च ख्वस्स पुरोहितो ब्राह्मणो पण्डितो वियत्तो [N.121] मेधावी पठमो वा दुतियो वा सुजं पग्गण्हन्तानं, अथ च पन भवं राजा एवरूपं महायञ्ञं यजती ति। एवं पि भोतो रञ्ञो वत्ता धम्मतो नत्थि। भोतो खो पन रञ्ञो पुरोहितो ब्राह्मणो पण्डितो वियत्तो मेधावी पठमो वा दुतियो वा सुजं पग्गण्हन्तानं। इमिनापेतं भवं राजा जानातु। यजतं भवं, सज्जतं भवं, मोदतं भवं, चित्तमेव भवं अन्तरं पसादेतू' ति। इमेहि खो, ब्राह्मण, पुरोहितो ब्राह्मणो रञ्ञो महाविजितस्स महायञ्ञं यजमानस्स सोळसहि आकारेहि चित्तं सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि।

३. सप्पितेलादिना यञ्ञनिट्ठानं

२३. ''तस्मिं खो, ब्राह्मण, यञ्ञे नेव गावो हञ्ञिंसु, न अजेळका हञ्ञिंसु, न कुक्कुटसूकरा हञ्ञिंसु, न विविधा पाणा सङ्घातं आपज्जिंसु, न रुक्खा छिज्जिंसु यूपत्थाय, न

(८) ....शीलवान्.....
(९) ....बलवती चतुरङ्गिणी सेना से युक्त....।
(१०) ....श्रद्धालु दायक.....।
(११) .... बहुत से शास्त्रों का ज्ञाता.....।
(१२) .... पण्डित, चतुर, मेधावी....।
(१३) .... इस राजा का पुरोहित उभयतः सुजात....।
(१४) .... इस राजा का पुरोहित पण्डित, व्यक्त, मेधावी....।
(१५) .... पुरोहित शीलवान्.....।
(१६) .... इस राजा का पुरोहित पण्डित, व्यक्त, मेधावी....पूर्ववत्....।

दब्भा लूयिंसु बरिहिसत्थाय। ये पिस्स अहेसुं दासा ति वा पेस्सा ति वा कम्मकरा ति वा ते पि न दण्डतज्जिता न भयतज्जिता न अस्सुमुखा रुदमाना परिकम्मानि अकंसु; अथ खो ये [B.135] इच्छिंसु ते अकंसु, ये न इच्छिंसु न ते अकंसु; यं इच्छिंसु तं अकंसु, यं न इच्छंसु न तं अकंसु। सप्पितेलनवनीतदधिमधुफाणितेन चेव सो यञ्ञो निट्ठानमगमासि।

२४. "अथ खो, ब्राह्मण, खत्तिया आनुयन्ता नेगमा चेव जानपदा च, अमच्चा [R.142] पारिसज्जा नेगमा चेव जानपदा च, ब्राह्मणमहासाला नेगमा चेव जानपदा च, गहपतिनेचयिका नेगमा चेव जानपदा च पहूतं सापतेय्यं आदाय राजानं महाविजितं उपसङ्कमित्वा एवमाहंसु— 'इदं, देव, पहूतं सापतेय्यं देवञ्ञेव उद्दिस्साभतं, तं देवो पटिग्गण्हातू' ति। 'अलं, भो, ममा- पिदं पहूतं सापतेय्यं धम्मिकेन बलिना अभिसङ्खतं; तं च वो इतो होतु; च भिय्यो हरथा' ति।

"ते रञ्ञा पटिक्खित्ता एकमन्तं अपक्कम्म एवं समचिन्तेसु—'न खो एतं अम्हाकं पतिरूपं यं मयं इमानि सापतेय्यानि पुनदेव सकानि घरानि पटिहरेय्याम। राजा खो महाविजितो महायञ्ञं यजति, हन्दस्स मयं अनुयागिनो होमा' ति।

२५. "अथ खो, ब्राह्मण, पुरत्थिमेन यञ्ञवाटस्स खत्तिया आनुयन्ता नेगमा चेव जानपदा च दानानि पट्ठपेसुं, दक्खिणेन यञ्ञवाटस्स अमच्चा पारिसज्जा नेगमा चेव जानपदा

"ब्राह्मण! महायज्ञ प्रारम्भ करने वाले राजा महाविजित के चित्त को उसके ब्राह्मण पुरोहित ने इन सोलह विधियों से सन्दृष्ट, सम्प्रहृष्ट एवं समुत्तेजित किया।

३. धृत–तैल आदि से यज्ञ–निष्पत्ति

२३. "उस समय, ब्राह्मण! उस यज्ञ में न गौओं का वध हुआ, न भेड़–बकरी काटीं गयीं, न मुर्गे–सूअरों का वध हुआ, न किसी अन्य प्राणी की हत्या हुई। न यज्ञ–स्तम्भ बनाने के लिये वृक्ष काटे गये, न हविष् के लिये दर्भ उखाड़े गये। इसी तरह उसके दास–दासी, प्रैष्य (नौकर),कर्मकर (चाकर) भी, उस यज्ञ के समय, न दण्ड से, न भय से प्रताड़ित थे कि वे रोते हुए उस राजा का कार्य करें। जहाँ जिसने जो प्रसन्नता से चाहा उसे पूर्ण किया, जहाँ जिसने जो कार्य प्रसन्नतापूर्वक करना नहीं चाहा उस से वह कार्य निष्पन्न नहीं कराया गया। जिसने जो चाहा किया, न चाहा तो नहीं किया। यों घी, तैल, मक्खन (नवनीत) मधु और फाणित (सब = खांड) से ही वह यज्ञ निष्पन्न हो गया।

२४. "तब, ब्राह्मण! उस राजा के नैगम जानपद अनुयुक्तक क्षत्रियों...अमात्य–पार्षदों...धनी ब्राह्मणों....नैचायिक गृहपतियों (नगरश्रेष्ठियों) ने बहुत सा धन–धान्य ले, राजा महाविजित के पास जा कर यों निवेदन किया– 'देव! हम यह साधारण (तुच्छ) सा धन–धान्य, (भेंट के रूप में) यज्ञ हेतु आप के लिये लाये हैं, इसे, देव! स्वीकार करने की कृपा करें।'

"राजा ने कहा– 'नहीं, भाई! मेरे पास भी बहुत सी पितृ–पितामह के समय से धर्मोपार्जित सम्पत्ति है। आप लोगों द्वारा लाया हुआ यह धन आप लोग वापस ले जाँय। अपि तु यहीं से आप लोग (प्रसाद के रूप में) कुछ ले जायें।'

"तब राजा द्वारा उन लोगों का लाया हुआ धन लेने से निषेध कर देने पर उन सब नैगमों जानपदों ने एकान्त में जा कर सोचा–विचारा, परामर्श किया। अन्त में यह निर्णय हुआ कि यज्ञ हेतु लाया गया यह धन वापस अपने घरों में ले जाना उचित नहीं होगा। अब उचित यही होगा कि हम लोग भी इस यज्ञ में राजा के सहभागी बन जाँय। (और यह समग्र धन भी इस यज्ञ की निष्पत्ति में ही लगा दिया जाय।)

२५. "तब, ब्राह्मण! उस यज्ञ स्थान (यज्ञवाट) के पूर्वी छोर से...क्षत्रियों ने, दक्षिणी छोर से...

[N.122] च दानानि पट्ठपेसुं, पच्छिमेन यञ्ञवाटस्स ब्राह्मणमहासाला नेगमा चेव जानपदा च दानानि पट्ठपेसुं, उत्तरेन यञ्ञवाटस्स गहपतिनेचयिका नेगमा चेव जानपदा च दानानि पट्ठपेसुं।

"तेसु पि खो, ब्राह्मण, यञ्ञेसु नेव गावो हञ्ञिंसु, न अजेळका हञ्ञिंसु, न कुक्कुटसूकरा हञ्ञिंसु, न विविधा पाणा सङ्घातं आपज्जिंसु, न रुक्खा छिज्जिंसु यूपत्थाय, न दब्भा लूयिंसु बरिहिसत्थाय। ये पि नेसं अहेसु दासा ति वा पेस्सा ति वा कम्मकरा ति वा, ते पि न दण्डतज्जिता न भयतज्जिता न अस्सुमुखा रुदमाना परिकम्मानि अकंसु। अथ खो ये इच्छिंसु ते अकंसु, ये न इच्छिंसु न ते अकंसु; यं इच्छिंसु तं अकंसु, यं न इच्छिंसु न तं अकंसु। सप्पितेलनवनीतदधिमधुफाणितेन चेव ते यञ्ञा निट्ठानमगमंसु।

[B.136, R.143] "इति चत्तारो च अनुमतिपक्खा, राजा महाविजितो अट्ठहङ्गेहि समन्नागतो, पुरोहितो ब्राह्मणो चतूहङ्गेहि समन्नागतो; तिस्सो च विधा—अयं वुच्चति, ब्राह्मण, तिविधा यञ्ञसम्पदा सोळसपरिक्खारा" ति।

२६. एवं वुत्ते, ते ब्राह्मणा उन्नादिनो उच्चासद्दमहासद्दा अहेसुं—"अहो यञ्ञो, अहो यञ्ञसम्पदा" ति! कूटदन्तो पन ब्राह्मणो तुण्हीभूतो व निसिन्नो होति। अथ खो ते ब्राह्मणा कूटदन्तं ब्राह्मणं एतदवोचुं—"कस्मा पन भवं कूटदन्तो समणस्स गोतमस्स सुभासितं सुभासिततो नाब्भनुमोदती" ति? "नाहं, भो, समणस्स गोतमस्स सुभासितं सुभासिततो नाब्भनुमोदामि। मुद्धा पि तस्स विपतेय्य यो समणस्स गोतमस्स सुभासितं सुभासिततो नाब्भनुमोदेय्य। अपि च मे, भो, एवं होति—समणो गोतमो न एवमाह—'एवं मे सुतं' ति वा 'एवं अरहति भवितुं' ति वा; अपि च समणो गोतमो—'एवं तदा आसि, इत्थं तदा आसि' त्वेव भासति। तस्स मय्हं भो

अमात्य एवं शासन पार्षदों ने, पश्चिमी छोर से... ब्राह्मणों ने और उत्तरी छोर से वणिक् गृहपतियों ने दान देना प्रारम्भ किया।

"उन (जनता द्वारा निष्पन्न) यज्ञविधियों में न गोहत्या हुई, न भेड़, बकरी...पूर्ववत्...घी, तैल, नवनीत, दही, मधु, एवं खाण्ड से समग्र कार्य निष्पन्न हुए।

"यों, चार अनुमति पक्ष, आठ अंगों से युक्त राजा महाविजित, चार अङ्गों से युक्त पुरोहित ब्राह्मण यह (४ + ८ + ४=१६) सोलह परिष्कार और तीन विधियाँ हुईं। ब्राह्मण! इसे कहते हैं– तीन विधाओं वाली सोलह परिष्कार युक्त यज्ञ सम्पदा हुई।

२६. (भगवान् द्वारा) ऐसे यज्ञ के विधान के विषय में ऐसा बताये जाने पर, उन ब्राह्मणों ने प्रसन्न हो कर ऊँचे शब्दों में जोर से कहा–"अहो यह यज्ञविधि और अहो यह यज्ञसम्पदा!" परन्तु कूटदन्त ब्राह्मण फिर भी चुप ही बैठा रहा। तब उन उपस्थित ब्राह्मणों ने कूटदन्त ब्राह्मण से पूछा–"आप कूटदन्त ब्राह्मण भगवान् के इस सुभाषित का अनुमोदन किस कारण नहीं कर रहे हैं?" "कूटदन्त ने कहा– "मैं भगवान् के इस सुभाषित का सुभाषित के रूप में अनुमोदन नहीं कर रहा हूँ– ऐसा नहीं है। अरे! उस का तो सिर ही शरीर से अलग हो जायगा जो भगवान् के सुभाषित का सुभाषित के रूप में अनुमोदन न करें। परन्तु मुझको तो इस समय यह विचार हो रहा है कि श्रमण गौतम ने यह यज्ञविधि बताते समय हम लोगों को यह नहीं कहा कि– 'ऐसा मैने सुना है' या 'ऐसा भी होता है'। अपितु इन्होंने अपने इस समग्र सुभाषित में स्थान–स्थान पर यही कहा कि 'उस समय ऐसा था', 'उस समय ऐसा था'। यह सुन कर मुझे ऐसा लगा कि– 'अवश्य श्रमण गौतम उस यज्ञ में या तो राजा महाविजित थे, या फिर पुरोहित ब्राह्मण! इस

एवं होति—'अद्धा समणो गोतमो तेन समयेन राजा वा अहोसि महाविजितो यञ्ञस्सामि पुरोहितो वा ब्राह्मणो तस्स यञ्ञस्स याजेता' ति। अभिजानाति पन भवं गोतमो एवरूपं यञ्ञं यजित्वा वा याजेत्वा वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिता'' ति? ''अभिजानामहं, ब्राह्मण, एवरूपं यञ्ञं यजित्वा वा याजेत्वा वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जिता। अहं तेन समयेन पुरोहितो ब्राह्मणो अहोसिं तस्स यञ्ञस्स याजेता'' ति।

४. महानिसंसतरा यञ्ञा

२७. ''अत्थि पन, भो गोतम, अञ्ञो यञ्ञो इमाय तिविधाय यञ्ञसम्पदाय [N.123] सोळसपरिक्खाराय अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा'' ति?

''अत्थि खो, ब्राह्मण, अञ्ञो यञ्ञो इमाय तिविधाय यञ्ञसम्पदाय [B.137, R.144] सोळसपरिक्खाराय अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा'' ति?

''कतमो पन सो, भो गोतम, यञ्ञो इमाय तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळसपरिक्खाराय अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा'' ति?

''यानि खो पन तानि, ब्राह्मण, निच्चदानानि अनुकूलयञ्ञानि सीलवन्ते पब्बजिते उद्दिस्स दिय्यन्ति; अयं खो, ब्राह्मण, यञ्ञो इमाय तिविधाय यञ्ञसम्पदाय ,सोळसपरिक्खाराय अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा'' ति।

''को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो येन तं निच्चदानं अनुकूलयञ्ञं इमाय तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळसपरिक्खाराय अप्पट्ठतरं च अप्पसमारम्भतरं च महप्फलतरं च महानिसंसतरं चा'' ति?

विषय में माननीय श्रमण गौतम ही वास्तविकता जानते हैं कि मनुष्य ऐसा यज्ञ कर के या करा के उस देहपात के बाद मरणानन्तर सुगति स्वर्गलोक में उत्पन्न होता है।'' ''हाँ, ब्राह्मण! मैं जानता हूँ कि वैसा यज्ञ करके या करा के देहपात के बाद मनुष्य मरणानन्तर सुगति स्वर्ग लोक में ही उत्पन्न होता है। उस समय मैं उस यज्ञ का कराने वाला (याजयिता) पुरोहित ब्राह्मण था।''

४. अत्यधिक माहात्म्य वाले दूसरे यज्ञ

२७. ''भो गौतम! क्या इस सोलह परिष्कार वाली त्रिविध यज्ञसम्पदा से भी कम सामग्री लगने वाला कम क्रिया (= समारम्भ) वाला किन्तु अधिक फलदायी या अधिक माहात्म्य (=प्रशंसा) वाला कोई और भी यज्ञ है क्या?

''हाँ, ब्राह्मण! इस से भी...अधिक फलदायी एवं अधिक माहात्म्य वाला अन्य यज्ञ है।''

''भो गौतम! इस त्रिविध यज्ञसम्पदा और सोलह परिष्कार वाली यज्ञविधि से अन्य कौन सा यज्ञ...माहात्म्य वाला है?''

१. दान यज्ञ– ''ब्राह्मण! वह जो प्रत्येक कुल में शीलवान् (सदाचारी) प्रव्रजितों के लिये नित्यदान किये जाते हैं यह (दानयज्ञ) उक्त त्रिविध यज्ञ सम्पदा....माहात्म्य वाली है।''

''भो गौतम! क्या हेतु या क्या प्रत्यय है कि वह नित्य दान इस विविध....माहात्म्यवाली है?''

"न खो, ब्राह्मण, एवरूपं यञ्ञं उपसङ्कमन्ति अरहन्तो वा अरहत्तमग्गं वा समापन्ना। तं किस्स हेतु? दिस्सन्ति हेत्थ, ब्राह्मण, दण्डप्पहारा पि गलग्गहा पि। तस्मा एवरूपं यञ्ञं न उपसङ्कमन्ति अरहन्तो वा अरहत्तमग्गं वा समापन्ना। यानि खो पन तानि, ब्राह्मण, निच्चदानानि अनुकूलयञ्ञानि सीलवन्ते पब्बजिते उद्दिस्स दिय्यन्ति; एवरूपं खो, ब्राह्मण, यञ्ञं उपसङ्कमन्ति अरहन्तो वा अरहत्तमग्गं वा समापन्ना। तं किस्स हेतु? न हेत्थ, ब्राह्मण, दिस्सन्ति दण्डप्पहारा पि गलग्गहा पि। तस्मा एवरूपं यञ्ञं उपसङ्कमन्ति अरहन्तो वा अरहत्तमग्गं वा समापन्ना। अयं खो, ब्राह्मण, हेतु अयं पच्चयो येन तं निच्चदानं अनुकूलयञ्ञं इमाय तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळसपरिक्खाराय अप्पट्ठतरं च अप्पसमारम्भतरं च महप्फलतरं च महानिसंसतरं चा" ति।

[N.124]२८. "अत्थि पन, भो गोतम, अञ्ञो यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळसपरिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च [R.145] महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा" ति?

[B.138] "अत्थि खो, ब्राह्मण, अञ्ञो यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळसपरिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा" ति।

"कतमो पन सो, भो गोतम, यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळसपरिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा" ति?

"यो खो, ब्राह्मण, चातुद्दिसं सङ्घं उद्दिस्स विहारं करोति; अयं खो, ब्राह्मण, यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळसपरिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा" ति।

२९. "अत्थि पन, भो गोतम, अञ्ञो यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय

"ब्राह्मणि! अभी ऊपर बताये यज्ञों में ज्ञानी एवं परिव्राजक (ज्ञानमार्गरूढ़) जन सम्मिलित नहीं हुआ करते; क्योंकि वहाँ भीड़ (जन-समूह) को नियन्त्रित करने के लिये कभी-कभी लाठियाँ भी चलायी जाती हैं, गले से पकड़ कर पीछे भी ढकेल दिया जाता है। इससे ऐसी यज्ञविधियों में ज्ञानी एवं ज्ञानमार्गारूढ़ (परिव्राजक) जन सम्मिलित नहीं होते, परन्तु (इसके विपरीत) ब्राह्मण! नित्य दान एवं उनके अनुकूल यज्ञ हैं उन में वे लोग सम्मिलित हो भी जाया करते हैं; क्योंकि इन (नित्यदानादि) यज्ञों में लाठियाँ चलने या गला पकड़ कर पीछे ढकेले जाने का भय नहीं रहता। ब्राह्मण! यही कारण है यही प्रत्यय है कि ये नित्यदान या अनुकूल यज्ञ उक्त यज्ञसम्पदा से कम खर्च वाले, कम क्रिया वाले एवं अधिक फल-दायी एवं अधिक माहात्म्य वाले हैं।"

२. सङ्घ के लिये विहार-निर्माण-२८. "भो गौतम! कोई अन्य यज्ञ भी इस उपर्युक्त त्रिविध यज्ञविधि एवं नित्यदान...कम खर्च वाला...अधिक माहात्म्य वाला है?"

"हाँ, हे ब्राह्मण! ऐसा दूसरा भी यज्ञ जो उक्त त्रिविध यज्ञ विधि....नित्यदान...माहात्म्य वाला है।"

"भो गौतम! वह कौन सा... है?"

"ब्राह्मण! जो कि यह चारों दिशाओं आये भिक्षु-सङ्घों को (ठहरने एवं साधना के) उद्देश्य से बनवाया जाने वाला विहार (भिक्षुशाला); यही कार्य उक्त दोनों यज्ञविधियों से कम खर्चीला है....अधिक माहात्म्य वाला है।

सोळसपरिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन इमिना च विहारदानेन अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा'' ति?

''अत्थि खो, ब्राह्मण, अञ्ञो यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळस-परिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन इमिना च विहारदानेन अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा'' ति।

''कतमो पन सो, भो गोतम, अञ्ञो यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळसपरिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन इमिना च विहारदानेन अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा'' ति?

''यो खो, ब्राह्मण, पसन्नचित्तो बुद्धं सरणं गच्छति, धम्मं सरणं गच्छति, सङ्घं सरणं गच्छति; अयं खो, ब्राह्मण, यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळसपरिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन इमिना च विहारदानेन अप्पट्ठतरो च अप्प-[R.146] समारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा'' ति।

३०. ''अत्थि पन, भो गोतम, अञ्ञो यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञ-[B.139] सम्पदाय सोळसपरिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन इमिना च [N.125] विहारदानेन इमेहि च सरणगमनेहि अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा'' ति?

''अत्थि खो, ब्राह्मण, अञ्ञो यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळस-परिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन इमिना च विहारदानेन इमेहि च सरणगमनेहि अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा'' ति।

''कतमो पन सो, भो गोतम, यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळस-परिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन इमिना च विहारदानेन इमेहि च सरणगमनेहि अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा'' ति?

---

३. त्रिशरणयज्ञ– २९. ''भो गौतम! क्या कोई और भी यज्ञ इन उपर्युक्त तीनों विधियों से कम खर्च वाला...अधिक माहात्म्य वाला है?''

''हाँ, हे ब्राह्मण! इन तीनों से भी कर्म खर्च वाला....अधिक माहात्म्य वाला एक अन्य यज्ञ भी है।''

''भो गौतम! वह कौन सा सरल यज्ञ है जो इन तीनों उपर्यु क्त यज्ञों से भी कम खर्चीला....अधिक माहात्म्य वाला है।''

''ब्राह्मण! जब कोई मुक्ति (निर्वाण) का अभिलाषुक साधक प्रसन्न चित्त से बुद्ध की शरण में जाता है, (उनके बताये) धर्म की शरण में जाता है, (उनके द्वारा स्थापित भिक्षु–) सङ्घ की शरण में जाता है, तो ब्राह्मण! यह यज्ञ उक्त त्रिविध यज्ञसम्पदा एवं सोलह परिष्कार वाली यज्ञसम्पदा, नित्यदान, एवं सङ्घ के उद्देश्य से भवन–निर्माण रूप यज्ञ की अपेक्षा कम खर्च वाला....एवं अधिक माहात्म्य वाला है।''

४. शिक्षापद–पाठ्ययज्ञ– ३०. ''गो गौतम! इन ऊपर बताये गये चारों यज्ञों से भी कम क्रिया वाला, कम खर्च वाला भी कोई अन्य यज्ञ है, जो अधिक गुण (फल) एवं अधिक महत्वशाली हो?''

ब्राह्मण! जो साधक प्रसन्नचित्त हो कर भगवदुक्त शिक्षापदों (के पाठ) को हृदयङ्गम करता है; जैसे– प्राणातिपात से विरत रहना, अदत्तादान (चोरी) से विरत रहना, मृषावाद (असत्य भाषण) से विरत रहना, सुरा, मैरेय–मद्य एवं ऐसे ही अन्य प्रमाद स्थानों से दूर रहना आदि– ब्राह्मण! यह यज्ञ अन्य

"यो खो, ब्राह्मण, पसन्नचित्तो सिक्खापदानि समादियति—पाणातिपाता वेरमणिं, अदिन्नादाना वेरमणिं, कामेसुमिच्छाचारा वेरमणिं, मुसावादा वेरमणिं, सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणिं : अयं खो, ब्राह्मण, यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळसपरिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन इमिना च विहारदानेन इमेहि च सरणगमनेहि अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा" ति।

३१. "अत्थि पन, भो गोतम, अञ्ञो यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळसपरिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन इमिना च विहारदानेन इमेहि च सरणगमनेहि इमेहि च सिक्खापदेहि अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा" ति?

"अत्थि खो, ब्राह्मण, अञ्ञो यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळसपरिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन इमिना च विहारदानेन इमेहि च सरणगमनेहि [B.140] इमेहि च सिक्खापदेहि अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा" ति।

"कतमो पन सो, भो गोतम, यञ्ञो इमाय च तिविधाय यञ्ञसम्पदाय सोळस- [R.147] परिक्खाराय इमिना च निच्चदानेन अनुकूलयञ्ञेन इमिना च विहारदानेन इमेहि च सरणगमनेहि इमेहि च सिक्खापदेहि अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा" ति?

३२. "इध, ब्राह्मण, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो....पे०....*(यथा सामञ्ञफले, एवं वित्थारेतब्बं।)* एवं खो, ब्राह्मण, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति....पे०...पठमं [N.126] झानं उपसम्पज्ज विहरति : अयं खो, ब्राह्मण, यञ्ञो पुरिमेहि यञ्ञेहि अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो च...पे०...दुतियं झानं....ततियं झानं...चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति : अयं पि खो, ब्राह्मण, यञ्ञो पुरिमेहि यञ्ञेहि अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो चा ति...पे०...ञाणदस्सनाय चित्तं

(पूर्वोक्त) त्रिविधयज्ञ सम्पदा एवं षोडश परिष्कार वाली यज्ञविधि, वित्तदान, विहार-निर्माण, त्रिशरणयज्ञ इन यज्ञों से भी कम खर्च...अधिक माहात्म्य वाला है।

५. शीलयज्ञ– ३१. "भो गौतम! दूसरा भी कोई यज्ञ इन उक्त यज्ञों से कम खर्चीला....अधिक माहात्म्य वाला है?"

"हाँ ब्राह्मण! दूसरा यज्ञ भी इन उक्त यज्ञों से कम खर्च वाला....एवं अधिक माहात्म्य वाला है।"

"भो गौतम! वह कौन सा यज्ञ... है?"

३२. "यहाँ , ब्राह्मण ! तथागत लोक में उत्पन्न (अवतरित) होते हैं अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध बनकर....पूर्ववत्.... *(श्रामण्यफलसुत्त में आगत पाठ पृ०६७ से पृ० ८१ तक विस्तार कर लें।)* यों,ब्राह्मण वह भिक्षु शीलसम्पन्न होता है....प्रथम ध्यान को प्राप्त कर हो कर साधना करता है—यह ब्राह्मण....। द्वितीय ध्यान ....तृतीय ध्यान....चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है—ब्राह्मण ! यह यज्ञ भी कम खर्चीला एवं....अधिक माहात्म्य वाला है ।

अभिनीहरति अभिनिन्नामेति: अयं पि खो, ब्राह्मण, यञ्ञो पुरिमेहि यञ्ञेहि अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो च।

....पे०....नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति : अयं पि खो, ब्राह्मण, यञ्ञो पुरिमेहि यञ्ञेहि अप्पट्ठतरो च अप्पसमारम्भतरो च महप्फलतरो च महानिसंसतरो च। इमाय च, ब्राह्मण, यञ्ञसम्पदाय अञ्ञा यञ्ञसम्पदा उत्तरितरा वा पणीततरा वा नत्थी'' ति।

५. कूटदन्तउपासकत्तपटिवेदना

३३. एवं वुत्ते, कूटदन्तो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच— ''अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि [B.141] दक्खन्ती ति; एवमेव भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे [R.148] पाणुपेतं सरणं गतं। एसाहं, भो गोतम, सत्त च उसभसतानि सत्त च वच्छतरसतानि सत्त च वच्छतरीसतानि सत्त च अजसतानि सत्त च उरब्भसतानि मुञ्चामि, जीवितं देमि। हरितानि चेव तिणानि खादन्तु, सीतानि च पानीयानि पिवन्तु, सीतो च नेसं वातो उपवायतू'' ति।

३४. अथ खो भगवा कूटदन्तस्स ब्राह्मणस्स अनुपुब्बिं कथं कथेसि, सेय्यथीदं— दानकथं सीलकथं सग्गकथं; कामानं आदीनवं ओकारं सङ्किलेसं नेक्खम्मे च आनिसंसं पकासेसि। यदा भगवा अञ्ञासि कूटदन्तं ब्राह्मणं कल्लचित्तं मुदुचित्तं विनीवरणचित्तं उदग्गचित्तं पसन्नचित्तं, अथ या बुद्धानं सामुक्कंसिका धम्मदेसना तं पकासेसि— दुक्खं समुदयं निरोधं मग्गं। सेय्यथापि नाम सुद्धं वत्थं अपगतकाळकं सम्मदेव रजनं पटिग्गण्हेय्य, एवमेव कूटदन्तस्स

---

६. **समाधियज्ञ**— ''भो गोतम! क्या कोई इस यज्ञ से भी कोई अन्य यज्ञ....अधिक माहात्म्य वाला है?'' ''हाँ है, ब्राह्मण!....जब कोई साधक भिक्षु ज्ञानदर्शन के लिये स्वचित्त को झुकाता है, नँवाता है, ब्राह्मण! यह यज्ञ भी....अधिक माहात्म्य वाला है।

६. **प्रज्ञायज्ञ**— ''भो गौतम! क्या कोई इस यज्ञ से भी अल्पसामग्री लगने वाला एवं ....अधिक माहात्म्य वाला है? ''हाँ है, ब्राह्मण! .... जब कोई साधक भिक्षु.... 'मेरे लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह गया है'—यह जान लेता है.... तो ब्राह्मण! यह यज्ञ पूर्वोक्त सभी यज्ञों से अल्पसामग्रीक एवं....अधिक माहात्म्य वाला है। ब्राह्मण! इस यज्ञसम्पदा की अपेक्षा दूसरी कोई यज्ञ सम्पदा अल्पसामग्री वाली या इससे बढ़ कर अधिक महात्म्य वाली है।

५. कूटदन्त द्वारा भगवान् का उपासकत्व

३३. भगवान् द्वारा (यज्ञ के सम्बन्ध में) ऐसा उपदेश किये जाने पर कूटदन्त ब्राह्मण। भगवान् से सहर्ष बोला— आश्चर्य है, हे गौतम! अद्भुत है, हे गौतम। .... पूर्ववत् .... आज से मुझे यावज्जीवन अपना उपासक स्वीकार करे। भो गौतम ! यह लीजिये मैं अब इन सात सौ बैलों को, सात सौ बछड़ों को, सात सौ बछड़ियों को, सात सौ भेड़ एवं बकरियों को भी मुक्त करता हूँ। ये अब (अपने मनचाहे) हरे घास खायें, ठण्डा पानी पीएँ, ठण्डी हवा का आनन्द लें।

३४. तब भगवान् ने कूटदन्त ब्राह्मण को धर्मानुकूल आनुपूर्वी कथा कही; जैसे—दानकथा, शील-कथा, स्वर्गकथा; कामभोगविषयक दोष, उनके दुर्गुण (अवकार), उनसे होने वाले दुःख कहे और इसके विपरीत नैष्कर्म्य का माहात्म्य भी बतलाया। जब भगवान् ने जान लिया कि कूटदन्त ब्राह्मण का

ब्राह्मणस्स तस्मिं येव आसने विरजं वीतमलं धम्मचक्खुं उदपादि— ''यं किञ्चि समुदयधम्मं सब्बं तं निरोधधम्मं'' ति।

[N.127] ३५. अथ खो कूटदन्तो ब्राह्मणो दिट्ठधम्मो पत्तधम्मो विदितधम्मो परियोगाळ्हधम्मो तिण्णविचिकिच्छो विगतकथङ्कथो वेसारज्जप्पत्तो अपरप्पच्चयो सत्थुसासने भगवन्तं एतदवोच— ''अधिवासेतु मे भवं गोतमो स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना'' ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

३६. अथ खो कूटदन्तो ब्राह्मणो भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो कूटदन्तो ब्राह्मणो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके यञ्ञवाटे पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा भगवतो कालं आरोचापेसि— ''कालो, भो गोतम; निट्ठितं भत्तं'' ति।

[B.142] ३७. अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेन येन कूटदन्तस्स ब्राह्मणस्स यञ्ञवाटो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। [R.149] अथ खो कूटदन्तो ब्राह्मणो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो कूटदन्तो ब्राह्मणो भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो कूटदन्तं ब्राह्मणं भगवा धम्मिया कथाय सन्दस्सेत्वा समादपेत्वा समुत्तेजेत्वा सम्पहंसेत्वा उट्ठायासना पक्कामी ति।

कूटदन्तसुत्तं निट्ठितं पञ्चमं।।

चित्त (उक्त कथाओं के प्रभाव से) प्रसन्न हो चुका है, मृदु हो चुका है, विकाररहित हो चुका है, उदग्र एवं प्रहृष्ट हो चुका है तब उसे आर्यसत्यचतुष्टय का—जैसे दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध एवं दुःखनिरोध की ओर ले जाने वाले मार्ग का—उपदेश किया। जैसे साफ सुथरे एवं निर्मल वस्त्र पर शीघ्र ही कोई रंग चढ़ जाता है वैसे ही उस कूटदन्त ब्राह्मण को, उसी आसन पर बैठे ही बैठे यह धर्म—चक्षु (धर्मज्ञान) उत्पन्न हो गया—कि 'जो कुछ भी उत्पत्तिधर्मा (वस्तुएँ) है वे सब नाशवान् हैं।'

३५. तब कूटदन्त ब्राह्मण ने धर्म का साक्षात्कार कर लेने पर, उसे हृदयङ्गम कर लेने पर, जान लेने पर, उसका अवगाहन कर लेने पर, सभी तरह के संशय—सन्देह नष्ट हो जाने पर, कुछ भी कहने को शेष न रह जाने पर *(विगतकथङ्कथी)* उस धर्म को समझने—समझाने का वैशारद्य (निपुणता) प्राप्त कर लेने पर एकमात्र शास्त्र के शासन (धर्मोपदेश) में दृढ़ आस्था (विश्वास) सिद्ध हो जाने पर भगवान् को यों निवेदन किया—'भगवन्! आप गौतम कल का भोजन समग्र भिक्षुसङ्घ के साथ मेरे यहाँ स्वीकार करें'। भगवान् ने मौन भाव से स्वीकार किया।

३६. तब कूटदन्त ब्राह्मण ने भगवान् के चुप रहने से उन की स्वीकृति जानकर आसन से उठ कर भगवान् को प्रणाम एवं प्रदक्षिणा कर वहाँ से प्रस्थान किया। दूसरे दिन कूटदन्त ब्राह्मण ने अपनी उस यज्ञ भूमि पर सुन्दर एवं मनोहर नानाविध खाद्य, भोज्य पदार्थ बनवा कर भगवान् के सम्मुख जा कर उनसे यों निवेदन किया—''भो गौतम! भोजन तय्यार है। अब आप जैसा उचित समझें।''

३७. तब भगवान् प्रातः काल .... प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान हुए। तब कूटदन्त ब्राह्मण .... एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे कूटदन्त ब्राह्मण को धार्मिक कथा कह कर धर्मपालन में उत्साहित किया। कुछ समय बाद भगवान् आसन से उठ कर (अपने साधनास्थल की तरफ) चल दिये।।

पाँचवाँ कूटदन्तसूत्र समाप्त।।

६. महालिसुत्तं

१. भगवन्तं दस्सनाय उपसङ्कमिंसु

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति [N.128, B.143, R.150] महावने कूटागारसालायं। तेन खो पन समयेन सम्बहुला कोसलका च ब्राह्मणदूता मागधका च ब्राह्मणदूता वेसालियं पटिवसन्ति केनचिदेव करणीयेन। अस्सोसुं खो ते कोसलका च ब्राह्मणदूता मागधका च ब्राह्मणदूता—"समणो खलु, भो, गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा, अरहं, सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो, लोकविदू, अनुत्तरो, पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो, भगवा। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती' " ति।

२. अथ खो ते कोसलका च ब्राह्मणदूता मागधका च ब्राह्मणदूता येन महावनं कूटागारसाला तेनुपसङ्कमिंसु। तेन खो पन समयेन आयस्मा नागितो भगवतो उपट्ठाको होति। अथ खो ते कोसलका च ब्राह्मणदूता मागधका च ब्राह्मणदूता येनायस्मा नागितो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नागितं एतदवोचुं—"कहं नु खो, भो नागित, एतरहि सो भवं गोतमो विहरति? दस्सनकामा हि मयं तं भवन्तं गोतमं" ति।

"अकालो खो, आवुसो, भगवन्तं दस्सनाय। पटिसल्लीनो भगवा" ति। अथ [R.151] खो ते कोसलका च ब्राह्मणदूता मागधका च ब्राह्मणदूता तत्थेव एकमन्तं निसीदिंसु—'दिस्वा व मयं तं भवन्तं गोतमं गमिस्सामा' ति।

---

६. महालिसूत्र

१. कोसल और मागध ब्राह्मणों का भगवान् के दर्शनहेतु जाना

१. ऐसा मैने सुना (है कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय बहुत से कौसलवासी एवं मगधवासी ब्राह्मणदूत किसी कार्यविशेष से वैशाली में निवास कर रहे थे। उन कौशल एवं मागध ब्राह्मणदूतों ने (भी) सुना—"शाक्यपुत्र श्रमण गौतम शाक्य कुल से प्रव्रजित होकर वैशाली के महावन की कूटागारशाला में विराजमान हैं। उन श्रमण गौतम के उद्देश्य से जनता में यह सम्यक्सम्बुद्ध ....परिशुद्ध धर्म का उपदेश करते हैं। ऐसे साधु जनों का दर्शन सभी के लिये कल्याणकर होता है।"

२. तब वे कौसलक एवं मागध ब्राह्मणदूत महावन की उस कूटागारशाला पर पहुँचे। उस समय आयुष्मान् नागित भगवान् के उपट्ठाक रूप में वहाँ रहते थे। तब उन ब्राह्मणदूतों ने आयुष्मान् नागित के पास जाकर पूछा—"भो नागित! इस समय पूज्य गौतम क्या कर रहे हैं? हम उनके दर्शन करना चाहते हैं।"

"भगवान् के दर्शन (उनसे बातचीत) का यह उचित समय नहीं है; क्योंकि वे इस समय समाधि में बैठे हैं।" तब वे ब्राह्मणदूत यह सोच कर एक तरफ बैठ गये कि भगवान् के दर्शन करके ही पुनः वैशाली नगर में लौटेंगे।

[B.144] ३. ओट्ठद्धो पि लिच्छवी महतिया लिच्छवीपरिसाय सद्धिं येन महावनं कूटागारसाला येनायस्मा नागितो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नागितं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ओट्ठद्धो पि लिच्छवी आयस्मन्तं नागितं एतदवोच—"कहं नु खो, भन्ते नागित, एतरहि सो भगवा विहरति अरहं सम्मासम्बुद्धो? दस्सनकामा हि मयं तं भगवन्तं [N.129] अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं" ति। "अकालो खो, महालि, भगवन्तं दस्सनाय। पटिसल्लीनो भगवा" ति। ओट्ठद्धो पि लिच्छवी तत्थेव एकमन्तं निसीदि—"दिस्वा व अहं तं भगवन्तं गमिस्सामि अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं" ति।

४. अथ खो सीहो समणुद्देसो येनायस्मा नागितो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नागितं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सीहो समणुद्देसो आयस्मन्तं नागितं एतदवोच—"एते, भन्ते कस्सप, सम्बहुला कोसलका च ब्राह्मणदूता मागधका च ब्राह्मणदूता इधूपसङ्कन्ता भगवन्तं दस्सनाय; ओट्ठद्धो पि लिच्छवी महतिया लिच्छवीपरिसाय सद्धिं इधूपसङ्कन्तो भगवन्तं दस्सनाय। साधु, भन्ते कस्सप, लभतं एसा जनता भगवन्तं दस्सनाया" ति।

"तेन हि, सीह, त्वञ्ञेव भगवतो आरोचेही" ति। "एवं, भन्ते" ति खो सीहो समणुद्देसो आयस्मतो नागितस्स पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो सीहो समणुद्देसो भगवन्तं एतदवोच—"एते, भन्ते, सम्बहुला कोसलका च ब्राह्मणदूता मागधका च ब्राह्मणदूता इधूपसङ्कन्ता भगवन्तं [R.152] दस्सनाय। ओट्ठद्धो पि लिच्छवी महतिया लिच्छवीपरिसाय सद्धिं इधूपसङ्कन्तो भगवन्तं दस्सनाय। साधु, भन्ते, लभतं एसा जनता भगवन्तं दस्सनाया" ति।

"तेन हि, सीह, विहारपच्छायायं आसनं पञ्ञपेही" ति।

---

३. (उधर) ओट्ठद्ध (=अवस्तब्ध) नामक लिच्छवि भी अपनी लिच्छविजाति के बहुत से साथियों के साथ महावन की कूटागार में आयुष्मान् नागित के पास पहुँच कर उसने आयुष्मान् नागित से पूछा—"भन्ते नागित! इस समय भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध कहाँ विराजमान् हैं। हम उन भगवान् के दर्शन करना चाहते हैं।

४. तब सिंह (सीह) नामक श्रमण भाव का प्रत्याशी (समणुद्देस) आयुष्मान् नागित के पास पहुँचा, पहुँच कर आयुष्मान् नागित को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस श्रमणभाव–प्रत्याशी सिंह ने आयुष्मान् नागित से यों कहा—"भन्ते काश्यप! ये बहुत से कोसल देशवासी एवं मागधदेशवासी ब्राह्मणदूत यहाँ आकर भगवान् के दर्शनहेतु प्रतीक्षा कर रहे हैं। उधर ओट्ठद्ध लिच्छवि भी अपने बहुत से साथी लिच्छवियों के साथ बैठे भगवान् के दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अच्छा हो, भन्ते काश्यप! इस सब जनसमूह (=जनता) भगवान् के दर्शन सुलभ हो जाँय।"

"तो सिंह! तुम ही जाकर भगवान् से यह निवेदन कर दो।" "अच्छा, भन्ते" यों नागित को उत्तर दे कर वह सिंह श्रमणोद्देश जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँच कर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस सिंह श्रमणोद्देश ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भन्ते! बहुत से दर्शनार्थी जिन में कोसल एवं मगधदेश के वासी ब्राह्मणदूत भी हैं और बहुत से लिच्छवियों के साथ ओट्ठद्ध लिच्छवि भी हैं। अच्छा हो, भन्ते! इस जनसमूह को आप के दर्शनों का सौभाग्य मिल सके।"

"एवं, भन्ते" ति खो सीहो समणुद्देसो भगवतो पटिस्सुत्वा विहारपच्छायायं आसनं पञ्ञपेसि।

५. अथ खो भगवा विहारा निक्खम्म विहारपच्छायायं पञ्ञत्ते आसने [B.145] निसीदि। अथ खो ते कोसलका च ब्राह्मणदूता मागधका च ब्राह्मणदूता येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। ओट्ठद्धो पि लिच्छवी महतिया लिच्छवीपरिसाय सद्धिं येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।

२. दिब्बानि रूपानि सद्दानि

६. एकमन्तं निसिन्नो खो ओट्ठद्धो लिच्छवी भगवन्तं एतदवोच—"पुरिमानि, भन्ते, दिवसानि पुरिमतरानि सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं [N.130] एतदवोच—'यदग्गे अहं, महालि, भगवन्तं उपनिस्साय विहरामि, न चिरं तीणि वस्सानि, दिब्बानि हि खो रूपानि पस्सामि पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि, नो च खो दिब्बानि सद्दानि सुणामि पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानी' ति। सन्तानेव नु खो, भन्ते, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो दिब्बानि सद्दानि नास्सोसि पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि उदाहु असन्तानी" ति?

७. "सन्तानेव खो, महालि, सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो दिब्बानि सद्दानि नास्सोसि पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि नो असन्तानी" ति।

"तो, सिंह! इस विहार के छाया वाले भाग में मेरा आसन बिछाओ।"

"अच्छा, भन्ते!" यों कह कर सिंह श्रमणोद्देश ने भगवान् की आज्ञा मानते हुए विहार के छायावाले भाग में आसन बिछा दिया।

५. तब भगवान् विहार से निकल कर उस विहार के छाया वाले भाग में (जाकर) बिछे हुए आसन पर विराजमान हुए। तब वे कोसल एवं मगधदेश के वासी ब्राह्मणदूत जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने भगवान् से कुशल-मङ्गल पूछा। कुशल-मङ्गल पूछ कर एक तरफ बैठ गये। तथा ओट्ठद्ध लिच्छवि अपने सहयोगियों के साथ जहाँ भगवान् थे....एक ओर बैठ गया।

२. दिव्य रूप एवं दिव्य शब्द

६. एक तरफ बैठा ओट्ठद्ध लिच्छवि तब भगवान् से यों बोला—"भन्ते! कुछ दिनों पहले *(पुरिमानि दिवसानि पुरिमतरानि)* सुनक्खत्त (सुनक्षत्र) नामक लिच्छविपुत्र जहाँ मैं था वहाँ आया था। आकर उसने मुझसे कहा—'महालि! जिस के कारण में भगवान् की शरण में आया था कि उन की बतायी साधनापद्धति के सहारे मैं दिव्य शब्दों को जो कि प्रिय, मनोमोहक एवं मनोरञ्जक होते हैं, सुन पाऊँगा; परन्तु आज तीन वर्ष का लम्बा समय बीत चुका, मैं वैसे.... दिव्य शब्द नहीं सुन पाया।' तो भन्ते! क्या लिच्छविपुत्र सुनक्खत्त उन दिव्य शब्दों को इस लिये नहीं सुन पाया कि वे होते ही नहीं; या फिर इस लिये कि (उसकी साधना में किसी कमी के कारण) वे शब्द होते हुए भी उसे सुनायी न पड़े?"

७. "हैं, महालि! वह लिच्छविपुत्र सुनक्षत्र दिव्य शब्दों के वैसा होते हुए भी नहीं सुन पाया उनके न होते हुए नहीं।"

"भन्ते! यहाँ क्या कारण था, क्या प्रत्यय था, क्या हेतु था कि वह सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र उन शब्दों के होते हुए भी उन्हें नहीं सुन पाया?"

"को नु खो, भन्ते, हेतु, को पच्चयो, येन सन्तानेव सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो दिब्बानि सद्दानि नास्सोसि पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि नो असन्तानी" ति ?

[R.153] ८. "इध, महालि, भिक्खुनो पुरत्थिमाय दिसाय एकंसभावितो समाधि होति दिब्बानं रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, नो च खो दिब्बानं सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं। सो पुरत्थिमाय दिसाय एकंसभाविते समाधिम्हि दिब्बानं रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, नो च खो दिब्बानं सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं। पुरत्थिमाय दिसाय दिब्बानि रूपानि पस्सति पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि, नो च खो दिब्बानि सद्दानि सुणाति पियरूपानि कामूपसंहितानि [B.146] रजनीयानि। तं किस्स हेतु ? एवं हेतं, महालि, होति भिक्खुनो पुरत्थिमाय दिसाय एकंसभाविते समाधिम्हि दिब्बानं रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, नो च खो दिब्बानं सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं।

९. "पुन चपरं, महालि, भिक्खुनो दक्खिणाय दिसाय .... पे०.... पच्छिमाय दिसाय....उत्तराय दिसाय.... उद्धमधो तिरियं एकंसभावितो समाधि होति दिब्बानं रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, नो च खो दिब्बानं सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं। सो उद्धमधो तिरियं एकंसभाविते समाधिम्हि दिब्बानं रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, नो च खो दिब्बानं सद्दानं सवनाय पियरूपानं [N.131] कामूपसंहितानं रजनीयानं। उद्धमधो तिरियं दिब्बानि रूपानि पस्सति पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि, नो च खो दिब्बानि सद्दानि सुणाति पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि। तं किस्स हेतु ? एवं हेतं, महालि, होति भिक्खुनो उद्धमधो तिरियं एकंसभाविते समाधिम्हि दिब्बानं रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, नो च खो दिब्बानं सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं।

[R.154] १०. "इध, महालि, भिक्खुनो पुरत्थिमाय दिसाय एकंसभावितो समाधि होति

---

८. "महालि[1]! यहाँ किसी भिक्षु को पूर्व दिशा में एकांग (केवल रूपदर्शन के लिये) समाधि लगती है, जिसके कारण वह वैसे दिव्य रूपों को तो देख सकता है परन्तु उससे दिव्य शब्दों को नहीं सुन पाता; क्योंकि वह पूर्व दिशा में ...दिव्य रूपों को देखने के लिये ही समाधि लगाता है, दिव्य शब्दों को सुनने के लिये नहीं; अतः उसे तब दिव्य रूप ही दिखायी देते हैं, दिव्य शब्द नहीं। वह किस कारण? वह इस लिये कि उसने दिव्य रूपों को .... न कि दिव्य शब्दों को सुनने के लिये।

९. "और फिर महालि! किसी भिक्षु को दक्षिण दिशा में .... पश्चिम दिशा में ....उत्तर दिशा में .... ऊपर.... नीचे....तिरछे (दिक्कोण) एकांगी (केवल रूपों के देखने के लिये ही) समाधि प्राप्त होती है। उस समाधि से वह वैसे दिव्य रूपों को तो देख लेता है, परन्तु दिव्य शब्दों को नहीं सुन पाता। कारण वही है कि उसे वही एकाङ्गी समाधि ही लग पाती है; जिससे वह दिव्य रूपों को तो देख लेता है, दिव्य शब्दों को नहीं सुन पाता।

१०. "और, महालि! यहाँ किसी भिक्षु को पूर्व दिशायें ऐसी एकांगी समाधि लगती है कि जिस

---

१. ओट्ठद्ध लिच्छवि ही यहाँ 'महालि' शब्द से सम्बोधित हुआ है।

दिब्बानं सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, नो च खो दिब्बानं रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं। सो पुरत्थिमाय दिसाय एकंसभाविते समाधिम्हि दिब्बानं सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, नो च खो दिब्बानं रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, पुरत्थिमाय दिसाय दिब्बानि सद्दानि सुणाति पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि, नो च खो दिब्बानि रूपानि पस्सति पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि। तं किस्स हेतु? एवं हेतं, महालि, होति भिक्खुनो पुरत्थिमाय दिसाय एकंसभाविते समाधिम्हि दिब्बानं सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, नो च खो दिब्बानं रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं।

११. "पुन चपरं, महालि, भिक्खुनो दक्खिणाय दिसाय ....पे०....पच्छिमाय दिसाय ....उत्तराय दिसाय....उद्धमधो तिरियं एकंसाभितो समाधि होति दिब्बान सद्दानं [B.147] सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, नो च खो दिब्बानं रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं। सो उद्धमधो तिरियं एकंसभाविते समाधिम्हि दिब्बानं सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, नो च खो दिब्बानं रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं। सो उद्धमधो तिरियं दिब्बानि सद्दानि सुणाति पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि, नो च खो दिब्बानि रूपानि पस्सति पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि। तं किस्स हेतु? एवं हेतं, महालि, होति भिक्खुनो उद्धमधो तिरियं एकंसभाविते समाधिम्हि दिब्बानं सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, नो च खो दिब्बानं रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं।

१२. "इध, महालि, भिक्खुनो पुरत्थिमाय दिसाय उभयंसभावितो समाधि [N.132] होति दिब्बानं च रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, दिब्बानं च [R.155] सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं। सो पुरत्थिमाय दिसाय उभयंसभाविते समाधिम्हि दिब्बानं च रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, दिब्बानं च सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, पुरत्थिमाय दिसाय दिब्बानि च रूपानि पस्सति पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि, दिब्बानि च सद्दानि सुणाति पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि। तं किस्स हेतु? एवं हेतं, महालि, होति भिक्खुनो पुरत्थिमाय दिसाय उभयंसभाविते समाधिम्हि दिब्बानं च रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं दिब्बानं च सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं।

के सहारे से वह वैसे दिव्य शब्दों को तो सुन पाता है, परन्तु उस समाधि के सहारे से दिव्य रूपों को नहीं देख पाता।.... पूर्ववत् .... दिव्य रूप उसे नहीं दिखायी पड़ते।

११. "फिर महालि! कोई भिक्षु दक्षिण दिशा में .... पश्चिम दिशा में ....उत्तर दिशा में ....ऊपर.... नीचे ....तिरछे (चारों दिक्कोणों में) एकांगी समाधि में दिव्य शब्दों को ही सुन पाता है परन्तु दिव्य रूपों को नहीं देख पाता। वह किस कारण? क्योंकि उसको वैसी एकाङ्ग समाधि ही लगती है कि वह उससे केवल वैसे दिव्य शब्दों को ही सुन पाता है, दिव्य रूपों को नहीं देख पाता।

१२. "यहाँ महालि! कोई कोई भिक्षु पूर्व दिशा में उभयांशभावित समाधि लगा लेता है, उसके

१३. "पुन चपरं, महालि, भिक्खुनो दक्खिणाय दिसाय ....पे०.... पच्छिमाय दिसाय.... उत्तराय दिसाय.... उद्धमधो तिरियं उभयंसभावितो समाधि होति दिब्बानं च रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, दिब्बानं च सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं। सो उद्धमधो तिरियं उभयंसभाविते समाधिम्हि दिब्बानं च रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, दिब्बानं च सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, [B.148] उद्धमधो तिरियं दिब्बानि च रूपानि पस्सति पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि, दिब्बानि च सद्दानि सुणाति पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि। तं किस्स हेतु? एवं हेतं, महालि, होति भिक्खुनो उद्धमधो तिरियं उभयंसभाविते समाधिम्हि दिब्बानं च रूपानं दस्सनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं, दिब्बानं च सद्दानं सवनाय पियरूपानं कामूपसंहितानं रजनीयानं। अयं खो महालि, हेतु, अयं पच्चयो, येन सन्तानेव सुनक्खत्तो लिच्छविपुत्तो दिब्बानि सद्दानि नास्सोसि पियरूपानि कामूपसंहितानि रजनीयानि नो असन्तानी" ति।

१४. "एतासं नून, भन्ते, समाधिभावनानं सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू भगवति ब्रह्मचरियं चरन्ती" ति। "न खो, महालि, एतासं समाधिभावनानं सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं [R.156] चरन्ति। अत्थि खो, महालि, अञ्ञेव धम्मा उत्तरितरा च पणीततरा च येसं सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ती" ति।

३. उत्तरितरा धम्मा

[N.133] १५. "कतमे पन ते, भन्ते, धम्मा उत्तरितरा च पणीततरा च येसं सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू भगवति ब्रह्मचरियं चरन्ती" ति?

सहारे वह वैसे दिव्य रूपों को भी देखता है, और वैसे दिव्य शब्दों को भी सुनता है। इसमें कारण यही है कि उसे उभयांश (शब्द और रूप) भावित समाधि लग जाती है। इस वह कारण पूर्व दिशा के रूप और शब्द–दोनों को देख–सुन पाता है।

१३. और फिर किसी भिक्षु को दक्षिण दिशा के.... पश्चिम दिशा के ....उत्तर दिशा के ....ऊपर के .... नीचे के तिर्यक् (चारों दिशाओं के कोणों) के ....उभयांश (रूप और शब्द–दोनों) के लिये समाधि लगती है दिव्य रूपों को देखने के लिये और दिव्य शब्दों को सुनने के लिये। तब वह ....रूपों को देख पाता है और ....शब्दों को सुन पाता है। कारण यह कि उभयांशभावित समाधि लग जाने से दोनों ही–दिव्य रूपों एवं दिव्य शब्दों का दर्शन एवं श्रमण हो जाता है।

"यह कारण था, महालि! कि सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र को होते हुए भी वे दिव्य शब्द सुनायी नहीं पड़ रहे थे। (क्योंकि उसकी समाधि एकांश भावित ही थी।)

१४. "तो क्या, भन्ते! आप के ये सभी भिक्षु आप के पास इन समाधिभावनाओं के साक्षात्कार को सीखने के लिये भी आपके पास धर्म–साधना के व्याज से आते है?"

"नहीं ऐसी बात नहीं है, महालि! इससे भी ऊँचे अन्य कई धर्म है जिन्हें सीखने–समझने के लिये मेरे भिक्षु मेरे द्वारा बतायी गयी धर्मसाधना में दिन–रात लगे रहते हैं।"

३. उत्कृष्टतर धर्म

१५. "तो फिर भन्ते! (इस समाधि भावना से) वे उत्कृष्टतर धर्म कौन से हैं जिनकी प्राप्ति के लिये भिक्षु आप द्वारा बताये धर्म की साधना में निरन्तर लगे रहते हैं?

"इध, महालि, भिक्खु तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्नो होति अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो। अयं पि खो, महालि, धम्मो उत्तरितरो च पणीततरो च यस्स सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ति।

"पुन चपरं, महालि, भिक्खू तिण्णं संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी होति, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करोति। अयं पि खो, महालि, धम्मो उत्तरितरो च पणीततरो च यस्स सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ति।

"पुन चपरं, महालि, भिक्खू पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति, तत्थ परिनिब्बायी, अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। अयं पि खो, महालि, धम्मो उत्तरतिरो च पणीततरो च यस्स सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ति।

"पुन चपरं, महालि, भिक्खू आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञा- [B.149] विमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं पि खो, महालि, धम्मो उत्तरितरो च पणीततरो च यस्स सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ति।

इमे खो ते, महालि, धम्मा उत्तरितरा च पणीततरा च येसं सच्छिकिरियाहेतु भिक्खू मयि ब्रह्मचरियं चरन्ती" ति।

१६. "अत्थि पन, भन्ते, मग्गो अत्थि पटिपदा एतेसं धम्मानं सच्छिकिरियाया" ति?

"अत्थि खो, महालि, मग्गो अत्थि पटिपदा एतेसं धम्मानं सच्छिकिरियाया" ति।

१७. "कतमो पन, भन्ते, मग्गो कतमा पटिपदा एतेसं धम्मानं सच्छि-[R.157] किरियाया" ति?

"यहाँ महालि! कोई भिक्षु तीन संयोजनों (बन्धनों) के क्षीण हो जाने से फिर न पतित होने वाले सम्बोधिज्ञान (परमज्ञान) की ओर लगा रहने वाला स्रोतआपन्न होता है। महालि! यह धर्म भी उत्कृष्टतर है जिसके साक्षात्कार के लिये भिक्षुजन मेरे द्वारा बतायी धर्मसाधना में निरन्तर लगे रहते हैं।

"फिर, महालि! वह साधक भिक्षु तीनों संयोजनों के परिक्षय से राग-द्वेष-मोहके निर्बल (तनु) हो जाने के कारण सकृदागामी भाव को प्राप्त हो जाता है। वह एक ही बार इस लोक में और जन्म ग्रहण कर अपने भव-दुःखों का अन्त (निर्वाण) कर लेगा। महालि! यह धर्म भी....।

"और फिर महालि! साधक भिक्षु पाचों अवरगामीय (संसार में आवागमन में लिप्त रखने वाले) संयोजनों के परिक्षय से औपपातिक (अयोनिज देवता) बन कर स्वर्ग में पहुँच जाता है, वहीं परिनिर्वाण पाने वाला हो जाता है। उस लोक से यहाँ वापस नहीं लौटता। महालि! यह धर्म....।

"और फिर महालि! कोई साधक भिक्षु आस्रवों (चित्तविकारों) के क्षीण होने से आस्रवरहित चित्त की मुक्ति के ज्ञान द्वारा इसी जन्म में निर्वाण को स्वयं जानकर साक्षात्कार कर साधना में लगा रहता है। महालि! यह धर्म भी....।

"महालि! ये उपर्युक्त धर्म अपेक्षाकृत एक दूसरे से उत्कृष्टतर एवं प्रणीततर हैं, जिनको साक्षात् जानने के लिये भिक्षुजन मेरे बताये धर्म की साधना में निरन्तर लगे रहते हैं।"

१६. "तो क्या, भन्ते! इन (आपके द्वारा कथित) धर्मों के साक्षात्कार (प्रत्यक्षतः जानने) का कोई मार्ग या उपाय है?" "हाँ, महालि! ...पूर्ववत्.... उपाय है।"

१७. "भन्ते! इन धर्मों के जानने का कौन सा मार्ग या उपाय है?"

"अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथिदं—सम्मादिट्ठि, सम्मासङ्कप्पो, सम्मावाचा, सम्माकम्मन्तो, सम्माआजीवो, सम्मावायामो, सम्मासति, सम्मासमाधि। अयं खो, महालि, मग्गो अयं पटिपदा एतेसं धम्मानं सच्छिकिरियाय।

४. तं जीवं तं सरीरं न वा

[N.134] १८. "एकमिदाहं, महालि, समयं कोसम्बियं विहरामि घोसितारामे। अथ खो द्वे पब्बजिता—मुण्डियो च परिब्बाजको जालियो च, दारुपत्तिकन्तेवासी, येनाहं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा मया सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो ते द्वे पब्बजिता मं एतदवोचुं—'किं नु खो, आवुसो गोतम, तं जीवं तं सरीरं उदाहु, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' ति?

१९. '"तेन हावुसो, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामी' ति। 'एवमावुसो' ति खो ते द्वे पब्बजिता मम पच्चस्सोसुं। अहं एतदवोचं—'इधावुसो तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो....पे०....। *(यथा सामञ्ञफले, एवं वित्थारेतब्बं)*

एवं खो, आवुसो, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति....पे०....। पठमं झानं उपसम्पज्ज [B.150] विहरति। यो खो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति, कल्लं नु खो तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति? यो सो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति, कल्लं तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति। अहं खो पनेतं, आवुसो, एवं जानामि एवं पस्सामि। अथ च पनाहं [R.158] न वदामि—'तं जीवं तं सरीरं ति वा, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' ति वा ....पे०....दुतियं झानं....ततियं झानं....चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। यो खो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति

"यह आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग (पर चलना) ही इसके साक्षात्कार का उपाय है। जैसे—सम्यग्दृष्टि, सम्यक्सङ्कल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति, सम्यक्समाधि। महालि! यह मार्ग, यह उपाय है उन उक्त धर्मों के साक्षात्कार का।

४. वही जीव वही शरीर

१८. "एक समय, महालि! मैं कौसाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु ठहरा हुआ था। तब दारुपत्रिक के शिष्य मुण्डिय और जालिय, नाम के के दो परिव्राजक मेरे पास आये। आकर कुशल-मङ्गल पूछने लगे यह सब पूछ कर वे एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े उन दोनों प्रव्रजितों ने मुझसे प्रश्न किया—'क्या आयुष्मान् गौतम! वही जीव वही शरीर है, अथवा जीव दूसरा है और शरीर दूसरा है?"

१९. तो, आयुष्मन्! सुनो, मैं बताता हूँ इसे ठीक से मन मैं बैठा लो। उनसे मैंने कहा—"यहाँ, आयुष्मानो! तथागत लोक में अवतरित होते है, ... पूर्ववत् ....। *(सामञ्ञफलसुत्त में आये पाठ की तरह यहाँ भी विस्तार कर लेना चाहिये)*

(शील) आयुष्मानो! भिक्षु शीलसम्पन्न होता है ....।(समाधि)प्रथम ध्यान को प्राप्त हो साधना करता है। आयुष्मानो ! जो भिक्षु ऐसा जानता, ऐसा देखता है, उसको क्या यह कहने की आवश्यकता है कि 'वही जीव है, वही शरीर है' या 'जीव दूसरा है, शरीर दूसरा है।' आयुष्मानो! मैं इस बात को जानता हूँ फिर भी मैं यह नहीं कहता—'वही जीव है, वही शरीर है' या 'जीव दूसरा है शरीर दूसरा है।' ....द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो साधना करता है। आयुष्मानो! जो भिक्षु ऐसा जानता है ऐसा देखता है उसको क्या यह कहने

एवं पस्सति, कल्लं नु खो तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति? यो सो, आवुसो भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति, कल्लं तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति। अहं खो पनेतं, आवुसो, एवं जानामि एवं पस्सामि, अथ च पनाहं न वदामि—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' ति वा....पे०....।

आणदस्सनाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। यो खो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति, कल्लं नु खो तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति? यो सो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति, कल्लं तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति। अहं खो पनेतं, आवुसो, एवं जानामि एवं पस्सामि, अथ च पनाहं न वदामि—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं [N.135] जीवं अञ्ञं सरीरं' ति वा....पे०....।

....नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति। यो खो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति, कल्लं नु खो तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति? यो सो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति, न कल्लं तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति। अहं खो पनेतं, आवुसो, एवं जानामि एवं पस्सामि, अथ च पनाहं न वदामि—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति।

इदमवोच भगवा। अत्तमनो ओट्ठद्धो लिच्छवी भगवतो भासितं अभिनन्दी ति।

महालिसुत्तं निट्ठितं छट्ठं॥

की आवश्यकता .... शरीर दूसरा। ....तृतीय ध्यान को प्राप्त हो साधना करता है। आयुष्मानो! जो भिक्षु ....शरीर दूसरा। ....चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो साधना करता है। आयुष्मानो! जो भिक्षु ऐसा जानता, देखता है क्या उसको .... शरीर दूसरा।

(प्रज्ञा—) ".... ज्ञानदर्शन के लिये चित्त को लगाता है, उधर झुकाता है। ....आयुष्मानो! जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा देखता है उसको....शरीर दूसरा।

"....'इससे आगे मेरा कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं'—यह जानता है। जो आयुष्मानो! ऐसा जानता है ऐसा देखता है क्या उसके लिये ऐसा कहना उचित है कि 'वही जीव है, वही शरीर, या फिर जीव दूसरा है और शरीर दूसरा'। जो भिक्षु ऐसा जानता ऐसा देखता है उसके लिये यह कहना उचित नहीं है कि 'वही जीव है वही शरीर' या फिर 'जीव दूसरा है और शरीर दूसरा। और आयुष्मानो! मैं ऐसा जानता एवं देखता हूँ, फिर भी मैं नहीं कहता कि 'वही जीव है वही शरीर है' या 'जीव दूसरा है और शरीर दूसरा।' "

भगवान् ने यह कहा। प्रसन्नमना ओट्ठद्ध लिच्छवि ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया।।

षष्ठ महालिसूत्र समाप्त॥

७. जालियसुत्तं

१. तं जीवं तं सरीरं न वा

[N.136, B. 151, R.159] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। तेन खो पन समयेन द्वे पब्बजिता—मुण्डियो च परिब्बाजको, जालियो च दारुपत्तिकन्तेवासी, येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो ते द्वे पब्बजिता भगवन्तं एतदवोचुं—"किं नु खो, आवुसो गोतम, तं जीवं तं सरीरं उदाहु अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं" ति?

२. "तेन हावुसो, सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामी" ति। "एवमावुसो" ति खो ते द्वे पब्बजितो भगवता पच्चस्सोसुं।

३. भगवा एतदवोच—"इधावुसो, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो ....पे०....*(यथा सामञ्ञफले एवं वित्थारेतब्बं)* एवं खो, आवुसो, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति....पे०....पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। यो खो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति, कल्लं नु खो तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति! यो सो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति कल्लं तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति। अहं खो पनेतं, आवुसो एवं जानामि एवं [R.160] पस्सामि, अथ च पनाहं न वदामि—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' ति वा....पे०....दुतियं झानं....ततियं झानं ....चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति....यो खो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति कल्लं नु खो तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति? यो सो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं

---

७. जालियसूत्र

१. वही जीव वही शरीर है या नहीं?

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कौशाम्बी के घोषिताराम (विहार) में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय दारुपात्रिक आचार्य के शिष्य–मुण्डिय एवं जालिय नामक दो परिव्राजक मेरे पास आये। आ कर उन दोनों ने मुझसे मेरा कुशल–क्षेम पूछा और कुशल–क्षेम पूछ कर एक ओर खड़े हो गये। एक ओर खड़े उन दोनों प्रव्रजितों ने भगवान् (मुझ) से यों प्रश्न किया–"क्या आयुष्मन् गौतम! वही जीव है वही शरीर है या जीव कोई अन्य है तथा शरीर कोई अन्य?"

२. "तो, आयुष्मान्! सुनो, भली–भाँति मन में बैठा लो। (तुम्हें) बता रहा हूँ।"

३. भगवान् बोले–"आयुष्मन्! यहाँ लोक में तथागत उत्पन्न (अवतरित) होते हैं अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के रूप में ....पूर्ववत्.... *(श्रामण्यफलसूत्र में आगत पाठ के अनुसार विस्तार कर लेना चाहिये।)* इस तरह आयुष्मानो! साधक भिक्षु शीलसम्पन्न होता है। .... पूर्ववत् .... प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। जो भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा समझता है तो क्या उसके लिये यह कहना उचित है कि 'वही जीव है, वही शरीर है' या 'जीव दूसरा है और शरीर दूसरा'। आयुष्मानो! जो भिक्षु साधक ऐसा जानता है ऐसा समझता है क्या उसका यह कहना ठीक होगा कि वही जीव है वही शरीर है....। आयुष्मानो! मैं इसे इस तरह जानता हूँ, समझता हूँ अतः मैं तो नहीं कहता कि 'वही जीव है, वही शरीर है ....। ....द्वितीय ध्यान....

पस्सति कल्लं तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञ सरीरं ति वा। अहं खो पनेतं, आवुसो, एवं जानामि एवं पस्सामि, अथ च पनाहं न वदामि—'तं जीव तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा....पे०....ञाणदस्सनाय चित्तं अभिनीहरति [B.152] अभिनिन्नामेति ....यो खो,आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति कल्लं नु खो तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति। यो सो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति कल्लं तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं सरीरं ति वा' ति। अहं खो पनेतं, आवुसो, एवं जानामि एवं पस्सामि, अथ च पनाहं न [N.137] वदामि—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं' ति वा....पे०....।

....नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति। यो खो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति कल्लं नु खो तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति? यो सो, आवुसो, भिक्खु एवं जानाति एवं पस्सति न कल्लं तस्सेतं वचनाय—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा' ति। अहं खो पनेतं, आवुसो, एवं जानामि एवं पस्सामि, अथ च पनाहं न वदामि—'तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा''' ति?

इदमवोच भगवा। अत्तमना ते द्वे पब्बजिता भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥

जालियसुत्तं निट्ठितं सत्तमं॥

तृतीय ध्यान .... चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर साधना करता है। आयुष्मानो! वह भिक्षु ऐसा जानता है, ऐसा समझता है तो क्या उसका यह कथन उचित हो सकता है' वही जीव है वही शरीर है....। आयुष्मानो! जो भिक्षु ऐसा जानता है ऐसा समझता है, उसका यह कहना उचित नहीं होगा कि वही जीव है वही शरीर है। आयुष्मानो! फिर भी मैं तो इसे.... वही जीव वही शरीर है....। आयुष्मानो! वह साधक भिक्षु ज्ञानप्राप्ति के लिये चित्त लगाता है उसको उधर झुकाता है....। आयुष्मानो! जो ऐसा जानता है, समझता है, उसका क्या यह कहना उचित नहीं होगा कि वही जीव है वही शरीर है...। आयुष्मानो! क्योंकि भिक्षु साधक ऐसा जानता है ऐसा समझता है, अतः उसका यह कहना उचित नहीं होगा कि वही जीव है वही शरीर है।....। आयुष्मानो! मैं इसे जानता हूँ, समझता हूँ, अतः मैं तो नहीं कहता कि वही जीव है वही शरीर है या जीव अन्य है और शरीर अन्य...पूर्ववत्....।

.... इससे आगे मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है— यह जानता है। आयुष्मानो! जो साधक भिक्षु ऐसा जानता है ऐसा समझता है, उसका क्या यह कहना उचित है— वही जीव है वही शरीर है....। आयुष्मानो! जो साधक भिक्षु ऐसा जानता है समझता है उसका यह कहना उचित नहीं होगा कि वही जीव है वही शरीर है...। आयुष्मानो! मैं ऐसा जानता हूँ, ऐसा समझता हूँ, अतः मैं तो यह नहीं कहता कि 'वही जीव है वही शरीर है' या फिर 'जीव दूसरा, शरीर दूसरा।'

भगवान् ने उन प्रव्रजितों को यह उपदेश किया। प्रसन्नमन होकर उन दोनों प्रव्रजितों ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया।

सप्तम जालियसूत्र समाप्त॥

८. महासीहनादसुत्तं

१. गोतमो सब्बं तपं गरहति न वा

[N.138, B.153, R.161] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा उरुञ्ञायं विहरति कण्णकथले मिगदाये। अथ खो अचेलो कस्सपो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो अचेलो कस्सपो भगवन्तं एतदवोच—"सुतं मेतं, भो गोतम—'समणो गोतमो सब्बं तपं गरहति, सब्बं तपस्सिं लूखाजीविं एकंसेन उपक्कोसति उपवदती' ति। ये ते, भो गोतम, एवमाहंसु—'समणो गोतमो सब्बं तपं गरहति, सब्बं तपस्सिं लूखाजीविं एकंसेन उपक्कोसति उपवदती' ति, कच्चि ते भोतो गोतमस्स वुत्तवादिनो न च भवन्तं गोतमं अभूतेन अब्भाचिक्खन्ति, धम्मस्स चानुधम्मं ब्याकरोन्ति, न च कोचि सहधम्मिको वादानुवादो गारय्हं ठानं आगच्छति? अनब्भक्खातुकामा हि मय भगवन्तं गोतमं" ति।

२. "ये ते, कस्सप, एवमाहंसु—'समणो गोतमो सब्बं तपं गरहति, सब्बं तपस्सिं लूखाजीविं एकंसेन उपक्कोसति उपवदती' ति, न मे ते वुत्तवादिनो। अब्भाचिक्खन्ति च पन मं [R.162] ते असता अभूतेन। इधाहं, कस्सप, एकच्चं तपस्सिं लूखाजीविं पस्सामि दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन कायस्स भेदा परं मरणा दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्नं। इध पनाहं, कस्सप, एकच्चं तपस्सिं लूखाजीविं पस्सामि दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन कायस्स भेदा परं मरणा सुगति सग्गं लोकं उपपन्नं।

---

८. महासिंहनादसूत्र

१. क्या गौतम सभी तपों को निन्दित कहते हैं?

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) उरुञ्ञा के कर्ण्णकस्थल के मृगारण्य में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब अचेल (निर्वस्त्र=नग्न) काश्यप जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर भगवान् से कुशल-प्रश्न किया। कुशल-प्रश्न कर, वह एक तरफ खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हो, उसने भगवान् से यों पूछा– "भो गौतम! मैंने सुना है कि आप श्रमण गौतम सभी प्रकार की तपश्चर्याओं की निन्दा करते हैं, सभी तपश्चर्याओं की रूक्षता को, कठोरता को *(लूखाजीविं)* सर्वथा (आदि से अन्त तक) अनुचित बताते हैं, उन्हें कोसते हैं। भो गौतम! जो लोग ऐसा कहते हैं– 'श्रमण गौतम सभी प्रकार की तपश्चर्याओं को....कोसते हैं, सर्वथा अनुचित बताते हैं', तो क्या वे ऐसा कहते हुए आप के विषय में उचित ही कहने वाले (यथार्थ वक्ता) हैं? असत्य (अभूत) आरोप लगा कर आप की निन्दा तो नहीं करते? क्या उनका कथन धर्मानुकूल है? या फिर उनके ऐसा कहने से आप के किसी धर्मानुकूल वाद का त्याग या उसकी निन्दा तो नहीं होती? हम लोग आप भगवान् गौतम की निन्दा कहना-सुनना नहीं चाहते।"

२. "काश्यप! जो लोग ऐसा कहते हैं कि 'श्रमण गौतम सभी प्रकार की तपश्चर्याओं ....कोसते है', वे मेरे विषय में सत्य नहीं कहते। अपितु वे मुझ पर ऐसी निन्दा का झूठा आरोप ही लगाते हैं। क्योंकि काश्यप! मैं किसी-किसी रूक्ष एवं कठोर जीवन बिताने वाले तपस्वी को अलौकिक दिव्यचक्षु से इस देह पात के बाद, मरणानन्तर, नरक में उत्पन्न एवं दुर्गति प्राप्त हुआ देखता हूँ। और काश्यप! मैं किसी-किसी कठोर, रूक्ष जीवन बिताने वाले तपस्वी को स्वर्गलोक में उत्पन्न एवं सुगति प्राप्त हुआ भी देखता हूँ।

३. ''इधाहं, कस्सपं, एकच्चं तपस्सिं अप्पदुक्खविहारिं पस्सामि दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्नं। इध पनाहं, कस्सप, एकच्चं तपस्सिं अप्पदुक्खविहारिं पस्सामि दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्नं। योहं, कस्सप, इमेसं तपस्सीनं एवं आगतिं च गतिं च चुतिं च उपपत्तिं च यथाभूतं पजानामि, सोहं किं [B.154] सब्बं तपं गरहिस्सामि, सब्बं वा तपस्सिं लूखाजीविं एकंसेन उपक्कोसिस्सामि उपवदिस्सामि?

२. समनुयुञ्जन्ता विञ्ञू

४. ''सन्ति, कस्सप, एके समणब्राह्मणा पण्डिता निपुणा कतपरप्पवादा [N.139] वालवेधिरूपा। ते भिन्दन्ता मञ्ञे चरन्ति पञ्ञागतेन दिट्ठिगतानि। तेहि पि मे सद्धिं एकच्चेसु ठानेसु समेति, एकच्चेसु ठानेसु न समेति। यं ते एकच्चं वदन्ति 'साधू' ति, मयं पि ते एकच्चं वदेम 'साधू' ति। यं ते एकच्चं वदन्ति 'न साधू' ति, मयं पि तं एकच्चं वदेम 'न साधू' ति। यं ते एकच्चं वदन्ति 'साधू' ति, मयं तं एकच्चं वदेम 'न साधू' ति। यं ते एकच्चं वदन्ति 'न साधू' ति मयं तं एकच्चं वदेम 'साधू' ति।

''यं मयं एकच्चं वदेम 'साधू' ति, परे पि तं एकच्चं वदन्ति 'साधू' ति। यं मयं एकच्चं वदेम 'न साधू' ति, परे पि तं एकच्चं वदन्ति 'न साधू' ति। यं मयं एकच्चं [R.163] वदेम 'न साधू' ति, परे पि तं एकच्चं वदन्ति 'साधू' ति। यं मयं एकच्चं वदेम 'साधू' ति, परे पि तं एकच्चं वदन्ति 'न साधू' ति।

---

३. ''इसी तरह, काश्यप! मैं किसी कम कठोर जीवन वाले को भी मरणानन्तर नरक....देखता हूँ और किसी-किसी कम कठोर जीवन बिताने वाले तपस्वी को मरणानन्तर स्वर्गलोक एवं सुगति को प्राप्त हुआ भी देखता हूँ। काश्यप! जब मैं इन तपस्वियों की इस प्रकार की अगति, गति, च्युति (मृत्यु) एवं उत्पत्ति (जन्म) को भली भाँति जानता हूँ तो फिर मैं कैसे सभी तपश्चर्याओं की निन्दा कर सकता हूँ। सभी कठोर जीवन बिताने वालों की मैं एकान्ततः निन्दा कैसे कर सकता हूँ?

२. समनुभाषी विज्ञजन

४. ''काश्यप! कोई श्रमण-ब्राह्मण ऐसे पण्डित, निपुण, वाद में विजय प्राप्त करने वाले, और बाल की खाल उतार लेने वाली बुद्धि (प्रज्ञा) के धनी हैं, कि वे दूसरे के मत को बातों ही बातों में छिन्न-भिन्न करते-से दीखते हैं। वे भी किन्ही-किन्हीं विषयों में मुझ से सहमत रहते हैं तथा किन्हीं-किन्हीं विषयों पर सहमत नहीं भी रहते। वहाँ कुछ बातें, जिन्हें वे ठीक कहते हैं हम भी उन्हें ठीक ही कहते हैं; परन्तु कुछ बातें जिन्हें वे उचित नहीं मानते हम उन्हें उचित मानते हैं। और कुछ बातें जिन्हें वे ठीक नहीं कहते वहाँ हम भी उनसे सहमत रहते हैं; परन्तु कुछ बातें ऐसी भी हैं जिन्हें वे भले ही उचित न बतावें जबकि हम तो उन्हें उचित ही मानते हैं।

''कुछ बातें जिन्हें हम उचित बताते हैं, वे भी उचित ही मानते हैं; जिन्हें हम उचित नहीं मानते वे भी उन्हें उचित नहीं मानते। परन्तु कुछ बातें ऐसी होती हैं जिनके विषय हमारा उन से मतभेद रहता है। वे उन्हें अनुचित (न साधु) बताते हैं जब कि हम उन्हें उचित (साधु) बताते हैं इसी तरह कुछ को जब हम 'अनुचित' कहते हैं तो वे उन्हें उचित कह बैठते हैं। और जिन्हें हम 'उचित' कहते हैं वे उन्हें 'अनुचित' ही कहते रहते हैं।

५. "त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि— 'येसु नो, आवुसो, ठानेसु न समेति, तिट्ठन्तु तानि ठानानि। येसु ठानेसु समेति, तत्थ विञ्ञू समनुयुञ्जन्तं समनुगाहन्तं समनुभासन्तं सत्थारा वा सत्थारं सङ्घेन वा सङ्घं— ये इमेसं भवतं धम्मा अकुसला अकुसलसङ्खाता, सावज्जा सावज्जसङ्खाता, असेवितब्बा असेवितब्बसङ्खाता, न अलमरिया न अलमरियसङ्खाता, कण्हा कण्हसङ्खाता, को इमे धम्मे अनवसेसं पहाय वत्तति— समणो वा गोतमो परे वा पन भोन्तो गणाचरिया' ति ?

६. "ठानं खो पनेतं, कस्सप, विज्जति यं विञ्ञू समनुयुञ्जन्ता समनुगाहन्ता समनुभासन्ता एवं वदेय्युं— 'ये इमेसं भवतं धम्मा अकुसला अकुसलसङ्खाता, सावज्जा सावज्जसङ्खाता, असेवितब्बा असेवितब्बसङ्खाता, न अलमरिया न अलमरियसङ्खाता, कण्हा कण्हसङ्खाता—समणो गोतमो इमे धम्मे अनवसेसं पहाय वत्तति, यं वा पन भोन्तो परे गणाचरिया' ति ? इति [B.155] ह, कस्सप, विञ्ञू समनुयुञ्जन्ता समनुगाहन्ता समनुभासन्ता अम्हेव तत्थ येभुय्येन पसंसेय्युं।

७. "अपरं पि नो, कस्सप, विञ्ञू समनुयुञ्जन्तं समनुगाहन्तं समनुभासन्तं सत्थारा [N.154] वा सत्थारं सङ्घेन वा सङ्घं—ये इमेसं भवतं धम्मा कुसला कुसलसङ्खाता, अनवज्जा अनवज्जसङ्खाता, सेवितब्बा सेवितब्बसङ्खाता, अलमरिया अलमरियसङ्खाता, सुक्का सुक्कसङ्खाता— को इमे धम्मे अनवसेसं समादाय वत्तति, समणो वा गोतमो परे वा पन भोन्तो गणाचरिया ति ?

८. "ठानं खो पनेतं, कस्सप, विज्जति यं विञ्ञू समनुयुञ्जन्ता समनुगाहन्ता समनुभासन्ता [R.164] एवं वदेय्युं— 'ये इमेसं भवतं धम्मा कुसला कुसलसङ्खाता, अनवज्जा अनवज्जसङ्खाता, सेवितब्बा सेवितब्बसङ्खाता, अलमरिया अलमरियसङ्खाता, सुक्का सुक्कसङ्खाता —समणो गोतमो

---

५. "उनके पास जाकर मेरा यह कहना होता है—'आयुष्मानो! जिन बातों में हम लोग सहमत नहीं हैं उन बातों को जाने दो। परन्तु जिन पर हम सहमत हैं उन्हें बुद्धिमान् लोग एक शास्ता (गुरु) से दूसरे शास्ता को, एक सङ्घ से दूसरे सङ्घ को पूछें, चर्चा करें, विचार करें तो जो बातें (धर्म) अकुशल हैं, अकुशल ही मानी जायँगीं, सदोष हैं वे सदोष ही मानी जायगीं; असेवनीय हैं वे असेवनीय ही मानी जायगीं, निकृष्ट ही मानी जायगीं। काले (पापमयी काम) काले ही माने जायेंगे। उन बातों (धर्मों) का सर्वथा त्याग किसने किया है? श्रमण गौतम ने या दूसरे आप गणाचार्यों ने?

६. "काश्यप! यह उचित ही होगा कि विद्वान् (विञ्ञू) लोग जब इन बातों पर विचार करेंगे तो वे सभी इस बात पर सहमत होंगे कि जो धर्म अकुशल हैं वे अकुशल ही माने जाँयगें...कृष्ण कृष्ण ही माने जाँयगें। इन धर्मों का सर्वथा त्याग श्रमण गौतम ने ही किया है, आप दूसरे गणाचार्यों ने नहीं। वे लोग इस विषय पर एकमत होते हुए हम (श्रमण गौतम) को ही श्रेष्ठ बताते हुए हमारी ही प्रशंसा करेंगे।

७. "और फिर लोग..विचारते हैं— जो धर्म (बातें) अच्छे थे, अच्छे माने गये, निर्दोष थे निर्दोष माने गये, जो सेवनीय थे सेवनीय ही माने गये, श्रेष्ठ श्रेष्ठ ही माने गये, शुक्ल शुक्ल ही माने गये, उन धर्मों का कौन ठीक से पालन करता है– श्रमण गौतम या दूसरे आप गणाचार्य?

८. "और फिर काश्यप! यह उचित है कि बुद्धिमान् लोग विचार करके हमारी ही अधिक प्रशंसा करें....।

९. "दूसरी बात यह भी है कि काश्यप! कि विद्वज्जन...परस्पर विचार करते हुए जो धर्म

इमे धम्मे अनवसेसं समादाय वत्तति, यं वा पन भोन्तो परे गणाचरिया' ति। इति ह, कस्सप, विञ्ञू समनुयुञ्जन्ता समनुगाहन्ता समनुभासन्ता अम्हेव तत्थ येभुय्येन पसंसेय्युं।

९. "अपरं पि नो, कस्सप, विञ्ञू समनुयुञ्जन्तं समनुगाहन्तं समनुभासन्तं सत्थारा वा सत्थारं सङ्घेन वा सङ्घं—ये इमेसं भवतं धम्मा अकुसला अकुसलसङ्खाता, सावज्जा सावज्जसङ्खाता, असेवितब्बा असेवितब्बसङ्खाता, न अलमरिया न अलमरियसङ्खाता, कण्हा कण्हसङ्खाता— को इमे धम्मे अनवसेसं पहाय वत्तति, गोतमसावकसङ्घो वा परे वा पन भोन्तो गणाचरियसावकसङ्घा ति?

१०. "ठानं खो पनेतं, कस्सप, विज्जति यं विञ्ञू समनुयुञ्जन्ता समनुगाहन्ता समनुभासन्ता एवं वदेय्युं— 'ये इमेसं भवतं धम्मा अकुसला अकुसलङ्खाता, सावज्जा सावज्जसङ्खाता, असेवितब्बा असेवितब्बसङ्खाता, न अलमरिया न अलमरियसङ्खाता, कण्हा कण्हसङ्खाता—गोतमसावकसङ्घो इमे धम्मे अनवसेसं पहाय वत्तति, यं वा पन भोन्तो परे गणाचरियसावकसङ्घा' ति। इति ह, कस्सप, विञ्ञू समनुयुञ्जन्ता समनुगाहन्ता समनुभासन्ता अम्हेव तत्थ येभुय्येन पसंसेय्युं।

११. "अपरं पि नो, कस्सप, विञ्ञू समनुयुञ्जन्तं समनुगाहन्तं [B.156, R.165] समनुभासन्तं सत्थारा वा सत्थारं सङ्घेन वा सङ्घं— ये इमेसं भवतं धम्मा कुसला कुसलसङ्खाता, अनवज्जा अनवज्जसङ्खाता, सेवितब्बा सेवितब्बसङ्खाता, अलमरिया अलमरियसङ्खाता, सुक्का सुक्कसङ्खाता— को इमे धम्मे अनवसेसं समादाय वत्तति, गोतमसावकसङ्घो वा परे वा पन भोन्तो गणाचरियसावकसङ्घा ति?

१२. "ठानं खो पनेतं, कस्सप, विज्जति यं विञ्ञू समनुयुञ्जन्ता समनुगाहन्ता समनुभासन्ता एवं वदेय्युं— 'ये इमेसं भवतं धम्मा कुसला कुसलसङ्खाता, अनवज्जा अनवज्जसङ्खाता, सेवितब्बा सेवितब्बसङ्खाता, अलमरिया अलमरियसङ्खाता, सुक्का [N.141] सुक्कसङ्खाता—गोतमसावकसङ्घो इमे धम्मे अनवसेसं समादाय वत्तति, यं वा पन भोन्तो परे गणाचरियसावकसङ्घा' ति। इति ह, कस्सप, विञ्ञू समनुयुञ्जन्ता समनुगाहन्ता समनुभासन्ता अम्हेव तत्थ येभुय्येन पसंसेय्युं।

अकुशल हैं उन्हें अकुशल मानते हुए असेवनीय....इन धर्मों का सर्वथा त्याग किसने किया है— गौतम के श्रावकसङ्घ ने? या आप गणाचार्यों के श्रावकसङ्घ ने?

१०. काश्यप! यह उचित ही होगा कि विद्वज्जन....परस्पर विचार करते हुए सर्वसम्मति से यों कहें कि ये जो अकुशल धर्म है वे अकुशल ही हैं....इन धर्मों का सर्वथा त्याग गौतम के श्रावकसङ्घ ने ही किया है, न कि आप गणाचार्यों के श्रावकसङ्घ ने।

११. "फिर, काश्यप! यह भी है कि विद्वज्जन...परस्पर विचार करते हुए कहें कि जो धर्म कुशल हैं वे कुशल ही माने जाँयगे, जो धर्म अनवद्य है वे अनवद्य ही माने जायँगे, सेवितव्य हैं सेवितव्य ही माने जाँयगें....तो इन धर्मों का सर्वथा पालन किसने किया है?— गौतम के श्रावक सङ्घ ने या आप गणाचार्यों के श्रावकसङ्घ ने?

१२. काश्यप! यह उचित ही होगा कि जब विद्वज्जन....परस्सपर विचार करते हुए यह कहें— जो

३. यथापटिपन्नो सामं येव ञस्सति

१३. "अत्थि, कस्सप, मग्गो, अत्थि पटिपदा, यथापटिपन्नो सामं येव ञस्सति सामं दक्खति— 'समणो व गोतमो कालवादी भूतवादी अत्थवादी धम्मवादी विनयवादी' ति। कतमो च, कस्सप, मग्गो, कतमा च पटिपदा, यथापटिपन्नो सामं येव ञस्सति सामं दक्खति— समणो व गोतमो कालवादी भूतवादी अत्थवादी धम्मवादी विनयवादी ति? अयमेव अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, सेय्यथिदं— सम्मादिट्ठि सम्मासङ्कप्पो सम्मावाचा सम्माकम्मन्तो सम्माआजीवो सम्मावायामो सम्मासति सम्मासमाधि। अयं खो, कस्सप, मग्गो, अयं पटिपदा, यथापटिपन्नो सामं येव ञस्सति सामं दक्खति समणो व गोतमो कालवादी भूतवादी अत्थवादी धम्मवादी विनयवादी" ति।

४. तपोपक्कमा सामञ्ञब्रह्मञ्ञं अत्थि न वा

[B.157] १४. एवं वुत्ते, अचेलो कस्सपो भगवन्तं एतदवोच—"इमे पि खो, आवुसो गोतम, [R.166] तपोपक्कमा एतेसं समणब्राह्मणानं सामञ्ञसङ्खाता च ब्रह्मञ्ञसङ्खाता च। अचेलको होति मुत्ताचारो, हत्थापलेखनो, न एहिभद्दन्तिको, नतिट्ठभद्दन्तिको, नाभिहटं, न उद्दिस्सकतं न निमन्तनं सादियति। सो न कुम्भिमुखा पटिग्गण्हाति, न कळोपिमुखा पटिग्गण्हाति, न एळकमन्तरं, न दण्डमन्तरं, न मुसलमन्तरं, न द्विन्नं भुञ्जमानानं, न गब्भिनिया, न पायमानाय, न पुरिसन्तरगताय, न सङ्कित्तीसु, न यत्थ सा उपट्ठितो होति, न यत्थ मक्खिका सण्डसण्डचारिनी, न मच्छं न मंसं, न सुरं न मेरयं न थुसोदकं पिवति। सो एकागारिको वा होति एकालोपिको,

---

धर्म कुशल हैं....उन सबका सर्वथा पालन श्रमण गौतम के श्रावक सङ्घ ने ही किया है न कि आप गणाचार्यों के श्रावकसङ्घ ने। काश्यप! वे विद्वान सर्वथा ही प्रशंसा करेंगे।

३. सत्यान्वेषक स्वयं देख लेगा

१३. काश्यप! यह मार्ग (उपाय) है, यह प्रतिपदा (साधन) है कि जिसके द्वारा कोई भी समझदार (=यथाप्रतिपन्न) स्वयं जान लेगा स्वयं समझ लेगा कि श्रमण गौतम समयोचित बातें बोलने वाला (कालवादी), सच्ची बात ही बोलने वाला (भूतवादी), सार्थक बात ही बोलने वाला, धर्मानुकूल बात ही बालेने वाला, एवं विनयान्वित बात ही बोलने वाला है। काश्यप! वह मार्ग कौन सा है वह साधन कौन सा है जिसके द्वारा समझदार स्वयं समझ लेगा कि श्रमण गौतम ही कालवादी....बोलने वाला है? यह आर्यजनबोधित आठ अङ्गोंवाला मार्ग। जैसे— १. सम्यग्दृष्टि, २. सम्यक्सङ्कल्प, ३. सम्यग्वाक्, ४. सम्यक्कर्मान्त, ५. सम्यगाजीव, ६. सम्यग्व्यायाम, ७. सम्यक्स्मृति एवं ८. सम्यक्समाधि। काश्यप! यह है वह मार्ग, यह है वह साधन जिससे अवगाहन करता हुआ समझदार आदमी स्वयं जान लेगा कि श्रमण गौतम ही कालवादी .... विनयवादी हैं।

४. तपश्चर्या से श्रामण्य या ब्राह्मण्य द्योतित होता है कि नहीं?

१४. ऐसा कहे जाने के बाद, अचेल काश्यप ने भगवान् से पूछा— आयुष्मन् गौतम! उन श्रमणों व ब्राह्मणों की तपस्याओं के ये उपक्रम, उनके श्रमण भाव एवं ब्राह्मण भाव के द्योतक हैं कि नहीं? जैसे— किसी अचेलक का नग्न रहना, सभी आचार–विचारों का सर्वथा त्याग, भोजन के बाद थाली और हाथ का चाटना, आये अतिथि को न यह कहना कि 'आओ भन्ते', न जाते अतिथि को यह कहना कि 'जाओ भन्ते', न बुलाकर दी गयी भिक्षा का लेना, 'ठहरिये' कह कर दी गयी भिक्षा का लेना, न अपने

द्वागारिको वा होति द्वालोपिको, सत्तागारिको वा होति सत्तालोपिको; एकिस्सा पि दत्तिया यापेति, द्वीहि पि दत्तीहि यापेति, सत्तहि पि दत्तीहि यापेति; एकाहिकं पि आहारं आहारेति, द्वीहिकं पि आहारं आहारेति, सत्ताहिकं पि आहारं आहारेति; इति एवरूपं अद्धमासिकं पि परियायभत्तभोजनानुयोगमनुयुत्तो विहरति।

१५. "इमे पि खो, आवुसो गोतम, तपोपक्कमा एतेसं समणब्राह्मणानं सामञ्ञ- [N.142] सङ्खाता च ब्रह्मञ्ञसङ्खाता च—साकभक्खो वा होति, सामाकभक्खो वा होति, नीवारभक्खो वा होति, दद्दुलभक्खो वा होति, हटभक्खो वा होति, कणभक्खो वा होति, आचामभक्खो वा होति, पिञ्ञाकभक्खो वा होति, तिणभक्खो वा होति, गोमयभक्खो वा होति, वनमूलफलाहारो यापेति पवत्तफलभोजी।

१६. "इमे पि खो, आवुसो गोतम, तपोपक्कमा एतेसं समणब्राह्मणानं सामञ्ञसङ्खाता च ब्रह्मञ्ञसङ्खाता च—साणानि पि धारेति, मसाणानि पि धारेति, छवदुस्सानि पि धारेति, पंसुकूलानि पि धारेति, तिरीटानि पि धारेति, अजिनं पि धारेति, अज्जिनक्खिपं पि [R.167] धारेति, कुसचीरं पि धोरति, वाकचीरं पि धारेति, फलकचीरं पि धारेति, केसकम्बलं पि धारेति, वाळकम्बलं पि धारेति, उलूकपक्खिकं पि धारेति, केसमस्सुलोचको पि होति केसमस्सु-

---

लिये लायी गयी भिक्षा का लेना, न निमन्त्रित भिक्षा का लेना, न अपने लिये पकायी गयी, न हाँड़ी से सीधे निकाल कर दी गयी भिक्षा का लेना, न ओंखल, दण्ड या मूसल के बीच से लायी गयी भिक्षा का लेना, न दो भोजन करते व्यक्तियों के बीच से लायी गयी भिक्षा का लेना, न गर्भिणी द्वारा दी गयी भिक्षा का लेना, न बच्चे को दूध पिलाती स्त्री से भिक्षा लेना, न भिक्षा देते समय किसी अन्य पुरुष के बीच से निकल जाने पर भिक्षा लेना, न अन्य पुरुष के पास गयी स्त्री (सङ्कित्ती) से भिक्षा लेना, न चन्दा मांग कर बनायी गयी भिक्षा लेना, जहाँ कुत्ता खड़ा हो वहाँ से भिक्षा लेना, जहाँ मक्खियाँ भिन–भिना रही हों, वहाँ से भिक्षा लेना, न पकायी मछलियाँ, न पकाया मांस भिक्षा में लेना, न मद्य न मैरेय, न तुषोदक (चावल का सड़ा हुआ पानी) की भिक्षा लेना। वह (अचेलक) एक ही द्वार (घर) से भिक्षा लेता है, या एक ही ग्रास खाता है, वह दो घरों से भिक्षा लेता दो ग्रास ही खाता है, सात घरों से भिक्षा लेता है या मात्र सात ग्रास खाता है। वह एक ही कड़छी (दर्वी) भिक्षा लेता है, दो ही कड़छी... (सात ही कड़छी) भिक्षा लेता है। वह एक एक दिन बीच में देकर भिक्षा करता है, दो दो दिन...सात–सात नि बीच में दे कर भिक्षा करता है। इस तरह वह आधे–आधे महीने का भी बीच में अन्तर दे कर भिक्षा करते हुए साधना करता है।

१५. "आयुष्मन् गौतम! कुछ श्रमण–ब्राह्मणों की तपश्चर्या की ये भी विधियाँ (तरीके) हैं जिनसे उनका श्रमण भाव या ब्राह्मण भाव द्योतित होता है। जैसे– वह केवल साक–सब्जी ही खाता है, केवल साँवा खाकर रहता है, या केवल नीवार (तिन्नी धान्य) खाकर रहता है, वह दद्दुल (एक प्रकार का निम्न कोटि का चावल) खाकर रहता है, जल में उगी सेवाल खाकर रहता है, कण खाकर....काँजी (आचाम) पीकर ही रखता है, खली (पिण्याक) खाकर ही रहता है, तृण खा कर ही रहता है, गोबर खा कर ही या वन के कन्द, मूल, फल तोड़ कर उन्हें खा कर ही रहता है।

१६. "आयुष्मन् गौतम! कुछ श्रमण ब्राह्मणों की तपश्चर्या की ये विधियाँ भी उन के श्रमण भाव या ब्राह्मण भाव की द्योतक होती हैं– वह सन का बना वस्त्र ही पहनता है, मसाण (मसृण–चिकने) वस्त्र ही पहनता है, श्मशान के शवों से उतरे वस्त्र ही पहनता है, गलियों में पड़े चिथड़े ही पहनता है, वृक्षों वल्कल (तिरीट) चर्म ही पहनता है, मृगचर्म में छेदकर उसमें शरीर डालकर रहता है (अजिनक्खिप),

[B.158] लोचनानुयोगमनुयुत्तो, उब्भट्ठको पि होति आसनपटिक्खित्तो, उक्कुटिको पि होति उक्कुटिकप्पधानमनुयुत्तो, कण्टकापस्सयिको पि होति कण्टकापस्सये सेय्यं कप्पेति, फलकसेय्यं पि कप्पेति, थण्डिलसेय्यं पि कप्पेति, एकपस्सयिको पि होति रजोजल्लधरो, अब्भोकासिको पि होति यथासन्थतिको, वेकटिको पि होति विकटभोजनानुयोगमनुयुत्तो, अपानको पि होति अपानकत्तमनुयुत्तो, सायततियकं पि उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरती ति।

१७. "अचेलको चे पि, कस्सप, होति, मुत्ताचारो हत्थापलेखनो....पे०....इति एवरूपं अद्धमासिकं पि परियायभत्तभोजनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। तस्स चायं सीलसम्पदा चित्तसम्पदा पञ्ञासम्पदा अभाविता होति असच्छिकता। अथ खो सो आरका व सामञ्ञा आरका व ब्रह्मञ्ञा। यथो खो, कस्सप, भिक्खु अवेरं अब्यापज्जं मेत्तचित्तं भावेति, आसवानं च खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, कस्सप, भिक्खु समणो इति पि, ब्राह्मणो इति पि।

"साकभक्खो चे पि, कस्सप, होति सामाकभक्खो ....पे०.... वनमूलफलाहारो यापेति [N.143] पवत्तफलभोजी। तस्स चायं सीलसम्पदा चित्तसम्पदा पञ्ञासम्पदा अभाविता होति असच्छिकता। अथ खो सो आरका व सामञ्ञा आरका व ब्रह्मञ्ञा। यतो खो, कस्सप, [R.168] भिक्खु अवेरं अब्यापज्जं मेत्तचित्तं भावेति, आसवानं च खया अनासवं चेतोविमुत्तिं

कुश (डाभ) के बनाये वस्त्र....चटाई (वृक्ष की छाल) के बनाये वस्त्र ही.... काष्ठ से बनाये वस्त्र....केशों से... बालों से बनाया कम्बल ही धारण करता है, उल्लू के पङ्खों से तने वस्त्र धारण करता है। वह अपने केश और दाढ़ी मूँछ के बाल नोंच कर उखाड़ता रहता है, उन्हें दूसरों से नुचवाता रहता है, वह निरन्तर खड़ा ही रहता है, आसन पर कभी नहीं बैठता, उकडू ही बैठा रहता है, काँटों पर बैठता है, काँटों पर सोता है, काठ (तख्ता) की बनी शय्या पर सोता है, नीचे भूमि पर ही सोता है, एक ही पार्श्व से सोता है, शरीर पर धूल और गर्दा लपेटे रहता है, खुली जगह में ही सोता है (अब्भोकासिको), जहाँ पाता है वही बैठ जाता है, मैला (गन्दी, सड़ी-गली चीजें) खाता है, मैला जल भी पीता है। प्रातः, मध्याह्न एवं सायङ्काल-यों तीन समय स्नान (जल में उतरना) करता हुआ तप करता है।"

१७. "काश्यप! जो श्रमण अचेलक रहता हुआ सभी साधुजन प्रशंसित आचार-विचार छोड़ कर भोजनोत्तर हाथ में लगा हुआ अन्न तक चाट जाना...पूर्ववत्...आधे-आधे मास तक निराहार रहता हुआ साधना करता है, वह इस शीलसम्पत्ति चित्त संयम, एवं प्रज्ञा सम्पत्ति की भावना नहीं कर पाता, न उसे उनका साक्षात्कार ही होता है। वह श्रमणभाव एवं ब्राह्मणभाव से बहुत दूर है। सचाई यह है कि जो भिक्षु (तुम्हारे कहे व्यर्थ कार्यों को छोड़कर) वैर एवं द्रोहरहित हो कर मैत्री चित्त की भावना करता है, वही आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात्कार कर, उस तक पहुँच कर सच्ची साधना कर पाता है। काश्यप! (विद्वानों द्वारा) इसी को 'श्रमण' या 'ब्राह्मण' कहा जाता है।

और काश्यप! जो अचेलक साधक शाकाहारी, सामाकभक्षी...पूर्ववत्....वन के कन्द, मूल, फल या अनायास मिले हुए (प्रवृत्त) फल खाता है, इतने से ही उसकी शीलसम्पत्ति, चित्तसम्पत्ति या प्रज्ञासम्पत्ति भावित नहीं होती, उनका साक्षात्कार नहीं होता। वह तो वास्तविक श्रमण भाव एवं ब्राह्मण भाव से दूर ही है। हाँ, जो भिक्षु निर्वैर एवं निर्द्रोह होकर मैत्रीचित्त की भावना करता है वही आश्रवों के क्षय से...पूर्ववत्...'ब्राह्मण' कहा जाता है।

पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, कस्सप, भिक्खु समणो इति पि, ब्राह्मणो इति पि।

"साणानि चे पि, कस्सप, धारेति, मसाणानि पि धारेति....पे०....सायततियकं पि उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। तस्स चायं सीलसम्पदा चित्तसम्पदा पञ्ञासम्पदा अभाविता होति असच्छिकता। अथ खो सो आरका व सामञ्ञा आरका व ब्रह्मञ्ञा। यतो खो, [B.159] कस्सप, भिक्खु अवेरं अब्यापज्जं मेत्तचित्तं भावेति, आसवानं च खया अनासवं चेतोविभुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, कस्सप, भिक्खु समणो इति पि ब्राह्मणो इति पी" ति।

१८. एवं वुत्ते, अचेलो कस्सपो भगवन्तं एतदवोच—"दुक्करं, भो गोतम, सामञ्ञं दुक्करं ब्रह्मञ्ञं" ति।

"पकति खो एसा, कस्सप, लोकस्मिं दुक्करं सामञ्ञं दुक्करं ब्रह्मञ्ञं ति। अचेलको चे पि, कस्सप, होति मुत्ताचारो, हत्थापलेखनो...पे०....इति एवरूपं अद्धमासिकं पि परियायभत्त-भोजनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। इमाय च, कस्सप, मत्ताय इमिना तपोपक्कमेन सामञ्ञं वा अभविस्स ब्रह्मञ्ञं वा दुक्करं सुदुक्करं, नेतं अभविस्स कल्लं वचनाय—'दुक्करं सामञ्ञं दुक्करं ब्रह्मञ्ञं' ति।

"सक्का च पनेतं अभविस्स कातुं गहपतिना वा गहपतिपुत्तेन वा अन्तमसो कुम्भदासिया पि—'हन्दाहं अचेलको होमि, मुत्ताचारो, हत्थापलेखनो...पे०...इति एवरूपं अद्धमासिकं पि परियायभत्तभोजनानुयोगमनुयुत्तो विहरामी' ति।

"यस्मा च खो, कस्सप, अञ्ञत्रेव इमाय मत्ताय अञ्ञत्र इमिना तपोपक्कमेन सामञ्ञं वा होति ब्रह्मञ्ञं वा दुक्करं सुदुक्करं, तस्मा एतं कल्लं वचनाय—'दुक्करं सामञ्ञं दुक्करं ब्रह्मञ्ञं'

"काश्यप! जो साधक सण के बने वस्त्र धारण करता है....दिन में तीन समय जल में अवगाहन (स्नान) करता है, उसकी यह शीलसम्पदा...पूर्ववत्....'ब्राह्मण' कहा जाता है।"

१८. भगवान् का द्वारा ऐसा कहे जाने पर, वह अचेलक काश्यप भगवान् से यों कहने लगा—"तब तो, भो गौतम! यह श्रमण भाव या ब्राह्मणभाव पाना अत्यन्त दुष्कर ही है?"

"इस में क्या किया जाय, काश्यप! इस लोक में श्रमणभाव या ब्राह्मणभाव प्राप्त करना प्रकृतितः ही दुष्कर है। काश्यप! वह नग्न तपस्वी जो कि सभी आचार-विचारों से हीन है, हस्तापलेखक है....एक पक्ष में एक बार भोजन कर के जो अपनी तथाकथित दुष्कर तपश्चर्या में लगा रहता है, यदि वही इस श्रामण्यभाव ब्राह्मण भाव को प्राप्त कर लेता तो फिर इन्हें दुष्कर क्यों कहा जाता।

"यदि ये श्रमणभाव या ब्राह्मणभाव इस तपस्या से प्राप्त करने से इतने सरल होते तो साधारण गृहस्थ....या उस का लड़का....यहाँ तक कि पनिहारिनें भी कहतीं कि 'मैं अचेलक हो कर उक्त दुष्कर तपश्चर्या करने जा रही हूँ, ताकि मुझे श्रामण्य तथा ब्राह्मण्य मिल सके।'

"काश्यप! उस श्रामण्य एवं ब्राह्मण्य की प्राप्ति का तो इस ऐसी हीनवृत्तिक तपश्चर्या के अतिरिक्त दूसरा ही उपाय है। काश्यप! जब कोई भिक्षु निर्वैर एव निर्द्रोह होकर मैत्रीचित्त की भावना करता है, आश्रवों के क्षय से....पूर्ववत्.....साक्षात्कार कर साक्षात् कर साधना करता है, काश्यप! वही 'श्रमण' या 'ब्राह्मण' कहलाना उचित है।"

ति। यतो खो, कस्सप, भिक्खु अवेरं अब्यापज्जं मेत्तचित्तं भावेति, आसवानं च खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति, अयं [R.169] वुच्चति, कस्सप, भिक्खु समणो इति पि ब्राह्मणो इति पि।

[N.144] "साकभक्खो चे पि, कस्सप, होति, सामाकभक्खो....पे०....वनमूलफलाहारो यापेति पवत्तफलभोजी। इमाय च, कस्सप, मत्ताय इमिना तपोपक्कमेन सामञ्ञं वा अभविस्स ब्रह्मञ्ञं वा दुक्करं सुदुक्करं, नेतं अभविस्स कल्लं वचनाय— 'दुक्करं सामञ्ञं दुक्करं ब्रह्मञ्ञं' ति।

"सक्का च पनेतं अभविस्स कातुं गहपतिना वा गहपतिपुत्तेन वा अन्तमसो कुम्भदासिया पि— 'हन्दाहं साकभक्खो वा होमि, सामाकभक्खो वा...पे०.... वनमूलफलाहारो यापेमि पवत्तफलभोजी' ति।

[B.160] "यस्मा च खो, कस्सप, अञ्ञत्रेव इमाय मत्ताय अञ्ञत्र इमिना तपोपक्कमेन सामञ्ञं वा होति ब्रह्मञ्ञं वा दुक्करं सुदुक्करं, तस्मा एतं कल्लं वचनाय— 'दुक्करं सामञ्ञं दुक्करं ब्रह्मञ्ञं' ति। यतो खो कस्सप, भिक्खु अवेरं अब्यापज्जं मेत्तचित्तं भावेति, आसवानं च खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति; अयं वुच्चति, कस्सप, भिक्खु समणो इति पि, ब्राह्मणो इति पि।

"साणानि चे पि, कस्सप, धारेति, मसाणानि पि धारेति...पे०....सायततियकं पि उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। इमाय च, कस्सप, मत्ताय इमिना तपोपक्कमेन सामञ्ञं वा अभविस्स ब्रह्मञ्ञं वा दुक्करं सुदुक्करं, नेतं अभविस्स कल्लं वचनाय— 'दुक्करं सामञ्ञं दुक्करं ब्रह्मञ्ञं' ति।

"सक्का च पनेतं अभविस्स कातुं गहपतिना वा गहपतिपुत्तेन वा अन्तमसो कुम्भदासिया पि— 'हन्दाहं साणानि पि धारेमि, मसाणानि पि धारेमि...पे०....सायततियकं पि उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरामी' ति।

"यस्मा च खो, कस्सप, अञ्ञत्रेव इमाय मत्ताय अञ्ञत्र इमिना तपोपक्कमेन सामञ्ञं वा होति ब्रह्मञ्ञं वा दुक्करं सुदुक्करं, तस्मा एतं कल्लं वचनाय— 'दुक्करं सामञ्ञं दुक्करं ब्रह्मञ्ञं' ति। यतो खो, कस्सप, भिक्खु अवेरं अब्यापज्जं मेत्तचित्तं भावेति, आसवानं च खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति; अयं वुच्चति, कस्सप, भिक्खु समणो इति पि, ब्राह्मणो इति पी" ति।

[R.170] १९. एवं वुत्ते, अचेलो कस्सपो भगवन्तं एतदवोच— "दुज्जानो, भो गोतम, समणो, दुज्जानो ब्राह्मणो" ति।

"काश्यप! शाकभक्षी, शामाकभक्षी...वृक्षों के नीचे गिरे फल खा कर जीवन यापन करने वाला साधारण तपस्वी भी यदि इस हीन वृत्तिक तपश्चर्या से श्रमणभाव या ब्राह्मणभाव प्राप्त कर लेता तो इन्हें 'दुष्कर' क्यों कहा जाता।...पूर्ववत्....काश्यप! वही 'श्रमण' या 'ब्राह्मण' कहलाना उचित है।"

"काश्यप! सन के बने वस्त्र पहनकर ....पूर्ववत्....वही साधक भिक्षु 'श्रमण' या 'ब्राह्मण' कहलाता है।

''पकति खो एसा, कस्सप, लोकस्मिं दुज्जानो समणो दुज्जानो ब्राह्मणो ति। अचेलको चे पि, कस्सप, होति, मुत्ताचारो, हत्थापलेखनो....पे०....इति एवरूपं अद्धमासिकं [N.145] पि परियायभत्तभोजनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। इमाय च, कस्सप, मत्ताय इमिना [B.161] तपोपक्कमेन समणो वा अभविस्स ब्राह्मणो वा दुज्जानो सुदुज्जानो, नेतं अभविस्स कल्लं वचनाय— 'दुज्जानो समणो दुज्जानो ब्राह्मणो' ति। सक्का च पनेसो अभविस्स ञातुं गहपतिना वा गहपतिपुत्तेन वा अन्तमसो कुम्भदासिया पि— 'अयं अचेलको होति मुत्ताचारो, हत्थापलेखनो....पे०....इति एवरूपं अद्धमासिकं पि परियायभत्तभोजनानुयोगमनुयुत्तो विहरती' ति।

''यस्मा च खो, कस्सप, अञ्ञत्रेव इमाय मत्ताय अञ्ञत्र इमिना तपोपक्कमेन समणो वा होति ब्राह्मणो वा दुज्जानो सुदुज्जानो, तस्मा एतं कल्लं वचनाय— 'दुज्जानो समणो दुज्जानो ब्राह्मणो' ति। यतो खो, कस्सप, भिक्खु अवेरं अब्यापज्जं मेत्तचित्तं भावेति, आसवानं च खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति; अयं वुच्चति, कस्सप, भिक्खु समणो इति पि, ब्राह्मणो इति पि।

''साकभक्खो चे पि, कस्सप, होति सामाकभक्खो...पे०...वनमूलफलाहारो यापेति पवत्तफलभोजी। इमाय च, कस्सप, मत्ताय इमिना तपोपक्कमेन समणो वा अभविस्स ब्राह्मणो वा दुज्जानो सुदुज्जानो, नेतं अभविस्स कल्लं वचनाय— 'दुज्जानो समणो दुज्जानो ब्राह्मणो' ति।

''सक्का च पनेसो अभविस्स ञातुं गहपतिना वा गहपतिपुत्तेन वा अन्तमसो कुम्भदासिया पि— 'अयं साकभक्खो वा होति सामाकभक्खो...पे०...वनमूलफलाहारो यापेति पवत्तफलभोजी' ति।

''यस्मा च खो, कस्सप, अञ्ञत्रेव इमाय मत्ताय अञ्ञत्र इमिना तपोपक्कमेन समणो वा होति ब्राह्मणो वा दुज्जानो सुदुज्जानो, तस्मा एतं कल्लं वचनाय— 'दुज्जानो समणो [R.171] दुज्जानो ब्राह्मणो' ति। यतो खो, कस्सप, भिक्खु अवेरं अब्यापज्जं मेत्तचित्तं भावेति, आसवानं च खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति; अयं वुच्चति, कस्सप, भिक्खु समणो इति पि ब्राह्मणो इति पि।

''साणानि चे पि, कस्सप, धारेति, मसाणानि पि धारेति...पे०... साय-[B.162] ततियकं पि उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। इमाय च, कस्सप, मत्ताय इमिना [N.146] तपोपक्कमेन समणो वा अभविस्स ब्राह्मणो वा दुज्जानो सुदुज्जानो, नेतं अभविस्स कल्लं वचनाय— 'दुज्जानो समणो दुज्जानो ब्राह्मणो' ति।

''सक्का च पनेसो अभविस्स ञातुं गहपतिना वा गहपतिपुत्तेन वा अन्तमसो कुम्भदासिया पि— 'अयं साणानि पि धारेति, मसाणानि पि धारेति...पे०...सायततियकं पि उदकोरोहनानुयोग-मनुयुत्तो विहरती' ति।

''यस्मा च खो, कस्सप, अञ्ञत्रेव इमाय मत्ताय अञ्ञत्र इमिना तपोपक्कमेन समणो वा होति ब्राह्मणो वा, दुज्जानो सुदुज्जानो, तस्मा एतं कल्लं वचनाय— 'दुज्जानो समणो दुज्जानो

---

१९. भगवान् द्वारा ऐसा बताये जाने पर, वह अचेल काश्यप भगवान् से यों बोला– ''भो गौतम! तब तो ऐसा श्रमण या ऐसा ब्राह्मण मिलना दुर्लभ है।''

ब्राह्मणो' ति। यतो खो, कस्सप, भिक्खु अवेरं अब्यापज्जं मेत्तचित्तं भावेति, आसवानं च खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति; अयं वुच्चति, कस्सप, भिक्खु समणो इति पि, ब्राह्मणो इति पी'' ति।

५. सीलचित्तपञ्ञासम्पदा

२०. एवं वुत्ते, अचेलो कस्सपो भगवन्तं एतदवोच– ''कतमा पन सा, भो गोतम, सीलसम्पदा, कतमा चित्तसम्पदा, कतमा पञ्ञासम्पदा'' ति?

''इध, कस्सप, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो...पे०... भयदस्सावी समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु, कायकम्मवचीकम्मेन समन्नागतो कुसलेन परिसुद्धाजीवो सीलसम्पन्नो इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो सन्तुट्ठो।

२१. ''कथं च, कस्सप, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति? इध, कस्सप, भिक्खु पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति निहितदण्डो निहितसत्थो लज्जी दयापन्नो सब्बपाणभूत- [R.172] हितानुकम्पी विहरति। इदं पिस्स होति सीलसम्पदाय...पे०....।

''यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपाय [B.163] तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथीदं– सन्तिकम्मं पणिधिकम्मं...पे०... ओसधीनं पतिमोक्खो इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो होति। इदं पिस्स होति सीलसम्पदाय।

[N.147] ''स खोसो, कस्सप, भिक्खु एवं सीलसम्पन्नो न कुतोचि भयं समनुपस्सति, यदिदं

''हाँ, काश्यप! इस में हम और तुम क्या कर सकते हैं, इस लोक में ऐसे श्रमण–ब्राह्मण मिलना तो स्वभावतः दुर्लभ हैं। यदि अचेलक ही सामाजिक आचार–विचार छोड़ने मात्र से....पूर्ववत्.... शाकभक्षी....सन का वस्त्र पहनने वाले....। काश्यप! ऐसा साधक भिक्षु ही 'श्रमण' भी कहलाता है और 'ब्राह्मण' भी।

५. शीलसम्पत्ति, चित्तसम्पत्ति एवं प्रज्ञासम्पत्ति

२०. ऐसा कहे जाने पर, उस अचेल काश्यप ने भगवान् से यों पूछा–''भो गौतम! वह शील–सम्पत्ति, वह चित्तसम्पत्ति और वह प्रज्ञासम्पत्ति कौन सी है। (जिसका आप इतना गुणगान कर रहे हैं)?''

''काश्यप ! जब इस लोक में तथागत , अर्हन् सम्यक्सम्बुद्ध अवतरित होते हैं.... पूर्ववत् .... त्रिरत्न के प्रति लज्जा, भय एवं सङ्कोच मानता हुआ शिक्षापदों (आचार–नियमों) का पालन करता है, इस शरीर और मन से कुशल कार्य करने में ही लगा रहता है, सदाचारी, परिशुद्ध रहता हुआ इन्द्रियों को वश में रखने वाला, स्मृति एवं सम्प्रजन्य (सावधानी) युक्त एवं सन्तुष्ट रहता है।

२१. ''काश्यप ! वह भिक्षु किस साधना से शीलसम्पन्न होता है? काश्यप ! यहाँ कोई भिक्षु प्राणातिपात को त्याग कर उससे दूर रहता है, (दूसरों को भयतर्जित करने के लिये) दण्ड शस्त्र आदि का ग्रहण नहीं करता, लज्जालु, दयासम्पन्न, सभी प्राणियों के लिये हितसम्पादनार्थ अनुकम्पायुक्त रहता है। यह शीलसम्पत्ति कहलाती है।

''अथवा–जैसे अनेक श्रमण–ब्राह्मण गृहस्थों द्वारा श्रद्धाप्रदत्त भोजन खा कर भी शान्ति कर्म, प्रणिधान कर्म....पूर्ववत् .... आदि हीनवृत्तियों द्वारा अपना जीवन बिताते है, ऐसी हीनवृत्तियों से, वह साधक भिक्षु दूर रहता है। यह भी शीलसम्पत्ति ही कहलाती है।

''काश्यप! वह यह साधक भिक्षु शीलसम्पन्न रहता हुआ कहीं से भी भयभीत नहीं होता; क्योंकि वह शील संवृत है। जैसे, काश्यप, कोई मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा, अपने सभी शत्रुओं के विनष्ट हो जाने

सीलसंवरतो। सेय्यथापि, कस्सप, राजा खत्तियो मुद्धावसित्तो निहतपच्चामित्तो न कुतोचि भयं समनुपस्सति, यदिदं पच्चत्थिकतो; एवमेव खो, कस्सप, भिक्खु एवं सीलसम्पन्नो न कुतोचि भयं समनुपस्सति, यदिदं सीलसंवरतो। सो इमिना अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो अज्झत्तं अनवज्जसुखं पटिसंवेदेति। एवं खो, कस्सप, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति। अयं खो, कस्सप, सीलसम्पदा।

...पे०...पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं पिस्स होति चित्तसम्पदाय..पे०...[R.173] दुतियं झानं....ततियं झानं....चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं पिस्स होति चित्तसम्पदाय। अयं खो, कस्सप, चित्तसम्पदा।

"सो एवं समाहिते चित्ते...पे०....ञाणदस्सनाय चित्तं अभिनीहरति अभि-[R.174] निन्नामेति। इदं पिस्स होति पञ्ञासम्पदाय...पे०...नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति। इदं पिस्स होति पञ्ञासम्पदाय। अयं खो, कस्सप, पञ्ञासम्पदा।

"इमाय च, कस्सप, सीलसम्पदाय चित्तसम्पदाय पञ्ञासम्पदाय अञ्ञा सीलसम्पदा चित्तसम्पदा पञ्ञासम्पदा उत्तरितरा वा पणीततरा वा नत्थि।

६. सीहनादो

२२. "सन्ति, कस्सप, एके समणब्राह्मणा सीलवादा। ते अनेकपरियायेन सीलस्स वण्णं भासन्ति। यावता, कस्सप, अरियं परमं सीलं, नाहं तत्थ अत्तनो समसमं समनुपस्सामि, कुतो भिय्यो! अथ खो अहमेव तत्थ भिय्यो, यदिदं अधिसीलं।

"सन्ति, कस्सप, एके समणब्राह्मणा तपोजिगुच्छावादा। ते अनेकपरियायेन तपोजि-

---

पर कहीं से भी अपने लिये शत्रुओं से होने वाली कोई भयजनक सामग्री नहीं देखता; इसी तरह, काश्यप! इस तरह उपर्युक्त शीलवान् भिक्षु भी शीलसंवृत होने के कारण, कहीं से भी भयभीत नहीं होता। वह इस आर्यशील समूह से समन्वागत होकर आध्यात्मिक निर्दुष्ट सुख का अनुभव करता है। काश्यप ! इस तरह वह भिक्षु शीलसम्पन्न होता है। काश्यप यह भी शीलसम्पत्ति ही कहलाती है। (१)

चित्तसम्पत्ति–" .... पूर्ववत् .... प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। .... द्वितीय ध्यान .... तृतीय ध्यान .... चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर साधना करता है। यह भी चित्तसम्पत्ति होती है। काश्यप! यह चित्तसम्पत्ति कहलाती है। (२)

प्रज्ञासम्पत्ति–"वह साधक भिक्षु इस तरह समाहित चित्त हो जाने पर ....पूर्ववत्.... ज्ञानदर्शन के लिये स्वचित्त को लगाता है .... यह भी उसकी प्रज्ञासम्पत्ति के रूप में माना जाता है। काश्यप! यह होती है प्रज्ञासम्पदा। (३)

"काश्यप! इस शीलसम्पत्ति से, इस चित्तसम्पत्ति से, इस प्रज्ञासम्पत्ति से बढ़कर उत्कृष्टतर या प्रणीततर कोई अन्य शील–चित्त–प्रज्ञासम्पत्तियाँ नहीं हैं।

६. सिंहनाद

२२. "काश्यप! यहाँ अन्य कितने ही श्रमण–ब्राह्मण अपने को शीलवान् कहते हुए अपने शील (आचार) की प्रशंसा करते हैं। परन्तु, काश्यप! जहाँ उत्कृष्टतम आर्यशील की बात है उसके पालन में मैं इस लोक में अपने समान भी किसी को नहीं मानता, मुझसे श्रेष्ठ मानने की तो बात ही कहाँ उठती है।

"काश्यप! कोई–कोई अन्य श्रमण–ब्राह्मण भी पूर्वोक्त हीन तपश्चर्याओं की निन्दा करते है, वे

[B.164] गुच्छाय वण्णं भासन्ति। यावता, कस्सप, अरिया परमा तपोजिगुच्छा, नाहं तत्थ अत्तनो समसमं समनुपस्सामि, कुतो भिय्यो! अथ खो अहमेव तत्थ भिय्यो, यदिदं अधिजेगुच्छं।

"सन्ति, कस्सप, एके समणब्राह्मणा पञ्ञावादा। ते अनेकपरियायेन पञ्ञाय वण्णं [N.148] भासन्ति। यावता, कस्सप, अरिया परमा पञ्ञा, नाहं तत्थ अत्तनो समसमं समनुपस्सामि, कुतो भिय्यो! अथ खो अहमेव तत्थ भिय्यो, यदिदं अधिपञ्ञं।

"सन्ति, कस्सप, एके समणब्राह्मणा विमुत्तिवादा। ते अनेकपरियायेन विमुत्तिया वण्णं भासन्ति। यावता, कस्सप, अरिया परमा विमुत्ति, नाहं तत्थ अत्तनो समसमं समनुपस्सामि, कुतो भिय्यो! अथ खो अहमेव तत्थ भिय्यो, यदिदं अधिविमुत्ति।

[R.175] २३. "ठानं खो पनेतं, कस्सप, विज्जति, यं अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं— 'सीहनादं खो समणो गोतमो नदति, तं च खो सुञ्ञागारे नदति नो परिसासू' ति। ते— 'मा हेवं', तिस्सु वचनीया 'सीहनादं च समणो गोतमो नदति, परिसासु च नदती' ति एवमस्सु, कस्सप, वचनीया।

"ठानं खो पनेतं, कस्सप, विज्जति यं अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं— 'सीहनादं च समणो गोतमो नदति, परिसासु च नदति, नो च खो विसारदो नदती' ति। ते— 'मा हेवं,' तिस्सु वचनीया 'सीहनादं च समणो गोतमो नदति, परिसासु च नदति, विसारदो च नदती' ति एवमस्सु, कस्सप, वचनीया।

"ठानं खो पनेतं, कस्सप, विज्जति यं अञ्ञतित्थिया परिब्बाजका एवं वदेय्युं—

नाना युक्तियों से उन तपस्याओं की हीनता सिद्ध करते हैं; परन्तु काश्यप! जहाँ तक उन तपस्याओं की आर्यधर्मानुकूल युक्तियों से खण्डन करने की बात है, मेरे समान कोई नहीं है। मुझ से उत्कृष्टतर की तो बात ही क्या!

"और, काश्यप! कई श्रमण–ब्राह्मण अपने को प्रज्ञावादी मानते हुए अपने उस प्रज्ञावाद का कई तरह से गुणगान करते हैं। परन्तु काश्यप! जहाँ तक आर्यधर्मानुकूल श्रेष्ठ प्रज्ञा का प्रश्न है उसमें मैं अपने समान भी किसी अन्य को नहीं समझता, मुझ से कोई उत्कृष्ट होगा–इसकी तो चर्चा ही क्या की जाय!

"और, काश्यप! कई श्रमण–ब्राह्मण अपने को विमुक्तिवादी मानते हुए अपने उस विमुक्तिवाद की बहुत प्रशंसा करते हैं। परन्तु, काश्यप! जहाँ तक आर्यधर्मानुमोदित श्रेष्ठ विमुक्ति का प्रश्न है, उसमें मैं अपने समान किसी को नहीं समझता, फिर किसी को अपने से उत्कृष्ट मानने की तो बात ही कहाँ उठती हैं!

२३. "सम्भव है, काश्यप! कि कोई दूसरे मतवाला परिव्राजक यह कहता हो–'श्रमण गौतम सिंहनाद (अपनी बात को दृढ़ता एवं निर्भीकता से कहना) करता तो है, परन्तु उसका वह सिंहनाद एकान्त में, शून्यगारों में होता है, विद्वानों की सभा में नहीं।' उन वैसा कहने वालों को समझाना चाहिये कि तुम ऐसा न बोलो, क्योंकि श्रमण गौतम तो अपना सिंहनाद भरी सभाओं में ही करता है।

"और, काश्यप! यह भी सम्भव है कि कोई दूसरे मतवादी परिव्राजक यह कह बैठे कि 'श्रमण गौतम सिंहनाद तो परिषद् में ही करता है परन्तु उसका मत युक्तियुक्त एवं तर्कसंगत न ही होता।' तब काश्यप! उनको यह समझाना चाहिये कि 'श्रमण गौतम का वह परिषद में किया गया सिंहनाद युक्तियुक्त एवं तर्कसङ्गत भी होता है।'"

"और, काश्यप! यह भी सम्भव है कि कोई दूसरा मतवादी परिव्राजक यों कहे–'श्रमण गौतम

'सीहनादं च समणो गोतमो नदति, परिसासु च नदति, विसारदो च नदति, नो च खो नं पञ्हं पुच्छन्ति....पे०...पञ्हं च नं पुच्छन्ति; नो च खो नेसं पञ्हं पुट्ठो ब्याकरोति .... पे०.... पञ्हं च नेसं पुट्ठो ब्याकरोति; नो च खो पञ्हस्स वेय्याकरणेन चित्तं आराधेति ....पे०.... पञ्हस्स च वेय्याकरणेन चित्तं आराधेति; नो च खो सोतब्बं मञ्ञन्ति ....पे०.... सोतब्बं [B.165] चस्स मञ्ञन्ति; नो च खो सुत्वा पसीदन्ति ....पे०.... सुत्वा चस्स पसीदन्ति; नो च खो पसन्नाकारं करोन्ति ....पे०.... पसन्नाकारं च करोन्ति; नो च खो तथत्ताय पटिपज्जन्ति ....पे०.... तथत्ताय च पटिपज्जन्ति; नो च खो पटिपन्ना आराधेन्ती' ति। ते—'मा हेवं' तिस्सु वचनीया 'सीहनादं च समणो गोतमो नदति, परिसासु च नदति, विसारदो च नदति, पञ्हं च नं पुच्छन्ति पञ्हं च नेसं पुट्ठो ब्याकरोति, पञ्हस्स च ब्याकरणेन चित्तं आराधेति, सोतब्बं च मञ्ञन्ति, सुत्वा च पसीदन्ति, पसन्नाकारं च करोन्ति, तथत्ताय च पटिपज्जन्ति, पटिपन्ना च आराधेन्ती' ति एवमस्सु, कस्सप, वचनीया।

७. अचेलकस्स पब्बज्जा

२४. "एकमिदाहं, कस्सप, समयं राजगहे विहरामि गिज्झकूटे पब्बते। तत्र मं [N.149] अञ्ञतरो तपब्रह्मचारी निग्रोधो नाम अधिजेगुच्छे पञ्हं अपुच्छि। तस्साहं अधिजेगुच्छे [R.176] पञ्हं पुट्ठो ब्याकासिं। ब्याकते च पन मे अत्तमनो अहोसि परं विय मत्ताया" ति।

"को हि, भन्ते, भगवतो धम्मं सुत्वा न अत्तमनो अस्स परं विय मत्ताय! अहं पि हि, भन्ते, भगवतो धम्मं सुत्वा अत्तमनो परं विय मत्ताय। अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते। सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति, एवमेवं

परिषद् में सिंहनाद करता हुआ युक्तियुक्त ही अपने मत का प्रतिपादन भी करता है परन्तु उससे कोई प्रश्न है ही नहीं पूछता।' तो उनको यह बताना चाहिये ....प्रश्न भी पूछा जाता है।.... उनके पूछे गये प्रश्न का उत्तर नहीं देता। .... उनसे पूछे चित्त को प्रसन्न नहीं कर पाता .... चित्त को प्रसन्न भी कर पाता है .... उसके उत्तरको सुनने योग्य नहीं समझते।....उसके उत्तर को सुनने योग्य भी समझते है। ....उसका उत्तर सुनकर वे प्रसन्न नहीं होते। .... प्रसन्न भी होते है। .... सुनकर प्रसन्नता का भाव अपने मुख पर नहीं आने दते। ....सुनकर उसे सत्य (तथ) नहीं मानते। ....सत्य भी मानते हैं। ....सत्य मान कर उसे मन में नहीं बैठाते। ....सत्य मान कर उसे मन में भी बैठाते हैं। यदि वे ऐसा कुछ भी न कह पावें इस लिये कहना चाहियें कि 'श्रमण गौतम! सिंहनाद करता है, वह भी विद्वत्परिषदों में , युक्तिपूर्वक बोलता है, उससे प्रश्न भी पूछे जाते है, प्रश्नों का वह उत्तर भी देता है, उस उत्तर से उन का चित्त प्रसन्न होता है। ... और प्रसन्नता का भाव उनकी मुखाकृति पर भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। उसके उत्तर को सत्य भी माना जाता है। उसके उत्तर सत्य मान कर अपने चित्त में भी बैठा लेते हैं।'

७. अचेलकाश्यप को प्रव्रज्या

२४. "काश्यप! एक समय मैं राजगृह के गृध्रकूट पर्वत साधना में रत था। उस समय एक न्यग्रोध नामक ब्रह्मचारी तपस्वी ने जुगुप्सा (घृणा) के विषय पर प्रश्न किया मैने उसका विषयानुसार उत्तर दिया। वह उत्तर सुनकर अत्यधिक मात्रा में प्रसन्न हुआ।"

"भन्ते! ऐसा कौन (अविवेकी) होगा जो भगवान् से अपने प्रश्न का उचित (तर्कानुकूल) उत्तर सुन कर भी प्रसन्न न हो। आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते!! जैसे, भन्ते! कोई औंधें को सीधा कर दे ....पूर्ववत्

भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं'' ति।

२५. ''यो खो, कस्सप, अञ्ञतित्थियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खति पब्बज्जं, आकङ्खति उपसम्पदं, सो चत्तारो मासे परिवसति। चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति, उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय। अपि च मेत्थ पुग्गलवेमत्तता विदिता'' ति।

''सचे, भन्ते, अञ्ञतित्थियपुब्बा इमस्मिं धम्मविनये आकङ्खन्ता पब्बजं आकङ्खन्ता उपसम्पदं चत्तारो मासे परिवसन्ति, चतुन्नं मासानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्ति, उपसम्पादेन्ति भिक्खुभावाय, अहं चत्तारि वस्सानि परिवसिस्सामि, चतुन्नं वस्सानं अच्चयेन आरद्धचित्ता भिक्खू पब्बाजेन्तु उपसम्पादेन्तु भिक्खुभावाया'' ति।

अलत्थ खो अचेलो कस्सपो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो खो पनायस्मा कस्सपो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो न चिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। ''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया'' — ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो खो पनायस्मा कस्सपो अरहतं अहोसी ति॥

महासीहनादसुत्तं निट्ठितं अट्ठमं॥

.... भगवान् की धर्म एवं सङ्घ की शरण में जाता हूँ। भन्ते! क्या ही अच्छा हो,मैं आप से प्रव्रज्या पाऊँ, उपसम्पदा (दीक्षा) ग्रहण कर लूँ।''

२५. ''काश्यप! जो मेरे धर्म में प्रव्रज्याभिलाषी पहले किसी अन्य मत की दीक्षा ले चुका हो वह यदि मेरे इस धर्म में भिक्षु होने के लिये प्रव्रज्या चाहे, उपसम्पदा चाहे तो उसको (इसके लिये) चार मास प्रतीक्षा (परिवास) करनी पड़ती है। चार महीने बीतने पर, यदि वे भिक्षु उसके आचरण से सन्तुष्ट हों तो उसे भिक्षुभाव के लिये प्रव्रज्या देते हैं, उपसम्पन्न करते है, अभी मेरा तुम से इतना ही परिचय हुआ तुम एक मनुष्य (पुद्गल) हो।''

''भन्ते! यदि दूसरे मत वाले परिव्राजक जब आप के इस धर्म में प्रव्रज्या और उपसम्पदा चाहते हैं तो भिक्षु उन्हें चार महीनों के लिये परिवास (परीक्षार्थ वास) देते हैं चार मास बाद .... पूर्ववत्....। तो मैं चार साल तक भी परिवास करूँगा। चार वर्ष बीतने पर मेरे चरित्र से सन्तुष्ट हो कर भिक्षु मुझे अपने धर्म में भिक्षु होने के लिये प्रव्रज्या दें, उपसम्पदा दें।

अचेल काश्यप ने भगवान् के पास प्रव्रज्या पायी, उपसम्पदा ली। उपसम्पदा लेने के बाद, आयुष्मान् काश्यप एकान्त में प्रमादरहित उद्योगसहित, आत्मनिग्रही हो साधना करते–करते कुछ ही समय में जिस के लिये कुलपुत्र घर छोड़ (बेघर हो) साधु हो जाते हैं उस अनुपम ब्रह्मचर्य (धर्मसाधन) के अन्तिम किनारे को इसी जन्म में स्वयं जान कर, साक्षात् (प्रत्यक्ष)कर प्राप्त कर साधनारत रहे। ''मेरा इस संसार में आवागमन छूट गया, धर्मसाधना पूर्ण हुई, कर्तव्य कर चुका, अब यहाँ मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है–' इस बात का उसे अभिज्ञान हो गया। एक समय आने पर वह आयुष्मान् अचेल काश्यप भी अर्हतों में से एक हुए।।

अष्टम महासिंहनादसूत्र समाप्त॥

९. पोट्ठपादसुत्तं

१. भगवा पोट्ठपादं परिब्बाजकं उपसङ्कमि

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [N.150, B.167, R.178] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन पोट्ठपादो परिब्बाजको समयप्पवादके तिन्दुकाचीरे एकसालके मल्लिकाय आरामे पटिवसति महतिया परिब्बाजकपरिसाय सद्धिं तिंसमत्तेहि परिब्बाजकसतेहि। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सावत्थिं पिण्डाय पाविसि।

२. अथ खो भगवतो एतदहोसि—"अतिप्पगो खो ताव सावत्थियं पिण्डाय चरितुं। यन्नूनाहं येन समयप्पवादको तिन्दुकाचीरो एकसालको मल्लिकाय आरामो येन पोट्ठपादो परिब्बाजको तेनुपसङ्कमेय्यं" ति। अथ खो भगवा येन समयप्पवादको तिन्दुकाचीरो एकसालको मल्लिकाय आरामो तेनुपसङ्कमि।

३. तेन खो पन समयेन पोट्ठपादो परिब्बाजको महतिया परिब्बाजकपरिसाय सद्धिं निसिन्नो होति उन्नादिनिया उच्चासद्दमहासद्दाय अनेकविहितं तिरच्छानकथं कथेन्तिया, सेय्यथिदं—राजकथं चोरकथं महामत्तकथं सेनाकथं भयकथं युद्धकथं अन्नकथं पानकथं वत्थकथं सयनकथं मालाकथं गन्धकथं ञातिकथं यानकथं गामकथं निगमकथं [R.179] नगरकथं जनपदकथं इत्थिकथं पुरिसकथं सूरकथं विसिखाकथं कुम्भट्ठानकथं पुब्बपेतकथं नानत्तकथं लोकक्खायिकं समुद्दक्खायिकं इतिभवाभवकथं इति वा।

४. अद्दसा खो पोट्ठपादो परिब्बाजको भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं; दिस्वान सकं परिसं सण्ठपेसि—"अप्पसद्दा भोन्तो होन्तु। मा भोन्तो सद्दमकत्थ। अयं समणो गोतमो

---

९. प्रौष्ठपादसूत्र

१. भगवान् का प्रौष्ठपाद परिव्राजक के पास जाना

१. ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्तीस्थित ....जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कोई प्रौष्ठपाद नामक परिव्राजक तीस हजार संख्या वाले बृहत् परिव्राजकसङ्घ के साथ अपने समय के भिन्न मतानुयायियों के मिलन–स्थल (=समयप्रवादक) एकशाला (विश्रामगृह) वाले तथा मल्लिका देवी (कोसलराजमहिषी) द्वारा निर्मापित तिन्दुकाचीर नामक विहार में ठहरा हुआ था। तब भगवान् प्रातः काल वस्त्र पहन कर पात्र चीवर ले श्रावस्ती में भिक्षाहेतु प्रविष्ट हुए।

तब भगवान् को यह विचार हुआ कि 'अभी तो भिक्षाकर्म में कुछ विलम्ब है, तो क्यों न मैं इतनी देर.... तिन्दुकाचीर में प्रोष्ठपाद परिव्राजक के पास चलूँ।' तब भगवान् .... तिन्दुकाचीर में पधारे।

३. उस समय प्रौष्ठपाद परिव्राजक अपनी घोर कोलाहल एवं, निरर्थक बातें करती विशाल परिव्राजक सभा के बीच बैठा था। उस समय वह सभा राजाओं चोरों, अमात्यों, सेनाओं, भयकारक, युद्ध, अन्न, पान, वस्त्र, शयन, गन्धमय पुष्पों, मालाओं सम्बन्धियों (रिश्तेदारों), यात्राओं, ग्रामों, नगरों, निगमों, जनपदों, स्त्रियों, शूरवीरों, चौराहों, (विशिखा) पनघट, प्रेतों, लोककथाओं, समुद्रयात्राओं के विषय में 'ऐसा–हुआ, ऐसा नहीं हुआ' आदि निरर्थक बातें करती हुई व्यर्थ कोलाहल कर रही थी।

४. इसी बीच प्रौष्ठपाद परिव्राजक ने दूर से ही भगवान् को आते देखा, देख कर अपनी

आगच्छति। अप्पसद्दकामो खो सो आयस्मा अप्पसद्दस्स वण्णवादी। अप्पेव नाम अप्पसद्दं परिसं विदित्वा उपसङ्कमितब्बं मञ्ञेय्या'' ति। एवं वुत्ते, ते परिब्बाजका तुण्ही अहेसुं।

[B.168] ५. अथ खो भगवा येन पोट्ठपादो परिब्बाजको तेनुपसङ्कमि। अथ खो पोट्ठपादो [N.151] परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—''एतु खो, भन्ते, भगवा। स्वागतं, भन्ते, भगवतो। चिरस्सं खो, भन्ते, भगवा इमं परियायमकासि यदिदं इधागमनाय। निसीदतु, भन्ते, भगवा। इदं आसनं पञ्ञत्तं'' ति। निसीदि भगवा पञ्ञत्ते आसने। पोट्ठपादो पि खो परिब्बाजको अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो पोट्ठपादं परिब्बाजकं भगवा एतदवोच—''काय नुत्थ, पोट्ठपाद, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना, का च पन वो अन्तराकथा विप्पकता'' ति?

२. कथं नु अभिसञ्ञानिरोधो होति?

६. एवं वुत्ते, पोट्ठपादो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—''तिट्ठतेसा, भन्ते, कथा याय मयं एतरहि कथाय सन्निसिन्ना। नेसा, भन्ते, कथा भगवतो दुल्लभा भविस्सति पच्छा पि सवनाय। पुरिमानि, भन्ते, दिवसानि पुरिमतरानि नानातित्थियानं समणब्राह्मणानं कोतूहलसालाय [R.180] सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अभिसञ्ञानिरोधे कथा उदपादि—'कथं नु खो, भो, अभिसञ्ञानिरोधो होती' ति? तत्रेकच्चे एवमाहंसु—'अहेतू अप्पच्चया पुरिसस्स सञ्ञा उप्पज्जन्ति पि निरुज्झन्ति पि। यस्मिं समये उप्पज्जन्ति, सञ्ञी तस्मिं समये होति; यस्मिं समये निरुज्झन्ति, असञ्ञी तस्मिं समये होती' ति। इत्थेके अभिसञ्ञानिरोधं पञ्ञपेन्ति।

''तमञ्ञो एवमाह—'न खो पन मेतं, भो, एवं भविस्सति। सञ्ञा हि, भो, पुरिसस्स

परिव्राजक परिषद् से कहा—''आप लोग चुप रहे, कोलाहल न करें। देख नहीं रहे हो (सामने) श्रमण गौतम आ रहे हैं। इन्हें कोलाहल अच्छा नहीं लगता, ये शान्त रहने (कोलाहल न करने) वाले की ही प्रशंसा करते हैं। सम्भव है ये आप को शान्त (नि:शब्द) बैठा देख कर इधर ही आ जाँय?'' ऐसा कहे जाने पर वे परिव्राजक शान्त (चुप) हो गये।

५. तब भगवान् प्रौष्ठपाद परिव्राजक के यहाँ पधारे। और उस परिव्राजक ने भगवान् से यों कहा—''आइये, भन्ते! पधारिये; भगवन्! आपका स्वागत है। बहुत समय बाद आप इधर आने का अवसर निकाल सके! भगवन्! आसन बिछा हुआ है। इस पर आप विराजें। ऐसा कहने पर भगवान् प्रज्ञप्त आसन पर विराज गये। तब वह परिव्राजक एक दूसरा नीचा आसन ले कर उस पर बैठा। इस तरह बैठे प्रौष्ठपाद को भगवान् ने पूछा—''परिव्राजक! अभी (मेरे आने से पहले) आप लोगों में क्या बातें चल रही थीं?''

२. अभिसंज्ञानिरोध कैसे होता है?

६. ऐसा पूछे जाने पर उस परिव्राजक ने भगवान् से यों निवेदन किया—''भन्ते! यहाँ की बातें छोड़िये, इन्हें तो आप फिर कभी भी सुन लेंगे, क्यों कि ये आप के लिये दुर्लभ नहीं है। भन्ते! कुछ दिन पहले कभी कुतूहलशाला में एकत्र हुए नाना पन्थों (मतों) के श्रमण–ब्राह्मणों में अभिसंज्ञानिरोध (एक समाधि अवस्था) पर संवाद चल पड़ा कि अभिसंज्ञा निरोध कैसे होता है? तब किसी ने कहा—'विना हेतु या विना प्रत्यय ही पुरुष की संज्ञा (चेतना) उत्पन्न होती है या निरुद्ध होती है। जिस समय वह (संज्ञा) उत्पन्न होता है, तब वह संज्ञी (संज्ञासहित) होता है जब वह निरुद्ध होती है तब वह असंज्ञी (संज्ञारहित) होता है— इस प्रकार कोई–कोई श्रमण–ब्राह्मण इस अभिसंज्ञानिरोध का व्याख्यान करते हैं।'

अत्ता। सा च खो उपेति पि अपेति पि। यस्मिं समये उपेति, सञ्ञी तस्मिं समये होति। यस्मिं समयं अपेति, असञ्ञी तस्मिं समये होती' ति। इत्थेके अभिसञ्ञानिरोधं पञ्ञपेन्ति।

"तमञ्ञो एवमाह—'न खो पन मेतं, भो, एवं भविस्सति। सन्ति हि, भो, समण-ब्राह्मणा महिद्धिका महानुभावा। ते इमस्स, पुरिसस्स सञ्ञं उपकड्ढन्ति पि अपकड्ढन्ति पि। यस्मिं समये उपकड्ढन्ति, सञ्ञी तस्मिं समये होति। यस्मिं समये अपकड्ढन्ति, [B.169] असञ्ञी तस्मिं समये होती' ति। इत्थेके अभिसञ्ञानिरोधं पञ्ञपेन्ति।

"तमञ्ञो एवमाह—'न खो पन मेतं, भो, एवं भविस्सति। सन्ति हि, भो, देवता महिद्धिका महानुभावा। ता इमस्स पुरिसस्स सञ्ञं उपकड्ढन्ति पि अपकड्ढन्ति पि। यस्मिं समये उपकड्ढन्ति, सञ्ञी तस्मिं समये होति। यस्मिं समये अपकड्ढन्ति, असञ्ञी तस्मिं समये होती' ति। इत्थेके अभिसञ्ञानिरोधं पञ्ञपेन्ति।

"तस्स मय्हं, भन्ते, भगवन्तं येव आरब्भ सति उदपादि—'अहो नून भगवा, अहो नून सुगतो, यो इमेसं धम्मानं सुकुसलो' ति! भगवा, भन्ते, कुसलो, भगवा पकतञ्ञू [N.152] अभिसञ्ञानिरोधस्स। कथं नु खो, भन्ते, अभिसञ्ञानिरोधो होती" ति?

(क) अनुपुब्बाभिसञ्ञानिरोधसम्पजानसमापत्ति

७. "तत्र, पोट्ठपाद, ये ते समणब्राह्मणा एवमाहंसु—'अहेतू अप्पच्चया पुरिसस्स सञ्ञा उप्पज्जन्ति पि निरुज्झन्ति पी' ति आदितो व तेसं अपरद्धं। तं किस्स हेतु? [R.181] सहेतू हि, पोट्ठपाद, सप्पच्चया पुरिसस्स सञ्ञा उप्पज्जन्ति पि निरुज्झन्ति पि। सिक्खा एका सञ्ञा उप्पज्जति सिक्खा एका सञ्ञा निरुज्झति।

८. "का च सिक्खा? ति भगवा अवोच—"इध, पोट्ठपाद, तथागतो लोके उप्पज्जति

"उन से दूसरे मतानुयायी कहते हैं—'हमारे मत में ऐसा नहीं हो सकता। संज्ञा तो पुरुष की आत्मा है, वह आती भी है और जाती भी है। जिस समय वह आती है तब वह (पुरुष) संज्ञी कहलाता है, जब निरुद्ध होती है तो असंज्ञी कहलाता है। इस प्रकार भी कोई–कोई ....।

"उनसे दूसरे कहते हैं—'हम इससे सहमत नहीं है कि कोई–कोई श्रमण–ब्राह्मण ऐसे ऋद्धिसम्पन्न एवं सामर्थ्यशाली होते हैं कि वे इस पुरुष की संज्ञा को (इस शरीर में) डालते भी हैं, निकालते भी हैं। जिस समय वे डालते हैं वह संज्ञी कहलाता है, जिस समय वे निकाल लेते हैं यह असंज्ञी कहलाता है।' इस प्रकार भी कोई–कोई ....।

"उनसे दूसरे कहते हैं—हम इससे भी सहमत नहीं है कि कोई–कोई देवता ऐसे ऋद्धिसम्पन्न एवं ऐसी सामर्थ्य वाले होते हैं .... असंज्ञी कहलाता है।' ऐसी भी कोई–कोई ....।

"भन्ते! मुझे उस समय आप याद आये कि इस विषय पर भगवान् ही सुगत होने के कारण निश्चयात्मक उत्तर दे सकते हैं; क्योंकि वे इस अभिसंज्ञानिरोध के स्वभावज्ञ हैं। भन्ते! यह अभिसंज्ञानिरोध कैसे होता है?

(क) अभिसंज्ञानिरोधसम्प्रज्ञानसमापत्ति—७. "वहाँ, प्रौष्ठपाद जो श्रमण–ब्राह्मण यह कह रहे थे कि 'विना हेतु या प्रत्यय के पुरुष की संज्ञाएँ उत्पन्न भी होती है, निरुद्ध भी होती है' वे प्रारम्भ में ही भूल कर गये। वह क्यों? क्योंकि किसी प्रत्यय या हेतु के सहारे ही संज्ञाएँ उत्पन्न या निरुद्ध होती हैं। शिक्षा से कोई संज्ञा उत्पन्न होती है, कोई निरुद्ध होती हैं।

[R.182] अरहं सम्मासम्बुद्धो ....पे०....(*यथा सामञ्ञफले एवं वित्थारेतब्बं*) एवं खो, पोट्ठपाद, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति ....पे०.... तस्सिमे पञ्चनीवरणे पहीने अत्तनि समनुपस्सतो पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदेति। सुखिनो चित्तं समाधियति।

"सो विविच्चेव कामेहि, विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि, सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स या पुरिमा कामसञ्ञा सा निरुज्झति। विवेकजपीतिसुखसुखुमसच्चसञ्ञा तस्मिं समये होति, विवेकजपीतिसुखसुखमसच्चसञ्ञीयेव तस्मिं समये होति। एवं पि सिक्खा एका सञ्ञा उप्पज्जति, सिक्खा एका सञ्ञा निरुज्झति"। अयं सिक्खा ति भगवा अवोच।

[B.170] "पुन चपरं, पोट्ठपाद, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स या पुरिमा विवेकजपीतिसुखसुखुमसच्चसञ्ञा सा निरुज्झत्ति। समाधिजपीतिसुखसुखुम-[R.183] सच्चसञ्ञा तस्मिं समये होति, समाधिजपीतिसुखसुखुमसच्चसञ्ञीयेव तस्मिं समये होति। एवं पि सिक्खा एका सञ्ञा उप्पज्जति, सिक्खा एका सञ्ञा निरुज्झति"। अयं पि सिक्खा ति भगवा अवोच।

[N.153] "पुन चपरं, पोट्ठपाद, भिक्खु पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो, सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स या पुरिमा समाधिजपीतिसुखसुखु-मसच्चसञ्ञा सा निरुज्झति। उपेक्खासुखसुखुमसच्चसञ्ञा तस्मिं समये होति, उपेक्खासुख-

---

८. "वह शिक्षा क्या है?"—इस पर भगवान् बोले—"शीलसमापत्ति यहाँ, प्रौष्ठपाद! तथागत, अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ....पूर्ववत् .... *(सामञ्ञफलसुत्त में आगत पालि के अनुसार विस्तार कर लें।)* इस तरह, प्रौष्ठपाद! भिक्षु शीलसम्पन्न होता है। उस के ये पाँच नीवरण प्रहीण होने पर ....सुखित का चित्त एकाग्र हो जाता है।

समाधिसमापत्ति—"वह कामभोगों से, बुरी बातों से दूर रहता हुआ, वितर्क और विवेक सहित उत्पन्न प्रीतिसुख वाले प्रथम ध्यान को प्राप्त हो साधना करता है। उस की जो पहली कामसंज्ञा है वह निरुद्ध हो जाती है। उस समय तो उसे विवेकजन्य प्रीति सुखयुक्त सूक्ष्मसता संज्ञा ही होती है, जिससे कि वह सूक्ष्मसत्य संज्ञी ही होता है। इस शिक्षा से भी कोई—कोई संज्ञाएँ उत्पन्न होती है और कोई—कोई निरुद्ध होती हैं। यह भी एक शिक्षा है—भगवान् ने कहा।

"और भी प्रौष्ठपाद! साधक भिक्षु वितर्क—विचार के व्युपशान्त होने पर, अन्तरङ्ग सम्प्रसाद (प्रसन्नता) चित्र की एकाग्रता से मुक्त वितर्क—विचार रहित, समाधि से उत्पन्न प्रीति सुख वाले द्वितीय ध्यान को प्राप्त हो विहरता है। उस समय उसकी पहले उंत्पन्न विवेक से उत्पन्न जो प्रीतिसुखवाली सूक्ष्म सत्यसंज्ञा थी, वह निरुद्ध हो जाती है और समाधिजन्य प्रीतिसुखवाली सूक्ष्म सत्य संज्ञा से वह उस समय झुका होता है। इस शिक्षा से भी कोई—कोई संज्ञा उत्पन्न होती है और कोई—कोई निरुद्ध होती है....।

"और फिर प्रौष्ठपाद! साधक भिक्षु (आगे चल कर) प्रीति के वैराग्य से भी उपेक्षा करता हुआ स्मृतिसम्प्रजन्य युक्त हो .... तृतीय ध्यान को प्राप्त हो साधना करता है। उस समय उसकी पहले की

सुखुमसच्चसञ्ञीयेव तस्मिं समये होति। एवं पि सिक्खा एका सञ्ञा उप्पज्जति, सिक्खा एका सञ्ञा निरुज्झति"। अयं पि सिक्खा ति भगवा अवोच।

"पुन चपरं, पोट्ठपाद, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्स-दोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स या पुरिमा उपेक्खासुखसुखुमसच्चसञ्ञा सा निरुज्झति। अदुक्खमसुखसुखुमसच्चसञ्ञा तस्मिं समये होति। अदुक्खमसुखसुखुमसच्चसञ्ञीयेव तस्मिं समये होति। एवं पि सिक्खा एका सञ्ञा उप्पज्जति, सिक्खा एका सञ्ञा निरुज्झती" अयं पि सिक्खा ति भगवा अवोच।

"पुन चपरं, पोट्ठपाद, भिक्खु सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स या पुरिमा रूपसञ्ञा सा निरुज्झति। आकासानञ्चायतनसुखसुखुमसच्चसञ्ञा तस्मिं समये होति। आकासानञ्चायतनसुखुमसच्चसञ्ञीयेव तस्मिं समये होति। एवं पि सिक्खा एका सञ्ञा उप्पज्जति, सिक्खा एका सञ्ञा निरुज्झति"। अयं पि सिक्खा ति भगवा अवोच।

"पुन चपरं, पोट्ठपाद, भिक्खु सब्बसो आकासानञ्चायतनं समतिक्कम्म [B.171, R.184] अनन्तं विञ्ञाणं ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स या पुरिमा आकासानञ्चायतन-सुखुमसच्चसञ्ञा सा निरुज्झति। विञ्ञाणञ्चायतनसुखुमसच्चसञ्ञा तस्मिं समये होति। विञ्ञाणञ्चायतनसुखुमसच्चसञ्ञीयेव तस्मिं समये होति। एवं पि सिक्खा एका सञ्ञा उप्पज्जति, सिक्खा एका सञ्ञा निरुज्झति"। अयं पि सिक्खा ति भगवा अवोच।

"पुन चपरं, पोट्ठपाद, भिक्खु सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि [N.154]

समाधि से उत्पन्न प्रीतिसुख वाली सूक्ष्म सत्यसंज्ञा निरुद्ध हो जाती है। उस समय उसको उपेक्षा सुख वाली सूक्ष्म सत्यसंज्ञा ही होती है। वह उपेक्षासुखसत्यसंज्ञक ही उस समय कहलाता है। ऐसी शिक्षा से भी कोई-कोई संज्ञायें उत्पन्न होती हैं, और कोई-कोई निरुद्ध होती है....।

"और फिर, प्रौष्ठपाद! वह भिक्षु सुख-दुःख के प्रहाण से पूर्व ही सौमनस्य तथा दौर्मनस्य के समाप्त हो जाने से अदुःख-असुखमय उपेक्षा जन्य स्मृतिपरिशुद्धिरूप चतुर्थ ध्यान की साधना करता है। (उस समय) उसकी वह उपेक्षा सुख वाली सूक्ष्म सत्य संज्ञा थी वह निरुद्ध हो जाती है। उस समय तो सुख दुःख से परे सूक्ष्म सत्यसंज्ञा ही होती है। उस समय वह सुख-दुःख रहित सूक्ष्म सत्य संज्ञा वाला ही होता है। ऐसी शिक्षा से भी ....।

"और फिर प्रौष्ठपाद! वह साधक भिक्षु रूपसंज्ञाओं को सर्वथा छोड़ने से, प्रतिघसंज्ञाओं के अस्त हो जाने से, नानात्वसंज्ञाओं का मन में ध्यान न करने से 'आकाश अनन्त है' ऐसा अभ्यास करता हुआ आकाशानन्त्यायतन की साधना करता है। अतः उसकी जो पहले रूपसंज्ञा थी वह निरुद्ध हो जाती है, उस समय तो उसके आकाशानन्त्यायतन वाली, सूक्ष्म सत्यसंज्ञा ही रहती हैं। ऐसी शिक्षा से भी....।

"और फिर, प्रौष्ठपाद! वह साधक भिक्षु अपनी साधना को आगे बढ़ाता हुआ, आकाशानन्तयायतन को भी सर्वथा अतिक्रान्त कर 'विज्ञान अनन्त है' ऐसी भावना करता हुआ विज्ञानानन्त्यायतन की साधना करता है। उस समय उस की पूर्व वाली आकाशानन्त्यायतन सूक्ष्म सत्यसंज्ञा निरुद्ध हो जाती है, और विज्ञानानन्त्यायतन सूक्ष्म सत्यसंज्ञा उत्पन्न हो जाती है। अतः वह उस समय विज्ञानानन्त्यायतन सूक्ष्म सत्यसंज्ञा वाला हो जाता है। इस तरह ऐसी शिक्षा से भी....।

किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। तस्स या पुरिमा विञ्ञाणञ्चायतन-सुखुमसच्चसञ्ञा सा निरुज्झति। आकिञ्चञ्ञायतनसुखुमसच्चसञ्ञा तस्मिं समये होति। आकिञ्चञ्ञायतनसुखुमसच्चसञ्ञीयेव तस्मिं समये होति। एवं पि सिक्खा एका सञ्ञा उप्पज्जति, सिक्खा एका सञ्ञा निरुज्झति''। अयं पि सिक्खा ति भगवा अवोच।

९. ''यतो खो, पोट्ठपाद, भिक्खु इध सकसञ्ञी होति, सो ततो अमुत्र ततो अमुत्र अनुपुब्बेन सञ्ञग्गं फुसति। तस्स सञ्ञग्गे ठितस्स एवं होति—'चेतयमानस्स मे पापियो, अचेतयमानस्स मे सेय्यो। अहं चेव खो पन चेतेय्यं, अभिसङ्खरेय्यं, इमा च मे सञ्ञा निरुज्झेय्युं, अञ्ञा च ओळारिका सञ्ञा उप्पज्जेय्युं; यन्नूनाहं न चेव चेतेय्यं न च अभिसङ्खरेय्यं' ति। सो न चेव चेतेति न च अभिसङ्खरोति। तस्स अचेतयतो अनभिसङ्खरोतो ता चेव सञ्ञा निरुज्झन्ति, अञ्ञा च ओळारिका सञ्ञा न उप्पज्जन्ति। सो निरोधं फुसति। एवं खो, पोट्ठपाद, अनुपुब्बाभिसञ्ञानिरोधसम्पजानसमापत्ति होति।

''तं किं मञ्ञसि, पोट्ठपाद, अपि नु ते इतो पुब्बे एवरूपा अनुपुब्बाभिसञ्ञा-निरोधसम्पजानसमापत्ति सुतपुब्बा'' ति?

''नो हेतं, भन्ते। एवं खो अहं, भन्ते, भगवतो भासितं आजानामि—'यतो खो, [R.185] पोट्ठपाद, भिक्खु इध सकसञ्ञी होति, सो ततो अमुत्र ततो अमुत्र अनुपुब्बेन [B.172] सञ्ञग्गं फुसति। तस्स सञ्ञग्गे ठितस्स एवं होति—चेतयमानस्स मे पापियो, अचेतयमानस्स मे सेय्यो। अहं चेव खो पन चेतेय्यं अभिसङ्खरेय्यं, इमा च मे सञ्ञा निरुज्झेय्युं, अञ्ञा च ओळारिका सञ्ञा उप्पज्जेय्युं; यन्नूनाहं न चेव चेतेय्यं न च अभिसङ्खरेय्यं' ति। सो

''और फिर, प्रौष्ठपाद! अपनी साधना को आगे बढ़ाते हुए उस भिक्षु का एक समय ऐसा आता है कि वह उस विज्ञानानन्त्यायतन को भी सर्वथा अतिक्रान्त कर 'कुछ भी नहीं है' ऐसी आकिञ्चन्यायतन की साधना करता है। उस समय उसकी वह पहले वाली विज्ञानानन्त्यायतन सूक्ष्म सत्यसंज्ञा निरुद्ध हो जाती है और आकिञ्चन्यायतन सूक्ष्म सत्यसंज्ञा उत्पन्न हो जाती है। और वह उस समय आकिञ्चन्यायतन सूक्ष्मसत्यसंज्ञी ही कहलाता है। इस ऐसी शिक्षा से भी....।

९. ''और क्योंकि, प्रौष्ठपाद! वह साधक भिक्षु अपनी ही संज्ञा ग्रहण करने वाला (स्वकसंज्ञी) ही होता है अतः वह वहाँ से वहाँ, वहाँ से वहाँ क्रमशः ऊँची से ऊँची संज्ञा को स्पर्श करता है। उस उच्चतम संज्ञा पर स्थित हो उस को यह भान होता है कि मेरा यों चिन्तन करना तो बुरा है, उसकी अपेक्षा चिन्तन न करना ही अच्छा है। यदि मैं न चिन्तन करूँ न अभिसंस्करण करूँ तो मेरी ये संज्ञाएँ नष्ट हो जाँय और इनसे भी विशाल संज्ञाएँ उत्पन्न न होंगी। तो क्यों न मैं न चिन्तन करूँ न अभिसंस्करण करूँ।' इस तरह, प्रौष्ठपाद! न चिन्तन करता है, न अभिसंस्करण ही करता है। उसके इस चिन्तन न करने से .... वे संज्ञाएँ नष्ट हो जाती हैं और दूसरी उदार संज्ञाएँ उत्पन्न नहीं होती। वह निरोध को प्राप्त करता है। इस प्रकार प्रौष्ठपाद! क्रमशः अभिसंज्ञा-(संज्ञा की चेतना) निरोधवाली सम्प्रज्ञात समापत्ति उत्पन्न होती है।

''तो क्या मानते हो, प्रौष्ठपाद! क्या तुमने इससे पूर्व भी इस प्रकार की क्रमशः अभिसंज्ञानिरोध-सम्प्रज्ञात समापत्ति सुनी थी?

''नहीं, भन्ते! भगवान् के उपदेश करने पर ही मैं जान पाया हूँ कि भिक्षु अपनी ही संज्ञा को ग्रहण करने वाला होता है। अतः यह वहाँ से वहाँ.... पूर्ववत् ....सम्प्रज्ञातसमापत्ति होती है।''

न चेव चेतेति, न चाभिसङ्खरोति। तस्स अचेतयतो अनभिसङ्खरोतो ता चेव सञ्ञा निरुज्झन्ति, अञ्ञा च ओळारिका सञ्ञा न उप्पज्जन्ति। सो निरोधं फुसति। एवं खो, पोट्ठपाद, अनुपुब्बाभि-सञ्ञानिरोधसम्पजानसमापत्ति होती'' ति। ''एवं, पोट्ठपादा'' ति।

(ख) एकञ्ञेव सञ्ञग्गं उदाहु पुथु?

१०. ''एकञ्ञेव नु खो, भन्ते, भगवा सञ्ञग्गं पञ्ञपेति, उदाहु पुथू पि सञ्ञग्गे पञ्ञपेती'' ति?

''एकं पि खो अहं, पोट्ठपाद, सञ्ञग्गं पञ्ञपेमि, पुथू पि सञ्ञग्गे [N.155] पञ्ञपेमी'' ति। ''यथा कथं पन, भन्ते, भगवा एकं पि सञ्ञग्गं पञ्ञपेति पुथू पि सञ्ञग्गे पञ्ञपेती'' ति?

''यथा यथा खो, पोट्ठपाद, निरोधं फुसति, तथा तथाहं सञ्ञग्गं पञ्ञपेमि। एवं खो अहं, पोट्ठपाद, एकं पि सञ्ञग्गं पञ्ञपेमि, पुथू पि सञ्ञग्गे पञ्ञपेमी'' ति।

(ग) पठमं सञ्ञा उदाहु पठमं ञाणं?

११. ''सञ्ञा नु खो, भन्ते, पठमं उप्पज्जति पच्छा ञाणं, उदाहु ञाणं पठमं उप्पज्जति पच्छा सञ्ञा, उदाहु सञ्ञा च ञाणं च अपुब्बं अचरिमं उप्पज्जन्ती'' ति?

''सञ्ञा खो, पोट्ठपाद, पठमं उप्पज्जति पच्छा ञाणं, सञ्ञुप्पादा च पन ञाणुप्पादो होति। सो एवं पजानाति—'इदप्पच्चया किर मे ञाणं उदपादी' ति। इमिना खो एतं, पोट्ठपाद, परियायेन वेदितब्ब—यथा सञ्ञा पठमं उप्पज्जति पच्छा ञाणं, सञ्ञुप्पादा च पन ञाणुप्पादो होती'' ति।

(घ) ननु सञ्ञा पुरिसस्स अत्ता

१२. ''सञ्ञा नु खो, भन्ते, पुरिसस्स अत्ता उदाहु अञ्ञा सञ्ञा अञ्ञो अत्ता'' ति?
''कं पन त्वं, पोट्ठपाद, अत्तानं पच्चेसी'' ति?

''ऐसा ही है प्रौष्ठपाद!''

(ख) संज्ञा एक ही है या पृथक्-पृथक्- १०.''भन्ते! क्या आप एक ही को संज्ञाओं में सर्वश्रेष्ठ बतलाते हो या पृथक्-पृथक् संज्ञाओं को भी वैसा बतलाते हैं?''

''जैसे-जैसे साधक की एक संज्ञा निरुद्ध होती है वैसे वैसे मैं उसे आगे की संज्ञा का उपदेश करता रहता हूँ। ''प्रौष्ठपाद! मैं एक संज्ञा का भी उपदेश करता हूँ और पृथक्-पृथक् संज्ञाओं का भी।

(ग) संज्ञा पहले उत्पन्न होती है या ज्ञान?- ११.''भन्ते! अब यह बताने की कृपा करें कि इनमें संज्ञा पहले उत्पन्न होती है? या ज्ञान? अथवा ज्ञान पहले उत्पन्न होता है या संज्ञा? या फिर संज्ञा और ज्ञान-दोनों ही एक साथ उत्पन्न होते हैं?''

''प्रौष्ठपाद! संज्ञा ही पहले उत्पन्न होती है और ज्ञान बाद में। अर्थात् इसे यों कह सकते हो कि संज्ञोत्पाद से ज्ञानोत्पत्ति होती है। और वह साधक यह समझ लेता है कि इस कारण (प्रत्यय) से मुझे वह ज्ञान हुआ। इस लिये भी प्रोष्ठपाद यह जान लेना चाहिये कि संज्ञा पहले उत्पन्न होती है तथा ज्ञान बाद में। संज्ञा की उत्पत्ति से ज्ञान उत्पन्न होता है।

(घ) संज्ञा ही पुरुष की आत्मा है- १२.''भन्ते! यह बताइये कि यह संज्ञा ही पुरुष की आत्मा है? या संज्ञा दूसरी चीज है तथा आत्मा दूसरी?'' ''तो प्रोष्ठपाद! तुम 'आत्मा' किसे मानते हो?''

[R.186] "ओळारिकं खो अहं, भन्ते, अत्तानं पच्चेमि रूपिं चातुमहाभूतिकं कबळीकाराहारभक्खं" ति। "ओळारिको च हि ते, पोट्ठपाद, अत्ता अभविस्स रूपी चातुमहाभूतिको कबळीकाराहारभक्खो, एवं सन्तं खो ते, पोट्ठपाद, अञ्ञा व सञ्ञा अभविस्स अञ्ञ अत्ता [B.173] ति। तदमिनापेतं, पोट्ठपाद, परियायेन वेदितब्बं, यथा—अञ्ञा व सञ्ञा भविस्सति अञ्ञो अत्ता। तिट्ठतेव सायं, पोट्ठपाद, ओळारिको अत्ता रूपी चातुमहाभूतिको कबळीकाराहारभक्खो, अथ इमस्स पुरिसस्स अञ्ञा च सञ्ञा उप्पज्जन्ति अञ्ञा च सञ्ञा निरुज्झन्ति। इमिना खो एतं, पोट्ठपाद, परियायेन वेदितब्बं, यथा—अञ्ञा व सञ्ञा भविस्सति अञ्ञो अत्ता" ति।

१३. "मनोमयं खो अहं, भन्ते, अत्तानं पच्चेमि सब्बङ्गपच्चङ्गिं अहीनिद्रियं" ति। "मनोमयो च हि ते, पोट्ठपाद, अत्ता अभविस्स सब्बङ्गपच्चङ्गिं अहीनिन्द्रियं, एवं सन्तं पि खो [N.156] ते, पोट्ठपाद, अञ्ञा व सञ्ञा भविस्सति अञ्ञो अत्ता। तदमिनापेतं, पोट्ठपाद, परियायेन वेदितब्बं, यथा—अञ्ञा व सञ्ञा भविस्सति अञ्ञो अत्ता। तिट्ठेतेव सायं, पोट्ठपाद, मनोमयो अत्ता सब्बङ्गपच्चङ्गी अहीनिन्द्रियो, अथ इमस्स पुरिसस्स अञ्ञा च सञ्ञा उप्पज्जन्ति अञ्ञा च सञ्ञा निरुज्झन्ति। इमिना पि खो एतं, पोट्ठपाद, परियायेन वेदितब्बं, यथा—अञ्ञा व सञ्ञा भविस्सति अञ्ञो अत्ता" ति।

[R.187] १४. "अरूपि खो अहं, भन्ते, अत्तानं पच्चेमि सञ्ञामयं" ति।

"अरूपी च ते, पोट्ठपाद, अत्ता अभविस्स सञ्ञामयो, एवं सन्तं पि खो ते, पोट्ठपाद, अञ्ञा व सञ्ञा भविस्सति अञ्ञो अत्ता। तदमिनापेतं, पोट्ठपाद, परियायेन वेदितब्बं, यथा—अञ्ञा व सञ्ञा भविस्सति अञ्ञो अत्ता। तिट्ठेतेव सायं, पोट्ठपाद, अरूपी अत्ता सञ्ञामयो, अथ इमस्स पुरिसस्स अञ्ञा च सञ्ञा उप्पज्जन्ति अञ्ञा च सञ्ञा निरुज्झन्ति। इमिना पिं खो एतं, पोट्ठपाद, परियायेन वेदितब्बं यथा अञ्ञा च सञ्ञा भविस्सति अञ्ञो अत्ता" ति।

"भन्ते! मैं आत्मा को स्थूल (औदारिक), रूपी, चार महाभूतों वाला, ग्रास–ग्रास के आहार करने वाला मानता हूँ।" "यदि प्रोष्ठपाद! तुम्हारा आत्मा स्थूल, रूपी, चातुर्महाभौतिक ग्रास–ग्रास कर खाने वाला है तो संज्ञा दूसरी ही है और आत्मा दूसरा। प्रोष्ठपाद! इस बात को छोड़ो कि आत्मा स्थूल है....। इसके होने से इस पुरुष की दूसरी संज्ञाएँ उत्पन्न होती हैं, दूसरी ही संज्ञाएँ निरुद्ध होती हैं। इस कारण भी प्रोष्ठपाद! जानना चाहिये– संज्ञा दूसरी है और आत्मा दूसरा।

१३. "भन्ते! मैं आत्मा को मनोमय, सभी अङ्ग–प्रत्यङ्गों वाला सभी इन्द्रियों से परिपूर्ण मानता हूँ?" "ऐसा होने पर प्रोष्ठपाद! तेरी संज्ञा दूसरी होगी, आत्मा दूसरा। इस कारण भी, प्रोष्ठपाद जानना चाहिये– संज्ञा दूसरी होगी और आत्मा दूसरा। प्रोष्ठपाद! जब सर्वाङ्गप्रत्यङ्गसम्पन्न, इन्द्रिययुक्त मनोमय आत्मा है तभी इस पुरुष की कोई संज्ञाएँ उत्पन्न होती हैं और कोई निरुद्ध। इस कारण भी, प्रोष्ठपाद! संज्ञा अन्य है और आत्मा अन्य"।

१४. "भन्ते! मैं आत्मा को अरूपी (रूपरहित) एवं संज्ञामय मानता हूँ।"

"प्रोष्ठपाद! यदि तेरी आत्मा अरूपी एवं संज्ञामय हो तो भी संज्ञा दूसरी होगी और आत्मा दूसरी। अतः इस कारण भी, प्रोष्ठपाद! जानना चाहिये कि संज्ञा दूसरी होगी तथा आत्मा दूसरा। प्रोष्ठपाद! जब रूपरहित संज्ञामय आत्मा है तो इस पुरुष की दूसरी ही संज्ञाएँ उत्पन्न होंगी और दूसरी ही निरुद्ध।

१५. "सक्का पनेतं, भन्ते, मया ञातुं—सञ्ञा पुरिसस्स अत्ता ति वा, अञ्ञा व सञ्ञा अञ्ञो अत्ता ति वा" ति? "दुज्जानं खो एतं, पोट्ठपाद, तया अञ्ञदिट्ठिकेन अञ्ञखन्तिकेन अञ्ञरुचिकेन अञ्ञत्रायोगेन अञ्ञत्राचरियकेन—सञ्ञा पुरिसस्स अत्ता ति वा, अञ्ञा व सञ्ञा अञ्ञो अत्ता ति वा" ति।

३. अब्याकता पञ्हा

१६. "सचे तं, भन्ते, मया दुज्जानं अञ्ञदिट्ठिकेन अञ्ञखन्तिकेन अञ्ञ-[B.174] खन्तिकेन अञ्ञरुचिकेन अञ्ञत्रायोगेन अञ्ञत्राचरियकेन—सञ्ञा पुरिसस्स अत्ता ति वा अञ्ञा व सञ्ञा अञ्ञो अत्ता ति वा; किं पन, भन्ते, सस्सतो लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं" ति? "अब्याकतं खो एतं, पोट्ठपाद, मया—'सस्सतो लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' " ति।

"किं पन, भन्ते, असस्सतो लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं" ति? "एतं पि खो, पोट्ठपाद, मया अब्याकतं—'असस्सतो लोको, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' " ति।

"किं पन, भन्ते, अन्तवा लोको ....पे०....अनन्तवा लोको....तं जीवं तं सरीरं [R.188] ....अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ....होति तथागतो परं मरणा....न होति तथागतो परं [N.157] मरणा ....होति च न च होति तथागतो परं मरणा....नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं" ति? "एतं पि खो, पोट्ठपाद, मया अब्याकतं—'नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा, इदमेव सच्चं मोघमञ्ञं' " ति।

---

१५. "भन्ते! क्या मैं जान सकता हूँ कि संज्ञा ही पुरुष की आत्मा है या संज्ञा दूसरी चीज है और आत्मा दूसरी चीज?" "प्रोष्ठपाद! यह बात तुम जैसे लोगों के लिये दुर्ज्ञेय है जो दूसरी धारणा, भिन्न आकांक्षा, भिन्न रुचि, भिन्न आयोग, भिन्न आचार्य वाले हैं कि संज्ञा ही पुरुष की आत्मा है, या संज्ञा दूसरी चीज और आत्मा दूसरी चीज।

३. अव्याकृत प्रश्न

१६. (१) "भन्ते! यदि मुझ जैसे भिन्न दृष्टि (धारणा), भिन्न आकांक्षा, (क्षान्ति) भिन्न रुचि, भिन्न आयोग, भिन्न आचार्य रखने वाले जिज्ञासु के लिये यह जानना कठिन है कि संज्ञा पुरुष की आत्मा है, या संज्ञा दूसरी चीज है, आत्मा दूसरी चीज; तो क्या, भन्ते! 'लोक शाश्वत है'– यही वाद उचित है, और दूसरे वाद निरर्थक (मोघ) है?"

"प्रोष्ठपाद! मैंने इस मत को अव्याकृत (अव्याख्येय) कहा है कि यह लोक शाश्वत है– यही मत सत्य है, अन्य मत निरर्थक।"

(२) क्या भन्ते! लोक अशाश्वत है'– यही मत....?

"प्रोष्ठपाद! मैंने इस मत को भी....।"

(३) "तो क्या भन्ते! लोक अन्तवान् है"– यही मत.....?

"प्रोष्ठपाद! मैंने इस मत को भी अव्याकृत कहा है।"

(४) "क्या, भन्ते! लोक अनन्त है?" यही मत....

"प्रोष्ठपाद! मैंने इस मत को भी अव्याकृत कहा है।"

(५) "क्या, भन्ते! 'वही जीव है, वही शरीर है'– यही मत....?

"प्रोष्ठपाद! इस मत को भी मैंने....।"

(६) "क्या, भन्ते! 'जीव अन्य है, शरीर अन्य है'– यही मत....?

"कस्मा पनेतं, भन्ते, भगवता अब्याकतं" ति?

[R.189] "न हेतं, पोट्ठपाद, अत्थसंहितं न धम्मसंहितं नादिब्रह्मचरियकं न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तति, तस्मा तं मया अब्याकतं" ति।

"किं पनं, भन्ते, भगवता ब्याकतं" ति? " 'इदं दुक्खं' ति खो, पोट्ठपाद, मया ब्याकतं; 'अयं दुक्खसमुदयो' ति खो, पोट्ठपाद, मया ब्याकतं; 'अयं दुक्खनिरोधो' ति खो, पोट्ठपाद, मया ब्याकतं; 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति खो, पोट्ठपाद, मया ब्याकतं" ति?

"कस्मा पनेतं, भन्ते, भगवता ब्याकतं" ति? "एतं हि, पोट्ठपाद, अत्थसंहितं, एतं धम्मसंहितं, एतं आदिब्रह्मचरियकं, एतं निब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तति; तस्मा एतं मया ब्याकतं" ति।

"एवमेतं, भगवा, एवमेतं, सुगत। यस्सदानि, भन्ते, भगवा कालं मञ्ञती" ति। अथ खो भगवा उट्ठायासना पक्कामि।

[B.175] १७. अथ खो ते परिब्बाजका अचिरपक्कन्तस्स भगवतो पोट्ठपादं परिब्बाजकं समन्ततो वाचाय सन्नितोदकेन सञ्झुब्भरिमकंसु—"एवमेव पनायं भवं पोट्ठपादो यञ्ञदेव समणो गोतमो

"प्रोष्ठपाद! मैंने इस मत को भी....।"

(७) "क्या, भन्ते! 'मरने के बाद तथागत फिर पैदा होते हैं'– यही मत....?"

"प्रोष्ठपाद! मैंने इस मत को भी....।"

(८) "क्या, भन्ते! 'मरने के बाद फिर तथागत पैदा नहीं होते'– यही मत....?

"प्रोष्ठपाद! मैंने इस मत को भी....।"

(९) "क्या, भन्ते! मरने के बाद तथागत होते भी हैं, नहीं भी होते'– यही मत....?

"प्रोष्ठपाद! मैंने इस मत को भी....।"

(१०) "क्या, भन्ते! 'तथागत न होता है, न नहीं होता है'– यही मत....?

"प्रोष्ठपाद! मैंने इस मत को भी....।"

"किसलिये, भन्ते! आप इन्हें अव्याकृत (अव्याख्येय) कहते हैं?" "क्योंकि, प्रोष्ठपाद! ये न सार्थक (सप्रयोजन) हैं, न धर्मसाधना में ही ये उपयोगी है, न निर्विदा, न विराग, न निरोध, न उपशय, न अभिज्ञा, न सम्बोधि एवं न निर्वाण प्राप्ति में ही उपयोगी हैं; इसीलिए मैंने इनको 'अव्याकृत' कहा है।

"फिर, भन्ते! भगवान् ने 'व्याकृत' किसे कहा है?" "प्रोष्ठपाद! 'यह दुःख है'– इसका मैंने व्याख्यान किया है। 'यह दुःखसमुदय है'– इसका मैंने व्याख्यान किया है। 'वह दुःखनिरोध है'– इसका मैंने व्याख्यान किया है। 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'– इसका मैंने व्याख्यान किया है।"

"भन्ते! आपने इनका व्याख्यान क्यों किया है? क्योंकि ये, प्रोष्ठपाद! सार्थक हैं, धर्मसाधना में सहायक हैं, ये निर्विदा, वैराग्य, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, सम्बोध, निर्वाण में उपयोगी हैं, इसलिये मैंने इनका व्याख्यान (उपदेश) किया है।"

"ठीक है, भन्ते! यह इसी तरह है, सुगत! यह आपके कथनानुसार ही है। अब भगवान् जैसा अवसर समझते हों, करें।" तब भगवान् आसन से उठकर चले गये।

१७. फिर वे परिव्राजक, भगवान् के आसन से उठकर जाने के कुछ ही समय बाद, प्रोष्ठपाद

भासति तं तदेवस्स अब्भनुमोदति—'एवमेतं, भगवा, एवमेतं, सुगता' ति। न खो पन मयं किञ्चि समणस्स गोतमस्स एकंसिकं धम्मं देसितं आजानाम—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा, अन्तवा लोको ति वा, अनन्तवा लोको ति वा, तं जीवं तं सरीरं ति वा, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा, होति तथागतो परं मरणा ति वा, न होति तथागतो परं [R.190] मरणा ति वा, होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति वा, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा" ति।

एवं वुत्ते, पोट्ठपादो परिब्बाजको ते परिब्बाजके एतदवोच—"अहं पि खो, भो, न किञ्चि समणस्स गोतमस्स एकंसिकं धम्मं देसितं आजानामि—'सस्सतो लोको ति वा, [N.158] असस्सतो लोको ति वा....पे०....नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा'; अपि च, समणो गोतमो भूतं तच्छं तथं पटिपदं पञ्ञपेति धम्मट्ठिततं धम्मनियामतं। भूतं खो पन तच्छं तथं पटिपदं पञ्ञपेन्तस्स धम्मट्ठिततं धम्मनियामतं कथं हि नाम मादिसो विञ्ञू समणस्स गोतमस्स सुभासितं सुभासिततो नाब्भनुमोदेय्या" ति!

४. एकंसिका पि धम्मा देसिता अनेकंसिका पि

१८. अथ खो द्वीहतीहस्स अच्चयेन चित्तो च हत्थिसारिपुत्तो पोट्ठपादो च परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा चित्तो हत्थिसारिपुत्तो भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। पोट्ठपादो पन परिब्बाजको भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो पोट्ठपादो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच—"तदा मं, भन्ते, ते परिब्बाजका अचिरपक्कन्तस्स भगवतो समन्ततो वाचाय सन्नितोदकेन सञ्झब्भरिमकंसु—'एवमेव पनायं भवं पोट्ठपादो यञ्ञदेव समणो गोतमो भासति तं [B.176] तदेवस्स अब्भनुमोदति—एवमेतं भगवा, एवमेतं सुगता' ति। न खो पन मयं

परिव्राजक को नाना प्रकार से कठोर व्यङ्ग्य वचन कहने लगे– "इस तरह आप, प्रोष्ठपाद! श्रमण गौतम जो कुछ कहते गये आप उसे स्वीकार करते चले गये। हमने तो एक भी बात ऐसी नहीं सुनी या समझी जिसे श्रमण गौतम ने स्पष्टतः व्याकृत किया हो! न तो वे यह बता सके कि लोक शाश्वत है? या अशाश्वत? ....पूर्ववत्...तथागत न होते हैं, न नहीं होते आदि।"

(परिव्राजकों द्वारा) ऐसा कहे जाने पर प्रोष्ठपाद परिव्राजक यों बोला– "अरे भाई! मैं भी मानता हूँ कि श्रमण गौतम ने किसी भी बात (मत) का स्पष्ट व्याख्यान नहीं किया कि लोक शाश्वत है या अशाश्वत आदि। परन्तु उन्होंने जो कुछ भी कहा सत्य ही कहा, यथार्थ ही कहा। वे धर्म में स्थित होकर धर्मनियामक प्रतिपद् (मार्ग=ज्ञान) का उपदेश करते हैं। तो फिर मेरे जैसा विज्ञ (समझदार) उन श्रमण गौतम के यथार्थ सुभाषित (कथन) का स्वीकृतिपूर्वक अनुमोदन क्यों नहीं करे!"

४. धर्म ऐकांशिक भी होते हैं, अनैकांशिक भी

१८. इसके दो तीन दिन बाद, चित्त हत्थिसारिपुत्त एवं प्रोष्ठपाद परिव्राजक–दोनों ही जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर चित्त हत्थिसारिपुत्त भगवान् को प्रणाम कर एक तरफ बैठ गया। तथा प्रोष्ठपाद परिव्राजक भी भगवान् से कुशलमङ्गल पूछकर एक तरफ बैठ गया। एक तरफ बैठे प्रोष्ठपाद परिव्राजक ने भगवान् से कहा– "उस दिन भगवान् के चले जाने के थोड़ी देर बाद मेरे परिव्राजक मुझे चारों तरफ वाग्वाणों से बींधने लगे कि 'इसी तरह आप प्रोष्ठपाद जो श्रमण गौतम कहते

किञ्चि समणस्स गोतमस्स एकंसिकं धम्मं देसितं आजानाम—'सस्सतो लोको ति वा असस्सतो लोको ति वा, अन्तवा लोको ति वा अनन्तवा लोको ति वा, तं जीवं तं सरीरं ति वा अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा, होति तथागतो परं मरणा ति वा न होति तथागतो परं मरणा ति वा, होति च न च होति [R.191] तथागतो परं मरणा ति वा नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा' ति। एवं वुत्ताहं, भन्ते, ते परिब्बाजके एतदवोचं,—'अहं पि खो, भो, न किञ्चि समणस्स गोतमस्स एकंसिकं धम्मं देसितं आजानामि—सस्सतो लोको ति वा असस्सतो लोको ति वा....पे०....नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा; अपि च, समणो गोतमो भूतं तच्छं तथं पटिपदं पञ्ञपेति धम्मट्ठितं धम्मनियामतं। भूतं खो पन तच्छं तथं पटिपदं पञ्ञपेन्तस्स धम्मट्ठितं धम्मनियामतं कथं हि नाम मादिसो विञ्ञू समणस्स गोतमस्स सुभासितं सुभासिततो नाब्भनुमोदेय्या'' ति?

१९. ''सब्बेव खो एते, पोट्ठपाद, परिब्बाजका अन्धा अचक्खुका; त्वंयेव नेसं एको [N.159] चक्खुमा। एकंसिका पि हि खो, पोट्ठपाद, मया धम्मा देसिता पञ्ञत्ता; अनेकंसिका पि हि खो, पोट्ठपाद, मया धम्मा देसिता पञ्ञत्ता। कतमे च ते, पोट्ठपाद, मया अनेकंसिका धम्मा देसिता पञ्ञत्ता? सस्सतो लोको ति वा खो, पोट्ठपाद, मया अनेकंसिको धम्मो देसितो पञ्ञत्तो; असस्सतो लोको ति वा खो, पोट्ठपाद, मया अनेकंसिको धम्मो देसितो पञ्ञत्तो; अन्तवा लोको ति वा खो पोट्ठपाद ....पे०....अनन्तवा लोको ति वा खो पोट्ठपाद....तं जीवं तं सरीरं ति खो, पोट्ठपाद....अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति खो पोट्ठपाद....होति तथागतो परं मरणा ति खो पोट्ठपाद....न होति तथागतो परं मरणा ति खो, पोट्ठपाद....होति च न च होति [B.177] तथागतो परं मरणा ति खो, पोट्ठपाद....नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति खो, पोट्ठपाद, मया अनेकंसिको धम्मो देसितो पञ्ञत्तो।

''कस्मा च ते, पोट्ठपाद, मया अनेकंसिका धम्मा देसिता पञ्ञत्ता? न हेते, पोट्ठपाद, अत्थसंहिता न धम्मसंहिता न आदिब्रह्मचरियका न निब्बिदाय न विरागाय न निरोधाय न

जाते हैं उसे आप स्वीकार करते जा रहे हैं कि–हाँ, ऐसा ही है, भगवन्! हाँ ऐसा ही है सुगत!' जबकि इस लोक के विषय में, जीव या आत्मा तथा शरीर के विषय में वे कुछ भी नहीं बताते....'। ऐसा कहे जाने पर मैंने उनको उत्तर दिया– ''आयुष्मानो! मैं मानता हूँ कि श्रमण गौतम इस लोक, जीव, आत्मा या शरीर के विषय में एकान्ततः कुछ नहीं कहते; फिर भी वे भूत, तथ्य (यथार्थ) धर्म में स्थित होकर धर्मनियामक प्रतिपद् (मार्ग, ज्ञान) का उपदेश करते हैं। तब फिर मेरे जैसा विज्ञ श्रमण गौतम के इस यथार्थ का कथन का अनुमोदन स्वीकृतिपूर्वक क्यों नहीं करेगा!''

१९. ''प्रोष्ठपाद! सभी परिव्राजक अन्धे हैं, धर्मज्ञानचक्षु से हीन हैं, केवल तुमही एक उनमें से ज्ञानी (चक्षुष्मान्=समझदार) हो। प्रोष्ठपाद! सचाई यह है कि मैंने तो ऐकांशिक धर्मों का भी व्याख्यान किया है, अनैकांशिक धर्मों का भी। इनमें प्रोष्ठपाद! अनैकांशिक धर्म कौन से हैं जिनका मैंने अनेकांश (अव्याकृत) के रूप में व्याख्यान किया है? जैसे– प्रोष्ठपाद मैंने 'लोक शाश्वत है'– इसको मैंने अनैकांशिक रूप व्याख्यात किया है। 'लोक अशाश्वत है'....पूर्ववत्.... 'तथागत मरणानन्तर नहीं ही होते'– इस बात को भी मैंने अनैकांशिक रूप में व्याख्यान किया है।

''प्रोष्ठपाद! क्यों मैंने इनको अनैकांशिक धर्म के रूप में व्याख्यान किया है? क्योंकि ये धर्म न तो

उपसमाय न अभिञ्ञाय न सम्बोधाय न निब्बानाय संवत्तन्ति। तस्मा ते मया अनेकंसिका धम्मा देसिता पञ्ञता''।

२०. ''कतमे च ते, पोट्ठपाद, मया एकंसिका धम्मा देसिता पञ्ञत्ता? इदं [R.192] दुक्खं ति खो, पोट्ठपाद, मया एकंसिको धम्मो देसितो पञ्ञत्तो। अयं दुक्खनिरोधो ति खो, पोट्ठपाद, मया एकंसिको धम्मो देसितो पञ्ञत्तो। अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा ति खो, पोट्ठपाद, मया एकंसिको धम्मो देसितो पञ्ञत्तो। अयं दुक्खनिरोधो ति खो, पाट्टपाद, मया एकंसिको धम्मो देसितो पञ्ञत्तो। अयं दुक्खनिरोगगामिनी पटिपदा ति खो, पोट्ठपाद, मया एकंसिको धम्मो देसितो पञ्ञत्तो।

''कस्मा च ते, पोट्ठपाद मया एकंसिका धम्मा देसिता पञ्ञत्ता? एते, पोट्ठपाद, अत्थसंहिता, एते धम्मसंहिता, एते आदिब्रह्मचरियका, एते निब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तन्ति। तस्मा ते मया एकंसिका धम्मा देसिता पञ्ञत्ता।

५. ननु एकन्तसुखी अत्ता होति

२१. ''सन्ति, पोट्ठपाद, एके समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो— 'एकन्तसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति। त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि— 'सच्चं किर [N.160] तुम्हे आयस्मन्तो एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—एकन्तसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति? ते चे मे एवंपुट्ठा 'आमा' ति पटिजानन्ति, त्याहं एवं वदामि— 'अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो एकन्तसुखं लोकं जानं पस्सं विहरथा' ति? इति पुट्ठा 'नो' ति वदन्ति।

''त्याहं एवं वदामि— 'अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो एकं वा रत्तिं एकं वा [B.178]

सार्थक (सप्रयोजन) हैं, न धर्मसाधना में उपयोगी हैं, न निर्वेद, न वैराग्य, न निरोध, न उपशम, न अभिज्ञा, न सम्बोधि या न निर्वाण की प्राप्ति में ही उपयोगी हैं। इसलिये मैंने इन धर्मों का अनैकांशिक रूप में व्याख्यान किया है।

२०. ''और, प्रोष्ठपाद! कितने धर्मों (बातों) को ऐकांशिक रूप में व्याख्यान किया है? 'यह दुःख है' इस बात को ऐकांशिक धर्म के रूप में व्याख्यात किया है। 'यह दुःखसमुदय है'....'यह दुःखनिरोध है'....यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद् है'– इस को ऐकांशिक धर्म के रूप में व्याख्यात किया है।

''क्यों, प्रोष्ठपाद! मैंने इन धर्मों का ऐकांशिक धर्म के रूप में व्याख्यान किया है? क्योंकि, प्रोष्ठपाद! ये धर्म सार्थक (सप्रयोजन), धर्मसाधना में उपयोगी, निर्वेद वैराग्य निरोध उपशम अभिज्ञा सम्बोधि एवं निर्वाण की प्राप्ति के साधक हैं।

५. आत्मवाद

२१. ''प्रोष्ठपाद! कुछ श्रमण–ब्राह्मण ऐसा मानने वाले ऐसा सोचने वाले हैं जो कहते हैं– 'मरने के बाद आत्मा नीरोग एवं एकान्ततः सुखी हो पाता है'। उनसे मैं कहता हूँ– 'आयुष्मानो! क्या आप लोग वस्तुतः ऐसा मानते–सोचते हैं कि आत्मा मरणोपर्यन्त नीरोग एवं सुखी रहता है?'; ऐसा पूछने पर वे 'हाँ' कहते हैं। फिर मैं उन से पूछता हूँ– 'क्या तुमने वह एकान्त–सुखलोक देखा है, या वहाँ का सुख अनुभव किया है?' तब वे इस बात का 'ना' में उत्तर देते हैं। जब मैं उनसे फिर पूछता हूँ कि तुममें से किसी ने एक दिन या रात या आधा दिन या आधी रात ही एकान्त सुखी आत्मा को जाना–समझा है?''

दिवसं उपड्ढं वा रत्तिं उपड्ढं वा दिवसं एकन्तसुखिं अत्तानं सञ्जानाथा' ति? इति पुट्ठा 'नो' ति वदन्ति। त्याहं एवं वदामि—'अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो जानाथ—अयं मग्गो अयं पटिपदा एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाया' ति? इति पुट्ठा 'नो' ति वदन्ति।

''त्याहं एवं वदामि—'अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो या ता देवता एकन्तसुखं लोकं [R.193] उपपन्ना, तासं भासमानानं सद्दं सुणाथ—सुप्पटिपन्नात्थ मारिसा, उजुप्पटिपन्नाथ मारिसा, एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाय; मयं पि हि, मारिसा, एवंपटिपन्ना एकन्तसुखं लोकं उपपन्ना' ति? इति पुट्ठा 'नो' ति वदन्ति।

''तं किं मञ्ञसि, पोट्ठपाद, ननु एवं सन्ते तेसं समणब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती'' ति?

''अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते तेसं समणब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती'' ति।

जनपदकल्याणीउपमा

२२. ''सेय्यथापि, पोट्ठपाद, पुरिसो एवं वदेय्य—'अहं या इमस्मिं जनपदे जनपद-कल्याणी तं इच्छामि तं कामेमी' ति। तमेनं एवं वदेय्युं—'अम्भो पुरिस, यं त्वं जनपदकल्याणिं इच्छसि कामेसि, जानासि तं जनपदकल्याणिं, खत्तियी वा ब्राह्मणी वा वेस्सी वा सुद्दी वा' ति? इति पुट्ठो 'नो' ति वदेय्य। तमेनं एवं वदेय्युं—'अम्भो पुरिस, यं त्वं जनपदकल्याणिं इच्छसि कामेसि, जानासि तं जनपदकल्याणिं— एवंनामा एवंगोत्ता ति वा, दीघा वा रस्सा वा मज्झिमा वा काळी वा सामा वा मङ्गुरच्छवी वा ति, अमुकस्मिं गामे वा निगमे वा नगरे वा' ति? इति पुट्ठो 'नो' ति वदेय्य। तमेनं एवं वदेय्युं—'अम्भो पुरिस, यं त्वं न जानासि न पस्ससि तं त्वं इच्छसि कामेसी' ति? इति पुट्ठो 'आमा' ति वदेय्य।

तो वे इसका भी उत्तर 'ना' में देते हैं। जब मैं उनसे पूछता हूँ– 'क्या तुमने उस एकान्त सुखी लोक में रहने वाले आत्माओं का परस्पर संलाप सुना है' तो वे इसका 'ना' में उत्तर देते हैं। उस एकान्तसुख लोक तक पहुँचने का मार्ग (उपाय) पूछने पर भी वे 'ना' में ही उत्तर देते हैं।

''तो क्या मानते हो, प्रोष्ठपाद! उनका यह कथनोपकथन सप्रमाण है?''

''हाँ, भन्ते! ऐसी स्थिति में तो उन श्रमण–ब्राह्मणों का कथनोपकथन निष्प्रमाण ही है।''

जनपदकल्याणी का दृष्टान्त

२२. ''प्रोष्ठपाद! जैसे कोई पुरुष कहे– 'मैं इस जनपद में जो जनपद कल्याणी (वेश्या) है उसे चाहता हूँ, उसमें अनुरक्त हूँ।' तब सुनने वाले लोग उससे पूछें– 'अरे भले आदमी! जिस जनपद कल्याणी को तुम चाहते हो, जिसमें तुम अनुरक्त हो उसको तुम जानते भी हो कि वह जाति से क्षत्रियाणी है, या ब्राह्मणी, या वैश्यजाति की है या शूद्र जाति की?' ऐसा पूछा जाने पर वह निषेध कर दे। तब उसको वे लोग फिर पूछें– 'अरे पुरुष! जिसको....पूर्ववत्...उसका नाम तथा गोत्र क्या है? वह नाटी या लम्बी? या मध्यम आकार की है? काली है या गौरी? या मंगुर (मछली) के वर्ण वाली है? वह किस ग्राम या नगर में रहती है?' ऐसा पूछे जाने पर भी वह 'ना' ही कर दे। तब वे लोग उससे कहें– 'अरे भाई! जिसे तुम न किसी तरह जानते हो, न उसको तुमने कभी देखा ही है, फिर भी तुम उस पर अनुरक्त हो? यह पूछे जाने पर वह 'हाँ' कर दे।

"तं कि मञ्ञसि, पोट्ठपाद, ननु एवं सन्ते तस्स पुरिसस्स अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति?

"अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते तस्स पुरिसस्स अप्पाटिहीरकतं भासितं [N.161] सम्पज्जती" ति।

"एवमेव खो, पोट्ठपाद, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—'एकन्तसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति, त्याहं, तं वदामि— 'सच्चं किर तुम्हे आयस्मन्तो [B.179] एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो— एकन्तसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति? ते चे मे एवं पुट्ठा 'आमा' ति पटिजानन्ति। त्याहं एवं वदामि— 'अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो एकन्तसुखं [R.194] लोकं जानं पस्सं विहरथा' ति? इति पुट्ठा 'नो' ति वदन्ति।

"त्याहं एवं वदामि— 'अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो एकं वा रत्तिं एकं वा दिवसं उपड्ढं वा रत्तिं उपड्ढं वा दिवसं एकन्तसुखिं अत्तानं सञ्जानाथा' ति? इति पुट्ठा 'नो' ति वदन्ति। त्याहं एवं वदामि— 'अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो जानाथ— अयं मग्गो अयं पटिपदा एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाया' ति? इति पुट्ठा 'नो' ति वदन्ति।

"त्याहं एवं वदामि— 'अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो या ता देवता एकन्तसुखं लोकं उपपन्ना तासं भासमानानं सद्दं सुणाथ— सुप्पटिपन्नात्थ, मारिसा, उजुप्पटिपन्नात्थ, मारिसा, एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाय; मयं पि हि, मारिसा, एवंपटिपन्ना एकन्तसुखं लोकं उपपन्ना' ति? इति पुट्ठा 'नो' ति वदन्ति।

"तं किं पञ्ञसि, पोट्ठपाद, ननु एवं सन्ते तेसं समणब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति?

"तो क्या मानते हो, प्रोष्ठपाद! ऐसा कहते हुए उस पुरुष का भाषण अप्रामाणिक नहीं हो जाता?"

"हाँ, भन्ते! ऐसा कहने पर तो उस पुरुष का वह (अनुराग–) वचन अप्रामाणिक ही माना जायगा।"

"इसी तरह, प्रोष्ठपाद! जो श्रमण–ब्राह्मण ऐसा कहते हैं या ऐसा सोचते हैं– 'आत्मा मरने के बाद एकान्ततः सुखी तथा नीरोग रहता है' ऐसे लोगों से जब मैं पूछता हूँ– 'क्या आप लोग ऐसा कहते या मानते हो– आत्मा मरने के....नीरोग रहता है?' तो वे मेरी बात का 'हाँ' में उत्तर देते हैं। परन्तु जब मैं उनसे फिर पूछता हूँ कि 'क्या तुम कभी ऐसे एकान्तसुखी लोक में भी गये हो, या उसके बारे में कुछ जानते–बूझते हो?' तो वे मेरे इस प्रश्न का उत्तर 'ना' में ही देते हैं।

तब मैं फिर उन एकान्तसुखवादियों से पूछता हूँ– 'आयुष्मानो! क्या तुमने स्वयं कभी एक रात्रि या एक दिन या आधी रात्रि या आधा दिन मात्र समय तक भी अपनी आत्मा को एकान्त सुख का अनुभव करते देखा है?' ऐसा पूछे जाने पर वे 'ना' में उत्तर देते हैं। तब मैं उन एकान्तसुखवादियों से फिर पूछता हूँ– 'आयुष्मानो! क्या तुम उस एकान्त सुखी लोक में जाने का मार्ग (=उपाय, साधन) जानते हो?' यह पूछे जाने पर भी वे 'ना' में उत्तर देते हैं।

"तब मैं फिर उनसे पूछता हूँ– 'आयुष्मानो! क्या तुम उस एकान्त सुखसम्पन्न लोक में उत्पन्न देवताओं में परस्पर किये जा रहे सँलाप को कभी सुन पाये हो कि वे कह रहे हों– मार्ष! आप सम्यग् मार्ग पर आरूढ़ हैं, सरल मार्ग पर आरूढ़ हैं, मार्ष! हम भी ऐसे ही मार्गारूढ़ हो इस एकान्तसुख व सम्पन्न लोक में उत्पन्न हुए हैं' तब वे मेरे इस प्रश्न का उत्तर भी ना में देते हैं।

''अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते तेसं समणब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती'' ति।

निस्सेणीउपमा

२३. ''सेय्यथापि, पोट्ठपाद, पुरिसो चातुमहापथे निस्सेणिं करेय्य पासादस्स आरोहणाय। तमेनं एवं वदेय्युं— 'अम्भो पुरिस, यस्स त्वं पासादस्स आरोहणाय। तमेनं एवं वदेय्युं— 'अम्भो पुरिस, यस्स त्वं पासादस्स आरोहणाय निस्सेणिं करोसि, जानासि तं पासादं, पुरत्थिमाय वा दिसाय दक्खिणाय वा दिसाय पच्छिमाय वा दिसाय उत्तराय वा दिसाय उच्चो वा नीचो वा मज्झिमो वा' ति? इति पुट्ठो 'नो' ति वदेय्य। तमेनं एवं वदेय्युं— 'अम्भो पुरिस, यं त्वं न जानासि न पस्ससि तस्स त्वं पासादस्स आरोहणाय निस्सेणिं करोसी' ति? इति पुट्ठो 'आमा' ति वदेय्य।

[N.162] ''तं किं मञ्ञसि, पोट्ठपाद, ननु एवं सन्ते तस्स पुरिसस्स अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती'' ति?

''अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते तस्स पुरिसस्स अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती'' ति।

[B.180] ''एवमेव खो, पोट्ठपाद, ये ते समणब्राह्मणा एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो— 'एकन्तसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति, त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि— 'सच्चं किर तुम्हे [R.195] आयस्मन्तो एवंवादिनो एवंदिट्ठिनो—एकन्तसुखी अत्ता होति अरोगो परं मरणा' ति? ते चे मे एवं पुट्ठा 'आमा' ति पाटिजानन्ति, त्याहं एवं वदामि—'अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो एकन्तसुखं लोकं जानं पस्सं विहरथा' ति? इति पुट्ठा 'नो' ति वदन्ति।

''त्याहं एवं वदामि—'अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो एकं वा रत्तिं एकं वा दिवसं उपड्ढं वा रत्तिं उपड्ढं वा दिवसं एकन्तसुखिं अत्तानं सञ्जानाथा' ति? इति पुट्ठा 'नो' ति वदन्ति। त्याहं एवं वदामि—'अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो जानाथ अयं मग्गो अयं पटिपदा एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाया' ति? इति पुट्ठा 'नो' ति वदन्ति।

''तो क्या मानते हो, प्रोष्ठपाद! ऐसा कहते हुए उन एकान्तसुखलोकवादी दार्शनिकों की कही बात प्रामाणिक मानी जायगी?''

''अवश्य, भन्ते! ऐसा होने पर तो उन श्रमण-ब्राह्मणों का कथन अप्रामाणिक ही ठहरता है।''

निःश्रेणि (सीढ़ी) का दृष्टान्त

२३. ''प्रोष्ठपाद! जैसे कोई आदमी एक सीढ़ी लेकर चौराहे पर खड़ा हो जाय कि मैं इसके सहारे प्रासाद पर चढ़ूँगा। उसे लोग यों पूछें— 'अरे भले आदमी! जिस प्रासाद पर चढ़ने के लिये यह सीढ़ी लाये हो, पहले यह तो बताओ कि वह प्रासाद है कहाँ? क्या वह पूर्व दिशा में है, या दक्षिण दिशा में या पश्चिम में या उत्तर में? ऊँचा है या नीचा या मध्यम आकार का?' यह पूछने पर वह 'ना' में उत्तर दे। उससे फिर वे पूछें—'अरे भाई! जब तुम उस प्रासाद के विषय में कुछ जानते ही नहीं, न तुमने उसको कभी देखा ही है, फिर भी तुम उस पर चढ़ने के लिये यह सीढ़ी उठाये फिर रहे हो?' तब वह उत्तर में 'हाँ' कहे।

''तो क्या मानते हो, प्रोष्ठपाद! ऐसे आदमी का वचन प्रामाणिक होगा?''

''अवश्य, भन्ते! तब तो उसका वचन अप्रामाणिक ही माना जायगा।''

"त्याहं उपसङ्कमित्वा एवं वदामि— 'अपि पन तुम्हे आयस्मन्तो या ता देवता एकन्तसुखं लोकं उपपन्ना तासं देवतानं भासमानानं सद्दं सुणाथ— सुप्पटिपन्नात्थ, मारिसा, उजुप्पटिपन्नात्थ, मारिसा, एकन्तसुखस्स लोकस्स सच्छिकिरियाय; मयं पि हि, मारिसा, एवं पटिपन्ना एकन्तसुखं लोकं उपपन्ना' ति? इति पुट्ठा 'नो' ति वदन्ति।

"तं किं मञ्ञसि, पोट्ठपाद, ननु एवं सन्ते तेसं समणब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति? "अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते तेसं समणब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति।

६. तयो अत्तपटिलाभा

२४. "तयो खो मे, पोट्ठपाद, अत्तपटिलाभा— आळारिको अत्तपटिलाभो, मनोमयो अत्तपटिलाभो, अरूपो अत्तपटिलाभो। कतमो च, पोट्ठपाद, ओळारिको अत्तपटिलाभो? रूपी चातुमहाभूतिको कबळीकाराहारभक्खो—अयं ओळारिको अत्तपटिलाभो। कतमो मनोमयो अत्तपटिलाभो? रूपी मनोमयो सब्बङ्गपच्चङ्गी अहीनिन्द्रियो—अयं मनोमयो अत्तपटिलाभो। कतमो अरूपो अत्तपटिलाभो? अरूपी सञ्ञामयो—अयं अरूपो अत्तपटिलाभो।

२५. "आळारिकस्स पि खो अहं, पोट्ठपाद, अत्तपटिलाभस्स [N.163, B.181] पहानाय धम्मं देसेमि, यथापटिपन्नानं वो सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा [R.196] उपसम्पज्ज विहरिस्सथा ति। सिया खो पन ते, पोट्ठपाद, एवमस्स—'सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सति, दुक्खो च खो विहारो' ति, न खो पनेतं, पोट्ठपाद, एवं दट्ठब्बं। सङ्किलेसिका चेव धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया च धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज

"इसी तरह, प्रोष्ठपाद! वे श्रमण–ब्राह्मण भी जो ऐसा कहते हैं, ऐसा सोचते हैं....पूर्ववत्.... उनका वैसा कहना, वैसा मानना अप्रामाणिक ही है।"

६. तीन प्रकार के शरीर

२४. "प्रोष्ठपाद! तीन प्रकार से शरीरों को ग्रहण (प्रतिलाभ) माना जाता है— १. औदारिक (स्थूल) शरीर–ग्रहण, २. मनोमय शरीर–ग्रहण, एवं ३. अरूप (अभौतिक) शरीर–ग्रहण। प्रोष्ठपाद! औदारिक शरीर–ग्रहण क्या होता है? रूपी, चार महाभूतों से बना, ग्रास ग्रास कर आहार करने वाला शरीर औदारिक शरीर–ग्रहण है। मनोमय शरीरग्रहण क्या होता है? रूपी, मनोमय सर्व आहार एवं सर्व अङ्ग–प्रत्यङ्ग वाला, इन्द्रियों से परिपूर्ण—यह मनोमय शरीरग्रहण है। अरूपी शरीरग्रहण क्या है? अरूप (देवलोक में) संज्ञामय होना—यह अरूप शरीरग्रहण है।

२५. "प्रोष्ठपाद! मैं स्थूल शरीर परिग्रह से छूटने के लिये धर्मोपदेश करता हूँ। इस तरह मार्गारूढ़ साधकों के चित्तमल उत्पन्न करने वाले सांक्लेशिक धर्म छूट जाँयेगें, शोधक (वोदानिय) धर्म, प्रज्ञा की परिपूर्णता एवं विपुलता को प्राप्त होंगे, तथा वह साधक इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर साधनारत रहेगा। सम्भवतः, प्रोष्ठपाद! तुम्हें यह विचार होने लगे— 'सांक्लेशिक धर्म छूट जाँयगें....साधनारत रहेगा, परन्तु ऐसी साधना कष्टकर होती होगी।' प्रोष्ठपाद! ऐसा नहीं समझना चाहिये,

विहरिस्सति, पामुज्जं चेव भविस्सति पीति च पस्सद्धि च सति च सम्पजञ्ञं च, सुखो च विहारो। (१)

२६. "मनोमयस्स पि खो अहं, पोट्ठपाद, अत्तपटिलाभस्स पहानाय धम्मं देसेमि— यथापटिपन्नानं वो सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा ति। सिया खो पन ते, पोट्ठपाद, एवमस्स— 'सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सति, दुक्खो च खो विहारो' ति, न खो पनेतं, पोट्ठपाद, एवं दट्ठब्बं। सङ्किलेसिका चेव धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया च धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सति, पामुज्जं चेव भविस्सति पीति च पस्सद्धि च सति च सम्पजञ्ञं च सुखो च, विहारो। (२)

२७. "अरूपस्स पि खो अहं, पोट्ठपाद, अत्तपटिलाभस्स पहानाय धम्मं देसेमि— यथापटिपन्नानं वो सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञा- [R.197] पारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा ति। सिया खो पन ते, पोट्ठपाद, एवमस्स—'सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा [B.182] उपसम्पज्ज विहरिस्सति, दुक्खो च खो विहारो' ति; न खो पनेतं, पोट्ठपाद, एवं दट्ठब्बं। सङ्किलेसिका चेव धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया च धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मेव सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सति, पामुज्जं चेव भविस्सति पीति च पस्सद्धि च सति च सम्पजञ्ञं च, सुखो च विहारो। (३)

[N.164] २८. "परे चे, पोट्ठपाद, अम्हे एवं पुच्छेय्युं— 'कतमो पन सो, आवुसो, ओळारिको अत्तपटिलाभो यस्स तुम्हे पहानाय धम्मं देसेथ, यथापटिपन्नानं वो सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा' ति ? तेसं मयं एवं पुट्ठा एवं ब्याकरेय्याम— 'अयं वा सो, आवुसो, ओळारिको अत्तपटिलाभो यस्स मयं पहानाय धम्मं देसेम, यथापटिपन्नानं वो सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा ति।

अपितु इस साधना से सांक्लेशिक धर्म छूट....साधनारत रहेगा तो उसे प्रमोद भी होगा, प्रीति, प्रश्रब्धि (निश्चलता), स्मृति, सम्प्रजन्य एवं सुखमय साधना ही बढ़ेगी। (१)

२६. "प्रोष्ठपाद! मैं मनोमय शरीर परिग्रह के परित्याग के लिये भी धर्मोपदेश करता हूँ! जिससे कि मार्गारूढ़ साधकों के....पूर्ववत्....सुखमय साधना ही बढ़ेगी। (२)

२७. "प्रोष्ठपाद! अरूप शरीरपरिग्रह के परित्याग के लिये भी धर्मोपदेश करता हूँ....पूर्ववत्.... सुखमय साधना ही बढ़ेगी।

२८. "प्रोष्ठपाद! यदि दूसरे मतवादी हमें यों पूछें— 'आयुष्मानो! क्या है वह स्थूल (औदारिक)

२९. "परे चे, पोट्ठपाद, अम्हे एवं पुच्छेय्युं— 'कतमो पन सो, आवुसो, मनोमयो अत्तपटिलाभो यस्स तुम्हे पहानाय धम्मं देसेथ, यथापटिपन्नानं वो सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा' ति? तेसं मयं एवं पुट्ठा एवं ब्याकरेय्याम— 'अयं वा सो, आवुसो, मनोमयो अत्तपटिलाभो यस्स मयं पहानाय धम्मं देसेम, [R.198] यथापटिपन्नानं वो सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा' ति।

३०. "परे चे, पोट्ठपाद, अम्हे एवं पुच्छेय्युं— 'कतमो पन सो, आवुसो, अरूपो अत्तपटिलाभो यस्स तुम्हे पहानाय धम्मं देसेथ, यथापटिपन्नानं वो सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा' ति? तेसं मयं एवं पुट्ठा एवं [B.183] ब्याकरेय्याम— 'अयं वा सो, आवुसो, अरूपो अत्तपटिलाभो यस्स मयं पहानाय धम्मं देसेम, यथापटिपन्नानं वो सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा' ति।

"तं किं मञ्ञसि, पोट्ठपाद, ननु एवं सन्ते सप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति? "अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते सप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति।

३१. "सेय्यथापि, पोट्ठपाद, पुरिसो निस्सेणिं करेय्य पासादस्स आरोहणाय तस्सेव पासादस्स हेट्ठा। तमेनं एवं वदेय्युं— 'अम्भो पुरिस, यस्स त्वं पासादस्स आरोहणाय [N.165] निस्सेणिं करोसि, जानासि तं पासादं, पुरत्थिमाय वा दिसाय दक्खिणाय वा दिसाय पच्छिमाय वा दिसाय उत्तराय वा दिसाय उच्चो वा नीचो वा मज्झिमो वा' ति? सो चे एवं वदेय्य—

शरीरपरिग्रह जिससे छूटने के लिये आप धर्मोपदेश करते हैं, जिस पर चलकर....इसी जन्म में स्वयं जान कर साधना करोगे'? उनके ऐसा पूछने पर हमारा उत्तर होगा— 'आयुष्मानो! यह है वह स्थूल शरीरपरिग्रह जिससे छूटने के लिये हम धर्मोपदेश करते हैं....साक्षात् कर साधना करते हैं।

२९. "प्रोष्ठपाद! यदि दूसरे मतवादी हमसे यह पूछें— 'आयुष्मानो! वह कौन सा मनोमय शरीरपरिग्रह है जिससे छूटने के लिये आप धर्मोपदेश करते हैं....? तो हम उत्तर देते हैं— 'आयुष्मानो! यह है वह मनोमय शरीर–परिग्रह जिससे छुटकारा पाने के लिये हम धर्मोपदेश करते हैं....साधना करते हैं।

३०. "प्रोष्ठपाद! यदि दूसरे मतवादी हमसे यह पूछें— 'आयुष्मानो! क्या है वह अरूप शरीर–परिग्रह....?' तो हमारा उत्तर होता है— 'आयुष्मानो! यह है वह अरूप शरीरपरिग्रह....साधना करते हैं।

"तो क्या मानते हो प्रोष्ठपाद! ऐसा कहे जाने पर इस वचन में प्रामाणिकता नहीं जायगी?"

तब तो, भन्ते! (तर्क के साथ कहे जाने पर) इस वचन को प्रामाणिक मानना ही पड़ेगा।"

३१. "प्रोष्ठपाद! प्रासाद पर चढ़ने के लिये कोई पुरुष उसी प्रासाद के नीचे सीढी लगावे। उससे लोग पूछें— "अरे भाई! तूँ जिस प्रासाद पर चढ़ने के लिये यह सीढ़ी लगाना चाहता है, उस प्रासाद के विषय में जानते भी हो कि वह पूर्व दिशा में है या दक्षिण दिशा में, पश्चिम दिशा में है या उत्तर दिशा में?

'अयं वा सो, आवुसो, पासादो यस्साहं आरोहणाय निस्सेणिं करोमि, तस्सेव पासादस्स हेट्ठा' ति।

"तं किं मञ्ञसि, पोट्ठपाद, ननु एवं सन्ते तस्स पुरिसस्स सप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति?"अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते तस्स पुरिसस्स सप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति।

[R.199] ३२. "एवमेव खो, पोट्ठपाद, परे चे अम्हे एवं पुच्छेय्युं— 'कतमो पन सो, आवुसो, ओळारिको अत्तपटिलाभो...पे०....कतमो पन सो, आवुसो, मनोमयो अत्तपटिलाभो...पे०...कतमो पन सो, आवुसो, अरूपो अत्तपटिलाभो यस्स तुम्हे पहानाय धम्मं देसेथ, यथापटिपन्नानं वो सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा' ति, तेसं मयं एवं पुट्ठा एवं ब्याकरेय्याम—'अयं वा सो, आवुसो, अरूपो अत्तपटिलाभो, यस्स मयं पहानाय धम्मं देसेम, यथापटिपन्नानं वो सङ्किलेसिका धम्मा पहीयिस्सन्ति, वोदानिया धम्मा अभिवड्ढिस्सन्ति, [B.184] पञ्ञापारिपूरिं वेपुल्लत्तं च दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सथा' ति।

"तं किं मञ्ञसि, पोट्ठपाद, ननु एवं सन्ते सप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति? "अद्धा खो, भन्ते, एवं सन्ते सप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति।

७. अतीतानागतपच्चुप्पन्नअत्तपटिलाभा

३३. एवं वुत्ते चित्तो हत्थिसारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"यस्मिं, भन्ते, समये ओळारिको अत्तपटिलाभो होति, मोघस्स तस्मिं समये मनोमयो अत्तपटिलाभो होति, मोघो अरूपो अत्तपटिलाभो होति; ओळारिको वास्स अत्तपटिलाभो तस्मिं समये सच्चो होति। यस्मिं, भन्ते, समये मनोमयो अत्तपटिलाभो हाति, मोघस्स तस्मिं समये ओळारिको अत्तपटिलाभो होति, मोघो अरूपो अत्तपटिलाभो होति; मनोमयो वास्स अत्तपटिलाभो तस्मिं समये सच्चो होति।

ऊँचा है, या नीचा मध्यम आकार का?' तब यदि वह यह कहे– 'आयुष्मानो! मैं जिस प्रासाद पर चढ़ना चाहता हूँ उसी प्रासाद के नीचे तो मैंने यह सीढ़ी लगा रखी है।"

"तो क्या मानते हो, प्रोष्ठपाद! उस पुरुष का यह कथन प्रामाणिक है?" "अवश्य, भन्ते! निश्चयपूर्वक कहे जाने पर उस पुरुष के वचन में प्रामाणिकता माननी पड़ेगी।"

३२. "इसी तरह, प्रोष्ठपाद यदि कोई हमसे पूछे– 'क्या है स्थूल शरीर–परिग्रह....क्या है मनोमय....सुखपूर्वक साधना करेंगे।

"तो क्या मानते हो, प्रोष्ठपाद! हमारा यह वचन प्रामाणिक है?" "तब तो, भन्ते! अवश्य प्रामाणिक है। क्योंकि यह तर्क के साथ कहा गया है।"

७. अतीत, अनागत, वर्तमान शरीर प्रतिलाभ

३३. भगवान् के ऐसा कहने पर, चित्त हत्थिसारिपुत्त ने कहा– "भन्ते! जिस समय स्थूल शरीर परिग्रह होता है उस समय मनोमय एवं अरूप शरीरपरिग्रह मिथ्या होते हैं, उस समय तो स्थूल शरीरपरिग्रह ही सत्य होता है। जिस समय, भन्ते! मनोमय शरीरपरिग्रह होते है उस समय स्थूल

यस्मिं, भन्ते, समये अरूपो अत्तपटिलाभो होति, मोघस्स तस्मिं समये ओळारिको अत्तपटिलाभो होति, मोघो मनोमयो अत्तपटिलाभो होति; अरूपो वास्स अत्तपटिलाभो तस्मिं समये सच्चो होती'' ति।

''यस्मिं, चित्त, समये ओळारिको अत्तपटिलाभो होति, नेव तस्मिं [N.166, R.200] समये मनोमयो अत्तपटिलाभो ति सङ्खं गच्छति, न अरूपो अत्तपटिलाभो ति सङ्खं गच्छति; ओळारिको अत्तपटिलाभो त्वेव तस्मिं समये सङ्खं गच्छति। यस्मिं, चित्त, समये मनोमयो अत्तपटिलाभो होति, नेव तस्मिं समये ओळारिको अत्तपटिलाभो ति सङ्खं गच्छति, न अरूपो अत्तपटिलाभो ति सङ्खं गच्छति; मनोमयो अत्तपटिलाभो त्वेव तस्मिं समये सङ्खं गच्छति। यस्मिं, चित्त, समये अरूपो अत्तपटिलाभो होति, नेव तस्मिं समये ओळारिको अत्तपटिलाभो ति सङ्खं गच्छति, न मनोमयो अत्तपटिलाभो सङ्खं गच्छति; अरूपो अत्तपटिलाभो त्वेव तस्मिं समये सङ्खं गच्छति।

३४. ''सचे तं, चित्तं, एवं पुच्छेय्युं—'अहोसि त्वं अतीतमद्धानं, न त्वं [B.185] नाहोसि; भविस्ससि त्वं अनागतमद्धानं, न त्वं न भविस्ससि; अत्थि त्वं एतरहि, न त्वं नत्थी' ति, एवं पुट्ठो त्वं, चित्त, किन्ति ब्याकरेय्यासी'' ति? ''सचे मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं— 'अहोसि त्वं अतीतमद्धानं, न त्वं न अहोसि; भविस्सति त्वं अनागतमद्धानं, न त्वं न भविस्ससि; अत्थि त्वं एतरहि, न त्वं नत्थी' ति? एवं पुट्ठो अहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं— 'अहोसाहं अतीतमद्धानं, नाहं न अहोसिं; भविस्सामहं अनागतमद्धानं, नाहं न भविस्सामि; अत्थाहं एतरहि, नाहं नत्थी' ति। एवं पुट्ठो अहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं'' ति।

''सचे पन तं, चित्त, एवं पुच्छेय्युं— 'यो ते अहोसि अतीतो अत्तपटिलाभो,सो व ते अत्तपटिलाभो सच्चो, मोघो अनागतो, मोघो पच्चुप्पन्नो? यो ते भविस्सति अनागतो अत्तपटिलाभो सो व ते अत्तपटिलाभो सच्चो, मोघो अतीतो, मोघो पच्चुप्पन्नो? यो ते एतरहि पच्चुप्पन्नो

शरीरपरिग्रह एवं अरूप शरीरपरिग्रह मिथ्या होते हैं, मनोमय शरीरपरिग्रह ही इस समय उसके लिये सत्य होता है। एवं जिस समय अरूप शरीर परिग्रह होते है उस समय स्थूल शरीरपरिग्रह एवं मनोमय शरीरपरिग्रह मिथ्या होते हैं, उस समय तो उसके लिये अरूप शरीरपरिग्रह ही सत्य होता है।''

''चित्त! जिस समय स्थूल शरीरपरिग्रह होता है उस समय 'मनोमय शरीरपरिग्रह है'— यह नहीं समझा जाता, अपितु 'स्थूल शरीर परिग्रह है'— यही समझा जाता है। जिस समय, चित्त! 'मनोमय शरीरपरिग्रह है' उस समय....जिस समय 'अरूप शरीरपरिग्रह है' उस समय....सत्य होता है।

३४. ''यदि तुम्हें, चित्त! कोई यों पूछें— तूँ भूतकाल में था? नहीं तो तूँ न था? भविष्यत् में तूँ होगा, नहीं तो तूँ नहीं होगा? इस समय तू है? नहीं तो तूँ नहीं है?— ऐसा पूछने पर तूँ क्या उत्तर देगा?'' ''भन्ते! कोई मुझसे यों पूछे ....तो उसको मेरा उत्तर यह होगा— 'मैं भूतकाल में था, नहीं तो न था। भविष्य में मैं होऊँगा, नहीं तो मैं न होऊँगा। इस समय मैं हूँ, नहीं तो मैं नहीं हूँ।' वैसा पूछने पर मैं उसको यही उत्तर दूँगा।''

''चित्त! इस पर यदि कोई तुमसे यह कह बैठे— 'तुम्हारा जो अतीत का शरीरपरिग्रह था वही तेरा शरीरपरिग्रह सत्य है, अन्य (भविष्यत् और वर्तमान) मिथ्या हैं? या जो अनागत शरीरपरिग्रह होगा वही सत्य होगा, अन्य मिथ्या होंगे? या जो वर्तमान शरीरपरिग्रह है वही सत्य है, अन्य मिथ्या हैं'? तो तुम

अत्तपटिलाभो सो व ते अत्तपटिलाभो सच्चो, मोघो अतीतो, मोघो अनागतो' ति? एवं पुट्ठो त्वं, चित्त, किन्ति, ब्याकरेय्यासी'' ति?

[R.201] ''सचे पन मं, भन्ते, एवं पुच्छेय्युं— 'यो ते अहोसि अतीतो अत्तपटिलाभो सो व ते अत्तपटिलाभो सच्चो, मोघो अनागतो, मोघो पच्चुप्पन्नो; यो ते भविस्सति अनागतो अत्तपटिलाभो सो व ते अत्तपटिलाभो सच्चो, मोघो अतीतो, मोघो अनागतो' ति? एवं पुट्ठो अहं, भन्ते एवं ब्याकरेय्यं— 'यो मे अहोसि अतीतो अत्तपटिलाभो सो व मे अत्तपटिलाभो तस्मिं समये सच्चो अहोसि, मोघो अनागतो, मोघो पच्चुप्पन्नो; यो मे भविस्सति अनागतो अत्तपटिलाभो सो [N.167] व मे अत्तपटिलाभो तस्मिं समये सच्चो भविस्सति, मोघो अतीतो, मोघो पच्चुप्पन्नो; यो मे एतरहि पच्चुप्पन्नो अत्तपटिलाभो सो व मे अत्तपटिलाभो सच्चो, मोघो अतीतो, मोघो अनागतो' ति, एवं पुट्ठो अहं, भन्ते, एवं ब्याकरेय्यं' ति।

[B.186] ३५. ''एवमेव खो, चित्त, यस्मिं समये ओळारिको अत्तपटिलाभो होति, नेव तस्मिं समये मनोमयो अत्तपटिलाभो ति सङ्खं गच्छति, न अरूपो अत्तपटिलाभो ति सङ्खं गच्छति; ओळारिको अत्तपटिलाभो त्वेव तस्मिं समये सङ्खं गच्छति। यस्मिं, चित्त, समये मनोमयो अत्तपटिलाभो होति....पे०....यस्मिं, चित्त, समये अरूपो अत्तपटिलाभो होति, नेव तस्मिं समये ओळारिको अत्तपटिलाभो ति सङ्खं गच्छति, न मनोमयो अत्तपटिलाभो ति सङ्खं गच्छति; अरूपो अत्तपटिलाभो त्वेव तस्मिं समये सङ्खं गच्छति।

गवा खीरं खीरम्हा दधि इच्चादि

३६. ''सेय्यथापि, चित्त, गवा खीरं, खीरम्हा दधि, दधिम्हा नवनीतं, नवनीतम्हा सप्पि, सप्पिम्हा सप्पिमण्डो। यस्मिं समये खीरं होति, नेव तस्मिं समये दधी ति सङ्खं गच्छति, न नवनीतं ति सङ्खं गच्छति, न सप्पी ति सङ्खं गच्छति, न सप्पिमण्डो ति सङ्खं गच्छति; खीरं त्वेव तस्मिं समये सङ्खं गच्छति। यस्मिं समये दधि होति....पे०....नवनीतं होति....सप्पि होति....सप्पिमण्डो होति नेव तस्मिं समये खीरं ति सङ्खं गच्छति, न दधी ति सङ्खं गच्छति, न नवनीतं ति सङ्खं गच्छति, न सप्पी ति सङ्खं गच्छति; सप्पिमण्डो त्वेव तस्मिं समये सङ्खं

क्या उत्तर दोगे? ''यदि, भन्ते! कोई यह पूछे— 'जो यह तेरा अतीत शरीर परिग्रह था, वह सत्य....पूर्ववत्....अन्य मिथ्या हैं' तो मैं यह उत्तर दूँगा— 'जो यह मेरा अतीत में शरीर परिग्रह था वही उस समय सत्य था अन्य सब मिथ्या थे। जो मेरा भविष्य में शरीरपरिग्रह होगा वही उस समय सत्य होगा अन्य को तो मिथ्या ही कहा जायगा। इसी तरह वर्तमान में जो मेरा यह शरीरपरिग्रह है वही इस समय सत्य है, अवशिष्ट अन्य (अतीत और अनागत) दोनों ही असत्य (मिथ्या) हैं।''

३५. ''हाँ, ठीक है, चित्त! इसी तरह जिस समय स्थूल शरीर–परिग्रह होता है उस समय वही समझा जाता है तथा मनोमय एवं अरूप शरीरपरिग्रह नहीं समझा जाता। इसी तरह जब मनोमय....पूर्ववत्....अरूप....शरीर परिग्रह नहीं समझा जाता।

गाय से दूध, दूध से दही— ३६. चित्त! जैसे गाय से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घी और घी से घृतमण्ड बनता है। उस समय (दुग्धावस्था में) दूध 'दूध' ही कहलाता है दही या मक्खन आदि नहीं अथवा दूध से बना हुआ दही 'दही' ही कहलाता है दूध या मक्खन आदि नहीं....। इसी तरह, चित्त! जिस

गच्छति। एवमेव खो, चित्त, यस्मिं समये ओळारिको अत्तपटिलाभो होति....पे०....[R.202] यस्मिं, चित्त, समये मनोमयो अत्तपटिलाभो होति....पे०....यस्मिं, चित्त, समये अरूपो अत्तपटिलाभो होति, नेव तस्मिं समये ओळारिको अत्तपटिलाभो ति सङ्खं गच्छति, न मनोमयो अत्तपटिलाभो ति सङ्खं गच्छति; अरूपो अत्तपटिलाभो त्वेव तस्मिं समये सङ्खं गच्छति। इमा खो चित्त, लोकसमञ्ञा लोकनिरुत्तियो लोकवोहारा लोकपञ्ञत्तियो याहि तथागतो वोहरति अपरामसं'' ति।

८. चित्तो हत्थिसारिपुत्तो अरहतं अञ्ञतरो अहोसि

३७. एवं वुत्ते, पोट्ठपादो परिब्बाजको भगवन्तं एतदवोच— ''अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति, एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं [N.168] गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति।

३८. चित्तो पन हत्थिसारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—''अभिक्कन्तं, भन्ते, [B.187] अभिक्कन्तं, भन्ते! सेय्यथापि, भन्ते, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य— चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति, एवमेवं भगवता अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्यं उपसम्पदं'' ति।

३९. अलत्थ खो चित्तो हत्थिसारिपुत्तो भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो खो पनायस्मा चित्तो हत्थिसारिपुत्तो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो

समय स्थूल शरीरपरिग्रह होता है उस समय वह 'स्थूल शरीरपरिग्रह' ही समझा जाता है, मनोमय.... अरूप शरीरपरिग्रह नहीं। चित्त वस्तुतः ये स्थूल शरीरपरिग्रह आदि शब्द लोकव्यवहारहेतु प्रयुक्त संज्ञामात्र हैं, लोगों को समझाने के लिये निर्वाचन मात्र हैं, लोकव्यवहार एवं लोकप्रज्ञप्तिमात्र हैं। तथागत इन संज्ञाओं में अलिप्त रहते हुए ही इन का व्यवहार (लोगों को समझाने के लिये उपयोग) करते हैं।''

८. चित्त हत्थिसारिपुत्त का अर्हतों में विशिष्ट स्थान

३७. ऐसा कहने पर प्रोष्ठपाद परिव्राजक ने भगवान् से यों निवेदन किया— ''आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! जैसे कोई ओधें (उलटे) को सीधा कर दे, ढके हुए को खोल दे, बहके–भटके हुए को सही रास्ता दिखा दे, अन्धकार में तैल का दीपक लेकर खड़ा हो जाय कि रास्ता देखना चाहने वाले रास्ता देख लें; इसी तरह भगवान् ने अनेक विधियों से हमें यह बात समझा दी। अतः मैं, भन्ते! भगवान् की, धर्म की एवं सङ्घ की शरण में जाता हूँ। आज से आप मुझे जीवनपर्यन्त (प्राण जाने तक) अपना शरणागत समझें।''

३८. उधर चित्त हत्थिसारिपुत्त ने भगवान् से यों निवेदन किया— ''आश्चर्य है, भन्ते!....पूर्ववत्.... सङ्घ की शरण में जाता हूँ। अच्छा हो, भन्ते! मैं आपसे आप के धर्म में प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा पा जाऊँ!''

३९. (ऐसा निवेदन करने पर) चित्त हत्थिसारिपुत्त ने भगवान् से प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा प्राप्त कर ली। यों, उपसम्पदा प्राप्त करने के कुछ ही समय बाद एकाकी, एकान्तवासी (वूपकट्ठ), प्रमादरहित,

विहरन्तो न चिरस्सेव— यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति [R.203] तदनुत्तरं— ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। "खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया" ति—अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो खो पनायस्मा चित्तो हत्थिसारिपुत्तो अरहतं अहोसी ति॥

पोट्ठपादसुत्तं निट्ठितं नवमं॥

उद्योगरत एवं आत्मसंयत होकर साधना करते हुए शीघ्र ही— जिसके लिये कुलपुत्र पूर्णतः घरवार छोड़कर बेघर हो, प्रव्रजित होते हैं— उस अनुपम धर्मसाधना के अन्त (सफलता) को इसी जन्म में जानकर, साक्षात् कर प्राप्त कर लिया। और वह समझ गया कि अब मेरी जन्म–मरण परम्परा क्षीण हो चुकी है, सभी कर्तव्य कर्म पूर्ण हो चुके हैं, अब करने को कुछ अवशिष्ट नहीं है। यों चित्तहत्थिसारिपुत्त ने अपने लिये अर्हतों में विशिष्ट स्थान बना लिया।।

नवम प्रोष्ठपादसूत्र समाप्त॥

१०. सुभसुत्तं

१. आयस्मन्तं आनन्दं पुच्छि

१. एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा आनन्दो सावत्थियं [N.169, B.188, R.204] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे, अचिरपरिनिब्बुते भगवति। तेन खो पन समयेन सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो सावत्थियं पटिवसति केननचिदेव करणीयेन।

२. अथ खो सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो अञ्ञतरं माणवकं आमन्तेसि—"एहि त्वं, माणवक, येन समणो आनन्दो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन समणं आनन्दं अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छ—'सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो भवन्तं आनन्दं अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छती' ति। एवं च वदेहि—'साधु किर भवं आनन्दो येन सुभस्स माणवस्स तोदेय्यपुत्तस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया'" ति।

३. "एवं, भो" ति खो सो माणवको सुभस्स माणवस्स तोदेय्यपुत्तस्स पटिस्सुत्वा येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता आनन्देन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो माणवको आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो भवन्तं आनन्दं अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति; एवं च वदेति—'साधु किर भवं आनन्दो येन सुभस्स [R.205] माणवस्स तोदेय्यपुत्तस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया' " ति।

४. एवं वुत्ते, आयस्मा आनन्दो तं माणवकं एतदवोच—"अकालो खो, माणवक। अत्थि मे अज्ज भेसज्जमत्ता पीता। अप्पेव नाम स्वे पि उपसङ्कमेय्याम कालं च समयं च उपादाया" ति। "एवं, भो" ति खो सो माणवको आयस्मतो आनन्दस्स पटिस्सुत्वा उट्ठायासना

---

१०. शुभसूत्र

१. आयुष्मान् आनन्द से प्रश्न

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय आयुष्मान् आनन्द, भगवान् के परिनिर्वाण के कुछ ही समय बाद, श्रावस्तीस्थित अनाथपिण्डक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय, किसी कार्यविशेष से तोदेय्यपुत्र शुभ माणवक भी श्रावस्ती में ही रहता था।

२. तब तोदेय्यपुत्र शुभ माणवक ने किसी दूसरे माणवक को कहा—"भो माणवक! जहाँ आयुष्मान् आनन्द है वहाँ जाओ और मेरी तरफ से उनसे कहो—'तोदेय्यपुत्र शुभ माणवक आप का कुशलमङ्गल पूछता है।' और मेरी तरफ से ही यह भी कहना— 'अच्छा हो, आयुष्मन् आनन्द, कि आप कृपा कर शुभ माणवक के आवास पर पधारें।'"

३. "अच्छा जी!" कह कर वह माणवक, तौदेय्यपुत्र की बात स्वीकार कर, आयुष्मान् आनन्द के पास गया, और उनसे यह कहा— "आयुष्मन् आनन्द! तोदेय्यपुत्र शुभ माणवक ने आप का कुशल-क्षेम पूछा है और निवेदन किया है कि आप कृपा कर शुभ माणवक के आवास पर पधारें।"

४. (माणवक के) ऐसा कहने पर आयुष्मान् आनन्द ने उस माणवक से कहा— "माणवक! आज (इस के लिये) उचित समय नहीं है, क्योंकि कि आज मैंने (विरेचनकारक) औषधि की मात्रा ले रखी है। हो सकता है, कल अवसर देख कर आ जाऊँ।" वह माणवक आयुष्मान् आनन्द से "ठीक है, भन्ते!" इस

[B.189] येन सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा सुभं माणवं तोदेय्यपुत्तं एतदवोच—"अवोचुम्हा खो मयं भोतो वचनेन तं भवन्तं आनन्दं—'सुभो खो माणवो तोदेय्यपुत्तो भवन्तं आनन्दं अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति, एवं च वदेति—साधु किर भवं आनन्दो येन सुभस्स माणवस्स तोदेय्यपुत्तस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया' ति। एवं वुत्ते, भो, समणो आनन्दो मं एतदवोच—'अकालो खो, माणवक। अत्थि मे अज्ज [N.170] भेसज्जमत्ता पीता। अप्पेवनाम स्वे पि उपसङ्कमेय्याम कालं च समयं च उपादाया' ति। एत्तावता पि खो, भो, कतमेव एतं यतो खो सो भवं आनन्दो ओकासमकासि स्वातनाय पि उपसङ्कमनाया" ति।

५. अथ खो आयस्मा आनन्दो तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय, चेतकेन भिक्खुना पच्छासमणेन, येन सुभस्स माणवस्स तोदेय्यपुत्तस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि।

अथ खो सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता आनन्देन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। [R.206] एकमन्तं निसिन्नो खो सुभो माणवो तोदेय्यपुत्तो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—"भवं हि आनन्दो तस्स भोतो गोतमस्स दीघरत्तं उपट्ठाको सन्तिकावचरो समीपचारी। भवमेतं आनन्दो जानेय्य येसं सो भवं गोतमो धम्मानं वण्णवादी अहोसि, यत्थ च इमं जनतं समादपेसि निवेसेसि पतिट्ठापेसि। कतमेसानं खो, भो आनन्द, धम्मानं सो भवं गोतमो वण्णवादी अहोसि; कत्थ च इमं जनतं समादपेसि निवेसेसि पतिट्ठापेसी" ति?

२. तयो खन्धा

६. "तिण्णं खो, माणव, खन्धानं सो भगवा वण्णवादी अहोसि; एत्थ च इमं जनतं

तरह निवेदन कर, आसन से उठ, शुभ माणवक के पास जाकर यों बोला– "हमने आप के कहने से आयुष्मान् आनन्द के पास जा कर उनका कुशलक्षेम पूछा और निवेदन किया कि वे यदि उचित समझें तो आज कृपा कर आप के आवास पर पधारें। श्रीमन्! मेरी बात सुन कर आयुष्मान् आनन्द ने उत्तर दिया कि 'आज तो समय नहीं है, क्योंकि आज मैंने विरेचनकारक औषध की मात्रा ले रखी है....कल आ सकूँगा।' तो क्या इतना ही पर्याप्त नहीं है कि आयुष्मान् आनन्द ने कल आने का समय दे दिया!

५. तब आयुष्मान् आनन्द, उस रात्रि के बीत जाने पर, प्रातःकाल ही तय्यार हो, पात्र चीवर साथ ले, चेतक भिक्षु को अपने साथ कर, तोदेय्यपुत्र शुभ माणवक के आवास पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर बिछे आसन पर विराजमान हुए। तब शुभ माणवक आयुष्मान् आनन्द के पास गये। जाकर स्वागत–वचन कहने के बाद उनसे कुशलमङ्गल पूछा और एक तरफ बैठ कर उनसे यों बोले– "आयुष्मन् आनन्द! आप तो उन पूज्य श्रमण गौतम के बहुत समय तक सेवक (उपस्थापक) रहे, उनके पास रहे (आयुष्मन् आनन्द! आप जानते हैं कि भगवान् गौतम जिन धर्मों की प्रशंसा किया करते थे, जिन धर्मों को वे जनता को पढ़ाते–सिखाते थे या जिन में उसे प्रतिष्ठित करते थे। भो आनन्द! भगवान् किन धर्मों की प्रशंसा....प्रतिष्ठित करते थे?"

२. तीन स्कन्ध

६. "माणवक! वे भगवान् तीन स्कन्धों (समूहों) की प्रशंसा किया करते थे जिन धर्मों को

समादपेसि निवेसेसि पतिट्ठापेसि। कतमेसं तिण्णं? अरियस्स सीलक्खन्धस्स, अरियस्स समाधिक्खन्धस्स, अरियस्स पञ्ञाक्खन्धस्स। इमेसं खो, माणव, तिण्णं खन्धानं सो भगवा वण्णवादी अहोसि; एत्थ च इमं जनतं समादपेसि निवेसेसि पतिट्ठापेसी'' ति।

(क) सीलक्खन्धो

७. ''कतमो पन सो, भो आनन्द, अरियो सीलक्खन्धो, यस्स सो भवं गोतमो [B.190] वण्णवादी अहोसि, यत्थ च इमं जनतं समादपेसि निवेसेसि पतिट्ठापेसी'' ति?

''इध, माणव, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। तं धम्मं सुणाति गहपति वा गहपतिपुत्तो वा अञ्ञ-[N.171] तरस्मिं वा कुले पच्चाजातो। सो तं धम्मं सुत्वा तथागते सद्धं पटिलभति। सो तेन सद्धापटिलाभेन समन्नागतो इति पटिसञ्चिक्खति— 'सम्बाधो घरावासो रजोपथो, अब्भोकासो पब्बज्जा। नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं। यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बज्जेय्यं' ति। सो अपरेन समयेन अप्पं वा भोगक्खन्धं पहाय, महन्तं वा भोगक्खन्धं पहाय, अप्पं वा ञातिपरिवट्टं पहाय महन्तं वा ञातिपरिवट्टं पहाय, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजति। सो एवं पब्बजितो समानो पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो, अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु, कायकम्मवचीकम्मेन समन्नागतो कुसलेन, परिसुद्धाजीवो, सीलसम्पन्नो, इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो, सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो, सन्तुट्ठो।

८. ''कथं च, माणव, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति? इध, माणव, भिक्खु पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति निहितदण्डो निहितसत्थो लज्जी, दयापन्नो सब्बपाणभूत-हितानुकम्पी विहरति। यं पि, माणव, भिक्खु पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो होति निहितदण्डो निहितसत्थो लज्जी, दयापन्नो सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहरति; [B.191] इदं पिस्स सीलस्मिं। (*ततो परं सब्बं वित्थारेतब्बं*)

वे...प्रतिष्ठित करते थे। किन तीनों की? आर्य शीलस्कन्ध (उत्तम सदाचारसमूह) की आर्य समाधिस्कन्ध की और आर्य प्रज्ञास्कन्ध की। माणवक! भगवान् इन्हीं तीन स्कन्धों की प्रशंसा...जनता को प्रतिष्ठित करते थे।

(क) शीलस्कन्ध– ७. ''भो आनन्द! वह शीलस्कन्ध कौन सा है जिसकी भगवान् प्रशंसा....जिसको वे जनता में प्रतिष्ठित करते थे?

''हे माणवक! जब संसार में तथागत, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध...पूर्ववत् .... उत्पन्न होते हैं...., शीलसम्पन्न, जितेन्द्रिय, स्मृतिसम्प्रजन्य से युक्त और सन्तुष्ट रहता है।

८. ''माणवक! भिक्षु शीलसम्पन्न कैसे होता है? यहाँ माणवक! कोई भिक्षु हिंसा (प्राणातिपात)

"यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाज़ीवेन जीवितं कप्पेन्ति, सेय्यथिदं— सन्तिकम्मं पणिधिकम्मं भूतकम्मं भूरिकम्मं वस्सकम्मं वोस्सकम्मं वत्थुकम्मं वत्थुपरिकम्मं आचमनं न्हापनं जुहनं वमनं विरेचनं उद्धविरेचनं अधोविरेचनं सीसविरेचनं कण्णतेलं नेत्ततप्पनं नत्थुकम्मं अञ्जनं पच्चञ्जनं सालाकियं सल्लकत्तियं दारकतिकिच्छा मूलभेसज्जानं अनुप्पदानं ओसधीनं पटिमोक्खो इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो होति। यं पि, माणव, भिक्खु यथा वा पनेके भोन्तो समणब्राह्मणा सद्धादेय्यानि भोजनानि भुञ्जित्वा ते एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवेन जीवितं कप्पेन्ति सेय्यथिदं सन्तिकम्मं पणिधिकम्मं...पे०...ओसधीनं पटिमोक्खो इति वा इति, एवरूपाय तिरच्छानविज्जाय मिच्छाजीवा पटिविरतो होति; इदं पिस्स होति सीलस्मिं।

[N.172] ९. "स खो सो, माणव, भिक्खु एवं सीलसम्पन्नो न कुतोचि भयं समनुपस्सति— यदिदं सीलसंवरतो। सेय्यथापि, माणव, राजा खत्तियो मुद्धावसित्तो निहतपच्चामित्तो न कुतोचि भयं समनुपस्सति— यदिदं पच्चत्थिकतो; एवमेव खो, माणव, भिक्खु एवं सीलसम्पन्नो न कुतोचि भयं समनुपस्सति— यदिदं सीलसंवरतो। सो इमिना अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो अज्झत्तं अनवज्जसुखं पटिसंवेदेति। सो इमिना अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो अज्झत्तं अनवज्जसुखं पटिसंवेदेति। एवं खो, माणव, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति।

१०. "अयं खो सो, माणव, अरियो सीलक्खन्धो, यस्स सो भगवा वण्णवादी अहोसि, यत्थ च इमं जनतं समादपेसि निवेसेसि पतिट्ठापेसि। अत्थि चेवेत्थ उत्तरिकरणीयं" ति।

"अच्छरियं, भो आनन्द, अब्भुतं, भो आनन्द! सो चायं, भो आनन्द, अरियो सीलक्खन्धो [R.207] परिपुण्णो, नो अपरिपुण्णो। एवं परिपुण्णं चाहं, भो, आनन्द, अरियं सीलक्खन्धं [B.192] इतो बहिद्धा अञ्ञेसु समणब्राह्मणेसु न समनुपस्सामि। एवं परिपुण्णं च, भो आनन्द, अरियं सीलक्खन्धं, इतो बहिद्धा अञ्ञे समणब्राह्मणा अत्तनि समनुपस्सेय्युं ते तावतकेनेव अत्तमना अस्सु— 'अलमेत्तावता, कतमेत्तावता, अनुप्पत्तो नो सामञ्ञत्थो, नत्थि नो किञ्चि उत्तरिकरणीयं' ति। अथ च पन भवं आनन्दो एवमाह— अत्थि चेवेत्थ उत्तरिकरणीयं" ति।

छोड़कर..., वह उत्तम सदाचार से युक्त हो कर अपने में निर्दुष्ट सुख का अनुभव करता है। माणवक! इस तरह भिक्षु शीलसम्पन्न होता है। ....पूर्ववत्....।

९. ...पूर्ववत्[1]...।

१०. ...माणवक! यही वह शीलस्कन्ध है, जिसकी भगवान् प्रशंसा किया करते थे...जिसको जनता में प्रतिष्ठित किया करते थे किन्तु इस से आगे भिक्षु को कुछ और भी साधना करनी है।"

"आश्चर्य है, आनन्द! अद्भुत है! यह आर्य शीलस्कन्ध अपने आप में पूर्ण है, अपूर्ण नहीं। भो आनन्द! इस तरह का परिपूर्ण शीलस्कन्ध तो मैं आर्यविनय (बौद्ध शासन) से बाहर अन्य श्रमण ब्राह्मणों में नहीं देख पा रहा हूँ। भो आनन्द! इस प्रकार का परिपूर्ण आर्य शीलस्कन्ध यदि अन्य श्रमण ब्राह्मण अपने में देखें तो वे इससे ही सन्तुष्ट हो जावें कि बस, इतना ही बहुत है, श्रमणभाव के लिये इतना ही

---

१. द्र०— सामञ्ञफलसुत्त पृ० ६७ से ७७ तक।

(ख) समाधिक्खन्धो

११. "कतमो पन सो, भो आनन्द, अरियो समाधिक्खन्धो यस्स सो भवं गोतमो वण्णवादी अहोसि, यत्थ च इमं जनतं समादपेसि निवेसेसि पतिट्ठापेसी" ति ?

"कथं च, माणव, भिक्खु इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति ? इध, माणव, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति चक्खुन्द्रियं, चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा...पे०...घानेन गन्धं घायित्वा...जिव्हाय रसं सायित्वा...कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा...मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झा-दोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। सो इमिना अरियेन इन्द्रियसंवरेन समन्नागतो अज्झत्तं अब्यासेकसुखं पटिसंवेदेति। एवं खो, माणव, भिक्खु इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति।

१२. "कथं च, माणव, भिक्खु सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो होति ? इध, [N.173] माणव, भिक्खु अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी होति, आलोकिते विलोकिते सम्पजानकारी होति, समिञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी होति, सङ्घाटिपत्तचीवरधारणे सम्पजानकारी होति, असिते पीते खायिते सायिते सम्पजानकारी होति, उच्चारपस्सावकम्मे सम्पजानकारी होति, गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी होति, गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी होति। एवं खो, माणव, भिक्खु [B.193] सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो होति।

१३. "कथं च, माणव, भिक्खु सन्तुट्ठो होति ? इध, माणव, भिक्खु सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमति, समादायेव पक्कमति। सेय्यथापि, माणव, पक्खी सकुणो येन येनेव डेति सपत्तभारो व डेति; एवमेव खो, माणव, भिक्खु सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमति समादायेव पक्कमतिं। एवं खो, माणव, भिक्खु सन्तुट्ठो होति।

१४. "सो इमिना च अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो, इमिना च अरियेन इन्द्रियसंवरेन

पर्याप्त है, अब और कुछ नहीं करना है। परन्तु आपने तो अभी कहा है कि 'इसे ऊपर कुछ और भी करना है'।

(ख) समाधिस्कन्ध– ११. "तो हे आनन्द! वह आर्य समाधिसमूह कौन सा है जिसकी भगवान् प्रशंसा किया करते थे? जिसको वे जनता में प्रतिष्ठित करते थे?"

यहाँ, माणव! कैसे कोई भिक्षु इन्द्रियों का निग्रह करता है? यहाँ, माणव! वह भिक्षु चक्षु (इन्द्रिय) के रूप (विषय) को देखकर.... पूर्ववत्[1]....।

१२. .... पूर्ववत् .... । (पृ० ७८)

१३. .... पूर्ववत् .... । (पृ० ७८)

---

१. द्र०— सामञ्ञफलसुत्त पृ० ७७-७८।

समन्नागतो, इमिना च अरियेन सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो, इमाय च अरियाय सन्तुट्ठिया समन्नागतो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। सो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा, उजुं कायं पणिधाय, परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा।

१५. सो अभिज्झं लोके पहाय विगताभिज्झेन चेतसा विहरति, अभिज्झाय चित्तं परिसोधेति। ब्यापादपदोसं पहाय अब्यापन्नचित्तो विहरति सब्बपाणभूतहितानुकम्पी, ब्यापादपदोसा चित्तं परिसोधेति। थिनमिद्धं पहाय विगतथिनमिद्धो विहरति आलोकसञ्ञी सतो सम्पजानो, थिनमिद्धा चित्तं परिसोधेति। उद्धच्चकुक्कुच्चं पहाय अनुद्धतो विहरति अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो, उद्धच्चकुक्कुच्चा चित्तं परिसोधेति। विचिकिच्छं पहाय तिण्णविचिकिच्छो विहरति अकथङ्कथी कुसलेसु धम्मेसु, विचिकिच्छाय चित्तं परिसोधेति।

१६. ''सेय्यथापि, माणव, पुरिसो इणं आदाय कम्मन्ते पयोजेय्य। तस्स ते कम्मन्ता समिज्झेय्युं। सो यानि च पोराणानि इणमूलानि तानि च ब्यन्तिं करेय्य, सिया चस्स उत्तरिं अवसिट्ठं दारभरणाय। तस्स एवमस्स— 'अहं खो पुब्बे इणं आदाय कम्मन्ते पयोजेसिं, तस्स [B.194] मे ते कम्मन्ता समिज्झिंसु, सोहं यानि च पोराणानि इणमूलानि तानि च ब्यन्तिं [N.174] अकासिं, अत्थि च मे उत्तरिं अवसिट्ठं दारभरणाया' ति। सो ततोनिदानं लभेथ पामोज्जं, अधिगच्छेय्य सोमनस्सं।

१७. ''सेय्यथापि, माणव, पुरिसो आबाधिको अस्स दुक्खितो बाळ्हगिलानो; भत्तं चस्स नच्छादेय्य, न चस्स काये बलमत्ता। सो अपरेन समयेन तम्हा आबाधा मुच्चेय्य, भत्तं चस्स छादेय्य, सिया चस्स काये बलमत्ता। तस्स एवमस्स— 'अहं खो पुब्बे आबाधिको अहोसिं दुक्खितो बाळ्हगिलानो, भत्तं च मे नच्छादेसि, न च मे आसि काये बलमत्ता; सोम्हि एतरहि तम्हा आबाधा मुत्तो, भत्तं च मे छोदेसि, अत्थि च मे काये बलमत्ता' ति। सो ततोनिदानं लभेथ पामोज्जं, अधिगच्छेय्य सोमनस्सं।

१८. ''सेय्यथापि, माणव, पुरिसो बन्धनागारे बद्धो अस्स। सो अपरेन समयेन तम्हा बन्धनागारा मुच्चेय्य सोत्थिना अब्भयेन, न चस्स किञ्चि भोगानं वयो। तस्स एवमस्स— 'अहं खो पुब्बे बन्धनागारे बद्धो अहोसिं, सोम्हि एतरहि तम्हा बन्धनागारा मुत्तो सोत्थिना अब्भयेन, नत्थि च मे किञ्चि भोगानं वयो' ति। सो ततोनिदानं लभेथ पामोज्जं, अधिगच्छेय्य सोमनस्सं।

१९. ''सेय्यथापि, माणव, पुरिसो दासो अस्स अनत्ताधीनो, पराधीनो, न येनकामङ्गमो।

---

१४. .... पूर्ववत् .... । (पृ० ७८)
१५. .... पूर्ववत् .... । (पृ० ७९)
१६. .... पूर्ववत् .... । (पृ० ७९)
१७. ....पूर्ववत् .... । (पृ० ७९)
१८. ....पूर्ववत् .... । (पृ० ७९)
१९. ....पूर्ववत् .... । (पृ० ८०)

सो अपरेन समयेन तम्हा दासब्या मुच्चेय्य अत्ताधीनो, अपराधीनो, भुजिस्सो, येनकामङ्गमो। तस्स एवमस्स– 'अहं खो पुब्बे दासो अहोसि अनत्ताधीनो, पराधीनो, न येनकामङ्गमो। सोम्हि एतरहि तम्हा दासब्या मुत्तो, अत्ताधीनो, अपराधीनो, भुजिस्सो, येनकामङ्गमो' ति। सो ततोनिदानं लभेथ पामोज्जं, अधिगच्छेय्य सोमनस्सं।

२०. "सेय्यथापि, माणव, पुरिसो सधनो सभोगो कन्तारद्धानमग्गं पटिपज्जेय्य दुब्भिक्खं सप्पटिभयं। सो अपरेन समयेन तं कन्तारं नित्थरेय्य सोत्थिना, गामन्तं अनुपापुणेय्य [B.195] खेमं अप्पटिभयं। तस्स एवमस्स– 'अहं खो पुब्बे सधनो सभोगो कन्तारद्धानमग्गं पटिपज्जिं दुब्भिक्खं सप्पटिभयं; सोम्हि एतरहि कन्तारं नित्थिण्णो सोत्थिना, गामन्तं अनुप्पत्तो खेमं अप्पटिभयं' ति। सो ततोनिदानं लभेथ पामोज्जं, अधिगच्छेय्य सोमनस्सं।

२१. "एवमेव खो, माणव, भिक्खु यथा इणं यथा रोगं यथा बन्धनागारं यथा दासब्यं यथा कन्तारद्धानमग्गं, एवं इमे पञ्च नीवरणे अप्पहीने अत्तनि समनुपस्सति।

२२. "सेय्यथापि, माणव, यथा आणण्यं यथा आरोग्यं यथा बन्धना– मोक्खं यथा भुजिस्सं यथा खेमन्तभूमिं, एवमेव भिक्खू इमे पञ्च नीवरणे पहीने अत्तनि समनुपस्सति।

२३. "तस्सिमे पञ्च नीवरणे पहीने अत्तनि समनुपस्सतो पामोज्जं जायति, [N.175] पमुदितस्स पीति जायति, पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति, पस्सद्धकायो सुखं वेदेति, सुखिनो चित्तं समाधियति।

२४. "सो विविच्चेव कामेहि, विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि, सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं विवेकजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स विवेकजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति।

"सेय्यथापि, माणव, दक्खो न्हापको वा न्हापकन्तेवासी वा कंसथाले न्हानियचुण्णानि आकिरित्वा उदकेन परिप्फोसकं परिप्फोसकं सन्देय्य। सायं न्हानियपिण्डि स्नेहानुगता स्नेहपरेता सन्तरबाहिरा फुटा स्नेहेन, न च पग्घरणी। एवमेव खो, माणव, भिक्खु इममेव कायं विवेकजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स विवेकजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति। यं पि, माणव, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति, सो इममेव कायं विवेकजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, [B.196] नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स विवेकजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति; इदं पिस्स होति समाधिस्मिं।

---

२०. ....पूर्ववत् .... । (पृ० ८०)
२१. ....पूर्ववत् .... । (पृ० ८१)
२२. ....पूर्ववत् .... । (पृ० ८१)
२३. ....पूर्ववत् .... । (पृ० ८१)

२५. "पुन चपरं, माणव, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा, अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं समाधिजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स समाधिजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति।

"सेय्यथापि, माणव, उदकरहदो गम्भीरो उब्भिदोदको। तस्स नेवस्स पुरत्थिमाय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न दक्खिणाय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न पच्छिमाय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न उत्तराय दिसाय उदकस्स आयमुखं, देवो च न कालेन कालं सम्मा धारं अनुपवेच्छेय्य। अथ खो तम्हाव उदकरहदा सीता वारिधारा उब्भिज्जित्वा तमेव उदकं रहदं सीतेन वारिना अभिसन्देय्य परिसन्देय्य परिपूरेय्य परिप्फरेय, नास्स किञ्चि सब्बावतो उदकरहदस्स सीतेन वारिना अप्फुटं अस्स। एवमेव खो, माणव, भिक्खु...पे०...यं पि, माणव, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति, सो इममेव कायं समाधिजेन पीतिसुखेन [N. 176, R.208] अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स समाधिजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति; इदं पिस्स होति समाधिस्मिं।

२६. "पुन चपरं, माणव, भिक्खु पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेति, यं तं अरिया आचिक्खन्ति— 'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति, ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं निप्पीतिकेन सुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स निप्पीतिकेन सुखेन अप्फुटं होति।

"सेय्यथापि, माणव, उप्पलिनियं वा पदुमिनियं वा पुण्डरीकिनियं वा अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदकानुग्गतानि अन्तोनिमुग्गपोसीनि। तानि याव चग्गा याव च मूला सीतेन वारिना अभिसन्नानि परिसन्नानि [B.197] परिपूरानि परिप्फुटानि, नास्स किञ्चि सब्बावतं उप्पलानं वा पदुमानं वा पुण्डरीकानं वा सीतेन वारिना अप्फुटं अस्स। एवमेव खो, माणव, भिक्खु...पे०...यं पि, माणव, भिक्खु पीतिया च विरागा...पे०....ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं निप्पीतिकेन सुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स निप्पीतिकेन सुखेन अप्फुटं होति। इदं पिस्स होति समाधिस्मिं।

२७. "पुन चपरं, माणव, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना, पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा, अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन फरित्वा निसिन्नो होति; नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन अप्फुटं होति।

---

२४. ....पूर्ववत् .... ।(पृ० ८१)
२५. ....पूर्ववत् .... ।(पृ० ८२)
२६. ....पूर्ववत् .... ।(पृ० ८२)
२७. ....पूर्ववत् .... ।(पृ० ८२–८३)

"सेय्यथापि, माणव, पुरिसो ओदातेन वत्थेन ससीसं पारुपित्वा निसिन्नो अस्स, नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स ओदातेन वत्थेन अप्फुटं अस्स। एवमेव खो, माणव, भिक्खु...पे०...यं पि, माणव, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन फरित्वा निसिन्नो होति; नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन अप्फुटं होति। इदं पिस्स होति समाधिस्मिं।

२८. "अयं खो सो, माणव, अरियो समाधिक्खन्धो, यस्स सो भगवा [N.177] वण्णवादी अहोसि, यत्थ च इमं जनतं समादपेसि निवेसेसि पतिट्ठापेसि। अत्थि चेवेत्थ उत्तरिकरणीयं" ति।

२९. "अच्छरियं, भो आनन्द, अब्भुतं, भो आनन्द! सो चायं, भो आनन्द, अरियो समाधिक्खन्धो परिपुण्णो, नो अपरिपुण्णो। एवं परिपुण्णं चाहं, भो आनन्द, अरियं समाधिक्खन्धं इतो बहिद्धा अञ्ञेसु समणब्राह्मणेसु न समनुपस्सामि। एवं परिपुण्णं च, भो आनन्द, अरियं समाधिक्खन्धं इतो बहिद्धा अञ्ञे समणब्राह्मणा अत्तनि समनुपस्सेय्युं ते तावतकेनेव अत्तमना अस्सु— 'अलमेत्तावता, कतमेत्तावता, अनुप्पत्तो नो सामञ्ञत्थो, नत्थि नो किञ्चि उत्तरिकरणीयं' ति। अथ च पन भवं आनन्दो एवमाह— अत्थि चेवेत्थ उत्तरिकरणीयं ति।

(ग) पञ्ञाक्खन्धो

३०. "कतमो पन सो, भो आनन्द, अरियो पञ्ञाक्खन्धो, यस्स भवं गोतमो [B.198] वण्णवादी अहोसि, यत्थ च इमं जनतं समादपेसि निवेसेसि पतिट्ठापेसी" ति?

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते ञाणदस्सनाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो एवं [R.209] पजानाति— 'अयं खो मे कायो रूपी चातुमहाभूतिको मातापेत्तिकसम्भवो ओदनकुम्मासूपचयो अनिच्चुच्छादनपरिमद्दनभेदनविद्धंसनधम्मो; इदं च पन मे विञ्ञाणं एत्थ सितं एत्थ पटिबद्धं'।

"सेय्यथापि, माणव, मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो सब्बाकारसम्पन्नो। तत्रास्स सुत्तं आवुतं नीलं वा पीतं वा लोहितं वा ओदातं वा पण्डुसुत्तं वा। तमेनं चक्खुमा पुरिसो हत्थे करित्वा पच्चवेक्खेय्य— 'अयं खो मणि वेळुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सुपरिकम्मकतो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो सब्बाकारसम्पन्नो,

---

२८. माणव! यह है वह समाधिस्कन्ध, जिसकी भगवान् ने प्रशंसा की है....।

२९. आश्चर्य है, भो आनन्द! अद्भुत है, आनन्द! ऐसा परिपूर्ण....।

परन्तु आनन्द! आपने तो अभी कहा है कि 'इस से ऊपर भी कुछ और करना है।'

[सामञ्ञफलसुत्त (पृ०७७ से ८३ तक) में आगत पाठ की तरह इसे भी समझ लें।]

(ग) प्रज्ञास्कन्ध– ३०. "भो आनन्द! वह श्रेष्ठ प्रज्ञास्कन्ध कौन सा है जिसकी प्रशंसा भगवान् करते थे....। जिसको वे जनता में प्रतिष्ठित करते थे?"

"माणवक! कैसे भिक्षु इन्द्रियों को वश में रखने वाला होता है? माणवक! भिक्षु चक्षु से रूप को देखकर ....पूर्ववत् ....। *(सामञ्ञफलसुत्त पृ० ८४–९१)*

तन्निदं सुत्तं आवुतं नीलं वा पीतं वा लोहितं वा ओदातं वा पण्डुसुत्तं वा' ति। एवमेव खो, माणव, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते ञाणदस्सनाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो एवं पजानाति— 'अयं खो मे कायो रूपी चातुमहाभूतिको मातापेत्तिकसम्भवो ओदनकुम्मासूपचयो अनिच्चुच्छादनपरिमद्दनभेदनविद्धंसनधम्मो। इदं च पन मे विञ्ञाणं एत्थ सितं पटिबद्धं'। यं पि, [N.178] माणवं, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते....पे०....आनेञ्जप्पत्ते ञाणदस्सनाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो एवं पजानाति...पे०...एत्थ पटिबद्धं; इदं पिस्स होति पञ्ञाय।

३१. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते मनोमयं कायं अभिनिम्मानाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो इमम्हा काया अञ्ञं कायं अभिनिम्मिनाति रूपिं मनोमयं सब्बङ्गपच्चङ्गिं अहीनिन्द्रियं। [B.199] "सेय्यथापि, माणव, पुरिसो मुञ्जम्हा ईसिकं पवाहेय्य। तस्स एवमस्स— 'अयं मुञ्जो, अयं ईसिका; अञ्ञो मुञ्जो, अञ्ञा ईसिका; मुञ्जम्हा त्वेव ईसिका पवाळ्हा' ति। सेय्यथा वा पन, माणव, पुरिसो असिं कोसिया पवाहेय्य। तस्स एवमस्स— 'अयं असि, अयं कोसि; अञ्ञो असि, अञ्ञा कोसि; कोसिया त्वेव असि पवाळ्हो' ति। सेय्यथा वा पन, माणव, पुरिसो अहिं करण्डा उद्धरेय्य। तस्स एवमस्स— अयं अहि, अयं करण्डो; अञ्ञो अहि, अञ्ञो करण्डो; करण्डा त्वेव अहि उब्भतो' ति। एवमेव खो, माणव, भिक्खु....पे०...यं पि, माणव, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते मनोमयं कायं अभिनिम्मानाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति ....पे०... इदं पिस्स होति पञ्ञाय।

३२. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते इद्धिविधाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति— एको पि हुत्वा बहुधा होति, बहुधा पि हुत्वा एको होति; आविभावं, तिरोभावं; तिरोकुड्डं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमानो गच्छति, सेय्यथापि आकासे; पथविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करोति, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमाने गच्छति, सेय्यथापि पथवियं; आकासे पि पल्लङ्केन कमति, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवं महिद्धिके एवं महानुभावे पाणिना परामसति परिमज्जति; याव ब्रह्मलोकं पि कायेन वसं वत्तेति।

"सेय्यथापि, माणव, दक्खो कुम्भकारो वा कुम्भकारन्तेवासी वा सुपरिकम्मकताय मत्तिकाय यञ्ञदेव भाजनविकतिं आकङ्खेय्य तं तदेव करेय्य अभिनिप्फादेय्य। सेय्यथा वा पन, माणव, दक्खो दन्तकारो वा दन्तकारन्तेवासी वा सुपरिकम्मकतस्मिं दन्तस्मिं यञ्ञदेव दन्तविकतिं आकङ्खेय्य तं तदेव करेय्य अभिनिप्फादेय्य। सेय्यथा वा पन, माणव, दक्खो [N.179] सुवण्णकारो वा सुवण्णकारन्तेवासी वा सुपरिकम्मकतस्मिं सुवण्णस्मिं यञ्ञदेव [B.200] सुवण्णविकतिं आकङ्खेय्य तं तदेव करेय्य अभिनिप्फादेय्य। एवमेव खो, माणव, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते

आनेञ्जप्पत्ते इद्धिविधाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति— एको पि हुत्वा बहुधा होति...पे०... याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेति। इदं पिस्स होति पञ्ञाय।

३३. "सो एवं समाहिते चित्ते...पे०...आनेञ्जप्पत्ते दिब्बाय सोतधातुया चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानुसिकाय उभो सद्दे सुणाति- दिब्बे च मानुसे च, ये दूरे सन्तिके च। सेय्यथापि, माणव, पुरिसो अद्धानमग्गप्पटिपन्नो। सो सुणेय्य भेरिसद्दं पि मुदिङ्गसद्दं पि सङ्खपणवदिन्दिमसद्दं पि। तस्स एवमस्स— भेरिसद्दो इति पि, मुदिङ्गसद्दो इति पि, सङ्खपणवदिन्दिमसद्दो इति पि। एवमेव खो, माणव, भिक्खु...पे०...यं पि, माणव, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते...पे०...आनेञ्जप्पत्ते दिब्बाय सोतधातुया चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानुसिकाय उभो सद्दे सुणोति—दिब्बे च मानुसे च, ये दूरे सन्तिके च। इदं पिस्स होति पञ्ञाय।

३४. "सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते चेतोपरियञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानाति— सरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानाति, वीतरागं वा चित्तं वीतरागं चित्तं ति पजानाति, सदोसं वा चित्तं सदोसं चित्तं ति पजानाति, वीतदोसं वा चित्तं वीतदोसं चित्तं ति पजानाति, समोहं वा चित्तं समोहं चित्तं ति पजानाति, वीतमोहं वा चित्तं वीतमोहं चित्तं ति पजानाति, सङ्खित्तं वा चित्तं सङ्खित्तं चित्तं ति पजानाति, विक्खित्तं वा चित्तं विक्खित्तं चित्तं ति पजानाति, महग्गतं वा चित्तं महग्गतं चित्तं ति पजानाति, अमहग्गतं वा चित्तं अमहग्गतं चित्तं ति पजानाति, सउत्तरं वा चित्तं सउत्तरं चित्तं ति पजानाति, अनुत्तरं वा चित्तं अनुत्तरं चित्तं ति पजानाति, समाहितं वा चित्तं समाहितं चित्तं ति पजानाति, असमाहितं वा चित्तं असमाहितं चित्तं ति पजानाति, विमुत्तं वा चित्तं विमुत्तं चित्तं ति [B.201] पजानाति, अविमुत्तं वा चित्तं अविमुत्तं चित्तं ति पजानाति।

"सेय्यथापि, माणव, इत्थी वा पुरिसो वा दहरो युवा मण्डनजातिको आदासे [N.180] वा परिसुद्धे परियोदाते अच्छे वा उदकपत्ते सकं मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो सकणिकं वा सकणिकतं ति जानेय्य, अकणिकं वा अकणकं ति जानेय्य; एवमेव खो, माणव, भिक्खु....पे०....यं पि, माणव, भिक्खु एवं समाहिते...पे०....आनेञ्जप्पत्ते चेतोपरियञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति, सो परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानाति, सरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानाति...पे०...अविमुत्तं वा चित्तं अविमुत्तं चित्तं ति पजानाति। इदं पिस्स होति पञ्ञाय।

३५. "सो एवं समाहिते चित्ते...पे०...आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथिदं— एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तालीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि

जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि, अनेके पि संवट्टकप्पे, अनेके पि विवट्टकप्पे, अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे— 'अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो; सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो; सो ततो चुतो इधूपपन्नो' ति। इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति।

''सेय्यथापि, माणव, पुरिसो सकम्हा गामा अञ्ञं गामं गच्छेय्य; तम्हा पि गामा अञ्ञं गामं गच्छेय्य; सो तम्हा गामा सकंयेव गामं पच्चागच्छेय्य। तस्स एवमस्स—'अहं खो सकम्हा गामा अमुं गामं अगच्छिं, तत्र एवं अट्ठासिं एवं निसीदिं एवं अभासिं एवं तुण्ही अहोसिं, सो तम्हा पि गामा अमुं गामं गच्छिं, तत्रा पि एवं अट्ठासिं एवं निसीदिं एवं अभासिं एवं तुण्ही [B.202] अहोसिं, सोम्हि तम्हा गामा सकंयेव गामं पच्चागतो' ति। एवमेव खो, माणव, भिक्खु....पे०....यं पि, माणव, भिक्खु एवंसमाहिते चित्ते...पे०...आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरति, सेय्यथिदं— एकं पि जातिं...पे०...इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बनिवासं अनुस्सरति। इदं पिस्स होति पञ्ञाय।

३६. ''सो एवं समाहिते चित्ते...पे०...आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति [N.181]चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति— 'इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना; इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समान्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिकाक सम्मादिट्ठि म्मसमादाना; ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपन्ना' ति। इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे। सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति।

''सेय्यथापि, माणव, मज्झेसिङ्घाटके पासादो। तत्थ चक्खुमा पुरिसो ठितो पस्सेय्य मनुस्से, गेहं पविसन्ते पि, निक्खमन्ते पि, रथिकाय पि वीथिं सञ्चरन्ते, मज्झेसिङ्घाटके निसिन्ने पि। तस्स एवमस्स— 'एते मनुस्सा गेहं पविसन्ति, एते निक्खमन्ति, एते रथिकाय वीथिं सञ्चरन्ति, एते मज्झेसिङ्घाटके निसिन्ना' ति। एवमेव खो, माणव, भिक्खु...पे०...यं पि, माणव, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते...पे०...आनेञ्जप्पत्ते सत्तानं चुतूपपातञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सति चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बणे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानाति। इदं पिस्स होति पञ्ञाय।

३७. ''सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते

कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। [B.203] सो इदं दुक्खं ति यथाभूतं पजानाति, अयं दुक्खसमुदयो ति यथाभूतं पजानाति, अयं दुक्खनिरोधो ति यथाभूतं पजानाति, अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा ति यथाभूतं पजानाति, इमे आसवा ति यथाभूतं पजानाति, अयं आसवसमुदयो ति यथाभूतं पजानाति, अयं आसवनिरोधो ति यथाभूतं पजानाति, अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति— पजानाति।

"सेय्यथापि, माणव, पब्बतसङ्खेपे उदकरहदो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो। तत्थ चक्खुमा पुरिसो तीरे ठितो पस्सेय्य सिप्पिकसम्बुकं पि सक्खरकथलं पि मच्छगुम्बं [N.182] पि चरन्तं पि तिट्ठन्तं पि। तस्स एवमस्स— 'अयं खो उदकरहदो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो। तत्रिमे सिप्पिकसकम्बुका पि सक्खरकथला पि मच्छगुम्बा पि चरन्ति पि तिट्ठन्ति पी' ति। एवमेव खो, माणव, भिक्खु...पे०...यं पि, माणव, भिक्खु एवं समाहिते चित्ते...पे०... आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। सो इदं दुक्खं ति यथाभूतं पजानाति...पे०...आसवनिरोधगामिनी पटिपदा ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति। विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। इदं पिस्स होति पञ्ञाय।

३८. "अयं खो, माणव, सो अरियो पञ्ञाक्खन्धो यस्स सो भगवा वण्णवादी अहोसि, यत्थ च इमं जनतं समादपेसि निवेसेसि पतिट्ठापेसि; नत्थि चेवेत्थ उत्तरिकरणीयं" ति।

३९. "अच्छरियं, भो आनन्द, अब्भुतं, भो आनन्द! सो चायं, भो आनन्द, [R.210] अरियो पञ्ञाक्खन्धो परिपुण्णो, नो अपरिपुण्णो। एवं परिपुण्णं चाहं, भो आनन्द, [B.204] अरियं पञ्ञाक्खन्धं इतो बहिद्धा अञ्ञेसु समणब्राह्मणेसु न समनुपस्सामि। नत्थि चेवेत्थ उत्तरिकरणीयं।

"अभिक्कन्तं, भो आनन्द, अभिक्कन्तं, भो आनन्द! सेय्यथापि, भो आनन्द, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति, एवमेवं भोता आनन्देन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भो आनन्द, तं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि, धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं आनन्दो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥

सुभसुत्तं निट्ठितं दसमं॥

३१-३९. आश्चर्य है, भो आनन्द, अद्भुत है! भो आनन्द! यह प्रज्ञास्कन्ध तो अपने आप में परिपूर्ण है, इसमें कोई कमी नहीं है। .... जैसे कोई उलटे को सीधा कर दे ....। आनन्द! आज से आप मुझे जन्म भर के लिये अपना अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करें।।

दशम शुभसूत्र सम्पूर्ण॥

११. केवट्टसुत्तं

१. केवट्टो इद्धिपाटिहारियदस्सनत्थं याचि

[N.183, B.205, R.211] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा नाळन्दायं विहरति पावारिकम्बवने। अथ खो केवट्टो गहपतिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो केवट्टो गहपतिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"अयं, भन्ते, नाळन्दा इद्धा चेव फीता च बहुजना आकिण्णमनुस्सा भगवति अभिप्पसन्ना। साधु, भन्ते, भगवा एकं भिक्खुं समादिसतु यो उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करिस्सति; एवायं नाळन्दा भिय्योसो मत्ताय भगवति अभिप्पसीदिस्सती" ति। एवं वुत्ते, भगवा केवट्टं गहपतिपुत्तं एतदवोच—"न खो अहं, केवट्ट, भिक्खूनं एवं धम्मं देसेमि—'एथ तुम्हे, भिक्खवे, गिहीनं ओदातवसनानं उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करोथा' " ति।

२. दुतियं पि खो केवट्टो गहपतिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"नाहं, भन्ते, भगवन्तं धंसेमि; अपि च एवं वदामि—'अयं, भन्ते, नाळन्दा इद्धा चेव फीता च बहुजना आकिण्णमनुस्सा भगवति अभिप्पसन्ना। साधु, भन्ते, भगवा एकं भिक्खुं समादिसतु यो उत्तरिमनुस्सधम्मा [R.212] इद्धिपाटिहारियं करिस्सति; एवायं नाळन्दा भिय्योसो मत्ताय भगवति अभिप्पसीदिस्सती''' ति। दुतियं पि खो भगवा केवट्टं गहपतिपुत्तं एतदवोच —"न खो अहं, केवट्ट, भिक्खूनं एवं धम्मं देसेमि—'एथ तुम्हे, भिक्खवे, गिहीनं ओदातवसनानं उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करोथा''' ति।

ततियं पि खो केवट्टो गहपतिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"नाहं, भन्ते, भगवन्तं धंसेमि; अपि च, एवं वदामि—'अयं, भन्ते, नाळन्दा इद्धा चेव फीता च बहुजना आकिण्णमनुस्सा भगवति अभिप्पसन्ना; साधु भन्ते, भगवा एकं भिक्खुं समादिसतु यो उत्तरिमनुस्सधम्मा इद्धिपाटिहारियं करिस्सति; एवायं नाळन्दा भिय्योसो मत्ताय भगवति अभिप्पसीदिस्सती''' ति।

---

११. केवट्टसूत्र

१. केवट्ट द्वारा भगवान् से ऋद्धि दिखाने की माँग

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) नालन्दा के प्रावारिक आम्रवन में साधना हेतु विराजमान थे। तब कोई केवट्ट नामक गृहपतिपुत्र जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस केवट्ट गृहपतिपुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया– "भन्ते! यह नालन्दा समृद्ध, धनधान्यपूर्ण और बहुत जनाकीर्ण (घनी बसती वाली) है। यहाँ के मनुष्य आप के प्रति बहुत श्रद्धालु हैं। कृपया भगवान् किसी भिक्षु को आदेश दें कि वह यहाँ कोई विशेष ऋद्धि (चमत्कार) दिखाये। इस तरह इस नालन्दा के निवासियों को और अधिक श्रद्धा होगी।" ऐसा कहे जाने पर, भगवान् ने केवट्ट.... को यों कहा– "केवट्ट! मैं तो कभी अपने भिक्षुओं को ऐसा आदेश नहीं करता कि वे श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थों के बीच जाकर कोई अलौकिक चमत्कार दिखावें।"

२. दूसरी बार भी...तीसरी बार भी केवट्ट गृहपतिपुत्र भगवान् से यों बोला– "भन्ते! मैं आप से ऐसा निवेदन कर आपको अपमानित नहीं कर रहा हूँ, अपितु नालन्दावासियों की आप के प्रति श्रद्धा देख कर ही ऐसा कह रहा हूँ।"

२. तीणि पाटिहारियानि

(क) इद्धिपाटिहारियं

३. "तीणि खो इमानि, केवट्ट, पाटिहारियानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा[B.206] पवेदितानि। कतमानि तीणि? इद्धिपाटिहारियं, आदेसनापाटिहारियं, अनुसासनीपाटिहारियं।"

४. "कतमं च, केवट्ट, इद्धिपाटिहारियं? इध, केवट्ट, भिक्खु अनेकविहितं [N.184] इद्धिविधं पच्चनुभोति—एको पि हुत्वा बहुधा होति, बहुधा पि हुत्वा एको होति; आविभावं, तिरोभावं; तिरोकुड्डं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमानो गच्छति, सेय्यथापि आकासे; पथविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करोति, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमाने गच्छति, सेय्यथापि पथवियं; आकासे पि पल्लङ्केन कमति, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवं महिद्धिके एवं महानुभावे पाणिना परामसति परिमज्जति; यावब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेति।

"तमेनं अञ्ञतरो सद्धो पसन्नो पस्सति तं भिक्खुं अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोन्तं—एको पि हुत्वा बहुधा होन्तं, बहुधा पि हुत्वा एको होन्तं; आविभावं, तिरोभावं; तिरोकुड्डं तिरोपाकारं तिरोपब्बतं असज्जमानं गच्छन्तं, सेय्यथापि आकासे; पथविया [R.213] पि उम्मुज्जनिमुज्जं करोन्तं, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमाने गच्छन्तं, सेय्यथापि पथवियं; आकासे पि पल्लङ्केन कमन्तं, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवं महिद्धिके एवं महानुभावे पाणिना परामसन्तं परिमज्जन्तं; याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेन्तं।

"तमेनं सो सद्धो पसन्नो अञ्ञतरस्स अस्सद्धस्स अप्पसन्नस्स आरोचेति—'अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो, समणस्स महिद्धिकता महानुभावता! अमाहं भिक्खुं अद्दसं अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोन्तं—एको पि हुत्वा बहुधा होन्तं, बहुधा पि हुत्वा एको होन्तं....पे०....याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेन्तं' ति।

"तमेनं सो अस्सद्धो अप्पसन्नो तं सद्धं पसन्नं एवं वदेय्य—'अत्थि खो, भो, गन्धारी नाम विज्जा; ताय सो भिक्खु अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति—एको पि हुत्वा बहुधा होति, बहुधा पि हुत्वा एको होति....पे०....याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेती' ति। [B.207] "तं किं मञ्ञसि, केवट्ट, अपि नु सो अस्सद्धो अप्पसन्नो तं सद्दं पसन्नं एवं वदेय्या" ति?

---

२. तीन प्रातिहार्य

(क) ऋद्धिप्रातिहार्य– ३. केवट्ट! मैंने ये तीन प्रातिहार्य स्वयं जानकर साक्षात् कर बताये हैं। कौन से तीन? १. ऋद्धिप्रातिहार्य, २. आदेशनाप्रातिहार्य एवं ३. अनुशासनीप्रातिहार्य।

४. केवट्ट! ऋद्धिप्रातिहार्य कौन सा है? केवट्ट! कोई भिक्षु अपने ऋद्धिबल से अनेक प्रकार के रूप धारण करता है– एक होकर भी बहुत हो जाता है, बहुत हो कर एक हो जाता है...पूर्ववत्[१]....।

उसे देख कर वह श्रद्धालु पुरुष किसी अन्य श्रद्धारहित पुरुष को यों कहता है– 'अरे कैसा आश्चर्य है, यह कैसा अद्भुत है कि इस भिक्षु में ऐसी ऋद्धि है, ऐसी महानुभावता है। मैंने स्वयं इस को अनेक प्रकार से अपना ऋद्धिबल दिखाते हुए देखा है कि यह एक होकर....।

---

१. *सामञ्ञफलसुत्त, पृ० ८६.।*

"वदेय्य, भन्ते" ति। "इमं खो अहं, केवट्ट, इद्धिपाटिहारिये आदीनवं सम्पस्समानो इद्धिपाटिहारियेन अट्टीयामि हरायामि जिगुच्छामि"।

(ख) आदेसनापाटिहारियं

[N.185] ५. "कतमं च, केवट्ट, आदेसनापाटिहारियं ? इध, केवट्ट, भिक्खु परसत्तानं परपुग्गलानं चित्तं पि आदिसति चेतसिकं पि आदिसति वितक्कितं पि आदिसति विचारितं पि आदिसति– 'एवं पि ते मनो, इत्थं पि ते मनो, इति पि ते चित्तं' ति।

"तमेन अञ्ञतरो सद्धो पसन्नो पस्सति तं भिक्खुं परसत्तानं परपुग्गलानं चित्तं पि आदिसन्तं चेतसिकं पि आदिसन्तं वितक्कितं पि आदिसन्तं विचारितं पि आदिसन्तं—'एवं पि ते मनो, इत्थं पि ते मनो, इति पि ते चित्तं' ति। तमेनं सो सद्धो पसन्नो अञ्ञतरस्स अस्सद्धस्स अप्पसन्नस्स आरोचेति—'अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो, समणस्स महिद्धिकता महा- [R.214] नुभावता! अमाहं भिक्खुं अद्दसं परसत्तानं परपुग्गलानं चित्तं पि आदिसन्तं चेतसिकं पि आदिसन्तं वितक्कितं पि आदिसन्तं विचारितं पि आदिसन्तं—एवं पि ते मनो, इत्थं पि ते मनो, इति पि ते चित्तं' ति।

"तमेनं सो अस्सद्धो अप्पसन्नो तं सद्धं पसन्नं एवं वदेय्य—'अत्थि खो, भो, मणिका नाम विज्जा; ताय सो भिक्खु परसत्तानं परपुग्गलानं चित्तं पि आदिसति चेतसिकं पि आदिसति वितक्कितं पि आदिसति विचारितं पि आदिसति—एवं पि ते मनो, इत्थं पि ते मनो, इति पि ते चित्तं' ति।

"तं किं मञ्ञसि, केवट्ट, अपि नु सो अस्सद्धो अप्पसन्नो तं सद्धं पसन्नं एवं वदेय्या" ति ?

"वदेय्य, भन्ते" ति। "इमं खो अहं, केवट्ट, आदेसनापाटिहारिये आदीनवं सम्पस्समानो आदेसनापाटिहारियेन अट्टीयामि हरायामि जिगुच्छामि"।

वह श्रद्धारहित पुरुष उस श्रद्धालु को यह उत्तर दे सकता है– 'अरे, यह भिक्षु तो, गान्धारी नाम की एक विद्या है उसी से, ये ऋद्धियाँ दिखाता है....।'

"तो क्या! मानते हो, केवट्ट! वह श्रद्धारहित पुरुष ऐसा कह सकता है कि नहीं? "

"हाँ कह सकता है।" "केवट्ट! इसलिये, इस ऋद्धिबल प्रदर्शन से हिचकिचाता हूँ, सङ्कोच करता हूँ और घृणा करता हूँ।

(ख) आदेशनाप्रातिहार्य– ५. "केवट्ट! आदेशनाप्रातिहार्य क्या है? केवट्ट! यहाँ कोई भिक्षु दूसरे का मन क्या सोच रहा है? क्या तर्क–वितर्क या सङ्कल्प–विकल्प कर रहा है?– यह बतला देता है कि इस समय तुम्हारे मन की, तुम्हारे चित्त की यह स्थिति है।

"उस समय कोई श्रद्धालु पुरुष भिक्षु को वैसा करते हुये देखकर वैसा जान कर श्रद्धालु होता है...। वह किसी अन्य श्रद्धारहित पुरुष को उस भिक्षु के आश्चर्यजनक कार्य को बताता है कि कैसा आश्चर्य है...पूर्ववत्....चित्त की यह स्थिति है।

"तब उस श्रद्धालु पुरुष को यह श्रद्धारहित पुरुष यों कहे– 'अरे! यह सब कुछ तो तुच्छ ही है। यह तो मणिका नामक विद्या के प्रभाव से यह सब कुछ कर दिखाता है।

"तो क्या मानते हो, केवट्ट! कि वह श्रद्धारहित पुरुष उस श्रद्धा को ऐसा कह सकता है?"

"हाँ, कह सकता है, भन्ते!"

(ग) अनुसासनीपाटिहारियं

६. "कतमं च, केवट्ट, अनुसासनीपाटिहारियं? इध, केवट्ट, भिक्खु एवमनुसासति— 'एवं वितक्केथ, मा एवं वितक्कयित्थ, एवं मनसिकरोथ, मा एवं मनसाकत्थ, इदं पजहथ, इदं उपसम्पज्ज विहरथा' ति। इदं वुच्चति, केवट्ट, अनुसासनीपाटिहारियं। [B.208]

"पुन चपरं, केवट्ट, इध तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो....पे०....(*यथा सामञ्ञफले, एवं वित्थारेतब्बं*) एवं खो, केवट्ट, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति....पे०.... पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं पि वुच्चति, केवट्ट, अनुसासनीपाटिहारियं .... [N.186, R.215] पे०.... दुतियं झानं....ततियं झानं....चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं पि वुच्चति, केवट्ट, अनुसासनीपाटिहारियं। ....ञाणदस्सनाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति....पे०....इदं पि वुच्चति, केवट्ट, अनुसासनीपाटिहारियं। नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति....पे०....इदं पि वुच्चति, केवट्ट, अनुसासनीपाटिहारियं।

"इमानि खो, केवट्ट, तीणि पाटिहारियानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानि"।

३. कत्थ महाभूता निरुज्झन्ति?

७. "भूतपुब्बं, केवट्ट, इमस्मिं येव भिक्खुसङ्घे अञ्ञतरस्स भिक्खुनो एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'कत्थ नु खो इमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं— पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति?

८. "अथ खो सो, केवट्ट, भिक्खु तथारूपं समाधिं समापज्जि यथासमाहिते चित्ते देवयानियो मग्गो पातुरहोसि। अथ खो सो, केवट्ट, भिक्खु येन चातुमहाराजिका देवा तेनुपसङ्कमि;

"केवट्ट! इस आदेशनाप्रातिहार्य के प्रदर्शन में यही दोष समझता हुआ इस प्रातिहार्य के प्रदर्शन से हिचकिचाता हूँ, सङ्कोच करता हूँ, इससे घृणा करता हूँ।

(ग) अनुशासनीप्रातिहार्य– ६. "और कौन सा है, केवट्ट! अनुशासनीप्रातिहार्य? यहाँ केवट्ट! कोई भिक्षु किसी को यों अनुशासन करे– 'ऐसा विचारो, ऐसा न विचारो, ऐसा मन में सोचो, ऐसा न सोचो, इसे छोड़ दो, इसे न छोड कर साधना करो'। केवट्ट! इसे कहते हैं– अनुशासनीप्रतिहार्य।

"और फिर, केवट्ट! यहाँ संसार में तथागत अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध...पूर्ववत्....*(सामञ्ञफलसुत्त में आगत पालिपाठ के अनुसार यहाँ भी विस्तार करे लें, पृ०६७ से)*। केवट्ट! इस तरह भिक्षु शीलसम्पन्न होता है...प्रथम ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। केवट्ट! यह भी अनुशासनीप्रतिहार्य है। द्वितीय ध्यान...तृतीय ध्यान....चतुर्थ ध्यान को प्रा तकर साधना करता है। केवट्ट! यह भी अनुशासनीप्रातिहार्य कहलाता है।....ज्ञानदर्शन के लिये स्वचित्त को झुकाता है...केवट्ट! यह भी...। आवागमन के अन्य किसी कारण को नहीं देखता, केवट्ट! यह भी....।

केवट्ट! ये तीन प्रातिहार्य (ऋद्धिबल) मैंने जानकर साक्षात् कर बतलाये हैं।

३. चारों महाभूतों का निरोध कहाँ होता है?

सभी देवता अनभिज्ञ– ७. "केवट्ट! पहले कभी इसी भिक्षुसङ्घ में किसी भिक्षु के चित्त में ऐसा विचार उठा– 'ये चार महाभूत– १. पृथ्वीधातु, २. अब्धातु, ३. तेजोधातु, ४. वायोधातु– कहाँ जाकर सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं?"

८. केवट्ट! तब उस भिक्षु ने ऐसी समाधि लगायी कि उससे समाहित चित्त होने पर उस को देवलोक जाने का मार्ग स्पष्ट दिखायी देने लगा। केवट्ट! तब वह भिक्षु, जहाँ चातुर्महाराजिक देवता रहते

उपसङ्कमित्वा चातुमहाराजिके देवे एतदवोच—'कत्थ नु खो, आवुसो, इमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति ? [R.216] "एवं वुत्ते, केवट्ट, चातुमहाराजिका देवा तं भिक्खुं एतदवोचुं—'मयं पि खो, भिक्खु, न जानाम यत्थिमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, [B.209] आपोधातु, तेजोधातु वायोधातू ति। अत्थि खो, भिक्खु, चत्तारो महाराजानो अम्हेहि अभिक्कन्ततरा च पणीततरा च। ते खो एतं जानेय्युं यत्थिमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति।

९. "अथ खो सो, केवट्ट, भिक्खु येन चत्तारो महाराजानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा चत्तारो महाराजे एतदवोच—'कत्थ नु खो, आवुसो, इमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति ? एवं वुत्ते, केवट्ट, चत्तारो महाराजानो तं भिक्खुं एतदवोचुं—'मयं पि खो, भिक्खु, न जानाम यत्थिमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू ति। अत्थि खो, भिक्खु, तावतिंसा नाम देवा अम्हेहि अभिक्कन्ततरा च पणीततरा च। ते खो एतं जानेय्युं यत्थिमे चत्तारो [N.187] महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति।

१०. "अथ खो सो, केवट्ट, भिक्खु येन तावतिंसा देवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तावतिंसे देवे एतदवोच—'कत्थ नु खो, आवुसो, इमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति ? एवं वुत्ते, केवट्ट, तावतिंसा देवा तं भिक्खुं एतदवोचुं—'मयं पि खो, भिक्खु, न जानाम यत्थिमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू ति। अत्थि खो, भिक्खु, सक्को नाम देवानमिन्दो अम्हेहि अभिक्कन्ततरो च पणीततरो च। सो खो एतं जानेय्य यत्थिमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति।

[R.217] ११. "अथ खो सो, केवट्ट, भिक्खु येन सक्को देवानमिन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा

थे वहाँ, गया। जा कर उन देवताओं से वही अपना प्रश्न पूछा– 'आयुष्मानो! ये चारों महाभूत....सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं।' केवट्ट! ऐसा पूछे जाने पर उन देवताओं ने कहा– 'भिक्षु! हम भी नहीं जानते कि ये चारों महाभूत....सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं। हाँ, भिक्षु! हम से बढ़कर बुद्धिमान् चार महाराज देव हैं, वे सम्भवतः तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दे सकें कि ये चारों महाभूत....निरुद्ध हो जाते हैं।

९. तब केवट्ट! उस भिक्षु ने जहाँ चारों महाराजदेव थे उन के पास जाकर उन से पूछा कि ये चारों महाभूत....। उन्होंने भी उत्तर दिया– 'हम भी यह सब नहीं जानते। परन्तु हमसे भी बढ़कर बुद्धिमान् त्रायस्त्रिंश देव हैं, वे सम्भवतः....।

१०. "केवट्ट! तब वह भिक्षु, जहाँ त्रायस्त्रिंश देव रहते थे, उन के पास गया और उन से भी अपना वही प्रश्न पूछा कि ये चारों महाभूत....? परन्तु, केवट्ट! उन त्रायस्त्रिंश देवों ने भी उस भिक्षु को वही उत्तर दिया कि हम भी इस विषय में कुछ नहीं जानते, परन्तु, हाँ, हमसे भी बढ़कर शक्र देवराज इन्द्र बुद्धिमान् हैं, वह सम्भवतः....।

सक्कं देवानमिन्दं एतदवोच—'कत्थ नु खो, आवुसो, इमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति? एवं वुत्ते, केवट्ट, सक्को देवानमिन्दो तं भिक्खुं एतदवोच—'अहं पि खो, भिक्खु, न जानामि यत्थिमे चत्तारो महाभूता [B.210] अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू ति। अत्थि खो, भिक्खु यामा नाम देवा....पे०....सुयामो नाम देवपुत्तो....तुसिता नाम [R.218, R.219] देवा....सन्तुस्सितो नाम देवपुत्तो....निम्मानरती नाम देवा....सुनिम्मितो नाम देवपुत्तो.... परनिम्मितवसवत्ती नाम देवा....वसवत्ती नाम देवपुत्तो अम्हेहि अभिक्कन्ततरो च पणीततरो च। सो खो एतं जानेय्य, यत्थिमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति।

१२. ''अथ खो सो, केवट्ट, भिक्खु येन वसवत्ती देवपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा वसवत्तिं देवपुत्तं एतदवोच—'कत्थ नु खो, आवुसो, इमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा [R.220] निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति? एवं वुत्ते, केवट्ट, वसवत्ती देवपुत्तो तं भिक्खुं एतदवोच—'अहं पि खो, भिक्खु, न जानामि यत्थिमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू ति। अत्थि खो, भिक्खु, ब्रह्मकायिका नाम देवा अम्हेहि अभिक्कन्ततरा च पणीततरा च। ते खो एतं जानेय्युं यत्थिमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति।

१३. ''अथ खो सो, केवट्ट, भिक्खु तथारूपं समाधिं समापज्जि यथासमाहिते [N.188] चित्ते ब्रह्मयानियो मग्गो पातुरहोसि। अथ खो सो, केवट्ट, भिक्खु येन ब्रह्मकायिका देवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ब्रह्मकायिके देवे एतदवोच—'कत्थ नु खो, आवुसो, इमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं —पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति? एवं वुत्ते, केवट्ट, ब्रह्मकायिका देवा तं भिक्खुं एतदवोचुं—'मयं पि खो, भिक्खु, न

---

११. फिर, केवट्ट! वह भिक्षु जहाँ शक्र देवराज इन्द्र रहते थे, वहाँ पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उस भिक्षु ने देवराज इन्द्र से भी अपना वही प्रश्न दोहराया कि ये चारों महाभूत...कहाँ सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं?'' देवराज इन्द्र ने भी इसका उत्तर देने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए यामदेवता....सुयाम देवता.... तुषित....सन्तुषित देवपुत्र...निर्माणरति देवपुत्र....सुनिर्मित देवपुत्र...परनिर्मित वशवर्ती देवता...वशवर्ती देवपुत्र हमसे बढ़कर बुद्धिमान् हैं, वह सम्भवतः....।

१२. तब वह भिक्षु जहाँ वशवर्ती देवपुत्र थे वहाँ गया, जा कर उन से भी उसने अपना वही प्रश्न दोहराया कि 'चार महाभूत....सर्वथा कहाँ निरुद्ध होते हैं?' परन्तु वशवर्ती देवपुत्र ने भी इस प्रश्न का उत्तर देने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए अपने से बुद्धिमान् ब्रह्मकायिक देवताओं का नाम बताते हुए कहा कि वे सम्भवतः बता सकें....।

१३. ''तब केवट्ट! उस भिक्षु ने ऐसी समाधि लगायी कि उससे उसे ब्रह्मयान का मार्ग ज्ञात हो गया। तब केवट्ट! वह भिक्षु उन ब्रह्मकायिक देवताओं के पास पहुँचा, पहुँचकर उसने वहाँ भी अपना वही प्रश्न दुहराया— 'आयुष्मानो! ये चार महाभूत...सर्वथा कहाँ निरुद्ध हो जाते हैं?'' परन्तु ब्रह्मकायिक देवताओं ने वही पुराना (न जानने वाला) उत्तर देकर बताया कि हमसे भी अधिक बुद्धिमान् ब्रह्मा हैं वे

जानाम यत्थिमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, [B.211] वायोधातू' ति। अत्थि खो, भिक्खु, ब्रह्मा महाब्रह्मा अभिभू अनभिभूतो अञ्ञदत्थुदसो वसवत्ती इस्सरो कत्ता निम्माता सेट्ठो सजिता वसी पिता भूतभब्यानं अम्हेहि अभिक्कन्ततरो च पणीततरो च। सो खो एतं जानेय्य यत्थिमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं— पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति। 'कहं पनावुसो, एतरहि सो महाब्रह्मा' ति? 'मयं पि खो, भिक्खु, न जानाम यत्थ वा ब्रह्मा येन वा ब्रह्मा यहिं वा ब्रह्मा; अपि च, भिक्खु, यथा निमित्ता दिस्सन्ति आलोको सञ्जायति ओभासो पातुभवति ब्रह्मा पातुभविस्सति, ब्रह्मुनो [R.221] हेतं पुब्बनिमित्तं पातुभावाय यदिदं आलोको सञ्जायति ओभासो पातुभवती' ति। अथ खो सो, केवट्ट, महाब्रह्मा नचिरस्सेव पातुरहोसि।

१४. अथ खो सो, केवट्ट, भिक्खु येन महाब्रह्मा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं महाब्रह्मानं एतदवोच—'कत्थ नु खो, आवुसो, इमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति? एवं वुत्ते, केवट्ट, सो महाब्रह्मा तं भिक्खुं एतदवोच—'अहमस्मि, भिक्खु, ब्रह्मा महाब्रह्मा अभिभू अनभिभूतो अञ्ञदत्थुदसो वसवत्ती इस्सरो कत्ता निम्माता सेट्ठो सजिता वसी पिता भूतभब्यानं' ति।

''दुतियं पि खो सो, केवट्ट, भिक्खु तं महाब्रह्मानं एतदवोच—'न खोहं तं, आवुसो, एवं पुच्छामि—'त्वमसि ब्रह्मा महाब्रह्मा अभिभू अनभिभूतो अञ्ञदत्थुदसो वसवत्ती कत्ता निम्माता सेट्ठो सजिता वसी पिता भूतभब्यानं' ति। एवं च खो अहं तं, आवुसो, पुच्छामि— 'कत्थ नु खो, आवुसो, इमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति?

''दुतियं पि खो, केवट्ट, सो महाब्रह्मा तं भिक्खुं एतदवोच—'अहमस्मि, भिक्खु, ब्रह्मा महाब्रह्मा अभिभू अनभिभूतो अञ्ञदत्थुदसो वसवत्ती इस्सरो कत्ता निम्माता सेट्ठो सजिता वसी पिता भूतभब्यानं' ति।

सम्भवतः तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दे सकें। वे ब्रह्मा महाब्रह्मा, विजयी, अपराजित, परार्थद्रष्य, वशी, ईश्वर, कर्त्ता, निर्माता, श्रेष्ठ एवं भूत एवं भावी समग्र पदार्थों के सर्जक हैं। तब भिक्षु ने उन से पूछा— 'आयुष्मन्! वे ब्रह्मा इस समय कहाँ हैं?' ''हे भिक्षु! हम नहीं जानते कि वे ब्रह्मा कहाँ है, क्या कर रहे हैं? परन्तु जैसे लक्षण दिखायी दे रहे हैं, जैसा दिव्य प्रकाश हो रहा है उससे अनुमान लगता है कि वे तत्काल यहाँ प्रकट होंगे, क्योंकि ये लक्षण, यह दिव्य प्रकाश या अवभास ब्रह्मा के प्रकट होने के ही पूर्वनिमित्त हैं।' केवट्ट! यह प्रसङ्ग चल ही रहा था कि तत्काल ही वहाँ ब्रह्मा प्रकट हो गये।

१४. ''तब केवट्ट! वह भिक्षु जहाँ ब्रह्मा थे वहाँ पहुँचा, पहुँच कर ब्रह्मा के समक्ष अपना वही प्रश्न उठाया कि ये 'चारों महाभूत....सर्वथा कहाँ निरुद्ध होते हैं?' ऐसा पूछे जाने पर केवट्ट! वह महाब्रह्मा उस भिक्षु से सगर्व यों बोला—'मैं महाब्रह्मा, विजयी....पूर्ववत्....पदार्थों का सर्जक हूँ।

''केवट्ट! वह भिक्षु दूसरी बार भी उस महाब्रह्मा से यों बोला—'आयुष्मन्! मैं आपसे यह नहीं पूछ रहा कि आप ब्रह्मा..पदार्थों के सर्जक हैं; मैं तो आप से यह पूछ रहा हूँ कि ये चार महाभूत....सर्वथा कहाँ निरुद्ध होते हैं?'

''दूसरी बार भी उस महाब्रह्मा ने वही पूर्ववत् उत्तर दिया।

ततियं पि खो सो, केवट्ट, भिक्खुं तं महाब्रह्मानं एतदवोच—'न खोहं तं, [N.189] आवुसो, एवं पुच्छामि—त्वमसि ब्रह्मा महाब्रह्मा अभिभू अनभिभूतो अञ्ञदत्थुदसो B.212] वसवत्ती इस्सरो कत्ता निम्माता सेट्ठो सजिता वसी पिता भूतभब्यानं ति। एवं च खो अहं तं, आवुसो, पुच्छामि—कत्थ नु खो, आवुसो इमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति?

१५. "अथ खो सो, केवट्ट, महाब्रह्मा तं भिक्खुं बाहायं गहेत्वा एकमन्तं [R.222] अपनेत्वा तं भिक्खुं एतदवोच—'इमे खो मं, भिक्खुं, ब्रह्मकायिका देवा एवं जानन्ति—नत्थि किञ्चि ब्रह्मुनो अञ्ञातं, नत्थि किञ्चि ब्रह्मुनो अदिट्ठं, नत्थि किञ्चि ब्रह्मुनो अविदितं, नत्थि किञ्चि ब्रह्मुनो असच्छिकतं ति। तस्माहं तेसं सम्मुखा न ब्याकासिं। अहं पि खो, भिक्खु, न जानामि यत्थिमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू, ति। तस्मातिह, भिक्खु, तुय्हेवेतं दुक्कटं तुय्हेवेतं अपरद्धं यं त्वं तं भगवन्तं अतिधावित्वा बहिद्धा परियेट्ठिं आपज्जसि इमस्स पञ्हस्स वेय्याकरणाय। गच्छ त्वं, भिक्खु तमेव भगवन्तं उपसङ्कमित्वा इमं पञ्हं पुच्छ। यथा च ते भगवा ब्याकरोति तथा नं धारेय्यासी' ति।

१६. "अथ खो सो, केवट्ट, भिक्खु—सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो समिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य पसारितं बा बाहं समिञ्जेय्य एवमेव—ब्रह्मलोके अन्तरहितो मम पुरतो पातुरहोसि। अथ खो सो, केवट्ट, भिक्खु मं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो, केवट्ट, सो भिक्खु मं एतदवोच—'कत्थ नु खो, भन्ते, इमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू' ति?

१७. "एवं वुत्ते, अहं, केवट्ट, तं भिक्खुं एतदवोचं—'भूतपुब्बं, भिक्खु, सामुद्दिका वाणिजा तीरदस्सिं सकुणं गहेत्वा नावाय समुद्दं अज्झोगाहन्ति। ते अतीरदक्खिनिया नावाय

"तीसरी बार फिर उस भिक्षुने उस ब्रह्मा से अपना वही प्रश्न दुहराया कि....कहाँ निरुद्ध होते हैं?

१५. "तब केवट्ट! उस महाब्रह्मा ने उस भिक्षु की बाँह पकड़ कर एकान्त में ले जाकर उस भिक्षु से कहा–'हे भिक्षु! ये ब्रह्मलोक के देवता मेरे विषय में ऐसा समझते है कि ब्रह्मा से कुछ भी अज्ञात नहीं है कुछ भी अदृष्ट नहीं है, कुछ भी असाक्षात्कृत नहीं है, इस लिये भिक्षु! मैंने उनके सामने तुम से कुछ भी नहीं कहा, परन्तु भिक्षु! सचाई यह है कि मैं भी नहीं जानता कि ये चारों महाभूत... कहाँ जाकर सर्वथा निरुद्ध होते हैं, भिक्षु! अतः यह तो तुम्हारा ही दोष है, तुम्हारा ही अपराध है कि तुम भगवान् (बुद्ध) को छोड़ कर बाहर (दूसरों से) इस कठिन प्रश्न का उत्तर जानना चाह रहे हो। तुम उन्हीं भगवान् के पास जाओ, और उन्हीं से यह प्रश्न करो और वे जैसा बतावें वैसा धारण (विश्वास) कर लो।

१६. (उस महाब्रह्मा द्वारा) "ऐसा कहे जाने पर, केवट्ट! वह भिक्षु, जैसे कोई बलवान् पुरुष अपने सिकुड़े हुए हाथ को पसार दे या पसारे हुए हाथ को सिकोड़ (संकुचित) ले उसी तरह, ब्रह्मलोक में अन्तर्हित हो कर मेरे समक्ष प्रकट हुआ। तब वह भिक्षु मुझको प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसने यों पूछा– 'भन्ते! ये चार महाभूत....पूर्ववत्.... कहाँ जा कर सर्वथा निरुद्ध होते हैं?'

१७. (भिक्षु द्वारा) "ऐसा कहे जाने पर, केवट्ट! मैं उससे यों बोला–'पूर्व काल में कुछ सामुद्रिक व्यापारी किनारा देखने वाले पक्षी को साथ ले, नाव पर चढ़ कर समुद्र के बीच गये। नाव से तट दिखायी

तीरदस्सिं सकुणं मुञ्चन्ति। सो गच्छतेव पुरत्थिमं दिसं, गच्छति दक्खिणं दिसं, गच्छति पच्छिमं दिसं, गच्छति उत्तरं दिसं, गच्छति उद्धं दिसं, गच्छति अनुदिसं। सचे सो समन्ता तीरं [B.213] पस्सति तथागतको व होति। सचे पन सो समन्ता तीरं न पस्सति तमेव नावं [R.223] पच्चागच्छति। एवमेव खो त्वं, भिक्खु, यतो याव ब्रह्मलोका परियेसमानो इमस्स [N.190] पञ्हस्स वेय्याकरणं नाज्झगा, अथ ममञ्ञेव सन्तिके पच्चागतो। न खो एसो, भिक्खु, पञ्हो एवं पुच्छितब्बो—'कत्थ नु खो, भन्ते, इमे चत्तारो महाभूता अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सेय्यथिदं—पथवीधातु, आपोधातु, तेजोधातु, वायोधातू', ति?

१८. ''एवं च खो एसो, भिक्खु, पञ्हो पुच्छितब्बो—

''कत्थ आपो च पथवी, तेजो वायो न गाधति।
कत्थ दीघं च रस्सं च, अणुं थूलं सुभासुभं।
कत्थ नामं च रूपं च, असेसं उपरुज्झती ति॥

१९. ''तत्र वेय्याकरणं भवति—

विञ्ञाणं अनिदस्सनं, अनन्तं सब्बतोपभ।
एत्थ आपो च पथवी, तेजो वायो न गाधति॥
एत्थ दीघं च रस्सं च, अणुं थूलं सुभासुभं।
एत्थ नामं च रूपं च, असेसं उपरुज्झति।
विञ्ञाणस्स निरोधेन, एत्थेतं उपरुज्झती' '' ति॥

२०. इदमवोच भगवा। अत्तमनो केवट्टो गहपतिपुत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दी ति॥

केवट्टसुत्तं निट्ठितं एकादसमं॥

न पड़ने के कारण, उन्होंने तट देखने वाले पक्षी को छोड़ा। (वह पक्षी) पूर्व दिशा की तरफ गया, दक्षिण....पश्चिम....उत्तर....ऊपर....अनुदिशाओं में गया। यदि वह कहीं तट देखता तो वहाँ जा सकता था। क्योंकि वह कहीं तट न देख पाया तो पुनः नाव पर ही लौट आया। भिक्षु! तुम भी, क्यों कि तुम्हें तुम्हारे प्रश्न का उत्तर ब्रह्मलोक तक नहीं मिला अतः पुनः मेरे पास ही लौट आये। भिक्षु! तुम्हें अपना प्रश्न यों नहीं पूछना चाहिये था कि 'भन्ते! ये चार महाभूत....कहाँ जा कर सर्वथा निरुद्ध होते हैं।'

१८. अपितु, भिक्षु! तुम्हें यह प्रश्न इस तरह पूछना चाहिये कि 'पृथ्वीधातु, जलधातु, तेजोधातु, एवं वायुधातु कहाँ स्थित नहीं रहते?'

''कहाँ दीर्घ–ह्रस्व, अणु–स्थूल शुभ–अशुभ और नाम–रूप सर्वथा निरुद्ध हो जाते है?।। १।।

१९. इसका उत्तर है—

''अनिदर्शन (उत्पत्ति–स्थिति, नाश की जहाँ बात ही न हो), अनन्त, और अत्यन्त प्रभायुक्त विज्ञान जहाँ है वहाँ जल, पृथ्वी, तेज और वायुधातु स्थित नहीं रहते।। २।।

''वहीं दीर्घ ह्रस्व, अणु–स्थूल, और शुभ–अशुभ सर्वथा निरुद्ध हो जाते हैं। विज्ञान का निरोध होने से वहाँ सभी निरुद्ध (समाप्त) हो जाते हैं।'' ।। ३।।

२०. भगवान् ने यह कहा। प्रसन्नचित्त (आप्तमना) गृहपतिपुत्र केवट्ट ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया।।

एकादसम केवट्टसुत्त समाप्त॥

१२. लोहिच्चसुत्तं

१. लोहिच्चस्स पापकं दिट्ठिगतं

१. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसलेसु चारिकं [N.191, B.214, R.224] चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि येन सालवतिका तदवसरि। तेन खो पन समयेन लोहिच्चो ब्राह्मणो सालवतिकं अज्झावसति सत्तुस्सदं सतिणकट्ठोदकं सधञ्ञं राजभोग्गं, रञ्ञा पसेनदिना कोसलेन दिन्नं, राजदायं, ब्रह्मदेय्यं।

२. तेन खो पन समयेन लोहिच्चस्स ब्राह्मणस्स एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति—"इध समणो वा ब्राह्मणो वा कुसलं धम्मं अधिगच्छेय्य। कुसलं धम्मं अधिगन्त्वा न परस्स आरोचेय्य—'किञ्हि परो परस्स करिस्सति! सेय्यथापि नाम पुराणं बन्धनं छिन्दित्वा अञ्ञं नवं बन्धनं करेय्य एवं सम्पदमिदं पापकं लोभधम्मं वदामि—किञ्हि परो परस्स करिस्सती' " ति।

३. अस्सोसि खो लोहिच्चो ब्राह्मणो—'समणो खलु, भो, गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि सालवतिकं अनुप्पत्तो। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं, सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो, लोकविदू, अनुत्तरो, पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो, भगवा। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं [R.225] सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती''' ति।

---

१२. लौहित्यसूत्र

१. लौहित्य को स्वकीय पापकर्म प्रत्यक्ष हुआ

१.ऐसा मैने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) कोसल देश में पाँच सौ संख्या वाले वृहत् भिक्षुसङ्घ के साथ चारिका करते हुए सालवतिका ग्राम में पहुँचे। उस समय लौहित्य ब्राह्मण राजा प्रसेनजित् कोसल द्वारा प्रदत्त राज्य-अंश, ब्राह्मणभोग्य, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्यसम्पन्न सालवतिका का स्वामी बन कर रहता था।

२. उस समय लौहित्य ब्राह्मण को यह मिथ्या धारणा उत्पन्न हुई-'संसार में ऐसा कोई श्रमण या ब्राह्मण नहीं है जो सद्धर्म को जानता हो, या वैसा सद्धर्म दूसरों को समझा सकता हो। भला, कोई दूसरा दूसरे के लिये क्या करेगा! मै तो इन श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा दिये गये धर्म-उपदेश को ऐसा ही समझता हूँ जैसे कोई एक बन्धन काट कर दूसरा बन्धन गले में डाल दे। इनका धर्मोपदेश तो लोभ और पाप से भरा पड़ा है; क्योंकि दूसरा दूसरे के लिये क्यों कुछ करेगा।

३. इसी समय लौहित्य ब्राह्मण ने सुना-"शाक्यपुत्र श्रमण गौतम शाक्यकुल से प्रव्रजित है। पाँच सौ भिक्षुओं को साथ ले, सालवतिका में पधारे हैं। उस श्रमण गौतम के विषय में समग्र सालवतिका में यह यशोगाथा फैली हुई थी कि "वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध....पूर्ववत्....बुद्ध भगवान् है।....ऐसे सन्तों का दर्शन अत्यन्त कुशलकारी होता है।

[B.215] ४. अथ खो लोहिच्चो ब्राह्मणो रोसिकं न्हापितं आमन्तेसि—''एहि त्वं, सम्म रोसिके, येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन समणं गोतमं अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छ—'लोहिच्चो, भो गोतम, ब्राह्मणो भवन्तं गोतमं अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छती' ति। एवं च वदेहि—'अधिवासेतु किर भवं गोतमो लोहिच्चस्स ब्राह्मणस्स स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना' '' ति।

[N.192] ५. ''एवं, भो'' ति खो रोसिका न्हापितो लोहिच्चस्स ब्राह्मणस्स पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो रोसिका न्हापितो भगवन्तं एतदवोच —''लोहिच्चो, भन्ते, ब्राह्मणो भगवन्तं अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति; एवं च वदेति—'अधिवासेतु किर, भन्ते, भगवा लोहिच्चस्स ब्राह्मणस्स स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना''' ति। अधिवासेसि भगवा तुण्हीभावेन।

६. अथ खो रोसिका न्हापितो भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन लोहिच्चो ब्राह्मणो तेनुपसङ्कमि; उसङ्कमित्वा लोहिच्चं [R.226] ब्राह्मणं एतदवोच—''अवोचुम्हा खो मयं भोतो वचनेन तं भगवन्तं—'लोहिच्चो, भन्ते, ब्राह्मणो भगवन्तं अप्पाबाधं अप्पातङ्कं लहुट्ठानं बलं फासुविहारं पुच्छति। एवं च वदेति—अधिवासेतु किर, भन्ते, भगवा लोहिच्चस्स ब्राह्मणस्स स्वातनाय भत्तं सद्धिं भिक्खुसङ्घेना' ति। अधिवुत्थं च पन तेन भगवता'' ति।

७. अथ खो लोहिच्चो ब्राह्मणो तस्सा रत्तिया अच्चयेन सके निवेसने पणीतं खादनीयं भोजनीयं पटियादापेत्वा रोसिकं न्हापितं आमन्तेसि—''एहि त्वं, सम्म रोसिके, येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा समणस्स गोतमस्स कालं आरोचेहि—'कालो भो, गोतम,

---

४. तब लौहित्य ब्राह्मण ने रोसिक नाई को बुला कर आदेश दिया कि–''सुनो, भद्र रोसिक! जहाँ श्रमण गौतम विराजमान है वहाँ जाओ। जा कर मेरी तरफ से श्रमण गौतम का कुशल–मङ्गल पूछना और कहना कि 'लौहित्य ब्राह्मण आप श्रमण गौतम का कुशलक्षेम पूछता है, और मेरी तरफ से निवेदन करना कि कल भगवान् अपने समस्त भिक्षुसङ्घ के साथ लौहित्य ब्राह्मण के घर भिक्षा के लिये पधारें।'''

५. रोसिक नाई लौहित्य ब्राह्मण का आदेश स्वीकार कर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया और वहाँ जाकर भगवान् को प्रणाम कर किया। प्रणाम कर एकान्त मैं बैठ उसने भगवान् से यों निवेदन किया– ''भन्ते! लौहित्य ब्राह्मण भगवान् का कुशल–मङ्गल पूछता है और निवेदन करता है कि आप कल समग्र भिक्षुसङ्घ के साथ लौहित्य ब्राह्मण के घर भिक्षा हेतु पधारें।'' भगवान मौन रह कर लौहित्य निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

६. तब रोसिका नाई भगवान् की स्वीकृति जान कर आसन से उठकर भगवान् को अभिवादन तथा प्रदक्षिणा कर, लौहित्य ब्राह्मण के पास जाकर उसे यों कहा–''हमने आप का सन्देश भगवान् को सुना दिया है। और उन्होंने कल अपने भिक्षु सङ्घ के साथ आपके घर भिक्षाहेतु आने की स्वीकृति दे दी है।''

७. तब लौहित्य ब्राह्मण ने उस रात्रि के बीत जाने पर अपने घर पर अच्छे–अच्छे खाद्य पदार्थ तय्यार कर रोसिका नाई को बुलाया ओर आदेश दिया–''सौम्य रोसिका! तुम मेरे कहने से श्रमण गौतम

निट्ठितं भत्तं''' ति। ''एवं, भो'' ति खो रोसिका न्हापितो लोहिच्चस्स ब्राह्मणस्स पटिस्सुत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। [B.216] एकमन्तं ठितो खो रोसिका न्हापितो भगवतो कालं आरोचेसि—''कालो, भन्ते, निट्ठितं भत्तं'' ति।

८. अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय सद्धिं भिक्खुसङ्घेन येन सालवतिका तेनुपसङ्कमि। तेन खो पन समयेन रोसिका न्हापितो भगवन्तं पिट्ठितो पिट्ठितो अनुबन्धो होति। अथ खो रोसिका न्हापितो भगवन्तं एतदवोच—''लोहिच्चस्स, भन्ते, ब्राह्मणस्स एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं—'इध समणो वा ब्राह्मणो वा कुसलं धम्मं अधिगच्छेय्य, कुसलं धम्मं अधिगन्त्वा न परस्स आरोचेय्य— किञ्हि परो परस्स करिस्सति; सेय्यथापि नाम पुराणं बन्धनं छिन्दित्वा अञ्ञं नवं बन्धनं करेय्य एवं सम्पदमिदं पापकं लोभधम्मं [N.193] वदामि—किञ्हि परो परस्स करिस्सती' ति। साधु, भन्ते, भगवा लोहिच्चं ब्राह्मणं एतस्मा पापका दिट्ठिगता विवेचेतू'' ति। ''अप्पेव नाम सिया रोसिके, अप्पेव नाम सिया रोसिके'' ति।

२. भगवा लोहिच्चस्स दिट्ठिं भिन्दि

९. अथ खो भगवा येन लोहिच्चस्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; [R.227] उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो लोहिच्चो ब्राह्मणो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो लोहिच्चो ब्राह्मणो भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्ञतरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो लोहिच्चं ब्राह्मणं भगवा एतदवोच—

''सच्चं किर ते, लोहिच्च, एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं—'इध समणो वा ब्राह्मणो वा कुसलं धम्मं अधिगच्छेय्य, कुसलं धम्मं अधिगन्त्वा न परस्स आरोचेय्य—किञ्हि परो परस्स करिस्सति! सेय्यथापि नाम पुराणं बन्धनं छिन्दित्वा अञ्ञं नवं बन्धनं करेय्य, एवं

के पास जाओ और मेरी ओर से उनको निवेदन करो कि—'भो गौतम! भोजन का समय हो गया है।' ''अच्छा श्रीमन्'' कहकर रोसिका नाई भगवान् के पास गया....बताया कि भोजन का समय हो गया है।''

८. तब भगवान् पूर्वाह्न समय में वस्त्र पहनकर पात्र चीवर ले, बृहत् भिक्षुसङ्घ के साथ सालवतिका में पहुँचे। उस समय रोसिका नाई भी भगवान् के पीछे पीछे ही चल रहा था। (रास्ते में) रोसिका नाई ने भगवान् से बताया कि ''भन्ते! लौहित्य ब्राह्मण की ऐसी मिथ्या धारणा बन गयी है कि 'संसार में....क्यों कुछ करेगा।' अच्छा होगा, भन्ते! यदि आप इस लौहित्य ब्राह्मण की मिथ्या धारणा को मिटा दें।''

भगवान् ने उत्तर दिया—''रोसिका, ऐसा ही होगा, रोसिका! ऐसा ही होगा।

२. भगवान् ने लौहित्य की मिथ्या धारणा नष्ट की

९. तब भगवान् लौहित्य ब्राह्मण के आवास पर पहुँचे। पहुँच कर प्रज्ञप्त (बिछे हुए) आसन पर विराजमान हुऐ। तब लौहित्य ब्राह्मण ने बुद्धसहित भिक्षुसङ्घ को अपने हाथ से खाने–पीने की चीजें परोस–परोस कर खिलायी। तब लौहित्य ब्राह्मण, भगवान् द्वारा भोजन समाप्त कर पात्र से हाथ हटा लेने के बाद, स्वयं एक दूसरा नीचा आसन ले कर एक ओर बैठ गया। उससे भगवान् ने पूछा—

''लौहित्य! क्या सचमुच तुम्हें यह मिथ्या धारणा उत्पन्न हो गयी है कि—''दूसरे के लिये कोई क्या करेगा....?'' ''हाँ, भो गौतम! ऐसी ही बात है।'' ''लौहित्य! तुम सालवतिका के स्वामी हो न?'' ''हूँ,

सम्पदमिदं पापकं लोभधम्मं वदामि—किञ्हि परो परस्स करिस्सती' '' ति? ''एवं, भो गोतम''। ''तं किं मञ्ञसि, लोहिच्च, ननु त्वं सालवतिकं अज्झावससी'' ति? ''एवं, भो गोतम''।''यो नु खो, लोहिच्च, एवं वदेय्य—'लोहिच्चो ब्राह्मणो सालवतिकं अज्झावसति। [B.217] या सालवतिकाय समुदयसञ्जाति लोहिच्चो व तं ब्राह्मणो एकको परिभुञ्जेय्य, न अञ्ञेसं ददेय्या' ति, एवंवादी सो ये तं उपजीवन्ति तेसं अन्तरायकरो वा होति नो वा'' ति? ''अन्तरायकरो, भो गोतम''। ''अन्तरायकरो समानो हितानुकम्पी वा तेसं होति अहितानुकम्पी वा'' ति? ''अहितानुकम्पी, भो गोतम''।''अहितानुकम्पिस्स मेत्तं वा तेसु चित्तं पच्चुपट्ठितं होति सपत्तकं वा'' ति? ''सपत्तकं, भो गोतम''।

[N.194] ''सपत्तके चित्ते पच्चुपट्ठिते मिच्छादिट्ठि वा होति सम्मादिट्ठि वा'' ति? ''मिच्छादिट्ठि, भो गोतम''।

[R.228] ''मिच्छादिट्ठिस्स खो अहं, लोहिच्च, द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं वदामि—निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा।

१०. ''तं किं मञ्ञसि, लोहिच्च, ननु राजा पसेनदि कोसलो कासिकोसलं अज्झावसती'' ति? ''एवं, भो गोतम''। ''यो नु खो, लोहिच्च, एवं वदेय्य—'राजा पसेनदि कोसलो कासिकोसलं अज्झावसति; या कासिकोसले समुदयसञ्जाति राजा व तं पसेनदि कोसलो एकको परिभुञ्जेय्य, न अञ्ञेसं ददेय्या' ति, एवंवादी सो ये राजानं पसेनदिं कोसलं उपजीवन्ति तुम्हे चेव अञ्ञे च तेसं अन्तरायकरो वा होति नो वा'' ति? ''अन्तरायकरो, भो गोतम''। ''अन्तरायकरो समानो हितानुकम्पी वा तेसं होति अहितानुकम्पी वा'' ति? ''अहितानुकम्पी, भो गोतम''।

''अहितानुकम्पिस्स मेत्तं वा तेसु चित्तं पच्चुपट्ठितं होति सपत्तकं वा'' ति? ''सपत्तकं, भो गोतम''।

''सपत्तके चित्ते पच्चुपट्ठिते मिच्छादिट्ठि वा होति सम्मादिट्ठि वा'' ति?

''मिच्छादिट्ठि, भो गोतम'' ।

भो गौतम!'' ''लौहित्य! कोई मनुष्य इस विषय में मिथ्या धारणा फैला दे कि सालवतिका की समग्र सम्पत्ति आय का उपभोग अकेले लौहित्य ही करते हैं, दूसरों की कुछ नहीं देते'। तो ऐसा कहने वाला मनुष्य, जो लोग तुम पर आश्रित हैं उनका हानिकारक है, या नहीं?'' ''हानिकारक ही है, भो गौतम!'' ''हानिकारक होने से वह उनका हितकर्ता है, या अहितकर्ता?'' ''अहितकर्ता ही है, भो गौतम!'' ''अहितकर्ता के मन में उनके प्रति शत्रुता का भाव रहता है या मैत्री भाव?'' ''शत्रुता का भाव, भो गौतम!''

''शत्रुता का भाव रहने में मिथ्या धारणा (दृष्टि) रहती है, या अच्छी (सम्यक्) धारणा?'' ''...मिथ्यादृष्टि ही रहती है, भो गौतम!''

''लौहित्य! मिथ्यादृष्टि वालों की मैं दो ही गति मानता हूँ, तीसरी नहीं—नरक या नीच योनि में जन्म।''

१०. ''तब क्या मानते हो, लौहित्य! राजा प्रसेनजित् कौसल काशी और कौसल देशों का स्वामी

"मिच्छादिट्ठिस्स खो अहं, लोहिच्च, द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं वदामि—निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा"।

११. "इति किर, लोहिच्च, यो एवं वदेय्य—'लोहिच्चो ब्राह्मणो सालवतिकं अज्झावसति; या सालवतिकाय समुदयसञ्जाति लोहिच्चो व तं ब्राह्मणो एकको परिभुञ्जेय्य, न अञ्ञेसं ददेय्या' ति, एवंवादी सो ये तं उपजीवन्ति तेसं अन्तरायकरो होति, अन्तरायकरो समानो अहितानुकम्पी होति, अहितानुकम्पिस्स सपत्तकं चित्तं पच्चुपट्ठितं होति, सपत्तके चित्ते पच्चुपट्ठिते मिच्छादिट्ठि होति। एवमेव खो, लोहिच्च, यो एवं वदेय्य—'इध समणो वा [B.218] ब्राह्मणो वा कुसलं धम्मं अधिगच्छेय्य, कुसलं धम्मं अधिगन्त्वा न परस्स आरोचेय्य—किञ्हि परो परस्स करिस्सति! सेय्यथापि नाम पुराणं बन्धनं छिन्दित्वा अञ्ञं नवं [R.229] बन्धनं करेय्य....पे०....करिस्सती' ति, एवंवादी सो ये ते कुलपुत्ता तथागतप्पवेदितं [N.195] धम्मविनयं आगम्म एवरूपं उळारं विसेसं अधिगच्छन्ति, सोतापत्तिफलं पि सच्छिकरोन्ति, सकदागामिफलं पि सच्छिकरोन्ति, अनागामिफलं पि सच्छिकरोन्ति, अरहत्तं पि सच्छिकरोन्ति, ये चिमे दिब्बा गब्भा परिपाचेन्ति दिब्बानं भवानं अभिनिब्बत्तिया तेसं अन्तरायकरो होति, अन्तरायकरो समानो अहितानुकम्पी होति, अहितानुकम्पिस्स सपत्तकं चित्तं पच्चुपट्ठितं होति, सपत्तके चित्ते पच्चुपट्ठिते मिच्छादिट्ठि होति। मिच्छादिट्ठिस्स खो अहं, लोहिच्च, द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं वदामि—निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा।

१२. "इति किर, लोहिच्च, यो एवं वदेय्य—'राजा पसेनदि कोसलो कासिकोसलं अज्झावसति; या कासिकोसले समुदयसञ्जाति राजा व तं पसेनदि कोसलो एकको परिभुञ्जेय्य, न अञ्ञेसं ददेय्या' ति, एवंवादी सो ये राजानं पसेनदिं कोसलं उपजीवन्ति तुम्हे चेव अञ्ञे च तेसं अन्तरायकरो होति, अन्तरायकरो समानो अहितानुकम्पी होति, अहितानुकम्पिस्स सपत्तकं चित्तं पच्चुपट्ठितं होति, सपत्तके चित्ते पच्चुपट्ठिते मिच्छादिट्ठि होति। एवमेव खो, लोहिच्च, यो एवं वदेय्य—'इध समणो वा ब्राह्मणो वा कुसलं धम्मं अधिगच्छेय्य, कुसलं धम्मं अधिगन्त्वा न परस्स आरोचेय्य—किञ्हि परो परस्स करिस्सति! सेय्यथापि नाम

है कि नहीं?" "हाँ, है भो गौतम!" "लौहित्य! उनके विषय में कोई मनुष्य यह मिथ्या धारणा फैला दे कि राजा प्रसेनजित अकेले ही कोशल और काशी देशों की आय ....पूर्ववत् .... नीच योनि में जन्म।"

११. "लौहित्य! जो यह कहे—लौहित्य ब्राह्मण सालवतिका का स्वामी है,....पूर्ववत्....। इसी तरह लौहित्य! जो यह कहे 'यहाँ ऐसा कोई श्रमण ब्राह्मण जो कुशल धर्मों को जाने और इन कुशल धर्मों को जान कर दूसरों को उपदेश दें।...पूर्ववत्....ऐसा कहने वाला उन कुलपुत्रों की हानि ही करता है जो संसार से निवृत होने के बाद तथागतोपदिष्ट धर्म-विनय को स्वीकार कर ऐसी कुशलता को प्राप्त करते हैं। सोतआपत्ति फल, सकृदागामिफल, अनागामी फल, अर्हत्त्व का फल का साक्षात्कार करते हैं और दिव्य भव का परिपाक करते हैं। उनके दिव्य भव की प्राप्ति में ये विघ्नकारक होते हैं, यों विघ्नकारक हो कर उन का अहित करते हैं, अहित करने से उसके चित्त में उनके प्रति शत्रुभाव आ जाता है, और इस शत्रुभाव से वह मिथ्या धारणा वाला हो जाता है। ऐसे मिथ्या धारणा रखने वाले की लौहित्य! मैं ही दो ही गति जानता हूँ—नरक या पशुयोनि।

....पे०....किञ्हि परो परस्स करिस्सती' ति, एवंवादी सो ये ते कुलपुत्ता तथागतप्पवेदितं धम्मविनयं आगम्म एवरूपं उळारं विसेसं अधिगच्छन्ति, सोतापत्तिफलं पि सच्छिकरोन्ति, सकदागामिफलं पि सच्छिकरोन्ति, अनागामिफलं पि सच्छिकरोन्ति, अरहत्तं पि सच्छिकरोन्ति, ये चिमे दिब्बा गब्भा परिपाचेन्ति दिब्बानं भवानं अभिनिब्बत्तिया, तेसं अन्तरायकरो होति, [R.230] अन्तरायकरो समानो अहितानुकम्पी होति, अहितानुकम्पिस्स सपत्तकं चित्तं पच्चुपट्ठितं होति, सपत्तके चित्ते पच्चुपट्ठिते मिच्छादिट्ठि होति। मिच्छादिट्ठिस्स खो अहं, लोहिच्च, द्विन्नं गतीनं अञ्ञतरं गतिं वदामि—निरयं वा तिरच्छानयोनिं वा।

३. तयो चोदनारहा सत्थारो

[B.219] १३. "तयो खो मे, लोहिच्च, सत्थारो ये लोके चोदनारहा ; यो च पनेव रूपे सत्थारो चोदेति सा चोदना भूता तच्छा धम्मिका अनवज्जा। कतमे तयो ?

[N.196] १४. "इध, लोहिच्च, एकच्चो सत्था यसत्थाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति स्वास्स सामञ्ञत्थो अननुप्पत्तो होति। सो तं सामञ्ञत्थं अननुपापुणित्वा सावकानं धम्मं देसेति—'इदं वो हिताय, इदं वो सुखाया' ति। तस्स सावका न सुस्सूसन्ति, न सोतं ओदहन्ति, न अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेन्ति, वोक्कम्म च सत्थुसासना वत्तन्ति। सो एवमस्स चोदेतब्बो—'आयस्मा खो यस्सत्थाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो सो ते सामञ्ञत्थो अननुप्पत्तो, तं त्वं सामञ्ञत्थं अननुपापुणित्वा सावकानं धम्मं देसेसि—इदं वो हिताय इदं वो सुखाया ति। तस्स ते सावका न सुस्सूसन्ति, न सोतं ओदहन्ति, न अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेन्ति, वोक्कम्म च सत्थुसासना वत्तन्ति। सेय्यथापि नाम ओसक्कन्तिया वा उस्सक्केय्य, परम्मुखिं वा आलिङ्गेय्य, एवं सम्पदमिदं पापकं लोभधम्मं वदामि—किञ्हि परो परस्स करिस्सती' ति। अयं खो, लोहिच्च, पठमो सत्था यो लोके चोदनारहो; यो च पनेवरूपं सत्थारं चोदेति सा चोदना भूता तच्छा धम्मिका अनवज्जा। (१)

---

१२. "लौहित्य! जो यह कहे—'राजा प्रसेनजित् कौसल काशी–कौसल जनपदों का एकमात्र स्वामी है। ....पूर्ववत् ....नरक या पशुयोनि।"

३. तीन आपत्तियोग्य (निन्दनीय) गुरु

१३. लौहित्य! इन तीन प्रकार शास्ताओं (गुरुओं) की निन्दा (आक्षेप) ही करना चाहिये। उन पर किया गया आक्षेप सत्य, यथार्थ एवं धर्मानुकूल तथा निर्दोष ही होगा। कौन से तीन?

१४. यहां लौहित्य! कोई शास्ता यश की प्राप्ति के लिये घर छोड़ कर बेघर हो प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं, यह बात श्रामण्यप्राप्ति के अनुकूल नहीं है। वे स्वयं श्रमण–भाव को विना प्राप्त किये आपने शिष्यों को धर्मोपदेश करने लगते हैं—'यह तुम्हारे लिये सुखकर है, यह हितकर है।' उनके श्रावक उन्हें सुनने की चाह नहीं करते उनकी बातपर ध्यान नहीं देते, चित्त नहीं लगाते, और उनके उपदेश से विरत रहते हैं। श्रावकों द्वारा ऐसे गुरु को यह कहना चाहिये—'आयुष्मन्!' आप ने जिस निमित्त प्रव्रज्या ली थी, वह श्रमणभाव के अनुकूल नहीं है। आप स्वयं वह श्रामण्य प्राप्त न कर, अपने श्रावकों को ही यह (झूठा असाक्षात्कृत) उपदेश करते हैं—'यह तुम्हारे लिये सुखकर है, या यह तुम्हारे लिये हितकर।' श्रावक इन बातों को सुनना नहीं चाहते....जैसे कोई अनुत्सुक (दूर हट गयी) तरुणी में अपने प्रति उत्सुकता पैदा करना चाहे, या (घृणा के कारण) मुहँ फेरी हुई तरुणी को आलिङ्गन करना चाहे। ऐसा करने को मैं

१५. ''पुन परं, लोहिच्च, इधेकच्चो सत्था यसत्थाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति स्वास्स सामञ्ञत्थो अननुप्पत्तो होति। सो तं सामञ्ञत्थं अननुपापुणित्वा सावकानं धम्मं देसेति—'इदं वो हिताय, इदं वो सुखाया' ति। तस्स सावका सुस्सूसन्ति, सोतं [R.231] ओदहन्ति, अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेन्ति, न च वोक्कम्म सत्थुसासना वत्तन्ति। सो एवमस्स चोदेतब्बो—'आयस्मा खो यस्सत्थाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो सो ते सामञ्ञत्थो अननुप्पत्तो, तं त्वं सामञ्ञत्थं अननुपापुणित्वा सावकानं धम्मं देसेसि—इदं वो हिताय इदं वो सुखाया ति। तस्स ते सावका सुस्सूसन्ति, सोतं ओदहन्ति, अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेन्ति, न च वोक्कम्म सत्थुसासना वत्तन्ति। सेय्यथापि नाम सकं खेत्तं ओहाय परं खेत्तं निद्दायितब्बं मञ्ञेय्य, [B.220] एवंसम्पदमिदं पापकं लोभधम्मं वदामि—किञ्हि परो परस्स करिस्सती' ति। अयं खो, लोहिच्च, दुतियो सत्था यो, लोके चोदनारहो; यो च पनेवरूपं सत्थारं चोदेति सा चोदना भूता तच्छा धम्मिका अनवज्जा। (२)

१६. ''पुन च परं, लोहिच्च, इधेकच्चो सत्था यसत्थाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति स्वास्स सामञ्ञत्थो अनुप्पत्तो होति; सो तं सामञ्ञत्थं अनुपापुणित्वा सावकानं धम्मं देसेति—'इदं वो हिताय इदं वो सुखाया' ति। तस्स सावका न सुस्सूसन्ति, न सोतं [N.197] ओदहन्ति, न अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेन्ति, वोक्कम्म च सत्थुसासना वत्तन्ति। सो एवमस्स चोदेतब्बो—'आयस्मा खो यसत्थाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो सो ते सामञ्ञत्थो अनुप्पत्तो, तं त्वं सामञ्ञत्थं अनुपापुणित्वा सावकानं धम्मं देसेसि—इदं वो हिताय इदं वो सुखाया ति। तस्स ते सावका न सुस्सूसन्ति, न सोतं ओदहन्ति न अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेन्ति, वोक्कम्म च सत्थुसासना वत्तन्ति। सेय्यथापि नाम पुराणं बन्धनं छिन्दित्वा अञ्ञं नवं बन्धनं करेय्य, एवंसम्पदमिदं पापकं लोभधम्मं वदामि—किञ्हि परो परस्स करिस्सती' ति। अयं खो, लोहिच्च, ततियो सत्था यो लोके चोदनारहो; यो च पनेवरूपं सत्थारं चोदेति, सा चोदना भूता तच्छा [R.232] धम्मिका अनवज्जा। इमे खो, लोहिच्च, तयो सत्थारो ये लोके चोदनारहा। यो च पनेवरूपे सत्थारो चोदेति, सा चोदना भूता तच्छा धम्मिका अनवज्जा'' ति। (३)

४. नचोदनारहो सत्था

१७. एवं वुत्ते, लोहिच्चो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—''अत्थि पन, भो गोतम, कोचि सत्था यो लोके नचोदनारहो'' ति?

पापपूर्ण लोभ की बात कहता हूँ कि दूसरा दूसरे के लिये क्या करेगा? लौहित्य! यह प्रथम प्रकार का शास्ता लोक में आक्षेप करने योग्य है। और उस पर आक्षेप सत्य यथार्थ धर्मानुकूल एवं अनवद्य (निर्दोष) ही होगा। (१)

१५. ''लौहित्य! कोई दूसरा शास्ता भी यश प्राप्ति के लिये घर से....। वह श्रमणभाव को विना पाये ही....सुनने की इच्छा नहीं करते ....जैसे कोई अपने खेत को छोड़ कर दूसरे के खेत के खरपतवार साफ करना चाहे, इसी तरह इस शास्ता के उपदेश को पापपूर्ण लोभ की बात कहता हूँ कि ....पूर्ववत्....। (२)

१६. ''लौहित्य! फिर जो तीसरे प्रकार के शास्ता यशःप्राप्ति के लिये घर से....स्वयं श्रामण्य पा

"अत्थि खो, लोहिच्च, सत्था यो लोके नचोदनारहो" ति।

"कतमो पन सो, भो गोतम, सत्था यो लोके नचोदनारहो" ति?

"इध, लोहिच्च, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो....पे०....(*यथा सामञ्ञ-* [R.233] *फले एवं वित्थारेतब्बं*) एवं खो, लोहिच्च, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति....पे०....पठमं [B.221] झानं उपसम्पज्ज विहरति। यस्मि खो, लोहिच्च, सत्थरि सावको एवरूपं उळारं विसेसं अधिगच्छति, अयं पि खो, लोहिच्च, सत्था यो लोके नचोदनारहो। यो च पनेवरूपं सत्थारं चोदेति सा चोदना अभूता अतच्छा अधम्मिका सावज्जा....पे०....दुतियं झानं....ततियं झानं....चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। यस्मि खो, लोहिच्च, सत्थरि सावको एवरूपं उळारं विसेसं अधिगच्छति, अयं पि खो, लोहिच्च, सत्था यो लोके न चोदनारहो। यो च पनेवरूपं सत्थारं चोदेति सा चोदना अभूता अतच्छा अधम्मिका सावज्जा.... पे०....ञाणदस्सनाय चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति। यस्मिं खो, लोहिच्च, सत्थरि सावको एवरूपं उळारं विसेसं अधिगच्छति, अयं पि खो, लोहिच्च, सत्था यो लोके नचोदनारहो। यो च पनेवरूपं सत्थारं चोदेति सा चोदना अभूता अतच्छा अधम्मिका सावज्जा....पे०....नापरं इत्थत्ताया ति पजानाति। यस्मि खो, लोहिच्च, सत्थार सावको एवरूपं उळारं विसेसं अधिगच्छति, अयं पि खो, [N.198, R.234] लोहिच्च, सत्था यो लोके नचोदनारहो। यो च पनेवरूपं सत्थारं चोदेति, सा चोदना अभूता अतच्छा अधम्मिका सावज्जा" ति।

जाता है? जैसे कोई पुराने बन्धन को काटकर नये बन्धन में बन्ध जाय इसी तरह मैं इस शास्ता की बात पापपूर्ण लोभ की बात कहता हूँ कि....पूर्ववत्....। (३)

४. अनिन्दनीय (अनाक्षेपयोग्य) शास्ता

१७. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, लौहित्य ब्राह्मण ने भगवान् से यों पूछा—"क्या, भो गौतम, संसार में ऐसा भी कोई शास्ता है जिस पर आक्षेप न किया जा सके, जिसकी निन्दा न की जा सके?

"हाँ, है, लौहित्य....।

"वह कौन सा है, भो गौतम?"

१. शील—"लौहित्य जब संसार में तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध...पूर्ववत्.... *(सामञ्ञफलसुत्त के अनुसार विस्तार कर लें।)* लौहित्य! भिक्षु इस प्रकार शीलसम्पन्न होता है....पूर्ववत्....।

२. समाधि—....प्रथम ध्यान को प्राप्त हो साधना करता है। लौहित्य! जिस शास्ता के शासन में श्रावक कुशलता प्राप्त करता है, वह शास्ता लोक में आक्षेपयोग्य या निन्दायोग्य नहीं है। जो ऐसे शास्ता पर आक्षेप या निन्दा करता है ऐसा आक्षेप या निन्दा असत्य अयथार्थ अधार्मिक एव सदोष है।....द्वितीय ध्यान....तृतीय ध्यान....चतुर्थ ध्यान को प्राप्त हो कर साधना करता है। लौहित्य! जिस शास्ता के शासन में श्रावक कुशलता....सदोष है।

३. प्रज्ञा—"वह इस प्रकार समाहित, परिशुद्ध, स्वच्छ, अवदात, क्लेशरहित, मृदु, सुन्दर, एव एकाग्रचित्त से स्वचित्त को ज्ञानदर्शन के लिये नँवाता है....जिस शास्ता के शासन में श्रावक कुशलता प्राप्त करता है, वह शास्ता लोक मे आक्षेपणीय या निन्दनीय नहीं है। ऐसे शास्ता पर आक्षेप या उसकी निन्दा असत्य, अयथार्थ अधर्मानुकूल एव सदोष ही कहलायगी।

१८. एवं वुत्ते, लोहिच्चो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"सेय्यथापि, भो गोतम, पुरिसो पुरिसं नरकपपातं पतन्तं केसेसु गहेत्वा उद्धरित्वा थले पतिट्ठपेय्य, एवमेवाहं भोता गोतमेन नरकपपातं पपतन्तो उद्धरित्वा थले पतिट्ठापितो। अभिक्कन्तं, भो गोतमो, अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेव भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

लोहिच्चसुत्तं निट्ठितं द्वादसमं॥

---

१८. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर लौहित्य ब्राह्मण ने भगवान् से यों निवेदन किया—भो गौतम! जैसे कोई पुरुष नरक में गिरते किसी अन्य पुरुष का शिर के बाल पकड़ कर वहाँ से निकाल भूमि पर रख दे इसी तरह आपने नरक में गिरते हए मुझको वहाँ से निकाल भूमि पर रख दिया। आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है भो गौतम!....पूर्ववत्....मुझे जीवन भर अपना शरणागत उपासक समझें।।

बारहवाँ लौहित्यसूत्र सम्पूर्ण।।

१३. तेविज्जसुत्तं

१. वासेट्ठभारद्वाजानं मग्गामग्गे कथा

[N.199, B.222, R.235] १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं पञ्चमत्तेहि भिक्खुसतेहि येन मनसाकटं नाम कोसलानं ब्राह्मणगामो तदवसरि। तत्र सुदं भगवा मनसाकटे विहरति उत्तरेन मनसाकटस्स अचिरवतिया नदिया तीरे अम्बवने।

२. तेन खो पन समयेन सम्बहुला अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता ब्राह्मणमहासाला मनसाकटे पटिवसन्ति, सेय्यथिदं—चङ्की ब्राह्मणो, तारुक्खो ब्राह्मणो, पोक्खरसाति ब्राह्मणो, जाणुसोणि ब्राह्मणो, तोदेय्यो ब्राह्मणो, अञ्ञे च अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता ब्राह्मणमहासाला।

३. अथ खो वासेट्ठभारद्वाजानं माणवानं जङ्घाविहारं अनुचङ्कमन्तानं अनुविचरन्तानं मग्गामग्गे कथा उदपादि। अथ खो वासेट्ठो माणवो एवमाह—"अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताय, य्वायं अक्खातो ब्राह्मणेन [R.236] पोक्खरसातिना" ति। भारद्वाजो पि माणवो एवमाह—"अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताय, य्वायं अक्खातो ब्राह्मणेन तारुक्खेना" ति। नेव खो असक्खि वासेट्ठो माणवो भारद्वाजं माणवं सञ्ञापेतुं, न पन असक्खि भारद्वाजो माणवो पि वासेट्ठं माणवं सञ्ञापेतुं।

४. अथ खो वासेट्ठो माणवो भारद्वाजं माणवं आमन्तेसि—"अयं खो, भारद्वाज,

---

१३. त्रैविद्यसूत्र

१. वसिष्ठ एवं भारद्वाज माणवों का संवाद

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान (बुद्ध) कोसल देश में पाँच सौ भिक्षुओं के वृहत् सङ्घ के साथ चारिका करते हुए मनसाकट नामक ग्राम में, जहाँ कोसलवासी ब्राह्मणों की अधिकता थी, पहुँचे। वहाँ भगवान् उस मनसाकट ग्राम के उत्तर तरफ बहने वाली अचिरवती नदी के तट पर स्थित आम्रवन में (जाकर) विराजमान हुए।

२. उस समय मनसाकट ग्राम में बहुत से प्रसिद्ध प्रसिद्ध एवं अत्यन्त ऋद्धिसम्पन्न (महासाल) ब्राह्मण निवास करते थे; जैसे—चङ्की ब्राह्मण, तारुक्ष्य ब्राह्मण, पौष्करसाति ब्राह्मण, जाणुश्रोणि ब्राह्मण, तौदेय ब्राह्मण या ऐसे ही कुछ अन्य प्रसिद्ध महाधनाढ्य ब्राह्मण।

३. तब मार्ग में पैदल चहलकदमी करते हुए वासिष्ठ एवं भारद्वाज नामक दो ब्राह्मण तरुणों (माणवों) में कुछ बातचीत चल पड़ी। उनसे वासिष्ट माणव यों बोला—"ब्रह्मा के समीप पहुँचाने के लिये, यदि कोई वैसा करना चाहे तो, वही एक सरल मार्ग है जो चङ्की ब्राह्मण ने बताया है।

भारद्वाज माणव ने उसका अनुमोदन न करते हुए कहा कि 'नहीं, ब्रह्मा के समीप पहुँचने के लिये यदि कोई वैसा करना चाहे तो, तारुक्ष्य ब्राह्मण ने जो मार्ग बताया है वही सरलतम है। बहुत देर तक उन ब्राह्मण-तरुणों में परस्पर वाद होता रहा; परन्तु अन्त तक, वे दोनों वासिष्ठ एवं भारद्वाज एक दूसरे को अपनी अपनी बात नहीं मनवा सके।

४. तब वासिष्ठ माणव ने भारद्वाज से कहा— "भारद्वाज! यों तो हम परस्पर विवाद ही करते रह

समणो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो मनसाकटे विहरति उत्तरेन मनसाकटस्स अचिरवतिया नदिया तीरे अम्बवने। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा, अरहं, सम्मासम्बुद्धो, विज्जाचरणसम्पन्नो, सुगतो, लोकविदू, अनुत्तरो, पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं, बुद्धो भगवा' ति। आयाम, भो भारद्वाज, येन समणो गोतमो तेनुपसङ्कमिस्साम; उपसङ्कमित्वा एतमत्थं समणं गोतमं पुच्छिस्साम। [B.223] यथा नो समणो गोतमो ब्याकरिस्सति तथा नं धारेस्सामा" ति। "एवं, भो" ति खो भारद्वाजो माणवो वासेट्ठस्स माणवस्स पच्चस्सोसि।

५. अथ खो वासेट्ठभारद्वाजा माणवा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा [N.200] भगवता सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो वासेट्ठो माणवो भगवन्तं एतदवोच— "इध, भो गोतम, अम्हाकं जङ्घाविहारं अनुचङ्कमन्तानं अनुविचरन्तानं मग्गामग्गे कथा उदपादि। अहं एवं वदामि— 'अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताय, य्वायं अक्खातो ब्राह्मणेन पोक्खरसातिना' ति। भारद्वाजो माणवो एवमाह— 'अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताय, य्वायं अक्खातो ब्राह्मणेन तारुक्खेना' ति। एत्थ, भो गोतम, अत्थेव विग्गहो, अत्थि विवादो, अत्थि नानावादो" ति।

६. "इति किर, वासेट्ठ, त्वं एवं वदेसि—'अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो [R.237] निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताय, य्वायं अक्खातो ब्राह्मणेन पोक्खरसातिना' ति। भारद्वाजो माणवो एवमाह—'अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताय, य्वायं अक्खातो ब्राह्मणेन तारुक्खेना' ति। अथ किस्मिं पन वो, वासेट्ठ, विग्गहो, किस्मिं विवादो, किस्मिं नानावादो" ति?

जाँयगे, कभी एक दूसरे को अपने अनुकूल न कर सकेंगे। श्रमण गौतम, जो कि शाक्यकुल से प्रव्रजित हो कर इस समय इसी अचिरवती नदी के किनारे किसी आम्रवन में विराजमान हैं। उनके विषय में जनता में यह प्रसिद्धि फैली हुई है कि वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध....पूर्ववत्....देवता और मनुष्यों को समानतया हितकारी उपदेश करते हैं। तो आओ, भारद्वाज! क्यों न हम दोनों उन श्रमण गौतम के पास चलें और अपने इस वाद का उन्ही से निर्णय करा लें। इस विषय में वे जैसा निर्णय दें हम दोनों उसे मान लें।" "अच्छा तो है"—कह कर भारद्वाज माणव वासिष्ठ माणवने का कथन स्वीकार कर लिया।

५. तब वे दोनों माणव जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचे, पहुँच कर उनसे (सर्वप्रथम) कुशल-मङ्गल पूछा। तदनन्तर दोनों एक तरफ बैठ गये। बैठने के बाद, वासिष्ठ माणव ने भगवान् से यों निवेदन किया—"भो गौतम! अभी मार्ग में पैदल चलते हुए हम दोनों में बातचीत के क्रम में यह प्रसङ्ग उठ गया कि ब्रह्मा की समीपता (=मैत्री) पाने के लिये पौष्करसाति ब्राह्मण द्वारा उपशिष्ट मार्ग सरल है या तारुक्ष्य ब्राह्मण द्वारा उपदिष्ट उपाय। भो गौतम! हम दोनों में यही मतभेद है, यही विवाद हैं।

६. (भगवान् बोले—)"वासिष्ठ! जब तुम भी यही कह रहे हो कि ब्रह्मा कि समीपता की तरफ पहुँचाने वाला सरलतम मार्ग वही है जो पौष्करसाति ने बताया है, और यह भारद्वाज माणव भी यही कह रहा है कि ब्रह्मा की समीपता तक पहुँचाने वाला सरलतम मार्ग वही है जो तारुक्ष्य ब्राह्मण ने बताया है, तो इन बातों में तुम दोनों का मत भेद कहाँ है? "

७. "मग्गामग्गे, भो गोतम। किं चा पि, भो गोतम, ब्राह्मणा नानामग्गे पञ्ञापेन्ति— अद्धरिया ब्राह्मणा, तित्तिरिया ब्राह्मणा, छन्दोका ब्राह्मणा, बव्हारिज्झा ब्राह्मणा—अथ खो [B.224] सब्बानि तानि निय्यानिकानि, निय्यन्ति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताय। सेय्यथापि, भो गोतम, गामस्स वा निगमस्स वा अविदूरे बहूनि चे पि नानामग्गानि भवन्ति, अथ खो सब्बानि तानि गामसमोसरणानि भवन्ति; एवमेव खो, भो गोतम, किं चा पि ब्राह्मणा नानामग्गे पञ्ञापेन्ति— अद्धरिया ब्राह्मणा, तित्तिरिया ब्राह्मणा, छन्दोका ब्राह्मणा, बव्हारिज्झा ब्राह्मणा— अथ खो सब्बानि तानि निय्यानिकानि, निय्यन्ति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताया" ति।

२. अन्धवेणूपमं तेविज्जानं भासितं

८. "निय्यन्ती ति, वासेट्ठ, वदेसि" ? "निय्यन्ती ति, भो गोतम, वदामि"।

[N.201] "निय्यन्ती ति, वासेट्ठ, वदेसि" ? "निय्यन्ती ति, भो गोतम, वदामि"।

"निय्यन्ती ति, वासेट्ठ, वदेसि"? "निय्यन्ती ति, भो गोतम, वदामि"।

[R.238] "किं पन, वासेट्ठ, अत्थि कोचि तेविज्जानं ब्राह्मणानं एकब्राह्मणो पि येन ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो" ति? "नो हिदं, भो गोतम"।

"किं पन, वासेट्ठ, अत्थि कोचि तेविज्जानं ब्राह्मणानं एकाचरियो पि येन ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो" ति? "नो हिदं, भो गोतम"।

"किं पन, वासेट्ठ, अत्थि कोचि तेविज्जानं ब्राह्मणानं एकाचरियपाचरियो पि येन ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो" ति? "नो हिदं, भो गोतम"।

"किं पन, वासेट्ठ, अत्थि कोचि तेविज्जानं ब्राह्मणानं याव सत्तमा आचरियमहयुगा येन ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो" ति? "नो हिदं, भो गोतम"।

९. "किं पन, वासेट्ठ, ये पि तेविज्जानं ब्राह्मणानं पुब्बका इसयो मन्तानं कत्तारो मन्तानं

---

७. "मार्ग–अमार्ग के विषय में भो गौतम! यहाँ ब्राह्मण–ग्रन्थों में अनेक मतभेद हैं। अध्वर्यु (कर्मकाण्डी) ब्राह्मण उस ब्रह्मा के विषय में कुछ कहते है, तो तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बाह्वृच्य (उपनिषदों) को मानने वाले ब्राह्मण कुछ कहते हैं। तो भी वे सभी ब्रह्मा के समीप (साक्षात्कार) तक पहुँचाने का दम्भ (दावा) करते हैं। भो गौतम! जैसे एक ही ग्राम या कस्बे को जाने वाले कई मार्ग होते है, परन्तु वे सभी जानेवाले को अन्ततः उस ग्राम तक पहुँचा ही देते है, वैसे ही ये सभी ब्राह्मणवाद भी जाने वाले को ब्रह्मा की समीपता प्राप्त करा ही देते हैं। फिर वे भले ही कर्मकाण्डी हो या छान्दोग्यादि औपनिषदमतानुयायी।"

२. त्रैविद्यों का वचन अन्धव्यक्तियों की परम्परा के सदृश

८. "'वासिष्ठ! वे मार्ग ब्रह्मा की समीपता तक पहुँचा देते हैं'—ऐसा ही कहे रहे।"

"गौतम! वे मार्ग....ऐसा ही कह रहा हूँ।"

"वासिष्ठ! वे मार्ग.... पहुँचा देते हैं—कह रहे हो?"

"वासिष्ठ! वे मार्ग....ऐसा ही कर रहा हूँ।"

"तो क्या वासिष्ठ! उन त्रैविद्य ब्राह्मणों में एक भी कोई ऐसा ब्राह्मण है जिसने उस ब्रह्मा का साक्षात्कार किया है?" "नही, भो गौतम!"

"वासिष्ठ! क्या उन ब्राह्मणों का एक भी आचार्य ऐसा है जिसने उस ब्रह्मा की समीपता साक्षात्कार किया हो?" "नहीं भो, गौतम!"

पवत्तारो येसमिदं एतरहि तेविज्जा ब्राह्मणा पोराणं मन्तपदं गीतं पवुत्तं समीहितं तदनुगायन्ति तदनुभासन्ति भासितमनुभासन्ति वाचितमनुवाचेन्ति, सेय्यथिदं—अट्टको वामको वामदेवो वेस्सामित्तो यमतग्गि अङ्गिरसो भारद्वाजो वासेट्ठो कस्सपो भगु, ते पि एवमाहंसु—'मयमेतं जानाम, मयमेतं पस्साम, यत्थ वा ब्रह्मा, येन वा ब्रह्मा, यहिं वा ब्रह्मा' '' ति ?

''नो हिदं, भो गोतम''।

१०. ''इति किर, वासेट्ठ, नत्थि कोचि तेविज्जानं ब्राह्मणानं एकब्राह्मणो पि [B.225] येन ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, नत्थि कोचि तेविज्जानं ब्राह्मणानं एकाचरियो पि येन ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, नत्थि कोचि तेविज्जानं ब्राह्मणानं एकाचरियपाचरियो पि येन ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, नत्थि [R.239] कोचि तेविज्जानं ब्राह्मणानं याव सत्तमा आचरियमहयुगा येन ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, ये पि तेविज्जानं ब्राह्मणानं पुब्बका इसयो मन्तानं कत्तारो मन्तानं पवत्तारो येसमिदं एतरहि तेविज्जा ब्राह्मणा पोराणं मन्तपदं गीतं पवुत्तं समीहितं तदनुगायन्ति तदनुभासन्ति भासितमनुभासन्ति वाचित-मनुवाचेन्ति, सेय्यथिदं—अट्टको वामको वामदेवो वेस्सामित्तो यमतग्गि अङ्गिरसो [N.202] भारद्वाजो वासेट्ठो कस्सपो भगु— ते पि न एवमाहंसु— 'मयमेतं जानाम, मयमेतं पस्साम, यत्थ वा ब्रह्मा, येन वा ब्रह्मा, यहिं वा ब्रह्मा' ति। तेव तेविज्जा ब्राह्मणा एवमाहंसु— 'यं न जानाम यं न पस्साम तस्स सहब्यताय मग्गं देसेम, अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताया' ति।

११. ''तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, ननु एवं सन्ते तेविज्जानं ब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती'' ति ? ''अद्धा खो, भो गोतम, एवं सन्ते तेविज्जानं ब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती'' ति।

''साधु, वासेट्ठ। ते वत, वासेट्ठ, तेविज्जा ब्राह्मणा यं न जानन्ति यं न पस्सन्ति तस्स

''वासिष्ठ! क्या उन ब्राह्मणों का एक भी आचार्य-प्राचार्य ऐसा है....?'' ''नहीं, भो गौतम!''

''फिर वासिष्ठ! क्या उन ब्राह्मणों की आचार्य-परम्परा में सातवीं पीढ़ी तक भी कोई....?''

''नही, भो गौतम!''

९. ''तो फिर वासिष्ठ! जो भी इन त्रैविद्य ब्राह्मणों के पूर्वज ऋषि हुए है, जिन्होंने वेद-मन्त्रों की रचना की है, उनका प्रवचन किया है उनकी समीक्षा की है, जिन्हें कि इन के वर्तमान वंशज गाते हैं, भाषण अनुभाषण करते हैं जिनका वाचन करते हैं, अनुवाचन करते हैं जैसे कि अष्टक, वामदेव, विश्वामित्र, जमदग्नि, अङ्गिरा, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, तथा भृगु, वे भी क्या यह कह सके थे—'हम उस स्थान को जानते हैं, हम ने उसको साक्षात् देखा है कि जहाँ ब्रह्मा है, जिसके साथ ब्रह्मा है, जिस विषय में ब्रह्मा है?'

''नहीं, भो गौतम!''

१०. ''यदि ऐसी बात है वासिष्ठ! कि इन ब्राह्मणों में से एक भी ब्राह्मण ने इनके एक भी आचार्य ने, इनके एक भी आचार्य-प्रचार्य ने, इन की सातवीं पीढ़ी तक के किसी एक भी पूर्वज ने, या फिर इनके किसी पूर्वज ऋषि ने....यह नहीं कहा कि हम उस स्थान को जानते हैं....तो फिर वे ही ब्राह्मण ऐसा कैसे कह पा रहे हैं कि वे उन के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग ही ब्रह्मा की समीपता तक पहुँचने का सरलतम मार्ग है!

११. ''ऐसी स्थिति में वासिठ! क्या यह सम्भव नहीं कि इन त्रैविद्य ब्राह्मणों का उक्त कथन अप्रामाणिकता (=अप्पाटिहीरकता =अनदेखा) की स्थिति में पहुँचा हुआ हो?''

सहब्यताय मग्गं देसेस्सन्ति! 'अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताया' ति नेतं ठानं विज्जति।

१२. "सेय्यथापि, वासेट्ठ, अन्धवेणि परम्परसंसत्ता पुरिमो पि न पस्सति मज्झिमो [R.240] पि न पस्सति पच्छिमो पि न पस्सति; एवमेव खो, वासेट्ठ, अन्धवेणूपमं मञ्ञे तेविज्जानं ब्राह्मणानं भासितं— पुरिमो पि न पस्सति मज्झिमो पि न पस्सति पच्छिमो पि न पस्सति। तेसमिदं तेविज्जानं ब्राह्मणानं भासितं हस्सकञ्ञेव सम्पज्जति, नामकञ्ञेव सम्पज्जति, रित्तकञ्ञेव सम्पज्जति, तुच्छकञ्ञेव सम्पज्जति।

३. ब्रह्मसहब्यता

[B.226] १३. "तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, पस्सन्ति तेविज्जा ब्राह्मणा चन्दिमसुरिये, अञ्ञे चा पि बहुजना, यतो च चन्दिमसुरिया उग्गच्छन्ति यत्थ च ओगच्छन्ति आयाचन्ति थोमयन्ति, पञ्जलिका नमस्समाना अनुपरिवत्तन्ती" ति?

"एवं, भो गोतम, पस्सन्ति तेविज्जा ब्राह्मणा चन्दिमसुरिये, अञ्ञे चा पि बहुजना, यतो च चन्दिमसुरिया उग्गच्छन्ति, यत्थ च ओगच्छन्ति, आयाचन्ति थोमयन्ति पञ्जलिका नमस्समाना अनुपरिवत्तन्ती" ति।

१४. "तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, यं पस्सन्ति तेविज्जा ब्राह्मणा चन्दिमसुरिये, अञ्ञे चा पि बहुजना, यतो च चन्दिमसुरिया उग्गच्छन्ति, यत्थ च ओगच्छन्ति, आयाचन्ति थोमयन्ति, [N.203] पञ्जलिका नमस्समाना अनुपरिवत्तन्ति, पहोन्ति तेविज्जा ब्राह्मणा चन्दिमसुरियानं सहब्यताय मग्गं देसेतुं— 'अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स चन्दिमसुरियानं सहब्यताया" ति? "नो हिदं, भो गोतम"।

"निश्चय ही भो गौतम! ऐसी स्थिति में इन त्रैविद्यों का यह कथन अप्रामाणिक ही हो जाता है।"

"ठीक है, वासिष्ठ! तुम उचित ही कह रहे हो कि ये त्रैविद्य जिसे न जानते हैं न देख पाये हैं, उसके विषय में ये यह कैसे कह सकते हैं कि ब्रह्मा की समीपता तक पहुँचने का यही सरलतम मार्ग हैं। यह (उक्त कथन पर विश्वास) सम्भव ही नहीं है।"

१२. "वासिष्ठ! जैसे कोई अन्धों की पंक्ति परस्पर संसक्त (जुड़ी हुई) हो, उसमें न पहला ही कुछ देख पाता है, न पश्चिम (अन्तिम)को ही कुछ दिखायी पड़ता हो, उसी तरह, वासिष्ठ! तुम्हारे इन त्रैविद्य ब्राह्मणों में से भी न पहला ही कुछ देख पाया न अन्तिम ही। तो फिर इन का ब्रह्मा की मैत्री तक पहुँचने का सरलतम मार्ग बताना हास्यास्पद ही माना जायगा, प्रलाप ही माना जायगा, निरर्थक तुच्छ व रिक्त (खाली=प्रमाणरहित) ही माना जायगा।

३. ब्रह्मसहव्यता

१३. "तो क्या मानते हो,वासिष्ठ! वे त्रैविद्य ब्राह्मण या दूसरे लोग भी चन्द्र–सूर्य को देखते हैं कि वे कहाँ से उदित होते हैं, कहाँ से अस्त होते हैं, उन की प्रार्थना (पूजा) करते हैं,स्तुति करते हैं, करबद्ध प्रणाम करते हुए प्रदक्षिणा करते हैं?"

"हाँ, भो गौतम! वे त्रैविद्य ब्राह्मण.... प्रदक्षिणा करते हैं।"

१४. "तो क्या मानते हो, वासिष्ठ! कि वे त्रैविद्य ब्राह्मण जिन चन्द्र–सूर्य को देखते है....पूर्ववत्....क्या वे ब्राह्मण उन चन्द्र–सूर्य के समीप तक पहुँचने का सरलतम मार्ग बता सकते हैं?" "नहीं, भो गौतम!"

"इति किर, वासेट्ठ, यं पस्सन्ति तेविज्जा ब्राह्मणा चन्दिमसुरिये, अञ्ञे चा पि बहुजना, यतो च चन्दिमसुरिया उग्गच्छन्ति, यत्थ च ओगच्छन्ति, आयाचन्ति थोमयन्ति पञ्जलिका नमस्समाना अनुपरिवत्तन्ति, तेसं पि नप्पहोन्ति चन्दिमसुरियानं सहब्यताय मग्गं देसेतुं— 'अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स चन्दिमसुरियानं सहब्यताया' ति।

१५. "इति पन न किर तेविज्जेहि ब्राह्मणेहि ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, न पि किर तेविज्जानं ब्राह्मणानं आचरियेहि ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, न पि किर तेविज्जानं ब्राह्मणानं आचरियपाचरियेहि ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, न पि किर तेविज्जानं ब्राह्मणानं याव सत्तमा आचरियमहयुगेहि [R.241] ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, ये पि किर तेविज्जानं ब्राह्मणानं पुब्बका इसयो मन्तानं कत्तारो मन्तानं पवत्तारो येसमिदं एतरहि तेविज्जा ब्राह्मणा पोराणं मन्तपदं गीतं पवुत्तं समीहितं तदनुगायन्ति तदनुभासन्ति भासितमनुभासन्ति वाचितमनुवाचेन्ति, सेय्यथिदं—अट्टको वामको वामदेवो वेस्सामित्तो यमतग्गि अङ्गिरसो भारद्वाजो वासेट्ठो कस्सपो भगु, ते पि न एवमाहंसु— [B.227] 'मयमेतं जानाम, मयमेतं पस्साम, यत्थ वा ब्रह्मा, येन वा ब्रह्मा, यहिं वा ब्रह्मा' ति। तेव तेविज्जा ब्राह्मणा एवमाहंसु— 'यं न जानाम यं न पस्साम तस्स सहब्यताय मग्गं देसेम— अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताया' ति।

१६. "तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, ननु एवं सन्ते तेविज्जानं ब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति ? "अद्धा खो, भो गोतम, एवं सन्ते तेविज्जानं ब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति।

"साधु, वासेट्ठ! ते वत, वासेट्ठ, तेविज्जा ब्राह्मणा यं न जानन्ति यं न पस्सन्ति तस्स सहब्यताय मग्गं देसेस्सन्ति! 'अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताया' ति नेतं ठानं विज्जति।

(क) जनपदकल्याणीउपमा

१७. "सेय्यथापि, वासेट्ठ, पुरिसो एवं वदेय्य— 'अहं खो या इमस्मिं [N.204]

"तो फिर वासिष्ठ! जब यह निश्चित हो गया कि वे त्रैविद्य ब्राह्मण जिन चन्द्र-सूर्य को....सरलतम मार्ग नहीं बता पाते।"

१५. इसी तरह, वासिष्ठ! जब उन त्रैविद्य ब्राह्मणों द्वारा उस ब्रह्मा को न देखा (साक्षात्कार किया) गया, न उन के आचार्यों या आचार्य-प्राचार्यों द्वारा....तो वे कैसे कह सकते हैं कि ब्रह्मा के समीप तक पहुँचने का यह सरलतम मार्ग हैं।

१६. "तो क्या मानते हो, वासिष्ठ! ऐसी अवस्था में उन ब्राह्मणों द्वारा कथित वह वचन अप्रामणिक नहीं ठहरता?"

"अवश्य अप्रामाणिक ठहरता है, भो गौतम!"

"ठीक है, वासिष्ठ, तुम सर्वथा उचित कह रहे हो; क्यों कि जिन त्रैविद्यों ने उस ब्रह्मा को कभी देखा ही नहीं, उनका उस ब्रह्मा तक पहुँचने का सरलतम मार्ग बताना प्रामाणिक हो यह सम्भव ही नहीं।

(क) जनपदकल्याणी का दृष्टान्त—१७. "वासिष्ठ! जैसे कोई कामी पुरुष यह कहे कि "मैं इस प्रदेश की

जनपदे जनपदकल्याणी तं इच्छामि, तं कामेमी' ति। तमेनं एवं वदेय्युं— 'अम्भो पुरिस, यं त्वं जनपदकल्याणिं इच्छसि कामेसि, जानासि तं जनपदकल्याणिं— खत्तियी वा ब्राह्मणी वा वेस्सी वा सुद्दी वा' ति? इति पुट्ठो 'नो' ति वदेय्य।

"तमेनं एवं वदेय्युं— 'अम्भो पुरिस, यं त्वं जनपदकल्याणिं इच्छसि कामेसि, [R.242] जानासि तं जनपदकल्याणिं— एवंनामा एवंगोत्ता ति वा, दीघा वा रस्सा वा मज्झिमा वा काळी वा सामा वा मङ्गुरच्छवी वा ति, अमुकस्मिं गामे वा निगमे वा नगरे वा' ति? इति पुट्ठो 'नो' ति वदेय्य। तमेनं एवं वदेय्युं— 'अम्भो पुरिस, यं त्वं न जानासि न पस्ससि तं त्वं इच्छसि कामेसी' ति? इति पुट्ठो 'आमा' ति वदेय्य।

१८. "तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, ननु एवं सन्ते तस्स पुरिसस्स अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति? "अद्धा खो, भो गोतम, एवं सन्ते तस्स पुरिसस्स अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति।

[B.228] १९. "एवमेव खो, वासेट्ठ, न किर तेविज्जेहि ब्राह्मणेहि ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, न पि किर तेविज्जानं ब्राह्मणानं आचरियेहि ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, न पि किर तेविज्जानं ब्राह्मणानं आचरियपाचरियेहि ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, न पि किर तेविज्जानं ब्राह्मणानं याव सत्तमा आचरियमहयुगेहि ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, ये पि किर तेविज्जानं ब्राह्मणानं पुब्बको इसयो मन्तानं कत्तारो मन्तानं पवत्तारो येसमिदं एतरहि तेविज्जा ब्राह्मणा पोराणं मन्तपदं गीतं पवुत्तं समीहितं तदनुगायन्ति तदनुभासन्ति भासितमनुभासन्ति वाचितमनुवाचेन्ति, सेय्यथिदं— अट्टको वामको वामदेवो वेस्सामित्तो यमतग्गि अङ्गिरसो भारद्वाजो वासेट्ठो कस्सपो भगु, ते पि न एवमाहंसु— 'मयमेतं जानाम मयमेतं पस्साम यत्थ वा ब्रह्मा येन वा ब्रह्मा यहिं वा ब्रह्मा' ति। ते व तेविज्जा ब्राह्मणा एवमाहंसु— 'यं न जानाम यं न पस्साम तस्स सहब्यताय मग्गं देसेम— अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताया' ति।

जो सुन्दरता स्त्री (=जनपदकल्याणी) है उसे चाहता हूँ, उसकी कामना करता हूँ"। उसको दूसरे लोग यह कहें कि "अरे! तूँ जिस सुन्दरतम स्त्री को चाह रहा है, कामना कर रहा है, उसके विषय में तूँ कुछ जानता भी है कि वह क्षत्रियाणी है या ब्राह्मणी है या वैश्यजाति की है, शूद्री है?" ऐसा पूछने पर वह निषेध कर दे।

"फिर वे लोग उसे पूछे कि 'अरे पुरुष! तूँ....उसका यह नाम या यह गोत्र है? वह लम्बी है या छोटी, या मँझले आकार की है? काली है या श्यामा, या मछली के वर्ण वाली (पीतवर्ण) है? या अमुक ग्राम, अमुक जनपद या अमुक नगर में रहने वाली हैं? इस पर भी वह 'ना' कर दे।

"तब उससे वे लोग कहें—'अरे भले आदमी! जिसे तूँ न जानता है, न जिसे कभी देखा ही हैं, फिर भी तूँ उसकी कामना कर रहा है? ऐसा पूछे जाने पर वह 'हाँ' ऐसा कह दे।

१८. "तो क्या मानते हो, वासिष्ठ! ऐसा कहते हुए उस पुरुष का वह कथन अप्रामाणिक नहीं माना जायगा?"

"हाँ, भो गौतम! ऐसे पुरुष का ऐसा कथन तो अप्रामाणिक ही माना जायगा।"

१९. "इसी तरह, वासिष्ठ! जिन त्रैविद्य ब्राह्मणों ने....पूर्ववत्....उनका ब्रह्मा की मैत्री का सरलतम मार्ग बताना अप्रामाणिक ही माना जायगा।

२०. "तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ! ननु एवं सन्ते तेविज्जानं ब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति?

"अद्धा खो, भो गोतम, एवं सन्ते तेविज्जानं ब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं [N.205] भासितं सम्पज्जती" ति।

"साधु, वासेट्ठ! ते वत, वासेट्ठ, तेविज्जा ब्राह्मणा यं न जानन्ति यं न [R.243] पस्सन्ति तस्स सहब्यताय मग्गं देसेस्सन्ति— 'अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताया' ति, नेतं ठानं विज्जति। (१)

(ख) निस्सेणीउपमा

२१. "सेय्यथापि, वासेट्ठ, पुरिसो चातुमहापथे निस्सेणिं करेय्य— पासादस्स आरोहणाय। तमेनं एवं वदेय्युं— 'अम्भो पुरिस, यस्स त्वं पासादस्स आरोहणाय निस्सेणिं करोसि, जानासि तं पासादं— पुरत्थिमाय वा दिसाय, दक्खिणाय वा दिसाय, [B.229] पच्छिमाय वा दिसाय, उत्तराय वा दिसाय, उच्चो वा नीचो वा मज्झिमो वा' ति? इति पुट्ठो 'नो' ति वदेय्य।

"तमेनं एवं वदेय्युं— 'अम्भो पुरिस, यं त्वं न जानासि न पस्ससि तस्स त्वं पासादस्स आरोहणाय निस्सेणिं करोसी' ति? इति पुट्ठो 'आमा' ति वदेय्य।

२२. "तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, ननु एवं सन्ते तस्स पुरिसस्स अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति? "अद्धा खो, भो गोतम, एवं सन्ते तस्स पुरिसस्स अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति।

२३. "एवमेव खो, वासेट्ठ, न किर तेविज्जेहि ब्राह्मणेहि ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, न पि किर तेविज्जानं ब्राह्मणानं आचरियेहि ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, न पि किर तेविज्जानं ब्राह्मणानं आचरिय-पाचरियेहि ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, न पि किर तेविज्जानं ब्राह्मणानं याव सत्तमा आचरियमहयुगेहि ब्रह्मा सक्खिदिट्ठो, ये पि किर तेविज्जानं ब्राह्मणानं पुब्बका इसयो मन्तानं कत्तारो मन्तानं

---

२०. "...ठीक कह रहे हो वासिष्ठ! जिन त्रैविद्य ब्राह्मणों ने....यह सम्भव ही नहीं।" (क)

(ख) सीढी का दृष्टान्त–२१. "वासिष्ठ! जैसे कोई आदमी चौराहे (चतुर्महापथ) पर किसी प्रासाद पर चढ़ने के लिये कोई सीढ़ी लगावे। उससे लोग पूछें कि, रे मूर्ख पुरुष! तूँ जिस प्रासाद पर चढ़ने के लिये इस चौराहे पर यह सीढ़ी लगा रहा है, उस प्रासाद को तूँ जानता भी है कि नहीं कि वह पूर्व में है या पश्चिम में, उत्तर में है या दक्षिण में, वह ऊँचा है या नीचा , या मध्यम आकार का?" यह पूछे जाने पर वह 'ना' कर दे।

"तब उस पुरुष को वे लोग कहें कि 'अरे भाई! जब तूँ उस प्रासाद के विषय में कुछ जानता ही नहीं कि वह पूर्व में है या....तो फिर किस प्रासाद पर चढ़ने के लिये सीढ़ी लगा रहा है?" तब वह उसके उत्तर में 'हाँ' कह दे।

२२. "तो क्या मानते हो, वासिष्ठ! ऐसी स्थिति में उस पुरुष का वह कथन अप्रामाणिक होगा कि नहीं?"

"हाँ, भो गौतम! उस अवस्था में उस पुरुष का वैसा कथन अप्रामाणिक ही होगा।"

पवत्तारो येसमिदं एतरहि तेविज्जा ब्राह्मणा पोराणं मन्तपदं गीतं पवुत्तं समीहितं तदनुगायन्ति तदनुभासन्ति भासितमनुभासन्ति वाचितमनुवाचेन्ति, सेय्यथिदं— अट्टको वामको वामदेवो वेस्सामित्तो यमतग्गि अङ्गिरसो भारद्वाजो वासेट्ठो कस्सपो भगु, ते पि न एवमाहंसु— 'मयमेतं जानाम मयमेतं पस्साम यत्थ वा ब्रह्मा येन वा ब्रह्मा यहिं वा ब्रह्मा' ति। ते व तेविज्जा ब्राह्मणा [R.244] एवमाहंसु— 'यं न जानाम यं न पस्साम तस्स सहब्यताय मग्गं देसेम— अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताया' ति।

[N.206] २४. "तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, ननु एवं सन्ते तेविज्जानं ब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति?

"अद्धा खो, भो गोतम, एवं सन्ते तेविज्जानं ब्राह्मणानं अप्पाटिहीरकतं भासितं सम्पज्जती" ति।

"साधु, वासेट्ठ! ते वत, वासेट्ठ, तेविज्जा ब्राह्मणा यं न जानन्ति यं न पस्सन्ति तस्स [B.230] सहब्यताय मग्गं देसेस्सन्ति— 'अयमेव उजुमग्गो, अयमञ्जसायनो निय्यानिको, निय्याति तक्करस्स ब्रह्मसहब्यताया' ति, नेतं ठानं विज्जति। (२)

(ग) अचिरवतीनदीउपमा

२५. "सेय्यथापि, वासेट्ठ, अयं अचिरवती नदी पूरा उदकस्स समतित्तिका काकपेय्या। अथ पुरिसो आगच्छेय्य पारत्थिको पारगामी पारगवेसी पारं तरितुकामो। सो ओरिमे तीरे ठितो पारिमं तीरं अव्हेय्य— 'एहि पारापारं, एहि पारापारं' ति।

२६. "तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, अपि नु तस्स पुरिसस्स अव्हायनहेतु वा आयाचनहेतु वा पत्थनहेतु वा अभिनन्दनहेतु वा अचिरवतिया नदिया पारिमं तीरं ओरिमं तीरं आगच्छेय्या" ति? "नो हिदं, भो गोतम"।

२७. "एवमेव खो, वासेट्ठ, तेविज्जा ब्राह्मणा ये धम्मा ब्राह्मणकारका ते धम्मे पहाय वत्तमाना, ये धम्मा अब्राह्मणकारका ते धम्मे समादाय वत्तमाना एवमाहंसु— 'इन्दमव्हयाम, सोममहव्हयाम, वरुणमव्हयाम, ईसानमव्हयाम, पजापतिमव्हयाम, ब्रह्ममव्हयाम, महिन्दमव्हयाम, यममव्हयामा' ति।

२३-२४. "इसी तरह, वासिष्ठ! जब उन त्रैविद्य ब्राह्मणों ने ....पूर्ववत्....ब्रह्मा के समीप पहुँचने का सरलतम मार्ग है-यह बताना सम्भव ही नहीं।" (ख)

(ग) अचिरवती नदी का दृष्टान्त–२५. "वासिष्ठ! जैसे यह अचिरवती नदी जल से इतनी परिपूर्ण (=समतृप्तिक) है कि कोई कौआ भी विना किसी कठिनाई के किनारे पर बैठा ही बैठा जल पी सके। यहाँ कोई पुरुष और नदी के उस पार जाने की इच्छा से आये और इस किनारे पर बैठ कर उस पार वाले किनारे को बुलाये कि ओ पार वाले किनारे! यहाँ आ जा, यहाँ आ जा।"

२६. "तो क्या मानते हो, वासिष्ठ! उस पुरुष के आह्वान, याचना, प्रार्थना या अभिनन्दन (खुशामद) के कारण उस पार वाला वह किनारा इस पार आ जायगा?" "नही, भो गौतम!"

२७. "इसी तरह, वासिष्ठ! वे त्रैविद्य ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्वकारक धर्मों को न अपना कर, उलटे, अब्राह्मणकारक धर्मों को अपनाते हुए यों कहें-'हम इन्द्र का आह्वान करते हैं,सोम (चन्द्र) का,

"ते वत, वासेट्ठ, तेविज्जा ब्राह्मणा ये धम्मा ब्राह्मणकारका ते धम्मे पहाय [R.245] वत्तमाना, ये धम्मा अब्राह्मणकारका ते धम्मे समादाय वत्तमाना, अव्हायनहेतु वा आयाचनहेतु वा पत्थनहेतु वा अभिनन्दनहेतु वा कायस्स भेदा परं मरणा ब्रह्मानं सहब्यूपगा भविस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति। (१)

२८. "सेय्यथापि, वासेट्ठ, अयं अचिरवती नदी पूरा उदकस्स समतित्तिका काकपेय्या। अथ पुरिसो आगच्छेय्य पारत्थिको पारगवेसी पारगामी पारं तरितुकामो। सो ओरिमे तीरे दळ्हाय अन्दुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बद्धो।

"तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, अपि नु सो पुरिसो अचिरवतिया नदिया ओरिमा तीरा पारिमं तीरं गच्छेय्या" ति? "नो हिदं, भो गोतम"।

२९. "एवमेव खो, वासेट्ठ, पञ्चिमे कामगुणा अरियस्स विनये [N.207, B.231] अन्दू ति पि वुच्चन्ति बन्धनं ति पि वुच्चन्ति। कतमे पञ्च? चक्खुविञ्ञेय्या रूपा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया, सोतविञ्ञेय्या सद्दा....पे०....घानविञ्ञेय्या गन्धा.... जिव्हाविञ्ञेय्या रसा, कायविञ्ञेय्या फोट्ठब्बा इट्ठा कन्ता मनापा पियरूपा कामूपसंहिता रजनीया।

"इमे खो, वासेट्ठ, पञ्च कामगुणा अरियस्स विनये अन्दू ति पि वुच्चन्ति बन्धनं ति पि वुच्चन्ति। इमे खो, वासेट्ठ, पञ्च कामगुणे तेविज्जा ब्राह्मणा गधिता मुच्छिता अज्झोपन्ना अनादीनवदस्साविनो अनिस्सरणपञ्ञा परिभुञ्जन्ति। तेव, वासेट्ठ, तेविज्जा ब्राह्मणा ये धम्मा ब्राह्मणकारका ते धम्मे पहाय वत्तमाना, ये धम्मा अब्राह्मणकारका ते धम्मे समादाय [R.246] वत्तमाना, पञ्च कामगुणे गधिता मुच्छिता अज्झोपन्ना अनादीनवदस्साविनो अनिस्सरणपञ्ञा

वरुण का, ईशान का, प्रजापति का, ब्रह्मा का, महेन्द्र का या यम का आह्वान करते हैं। तो वासिष्ठ! त्रैविद्य ब्राह्मण के ब्राह्मणकारक धर्मों को छोड़ कर, अब्राह्मणकारक धर्मों को अपना कर उन देवताओं का आह्वान, याचना प्रार्थना या अभिनन्दन करने मात्र से इस देहपात के बाद मरणानन्तर ब्रह्मा की समीपता पा जाँय–यह सम्भव नहीं है। (१)

२८. "जैसे, वासिष्ठ! यह अचिरवती नदी किनारों तक ऐसी भरी हो कि कौए भी बिना किसी कठिनाई के इसका जल पी सके। जब यहाँ कोई पुरुष नदी के उस पार जाने की इच्छा से आवे, परन्तु उस को इसी तीर पर पीछे हाथ कर के दृढ़ सांकल से बाँध दिया जाय।

"तो क्या मानते हो, वासिष्ठ! वह दृढ़ सांकल से बन्ध पुरुष नदी के उस पार जा सकेगा?" "नहीं, भो गौतम!"

२९. "इसी तरह, वासिष्ठ! ये पाँच कामगुण आर्यविनय (=बौद्धशासन) में 'अन्दु' (शृङ्खला=जंजीर) भी कहलाते है, 'बन्धन' भी। कौन से पाँच? चक्षुर्विज्ञेय इष्ट, कान्त, मनोरम, प्रिय, कामासिक्त एवं रागयुक्त रूप; श्रोत्रविज्ञेय....शब्द; घ्राणविज्ञेय....गन्ध; जिह्वाविज्ञेय....रस; कायविज्ञेय....स्पष्टव्य विषय।

"वासिष्ठ! ये पाँच कामगुण आर्यविनय में ....'बन्धन' भी कहलाते हैं। वासिष्ठ! ये त्रैविद्य ब्राह्मण इन पाँच कामगुणों से मूर्च्छित, लिप्त तथा इनके दुष्परिणाम की उपेक्षा करने वाले तथा इन से छुटकारे का उपाय न जानने वाले हो कर इनका उपभोग करते रहते हैं। इस तरह, वासिष्ठ! वे त्रैविद्य ब्राह्मण ब्राह्मणकारक धर्मों को छोड़कर तथा इन अब्राह्मणकारक धर्मों को अपना कर इन पाँच कामगुणों में

परिभुञ्जन्ता कामन्दुबन्धनबद्धा कायस्स भेदा परं मरणा ब्रह्मानं सहब्यूपगा भविस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति। (२)

३०. "सेय्यथापि, वासेट्ठ, अयं अचिरवती नदी पूरा उदकस्स समितित्तिका काकपेय्या। अथ पुरिसो आगच्छेय्य पारत्थिको पारगवेसी पारगामी पारं तरितुकामो। सो ओरिमे तीरे ससीसं पारुपित्वा निपज्जेय्य।

"तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, अपि नु सो पुरिसो अचिरवतिया नदिया ओरिमा तीरा पारिमं तीरं गच्छेय्या" ति? "नो हिदं, भो गोतम"।

३१. "एवमेव खो, वासेट्ठ, पञ्चिमे नीवरणा अरियस्स विनये आवरणा ति पि वुच्चन्ति नीवरणा ति पि वुच्चन्ति ओनाहना ति पि वुच्चन्ति परियोनाहना ति पि वुच्चन्ति। कतमे पञ्च? कामच्छन्दनीवरणं, ब्यापादनीवरणं, थिनमिद्धनीवरणं, उद्धच्चकुक्कुच्चनीवरणं, विचिकिच्छा-नीवरणं— इमे खो, वासेट्ठ, पञ्च नीवरणा अरियस्स विनये आवरणा ति पि वुच्चन्ति, नीवरणा ति पि वुच्चन्ति, ओनाहना ति पि वुच्चन्ति, परियोनाहना ति पि वुच्चन्ति।

३२. "इमेहि खो, वासेट्ठ, पञ्चहि नीवरणेहि तेविज्जा ब्राह्मणा आवुटा निवुटा ओनद्धा [N.208, B.232] परियोनद्धा। ते वत, वासेट्ठ, तेविज्जा ब्राह्मणा ये धम्मा ब्राह्मणकारका ते धम्मे पहाय वत्तमाना, ये धम्मा अब्राह्मणकारका ते धम्मे समादाय वत्तमाना, पञ्चहि नीवरणेहि [R.247] आवुटा निवुटा ओनद्धा परियोनद्धा कायस्स भेदा परं मरणा ब्रह्मानं सहब्यूपगा भविस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति। (३)

४. तेविज्जाइरिणं, तेविज्जाविवनं, तेविज्जाब्यसनं

३३. "तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, किं ति ते सुतं ब्राह्मणानं वुद्धानं महल्लकानं आचरियपाचरियानं भासमानानं सपरिग्गहो वा ब्रह्मा अपरिग्गहो वा" ति?

मूर्च्छित....काम की जंजीरों से बंधे हुये इस देहपात के बाद, मरणानन्तर ब्रह्म–सामीप्य पा सकें–यह सम्भव ही नहीं। (२)

३०. "और वासिष्ठ! जैसे वह अचिरवती नदी किनारों तक जल से इतनी भरी हुई हो कि कौए भी सरलता से जल पी सकें। यहाँ कोई पुरुष इस नदी को पार करने की कामना से आवे। परन्तु वह इसी किनारे पर मुँह ढककर लेट जाय, तो क्या....वह पुरुष उस पार पहुँच जायगा?" "नहीं भो गौतम!"

३१. "इसी तरह, वासिष्ठ! आर्यविनय में ये पाँच नीवरण 'आवरण' भी कहलाते हैं, 'नीवरण' भी, अवनाह भी पर्यवनाह (=बन्धन) भी कहलाते हैं। कौन से पाँच? १. कामच्छन्द (भोगलिप्सा), २. व्यापाद (=द्रोह), ३. स्त्यानमृद्ध (=आलस्य), ४. औद्धत्य–कौकृत्य (=उद्धतता, खेद), एवं ५. विचिकित्सा (=द्विविधा)। वासिष्ठ! ये पाँच नीवरण आर्यविनय में....कहलाते हैं।

३२. "वासिष्ठ! त्रैविद्य ब्राह्मण इन पाँच नीवरणों से आवृत (ढके), नीवृत, अवनद्ध, पर्यनवद्ध (बद्ध) हैं। वासिष्ठ! वे त्रैविद्य ब्राह्मण ब्राह्मणकारक धर्मों को...पूर्ववत्....ब्रह्मा की समीपता को प्राप्त कर पायें–यह सम्भव नहीं। (३) (ग)

४. त्रैविद्यों का कान्तार, जंगल व सङ्कट

३३. "तो क्या मानते हो, वासिष्ठ! कि तुमने इन ब्राह्मणों के पूर्व वृद्धों या आचार्य–प्राचार्यों को कहते सुना है वह ब्रह्मा सपरिग्रह (संग्रह करने वाला) है या अपरिग्रह?"

"अपरिग्गहो, भो गोतम"।

"सवेरचित्तो वा अवेरचित्तो वा" ति? "अवेरचित्तो, भो गोतम"।

"सब्यापज्जचित्तो वा अब्यापज्जचित्तो वा" ति? "अब्यापज्जचित्तो, भो गोतम"।

"सङ्किलिट्ठचित्तो वा असङ्किलिट्ठचित्तो वा" ति? "असङ्किलिट्ठचित्तो, भो गोतम"।

"वसवत्ती वा अवसवत्ती वा" ति? "वसवत्ती, भो गोतम"।

"तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, सपरिग्गहा वा तेविज्जा ब्राह्मणा अपरिग्गहा वा" ति? "सपरिग्गहा, भो गोतम"।

"सवेरचित्ता वा अवेरचित्ता वा" ति? "सवेरचित्ता, भो गोतम"।

"सब्यापज्जचित्ता वा अब्यापज्जचित्ता वा" ति? "सब्यापज्जचित्ता, भो गोतम"।

"सङ्किलिट्ठचित्ता वा असङ्किलिट्ठचित्ता वा" ति? "सङ्किलिट्ठचित्ता, भो गोतम"।

"वसवत्ती वा अवसवत्ती वा" ति? "अवसवत्ती, भो गोतम"।

३४. "इति किर, वासेट्ठ, सपरिग्गहा तेविज्जा ब्राह्मणा अपरिग्गहो ब्रह्मा। अपि [N.209] नु खो सपरिग्गहानं तेविज्जानं ब्राह्मणानं अपरिग्गहेन ब्रह्मुना सद्धिं संसन्दन्ति समेती" ति? "नो हिदं, भो गोतम"।

"साधु, वासेट्ठ। ते वत, वासेट्ठ, सपरिग्गहा तेविज्जा ब्राह्मणा कायस्स भेदा परं [R.248] मरणा अपरिग्गहस्स ब्रह्मुनो सहब्यूपगा भविस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

"इति किर, वासेट्ठ, सवेरचित्ता तेविज्जा ब्राह्मणा, अवेरचित्तो ब्रह्मा....पे०.... सब्यापज्जचित्ता तेविज्जा ब्राह्मणा, अब्यापज्जचित्तो ब्रह्मा...सङ्किलिट्ठचित्ता तेविज्जा [B.233] ब्राह्मणा, असङ्किलिट्ठचित्तो ब्रह्मा....अवसवत्ती तेविज्जा ब्राह्मणा, वसवत्ती ब्रह्मा। अपि नु खो अवसवत्तीनं तेविज्जानं ब्राह्मणानं वसवत्तिना ब्रह्मुना सद्धिं संसन्दति समेती" ति? "नो हिदं, भो गोतम"।

"अपरिग्रह है, भो गौतम!"

"वह सवैरचित्त है या अवैरचित्त?" "अवैरचित्त है, भो गौतम!"

"वह द्रोहचित्त है या अद्रोहचित्त?" "अद्रोहचित्त है, भो गौतम!"

"वह संक्लिष्टचित्त (मलिनचित्त वाला) है या असंक्लिष्टचित्त?" "असंक्लिष्टचित्त....!"

"वशवर्ती (अपरतन्त्र, जितेन्द्रिय) है?" "वशवर्ती है भो गौतम!"

"तो क्या मानते हो, वासिष्ठ! ये त्रैविद्य ब्राह्मण सपरिग्रह है या अपरिग्रह?" "सपरिग्रह....!"

"....सवैरचित्त है या अवैरचित्त?" "....अवैरचित्त ....!"

"....सद्रोहचित्त हैं या अद्रोहचित्त?" "....अद्रोहचित्त!"

"....संक्लिष्टचित्त हैं या अंसक्लिष्टचित्त?" "....असंक्लिष्टचित्त!"

"....वशवर्ती हैं या अवशवर्ती?" "अवशवर्ती....!"

३४. तो फिर वासिष्ठ! ये त्रैविद्य ब्राह्मण सपरिग्रह हैं और ब्रह्मा अपरिग्रह? क्या सपरिग्रह ब्राह्मणों का अपरिग्रह ब्रह्मा के साथ समानता या मिलन हो सकता है? "नहीं, भो गौतम!"

"साधु, वासिष्ठ! साधु! अरे ये सपरिग्रह ब्राह्मण देहपात के बाद, मरणानन्तर परिग्रहरहित ब्रह्मा की समीपता पा जाँय—यह सम्भव ही नहीं।

"साधु,वासेट्ठ। ते वत, वासेट्ठ, अवसवत्ती तेविज्जा ब्राह्मणा कायस्स भेदा परं मरणा वसवत्तिस्स ब्रह्मुनो सहब्यूपगा भविस्सन्ती ति नेतं ठानं विज्जति।

३५. "इध खो पन ते, वासेट्ठ, तेविज्जा ब्राह्मणा आसीदित्वा संसीदन्ति, संसीदित्वा विसारं पापुणन्ति, सुक्खतरं मञ्ञे तरन्ति। तस्मा इदं तेविज्जानं ब्राह्मणानं तेविज्जाइरिणं ति पि वुच्चति, तेविज्जाविवनं ति पि वुच्चति, तेविज्जाब्यसनं ति पि वुच्चती" ति।

५. ब्रह्मसहब्यताय मग्गो

३६. एवं वुत्ते, वासेट्ठो माणवो भगवन्तं एतदवोच— "सुतं मेतं, भो गोतम— समणो गोतमो ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गं जानाती" ति।

"तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, आसन्ने इतो मनसाकटं, न इतो दूरे मनसाकटं" ति? "एवं, भो गोतम, आसन्ने इतो मनसाकटं, न इतो दूरे मनसाकटं" ति।

३७. "तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, इधस्स पुरिसो मनसाकटे जातसंवद्धो। तमेनं मनसाकटतो [R.249] तावदेव अवसटं मनसाकटस्स मग्गं पुच्छेय्युं। सिया नु खो, वासेट्ठ, तस्स पुरिसस्स मनसाकटे जातसंवद्धस्स मनसाकटस्स मग्गं पुट्ठस्स दन्धायितत्तं वा वित्थायितत्तं वा" ति? [N.210] "नो हिदं, भो गोतम"।

"तं किस्स हेतु"? "अमु हि, भो गोतम, पुरिसो मनसाकटे जातसंवद्धो। तस्स सब्बानेव मनसाकटस्स मग्गानि सुविदितानी" ति।

"सिया खो, वासेट्ठ, तस्स पुरिसस्स मनसाकटे जातसंवद्धस्स मनसाकटस्स मग्गं पुट्ठस्स दन्धायितत्तं वा वित्थायितत्तं वा, न त्वेव तथागतस्स ब्रह्मलोके वा ब्रह्मलोकगामिनिया

"यों वाशिष्ठ! ये सवैरचित्त ब्राह्मण अवैरचित्त, ब्रह्मा की समीपता ....सम्भव ही नहीं।

" ....सव्यापादचित्त....संक्लिष्टचित्त....अवशवर्ती....ब्रह्मा की समीपता....सम्भव ही नहीं।

३५. "वासिष्ठ! ये तुम्हारे त्रैविद्य ब्राह्मण मिथ्या (गलत) मार्ग में जा फँसे हैं। फँस कर विषाद को प्राप्त हो रहे हैं, ये मानों सूखे में तैर रहे हैं। अतः इन त्रैविद्य ब्राह्मणों की त्रिविद्या ऊसर (वीरान) कही जा सकती है, कान्तार या जंगल भी कही जा सकती है, इनके लिये यह व्यसन (सङ्कट) के समान है।

५. ब्रह्मप्राप्ति का बुद्धानुमोदित मार्ग

३६. भगवान् के ऐसा कहने पर, वासिष्ठ माणव ने भगवान् से पूछा—"मैने सुना है, भो गौतम! कि आप ब्रह्मा की मैत्री का मार्ग (उपाय) जानते हैं?"

"तो क्या मानते हो वासिष्ठ! कि मनसाकट यहाँ से समीप ही है ना, दूर तो नहीं है?"

"हाँ, भो गौतम! मनसाकट यहाँ से समीप ही है, बहुत दूर नहीं है।"

३७. "तो, वासिष्ठ! ऐसा कोई पुरुष हो जो मनसाकट में पैदा हुआ हो, वही बड़ा हुआ हो, उससे कोई मनसाकट जाने का रास्ता पुछे। वासिष्ठ! मनसाकट में जन्मे, बड़े हुए उस पुरुष को मनसाकट का मार्ग पूछने पर बताने में क्या कुछ देरी या हिचकिचाहट या कोई रुकावट होगी?"

"नहीं भो गौतम!"

"वह किसलिये?" "वह इसलिये, भो गौतम! कि वह पुरुष मनसाकट में ही पैदा हुआ है, बड़ा हुआ है, उसे मनसाकट जाने–आने के सभी मार्ग अच्छी तरह ज्ञात हैं।"

"वसिष्ठ! जैसे उस मनसाकट में ही जन्में बड़े हुए पुरुष को मनसाकट जाने का रास्ता बताने में

वा पटिपदाय पुट्ठस्स दन्धायितत्तं वा वित्थायितत्तं वा। ब्रह्मानं चाहं, वासेट्ठ, पजानामि ब्रह्मलोकं च ब्रह्मलोकगामिनिं च पटिपदं, यथा पटिपन्नो च ब्रह्मलोकं उपपन्नो तं च पजानामी'' ति।

३८. एवं वुत्ते, वासेट्ठो माणवो भगवन्तं एतदवोच—''सुतं मेतं, भो गोतम, [B.234] 'समणो गोतमो ब्राह्मानं सहब्यताय मग्गं देसेती' ति। साधु नो भवं गोतमो ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गं देसेतु। उल्लुम्पतु भवं गोतमो ब्राह्मणिं पजं'' ति।

''तेन हि, वासेट्ठ, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि, भासिस्सामी'' ति। ''एवं, भो'' ति खो वासेट्ठो माणवो भगवतो पच्चस्सोसि।

३९. भगवा एतदवोच—''इध, वासेट्ठ, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मा-[R.250] सम्बुद्धो ....पे०....(*यथा सामञ्ञफले एवं वित्थारेतब्बं*) एवं खो, वासेट्ठ, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति....पे०....तस्सिमे पञ्च नीवरणे पहीने अत्तनि समनुपस्सतो पामोज्जं जायति, पमुदितस्स पीति जायति, पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति, पस्सद्धकायो सुखं वेदेति, सुखिनो चित्तं समाधियति।

''सो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा [R.251] ततियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्थताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति।

''सेय्यथापि, वासेट्ठ, बलवा सङ्खधमो अप्पकसिरेनेव चतुद्दिसा विञ्ञापेय्य; एवमेव

न कुछ देरी लगती है, न हिचकिचाहट होती है, और न कोई रुकावट होती है, उसी तरह तथागत (मुझ) को भी किसी के द्वारा ब्रह्मलोक के विषय में या उस तरफ जाने का मार्ग पूछने पर उसे बताने में न कुछ देर लगेगी न कोई हिचकिचाहट या रुकावट ही होगी; क्योंकि वासिष्ठ मैं उस ब्रह्मा को भी जानता हूँ, और ब्रह्मलोकगामी मार्ग को भी भली भाँति जानता हूँ और जिस मार्ग पर चलने से ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुंआ जा सकता है उसे भी जानता हूँ।''

३८. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, वासिष्ठ माणव ने भगवान् से यह निवेदन किया—''भो गौतम! मैने सुना है कि श्रमण गौतम ब्रह्मसामीप्य–प्राप्ति का उपाय बता सकते हैं। क्या ही अच्छा हो, भो गौतम! कि आप (मुझे) ब्रह्म की समीपता का उपाय बताने का कष्ट करें और ऐसा कर (मुझ) ब्राह्मणसन्तति का उद्धार करें।''

(भगवान् बोले–)''तो वासिष्ठ! ध्यानपूर्वक सुनो, मेरे कहे पर अच्छी तरह मन लगाओ। मैं (तुम्हें) वह उपाय बता रहा हूँ।''

''अच्छा, भन्ते'' कह कर वासिष्ठ माणव ने उत्तर दिया।

३९. भगवान् बोले–''यहाँ, वासिष्ठ! लोक में तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध.... *(पीछे श्रामण्यफल सुत्त में (पृ०६७ से ८१तक) वर्णित पालि के अनुसार)*उत्पन्न होते हैं। इस तरह वासिष्ठ! भिक्षु शीलसम्पन्न होता है....पूर्ववत्....उस स्थिति में उस के पाँचों नीवरण प्रहीण होने पर आत्मचिन्तन में लगे हुए उस को प्रामोद्य (हर्ष) होता है। इस निरन्तर प्रामोद्य से वह प्रीति प्राप्त करता है। यों उस प्रीतियुक्त भिक्षु का शरीर स्थिर एवं शान्त हो जाता है। शान्त शरीर वाला वह सुख का अनुभव करता है। उस तरह उस सुखी भिक्षु का चित्त एकाग्र हो जाता है।

मैत्री भावना–''वह मैत्री सहगत चित्त से एक दिसा को पूर्ण कर साधना करता है....दूसरी दिशा....तीसरी दिशा....चौथी दिशा....इसी प्रकार ऊपर–नीचे, टेढ़े–सीधे सर्वथा सब के लिये, मित्रभावयुक्त, विपुल, महान् अप्रमाण, निर्वैर, द्रोहरहित चित्त से समग्र लोक का स्पर्श करता हुआ साधना में लगा रहता है।

खो, वासेट्ठ, एवं भाविताय मेत्ताय चेतोविमुत्तिया यं पमाणकतं कम्मं न तं तत्रावसिस्सति, न तं तत्रावतिट्ठति। अयं पि खो, वासेट्ठ, ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गो।

[N.211] "पुन चपरं, वासेट्ठ, भिक्खु करुणासहगतेन चेतसा....पे०....मुदितासहगतेन चेतसा....पे०....उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं, तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्थताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्जेन फरित्वा विहरति।

[B.235] "सेय्यथापि, वासेट्ठ, बलवा सङ्खधमो अप्पकसिरेनेव चतुद्दिसा विञ्ञापेय्य; एवमेव खो, वासेट्ठ, एवं भाविताय उपेक्खाय चेतोविमुत्तिया यं पमाणकतं कम्मं न तं तत्रावसिस्सति, न तं तत्रावतिट्ठति। अयं खो, वासेट्ठ, ब्रह्मानं सहब्यताय मग्गो।

४०. "तं किं मञ्ञसि, वासेट्ठ, एवंविहारी भिक्खु सपरिग्गहो वा अपरिग्गहो वा" ति? "अपरिग्गहो, भो गोतम"।

"सवेरचित्तो वा अवेरचित्तो वा" ति? "अवेरचित्तो, भो गोतम"।

"सब्यापज्जचित्तो वा अब्यापज्जचित्तो वा" ति? "अब्यापज्जचित्तो, भो गोतम"।

"सङ्किलिट्ठचित्तो वा असङ्किलिट्ठचित्तो वा" ति?"असङ्किलिट्ठचित्तो, भो गोतम"।

"वसवत्ती वा अवसवत्ती वा" ति? "वसवत्ती, भो गोतम"।

[R.252] "इति किर, वासेट्ठ, अपरिग्गहो भिक्खु, अपरिग्गहो ब्रह्मा। अपि नु खो अपरिग्गहस्स भिक्खुनो अपरिग्गहेन ब्रह्मुना सद्धिं संसन्दति समेती" ति?

"एवं, भो गोतम"।

"साधु, वासेट्ठ! सो ते अपरिग्गहो भिक्खु कायस्स भेदा परं मरणा अपरिग्गहस्स ब्रह्मुनो सहब्यूपगो भविस्सती ति ठानमेतं विज्जति।

४१. " इति किर, वासेट्ठ, अवेरचित्तो भिक्खु, अवेरचित्तो ब्रह्मा....पे०.... अब्यापज्जचित्तो भिक्खु, अब्यापज्जचित्तो ब्रह्मा....असङ्किलिट्ठचित्तो भिक्खु, असङ्किलिट्ठचित्तो

"वासिष्ठ! जैसे कोई बलवान् शङ्ख बजाने वाला अल्प आयास से ही चारों दिशाओं को गुँजा देता है, वासिष्ठ! इसी प्रकार मैत्रीभावना से युक्त चित्त की मुक्ति से जितने प्रमाण में काम किया गया है वह वहीं पूरा नहीं हो जाता, रुक नहीं जाता। वासिष्ठ! यह भी ब्रह्मा की समीपता प्राप्त करने का एक उपाय है।

करुणाभावना–"और फिर, वासिष्ठ! भिक्षु करुणासहगत चित्त से....पूर्ववत्....।

"मुदिता भावना....मुदितासहगत चित्त से ....पूर्ववत्....।

उपेक्षा भावना ....उपेक्षासहगत चित्त से एक दिशा को....पूर्ववत्.... पूरा नहीं हो जाता, रुक नहीं जाता। वासिष्ठ! ब्रह्मा की समीपता प्राप्त करने का एक उपाय है।

४०. "तो क्या मानते हो, वासिष्ठ! इस तरह (इन उपायों से) साधना करने वाला भिक्षु सपरिग्रह होगा या उपरिग्रह?" "अपरिग्रह भो गौतम!....पूर्ववत्....(क्रम० सं० ३३)। "वशवर्ती, भो गौतम!"

"तो, वासिष्ठ! इस तरह वह साधक भिक्षु भी अपरिग्रह है और ब्रह्मा भी (तुम्हारे कथनानुसार) अपरिग्रह, तो वासिष्ठ! अपरिग्रह व्यक्ति का दूसरे अपरिग्रह व्यक्ति से साम्य या मेल है कि नहीं?" "है, भो गौतम!" तो ठीक है, वासिष्ठ! वह अपरिग्रह भिक्षु इस देहपात के बाद मरणानन्तर उस ब्रह्मा की मैत्री प्राप्त कर ले–यह सम्भव लगता है।

ब्रह्मा....वसवत्ती भिक्खु, वसवत्ती ब्रह्मा। अपि नु खो वसवत्तिस्स भिक्खुनो वसवत्तिना ब्रह्मुना सद्धिं संसन्दति समेती'' ति ?

''एवं, भो गोतम''।

''साधु, वासेट्ठ। सो वत, वासेट्ठ, वसवत्ती भिक्खु कायस्स भेदा परं मरणा [N.212] वसवत्तिस्स ब्रह्मुनो सहब्यूपगो भविस्सती ति ठानमेतं विज्जती'' ति।

४२. एवं वुत्ते, वासेट्ठभारद्वाजा माणवा भगवन्तं एतदवोचुं—''अभिक्कन्तं, भो गोतम! अभिक्कन्तं, भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य, चक्खुमन्तो रूपानि [B.236] दक्खन्ती ति, एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एते मयं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छाम धम्मं च, भिक्खुसङ्घं च। उपासके नो भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेते सरणं गते'' ति।

तेविज्जसुत्तं निट्ठितं तेरसमं॥

सीलक्खन्धवग्गो पठमो॥

तस्सुद्दानं

ब्रह्म-सामञ्ञ-अम्बट्ठ-सोण-कूट-महालि-जालिनी। [R.253]
सीह-पोट्ठपाद-सुभो-केवट्टो-लोहिच्च-तेविज्जा तेरसा ति॥

सीलक्खन्धवग्गो निट्ठितो॥

---

४१. ''इसी तरह, वासिष्ठ! अवैरचित्त....अव्यापादचित्त ....असंक्लिष्टचित्त....वशवर्ती....ब्रह्मा की समीपता प्राप्त कर ही लेगा—यह सम्भव लगता है।''

४२. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर वे दोनों—वासिष्ठ एवं भारद्वाज माणव भगवान् से यों बोले—''आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है, भो गौतम! ....पूर्ववत्....(अम्बट्ठसुत्त में आये ४६ वें अनुबन्ध की तरह) आज से आप गौतम हम लोगों को अञलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करें

तेरहवाँ त्रैविद्यसूत्र पूर्ण॥

प्रथम शीलस्कन्धवर्ग सम्पन्न॥

उस का उदान

(इस वर्ग में इन तेरह सूत्रों का वर्णन है—)१. ब्रह्मजाल, २. सामञ्ञ (फल), ३ अम्बट्ठ, ४. सोण (दण्ड), ५. कूट (दन्त), ६. महालि, ७. जालिनी (जालिय), ८. (महा) सीह (नाद), ९. पोट्ठपाद, १०. सुभ, ११. केवट्ट, १२. लोहिच्च एवं १३ तेविज्ज सुत्त।

शीलस्कन्धवर्ग समाप्त॥

बौद्धभारती

पो० बॉ० नं० 1049, वाराणसी-1